विश्व हिंदी पत्रिका
2024

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका

2024

प्रधान संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

संपादक
डॉ. शुभंकर मिश्र

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423,
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independance Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : +230-6600800

ISSN No. : 1694-2477

वरिष्ठ सहायक संपादक
श्री प्रकाश वीर

संपादन सहयोग
डॉ. राज शेखर, आई.सी.सी.आर, हिंदी पीठ, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
डॉ. अल्का धनपत, अध्यक्षा, भाषा संसाधन केंद्र, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

टंकण-टीम
श्रीमती विजया सरजू, श्री अजय कुमार एवं श्री नीरज कुमार

निवेदन
विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक-मंडल का उनके विचारों से सहमत होना
आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा
आर. एस. प्रिंट्स

कवर डिज़ाइन
डॉ. प्रकाश झगारू

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित

संपादकीय

अभारतीय मूल के छात्रों द्वारा हिंदी का अध्ययन

वर्तमान समय में, विश्व के अनेक भागों में अभारतीय मूल के छात्र हिंदी के अध्ययन में संलग्न हैं। मॉरीशस स्थित 'विश्व हिंदी सचिवालय' द्वारा आयोजित पाक्षिक आभासी कार्यक्रमों में विभिन्न देशों से अभारतीय मूल के कई विद्यार्थी हिंदी के प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम प्रकट करते रहते हैं। उनके कथनों से यह प्रतीत होता है कि हिंदी के महत्त्व के प्रति वे विशेष जागरूक हैं और हिंदी सीखने के उनके पृथक प्रयोजन हैं। कुछ छात्र अपने देश के किसी विश्वविद्यालय से डिप्लोमा, बी.ए., एम.ए., पी.एच.डी. आदि विभिन्न स्तरों पर हिंदी का विधिवत् अध्ययन कर रहे हैं, तो अन्य विद्यार्थी अर्थशास्त्र, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कंप्यूटर-विज्ञान आदि हिंदी से इतर क्षेत्रों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, परंतु उपलब्ध सुविधाओं के अनुसार वे विदेशी भाषा के रूप में परिश्रमपूर्वक हिंदी सीख रहे हैं। भारत में भी हिंदी का ज्ञान अर्जित करने के अवसर अभारतीय मूल के छात्रों को प्राप्त होते रहते हैं।

हिंदी की विशेषताओं से गैर भारतीय छात्र भली-भाँति परिचित हैं। श्रीलंका के 'हिंदी संस्थान' की विद्यार्थिनी इमाशा आशानी हुलंगमुव कहती है – "हिंदी दुनिया की सबसे सुंदर भाषा है" और इंग्लैंड के 'सोआस विश्वविद्यालय' में हिंदी पढ़ रही अन्ना सामकोवा का विचार है – "हिंदी दिलचस्प भाषा है।" 'ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय', ताजिकिस्तान का विद्यार्थी नुमोन अमीनोव कहता है – "हिंदी मेरे लिए न केवल एक भाषा है, बल्कि मेरे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है" और पोलैंड के 'पोज़नान विश्वविद्यालय' की हिंदी छात्रा मारिया माझुरेक के अनुसार "हिंदी सीखना मुझे बहुत पसंद है।" सुंदरता, रोचकता, सहजता, प्रवाहपूर्णता आदि अनेक गुणों के कारण हिंदी अभारतीय मूल के छात्रों के जीवन में अपना स्थान बना चुकी है। मनभावन भाषा हिंदी के पाश में बँधकर गैर भारतीय छात्र हिंदी सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने में आनंद की अनुभूति करते हैं। असल में, हिंदी सीखने का शौक उन देशों में भी हिंदी की अनुगूंज पैदा कर रहा है, जहाँ यह भाषा प्राय: नगण्य रही है।

भारत का घनिष्ठ मैत्री संबंध विश्व के अनेक देशों से है। भारत के साथ अपनी मातृभूमि का प्रगाढ़ और औपचारिक राजनयिक संबंध देखकर और अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति एवं संचार में हिंदी की महती भूमिका से अवगत होकर अभारतीय मूल के छात्र भारत की लोकप्रिय भाषा हिंदी को गले लगाने के लिए प्रेरित होते हैं। यद्यपि एक नई भाषा का अधिगम करना चुनौतीपूर्ण होता है, तथापि वे स्वेच्छा से हिंदी सीखकर भारत के लोगों के साथ उनकी अपनी भाषा में विचारों का आदान-प्रदान करके आपसी समझ और आत्मीयता बढ़ाने में प्रयत्नशील होते हैं। रशिया के 'मास्को विश्वविद्यालय' की छात्रा अनास्थासिया मिखाईलोवा कहती है –"हिंदुस्तानी लोग कितनी भी अच्छी अंग्रेज़ी क्यों न जानते हों, उनके साथ तभी असली दोस्ती बनी रह सकती है, जब उनकी मातृभाषा में उनसे संपर्क और बातचीत होती है।"

कभी पर्यटन या शैक्षिक यात्रा, तो कभी अध्ययन या अनुसंधान के उद्देश्य से अभारतीय मूल के छात्र भारत की यात्रा करते हैं। अपनी यात्रा से पूर्व ही हिंदी के कौशलों का विकास कर लेने के कारण उन्हें भारत में संचार संबंधी कोई समस्या नहीं होती है। किसी अनुवादक या शब्दकोश पर निर्भर हुए बिना वे हिंदी को समझते हुए स्थानीय परिवेश से तालमेल बिठाते हैं। हिंदी में ध्वनि-उच्चारण तथा शब्द-प्रयोग का अभ्यास करने का पर्याप्त अवसर पाकर वे अपनी भाषा-क्षमता का विकास करते हैं और अपनी भारत-यात्रा के लक्ष्य को भी पूर्णत: प्राप्त करते हैं। 'चुलालोंकोर्न विश्वविद्यालय', थाईलैंड की चिदापा मैन्मिन कहती है – "पिछले महीने मुझे भारत जाने का प्रथम अवसर मिला। मुझे बहुत खुशी हुई कि रास्ते पर जो लिखा हुआ था, मैं सबको पढ़ सकी। दुकानदारों के साथ और सभी लोगों से हिंदी में बात कर सकी।"

इसमें कोई दो राय नहीं कि हिंदी भारत के लोगों से जुड़ने में कारगर सिद्ध होती है। 'कालीफ़ोर्निया विश्वविद्यालय', बर्कले, अमेरिका में 'भारत का राजनीतिक अर्थशास्त्र एवं विकास' विषय पर पी.एच.डी. के स्तर पर अनुसंधान कर रहा जोनाथन ओल्ड जब अपने शोध के लिए भारत पहुँचा, तब हिंदी में सार्थक संवाद स्थापित करके उसने वहाँ के लोगों के साथ भावात्मक रिश्ता बना दिया। उसने अनुभव

किया कि हिंदी भारतीयों के हृदय का प्रवेश-द्वार है। इस संदर्भ में उसका कथन है – "भाषा द्वार खोलती है और दिल भी खोलती है। आप लोगों की भाषा बोलते हैं, तो जो मुस्कान आप देखते हैं, वह बहुत विशेष है।"

भारत के ज्ञान-विज्ञान, धर्म, साहित्य, त्यौहार, भोजन, परिधान और अनेक कलाओं से हिंदी गहराई से जुड़ी हुई है। 17वीं शताब्दी से ही ज्ञान-पिपासु विदेशी भारत की विराट संस्कृति को समझने के लिए हिंदी की अपनी समझ विकसित करते रहे हैं। आज गैर भारतीय छात्र भारतीय संस्कृति की विविधता और विशिष्टता से सम्मोहित होकर हिंदी से सहर्ष जुड़ते हुए भारत की संस्कृति का सांगोपांग परिचय प्राप्त कर रहे हैं। वियतनाम में 'सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी विश्वविद्यालय' का विद्यार्थी, फन वू जुंग का कहना है – "विश्वविद्यालय में हिंदी सीखने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति को गहराई से समझने का भी अवसर प्राप्त हुआ।"

भारत से बाहर जिस देश में भी भारतीय प्रवास करते हैं, वहाँ वे अपनी सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण रखने का प्रबलतम प्रयास करते हैं। प्रवासी भारतीयों के संपर्क में आनेवाले गैर भारतीय छात्र 'भारतीयता' के अनोखे तत्त्वों का अवलोकन करके भारत की संस्कृति और भाषा दोनों के प्रति आकर्षित होते हैं। 'मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी' का विद्यार्थी जैक सेब्री अपना अनुभव साझा करता है – "विश्वविद्यालय में मैं कई लोगों से मिला, जो हिंदी और तमिल बोलते थे। कुछ समय के बाद मुझे भारतीय संस्कृति में आम रुचि हुई, विशेषकर भारतीय भाषा में।"

विश्व में लगभग सात हज़ार भाषाएँ बोली जाती हैं। ध्वनि, शब्द, वाक्य-रचना, भाव-धारा, चिंतन-प्रणाली, कथन-शैली आदि के अनेक स्तरों पर दुनिया की भाषाओं में सादृश्यता दिखाई देती है। बाहरी तौर पर भिन्न दिखने वाली हिंदी आंतरिक तौर पर विश्व की कई भाषाओं के समान है। अभारतीय मूल के विद्यार्थी अपनी मातृभाषा और विदेशी भाषा हिंदी में समानताएँ देखकर चकित होते हैं। आर्मेनिया में भारतीय दूतावास के सहयोग से संचालित भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में अध्ययन के दौरान नारिने मानुक्यान अर्मेनियाई भाषा एवं हिंदी भाषा की समानता पर हैरानी व्यक्त करती है – "मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, जब मुझे पहली बार पता चला कि बहुत सारे ऐसे शब्द हैं, जिनका प्रयोग हम अपनी बोली में करते हैं, वे हिंदी में आम शब्द हैं। मैं ने सीखा कि 'दोस्त' का मतलब 'मित्र' है और मेरी बोली में इसका मतलब 'ऐसा कोई व्यक्ति है, जो दिल के करीब है।" थाईलैंड के 'शिल्पाकर्न विश्वविद्यालय' की छात्रा, विजिता सायजयभूमि कहती है – "हिंदी के अनेक शब्द थाई भाषा में भी मिलते हैं । उनके उच्चारण के रूप बदले हैं। जैसे हिंदी में 'राजा', थाई में 'राशा', हिंदी में 'ऋतु', थाई में 'रूडू', हिंदी में 'नदी', थाई में 'नाथी'। ये सभी संस्कृत से उधार लिए गए शब्द हैं, जो थाई भाषा में भी प्रयुक्त होते हैं।" भाषागत समानताएँ गैर भारतीय विद्यार्थियों के हिंदी अध्ययन को निश्चित रूप से नया आयाम प्रदान करती है, जिससे वे मातृ-भाषा और विदेशी भाषा दोनों के ज्ञान को समृद्ध कर पाते हैं।

हिंदी भारत के जीवंत फ़िल्म उद्योग बॉलीवुड की प्रचलित भाषा है। आज बॉलीवुड का जादू पूरी दुनिया में फैला हुआ है। गैर भारतीय भी हिंदी फ़िल्मों के प्रशंसक हैं। 'मदर इंडिया', 'आवारा', 'मुगलेआज़म', 'शोले' जैसी पुरानी फ़िल्मों से लेकर '3 इडियट्स', 'दंगल', 'माई नेम इज़ खान', 'पठान' जैसी आधुनिक फ़िल्मों की धूम अनेक देशों में मची है। ये फ़िल्में विदेशियों को हिंदी से परिचित कराती हैं। पुर्तगाल के 'लिस्बन विश्वविद्यालय' की अंद्रेय मरुजू कहती है – "हिंदी भाषा से मेरा पहला संपर्क पुरानी भारतीय फ़िल्मों से हुआ। मुझे याद है कि मैं ने पहली फ़िल्म विजय साधना के 'प्यार चुकता नहीं' देखी थी।"

अपनी भावनात्मक अपील, शानदार गीत-संगीत, सुंदर संवाद, बहुरंगीन नृत्य, मनोरंजक तमाशे, लुभावने दृश्य आदि विशेषताओं के कारण हिंदी फ़िल्में हर उम्र, वर्ग, जाति और समुदाय के लोगों के बीच चर्चा का विषय बनती हैं। एक गैर भारतीय जब किसी भारतीय मित्र से मिलता है तब दोनों की सामान्य बातचीत की शुरुआत अनायास ही किसी हिंदी फ़िल्म से होती है। 'बूसान विदेशी भाषा विश्वविद्यालय', दक्षिण कोरिया की छात्रा गाराम सौ कहती है – "मुझे एक ऑनलाइन भारतीय दोस्त मिली। दोस्त बनाने के बाद मैं उनसे हर दिन दो घण्टे हिंदी में बात करती थी। हमारी बातें पसंदीदा गानों, फ़िल्मों, संस्कृति जैसे विषयों से शुरू हुईं।"

हिंदी फ़िल्मों में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत, शांत, वात्सल्य आदि रसों से भरपूर बहतरीन गीत होते हैं। अनगिनत गीतों की मधुर धुन दुनिया भर के लोगों को मंत्र-मुग्ध करती है। गैर भारतीय छात्र भले ही हिंदी भाषा से अनभिज्ञ होते हैं, फिर भी मनोहर हिंदी गीतों को सुनकर मात्र अनुकरण करके मस्ती में उन्हें गाते हैं। वियतनाम में 'स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र' की निदेशिका डॉ. मोनिका शर्मा कहती हैं – "श्रीलंका में मेरे बहुत से हिंदी विद्यार्थी थे, जो हिंदी लिखना नहीं जानते थे, हिंदी का व्याकरण नहीं समझते थे, लेकिन जब वे मंच से गाते थे, तब सुनने वालों को लगता था कि वे हिंदी में पारंगत हैं।"

हिंदी गीतों के ध्वनि-संकेतों और शब्दों के अर्थ को समझकर उन्हें अच्छी तरह से गाने की चेष्टा में गैर भारतीय छात्र बड़े चाव से हिंदी सीखते हैं। हिंदी-ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरांत वे गायन की भी शिक्षा हेतु प्रयासरत रहते हैं। तंज़ानिया की मुनीरा माचो यूसुफ़ अपनी निम्नांकित कामना प्रकट करती है – "स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र में मेरे जैसा कई छात्र हिंदी गाने गा रहे हैं। 'लता

मंगेशकर छात्रवृत्ति' से संगीत-प्रेमियों को भारत जाकर संगीत में अपना डिप्लोमा करने का मौका मिल रहा है। आशा कर रही हूँ कि मैं भी अगले साल इस छात्रवृत्ति को प्राप्त कर सकूँ।"

यह प्रश्न गैर भारतीय छात्रों के मन में भी उठता है कि हिंदी सीखने से नौकरी की क्या संभावना हो सकती है। सच्चाई यह है कि एक अतिरिक्त भाषा का ज्ञान नौकरी के क्षेत्र में लाभकारी होता है। दुनिया में द्विभाषी अथवा बहुभाषी कौशल वाले पेशेवरों की माँग बढ़ती जा रही है। इसके अलावा, भारत में अत्यधिक तीव्र गति से जो आर्थिक परिवर्तन हो रहा है और भारत की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में जो विकास हो रहा है, इनसे स्पष्ट संकेत मिलता है कि भारतीय जिस प्रकार अंग्रेज़ी सीखकर विदेशों में नौकरी की संभावना प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार विदेशियों के लिए भी हिंदी सीखकर भारत में आजीविका कमाने की संभावना तैयार हो चुकी है। दक्षिण कोरिया की गाराम सौ कहती है – "मेरा सपना है कि मैं हिंदी सीखकर भारत में ही नौकरी करूँ। इस सपने को पूरा करने के लिए मैं खूब मेहनत करूँगी।" अपने बायोडेटा में हिंदी भाषा-कौशल को सम्मिलित करके गैर भारतीय छात्र निश्चित रूप से भीड़ से आगे निकल सकते हैं।

हिंदी सीखने का कोई भी कारण हो सकता है। महत्त्वपूर्ण यह है कि अभारतीय मूल के छात्र हिंदी से जुड़ रहे हैं, उसके फलक का विस्तार कर रहे हैं और वैश्विक पटल पर हिंदी के ध्वजवाहक बन रहे हैं। विश्व हिंदी सचिवालय अपने पाक्षिक आभासी कार्यक्रमों द्वारा इन विद्यार्थियों को हिंदी भाषा को गहराई से सीखने के लिए प्रोत्साहित करता है। सचिवालय द्वारा तैयार किए गए वैश्विक मंच पर उपस्थित होकर गैर भारतीय छात्र जब अपने हिंदी-प्रेम का उद्गार प्रकट करते हैं तब यह प्रमाणित होता है कि विश्व में हिंदी की सही व्याप्ति हो रही है। वास्तव में, हिंदी को अपनाने वाले अभारतीय मूल के छात्र, वे बीज हैं, जिन्हें अगर सावधानी से सींचा जाएगा, तो वे पल्लवित, पुष्पित और फलित होकर हिंदी के नवीन युग का सूत्रपात करेंगे।

डॉ. माधुरी रामधारी
महासचिव

संपादकीय

अपनी बात

सभ्यताएँ संवाद करती हैं। भारतीय सभ्यता, संस्कृति और दर्शन के विकास में संवाद और विमर्श की एक समृद्ध परंपरा रही है। संवाद से निर्गमित भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परंपरा से हमारी थाती का एक बड़ा अंश निर्मित है। राजा जनक की सभा का वह चर्चित प्रसंग भला किसे स्मरण नहीं होगा, जब शास्त्रार्थ के क्रम में, विद्वत्जनों की सभा में विदुषी गार्गी प्रश्न पूछती हैं तो ऋषि याज्ञवल्क्य उसका विमर्शमूलक समाधान प्रस्तुत करते हैं। इस शास्त्रार्थ में विदुषी गार्गी की बेशक पराजय हुई हो, पर प्रश्न पूछने और उनके समाधान ढूँढने के लिए संवाद की इस मानवीय प्रवृत्ति ने भारतीय ज्ञान-परंपरा को आशातीत रूप से समावेशी एवं प्रगतिशील बनाया है।

कहना नहीं होगा कि संवाद स्थापित करने की इस सम्यक दृष्टि की संपुष्ट बुनियाद पर वैश्विक समाज में हम अपनी प्रतिष्ठा और पहचान बनाने में बख़ूबी सफल रहे हैं। ध्यातव्य है कि प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा विद्यालय के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान-अर्जन मात्र नहीं, अपितु संवाद एवं विमर्श के आधार पर आत्मज्ञान एवं मुक्ति के परम् लक्ष्य को अर्जित करने के रूप में माना गया है –"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।"

संवाद की हमारी यह परंपरा वैश्विक समाज के लिए भी सर्वथा अनुकरणीय रही है। इसमें कोई दो राय नहीं कि मनुष्य के पास मेल-मिलाप के जितने भी साधन उपलब्ध हैं, उनमें सबसे मज़बूत असर डालने वाला रिश्ता संवाद और भाषा का है। भाषा, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत पहचान का प्रतीक है और हमारे सशक्तिकरण का संबल भी। यह हमें एक भावात्मक सूत्र में बाँधती है और साझी विरासत से जोड़ती है।

संस्कृत की एक प्रसिद्ध उक्ति है कि "संस्कृतिः संस्कृताश्रिता" अर्थात् हमारी संस्कृति, संस्कृत पर आश्रित है। इसका आशय यह भी है कि यदि हमें अपनी संस्कृति की रक्षा करनी है तो नैतिकता और नैष्ठिकता के अंतर्निहित गुणों से युक्त निज भाषा का अवलंबन सर्वोपरि है। निज भाषा अवलंबन का दर्शन, वस्तुतः हमारे मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि सरोकारों से जुड़ा हुआ है, जिसका संबध हमारे दिल से है। प्रसंगानुसार, सामासिक संस्कृति की परिचायिका निज भाषा 'हिंदी' न केवल अखिल भारतीय स्तर पर, अपितु वैश्विक स्तर पर हम सबको भावात्मक एकता और समावेशिता का पाठ पढ़ाती है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि हिंदी एक ऐसी भाषा है, जो दुनियाभर के लोगों के लिए विशिष्ट महत्व रखती है। यह देश-विदेश में बड़ी संख्या में लोगों से परस्पर संवाद स्थापित करने में हमारी मदद करती है। भारत का इतिहास साक्षी है कि स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी भावात्मक एकता की एक प्रतीक भाषा रही है, जो श्रीमद्भगवद्गीता के 'न दैन्यं न पलायनम्' के मूलभूत सिद्धांत पर परतंत्रता की बेड़ियों से निर्बंध-स्वतंत्र होने के लिए वंदेमातरम् और इंक़लाब ज़िंदाबाद की भाषा बनी।

विदित ही है उन दिनों, हिंदी का प्रश्न मूलतः 'स्वराज' हासिल करने से जुड़ा था, जो एक स्पष्ट ध्येय - संप्रभु भारत राष्ट्र और भारतीयता की पुनर्स्थापना के स्वप्न को येन-केन-प्रकारेण साकार करने के निश्चय से भरपूर था। संघर्ष की इस विषम पृष्ठभूमि में हिंदी भाषी और इससे इतर क्षेत्र के महापुरुषों ने भी हिंदी को हृदय से राष्ट्रीयता का मूल स्वर माना। यही वजह है कि इस संपुष्ट भावात्मक बुनियाद पर स्वतंत्रता पश्चात हिंदी एक समर्थ, सक्षम और बहुआयामी भाषा बनी।

पृष्ठभूमि-स्वरूप उल्लेखनीय है कि 14 सितंबर 1949 को भारत की संविधान सभा ने हिंदी को देवनागरी लिपि में भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। इस क्रम में आगे 1953 से प्रतिवर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाया जाता है। राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने के अतिरिक्त, देशीय स्तर पर हिंदी के कई और भावात्मक रूप भी हैं – संपर्क-भाषा, जनभाषा आदि-आदि, जो देश और समाज में हिंदी की अभिस्वीकृति और उसकी महत्तर प्रासंगिकता की ओर इंगित करते हैं। वर्ष - 2024 में हम सबने हिंदी दिवस

की 'हीरक जयंती' मनाई और हिंदी के चतुर्दिक विकास के लिए देशीय एवं वैश्विक स्तर पर अपनी प्रतिबद्धता दुहराई।

भारत में हिंदी का प्रश्न, दरअसल मातृभाषा यानी वह पहली भाषा, जिसे हम जन्मना अनायास सीखते हैं, से भी जुड़ा हुआ है। मातृभाषा, हमारे आसपास की दुनिया को समझने-बूझने में काफ़ी मददगार होती है। बदकिस्मती से दुनिया की 40% आबादी को उस भाषा में शिक्षा की बुनियादी सुविधा उपलब्ध नहीं है, जिसे वे समझते हैं। इससे खासकर गरीब पृष्ठभूमि के बच्चों की शिक्षा पर नकारात्मक असर पड़ता है। भारतीय प्रसंग में हिंदी को 'बहुभाषावाद' के प्रतीक के रूप में देखे जाने की महती आवश्यकता है, क्योंकि प्रयोग-स्फीति की दृष्टि से हिंदी बहुव्यापी है और शब्द-संपदा की दृष्टि से अन्योन्याश्रित। प्रकारांतर से स्वदेशी भाषाएँ, जिसमें हिंदी भाषा भी शामिल है, दरअसल हमारे चतुर्दिक विकास, शांति और सुलह के लिए ख़ास मायने रखती हैं।

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारतीय स्कूली पाठ्यक्रमों में बुनियादी शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा के प्रयोग की वकालत करती है ताकि विषय-वस्तु और सीखने-समझने के अनुभव को और बेहतर बनाया जा सके। अब यह एक सर्व-स्वीकार्य तथ्य है कि जो व्यक्ति अपनी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते हैं, वे आमतौर पर जीवन में शैक्षणिक रूप से बेहतर प्रदर्शन करते हैं।

हिंदी की पहुँच दिग-दिगंतर है और इसकी उपलब्धता सर्वव्यापी। सुखद है कि हिंदी एक समृद्ध भाषा है, जो तमाम भौगोलिक बाध्यताओं को लाँघते हुए, आज देश-देशांतर में ख़ूब फल-फूल रही है। अपनी व्यापक लोकप्रियता के कारण आज हिंदी ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा, मनोरंजन और बहुविध सूचनाओं का महत्वपूर्ण स्रोत बन गई है। यह विशाल जनमानस तक पहुँचते हुए एक उत्साही और जीवंत वैश्विक समुदाय का निर्माण कर रही है, जो न केवल भारतीय मूल, अपितु भारत-प्रेमियों को भी एक सूत्र में बाँध रही है।

आज दुनियाभर में सबसे बड़ी आबादी प्रवासी भारतीयों की है। कहते हैं कि अतीत की स्मृतियाँ बड़ी मधुर होती हैं। भारतीय भाषाएँ, विशेषकर हिंदी, भारत से बाहर रहने वाली, इस उभरती भारतीय 'सॉफ्ट पावर' को परस्पर जोड़ने, संवाद करने और सांस्कृतिक अंतराल को पाटने की दिशा में एक सशक्त माध्यम के रूप में है। भारत-भारतीयता, भाषा-संस्कृति आदि के मर्म पर केंद्रित इन प्रवासी भारतीयों का सृजन-संसार, अपनी अगली पीढ़ी को भारत की मुख्य धारा से जोड़ने और उन्हें संस्कृति व संस्कार सीखने-सिखाने की एक अकुलाहट के साथ दिखती है। अपनी सामाजिक, भाषिक एवं भौगोलिक भिन्नताओं के बावजूद, यह भाषा इनके दुःख-सुख, भाव-अभाव, असमानता और संघर्ष-अभिव्यक्ति की भाषा बनी। रचनाधर्मिता की कूची से, जब यह साहित्य-संसार अपने अस्तित्व में आया, तो सच्चे अर्थों में यह बहुवर्णी, बहुआयामी 'विश्व साहित्य' के रूप में हम पाठकों के समक्ष उपस्थित हुआ। इस तरह के साहित्य-संसार में आपको साझेपन का सरोकार और सत्व का तत्व आधिक्य के साथ दिखेगा। मशहूर शायर निदा फ़ाज़ली के शब्दों में इसे यहाँ कुछ यूँ बयाँ किया जा सकता है -

साँसें जितनी मौजें उतनी, सब की अपनी-अपनी गिनती
सदियों का इतिहास समुंदर, जितना तेरा उतना मेरा

उल्लेखनीय है कि प्रवासी हिंदी साहित्य-सृजन में उन भारत-प्रेमियों का भी महती योगदान है, जो इतिहास-जनित सहज कौतुहलता से 'प्राच्य-विद्या' और 'अतुल्य भारत' को नज़दीक से जानना-समझना चाहते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि ये भारत-प्रेमी रचनाकार, प्रवासी हिंदी साहित्य के एक बड़े अंश के निर्माता हैं।

हिंदी के विश्वव्यापी फलक पर यदि दृष्टिपात करें तो इसकी प्रासंगिकता और उपादेयता आपको कई संदर्भों, यथा - आप्रवासी भारतीयों में हिंदी के जीवंत प्रयोग, शैक्षिक संस्थाओं में हिंदी भाषा के अध्ययन-शिक्षण और स्वयंसेविता के आधार पर चल रहे हिंदी-शिक्षण के विभिन्न अनौपचारिक रूपों में दिखेगी।

हिंदी को बढ़ावा देने की अपनी प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हुए 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' (आईसीसीआर) द्वारा हाल ही में 'गगनांचल' का एक विशेष अंक 'विदेश में हिंदी' शीर्षक से निकाला गया है। विशाल कलेवर वाले इस विशेषांक में विश्वभर के प्रख्यात भारतीय और विदेशी हिंदी विद्वानों ने अपना योगदान दिया है। इस विशेषांक के माध्यम से पाठकगण, इन लेखकों के सृजन-संसार से विशेष रूप से परिचित हुए। इस अंक में अमरीका से पीटर नैप्सिक, ऑस्ट्रेलिया से पीटर फ्रीडलैंडर, उज्बेकिस्तान से बायोट रख्मातोब, जापान से ताकाहाशी आकिरा, हिदेआकी इशिदा एवं हिरोको नागासाकी, डेनमार्क से एल्लार रेनर, थाईलैंड से पैतूनसांग्केओ, फिजी से सुभाषनी लता कुमार, मनीषा रामरक्खा और सुब्रमनी, बुल्गारिया से बोरिसस्लाव कोस्तोव, मॉरीशस से बीरसेन जागासिंह, स्विट्जरलैंड से निकोला पोत्ज़ा, चेक गणराज्य से ओदोनल स्मेकल तथा नेपाल से संजीता वर्मा आदि विद्वानों की रचनाएँ शामिल हैं। यह साहित्य-संसार हमें इस बात के प्रति पूरी तरह आश्वस्त करता है कि प्रवासी हिंदी साहित्य का भविष्य सर्वथा उज्ज्वल है तथा उनका रचना-संसार समुद्र के समान अथाह और आकाश के समान अनंत है। विशेषांक 'विदेश में हिंदी', हिंदी भाषा के लचीलेपन, समावेशिता और सार्वभौमिकता का एक आदर्श उदाहरण है, जो प्रवासी हिंदी लेखन की दिशा में विश्व को एकजुट करने के एक भगीरथ प्रयत्न के

रूप में देखा जा सकता है। इस विशेषांक के प्रकाशन व संपादन के लिए 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' एवं इसके अतिथि संपादक, डॉ. विमलेश कांति वर्मा विशेष बधाई के पात्र हैं।

हिंदी प्रचार-प्रसार के वैश्विक फलक की चर्चा में अब अंतरराष्ट्रीय संगठन 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में हिंदी की उपस्थिति एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। सन 1977 में मोरारजी देसाई की सरकार में तत्कालीन विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को भला कौन भूल सकता है, जब उन्होंने पहली बार 'संयुक्त राष्ट्र की आम सभा' में हिंदी में अपना ऐतिहासिक भाषण दिया था। "मैं भारत से शुभकामना संदेश लाया हूँ....., के उस इतिहास प्रसिद्ध भाषण के माध्यम से पहली बार हिंदी विश्व का आम स्वर बना, जिसमें गुटनिरपेक्षता, धर्मनिरपेक्षता का भारतीय सरोकार था और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भारतीय दर्शन का संदेश था। संयुक्त राष्ट्र की आम सभा में हिंदी में दिया गया यह ऐतिहासिक भाषण एक निर्णायक क्षण था, जिसने विश्व स्तर पर हिंदी भाषा को बढ़ावा देने हेतु भारतीय प्रयासों के लिए एक रास्ता बनाया। इसके पश्चात् भारतीय नेतृत्व ने विभिन्न अवसरों पर संयुक्त राष्ट्र को हिंदी में कई बार संबोधित किया, जो कूटनीति की भाषा के रूप में हिंदी को बढ़ावा देने की हमारी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

यह सुस्पष्ट है कि हिंदी एक महत्वपूर्ण वैश्विक मान्यता वाली भाषा है। संयुक्त राष्ट्र (यूएन) जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इसकी मान्यता और उपयोगिता बढ़ाने के लिए कई उल्लेखनीय प्रयास किए जा रहे हैं। विदित ही है कि हिंदी 'यूनेस्को' में नौ कामकाज़ी भाषाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा चुकी है। सन 2018 में, संयुक्त राष्ट्र के भीतर हिंदी को बढ़ावा देने हेतु, संयुक्त राष्ट्र और भारत सरकार के बीच एक 'स्वैच्छिक वित्तीय योगदान समझौते' पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते के तहत, संयुक्त राष्ट्र ने फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम पर हिंदी सोशल मीडिया अकाउंट और यूएन न्यूज़ के लिए एक हिंदी वेबसाइट लॉन्च की है। इनके अलावा, संयुक्त राष्ट्र, 'संयुक्त राष्ट्र रेडियो वेबसाइट' पर हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित करता है, 'साउंड क्लाउड' पर एक साप्ताहिक हिंदी समाचार बुलेटिन जारी करता है तथा हिंदी में एक संयुक्त राष्ट्र ब्लॉग प्रकाशित करता है। इनके साथ ही एंड्रॉइड और आईओएस के लिए 'यूएन समाचार मोबाइल' ऐप का 'हिंदी-विस्तार' भी अब उपलब्ध है। आगे, 10 जून सन् 2022 को भारत द्वारा सह-प्रायोजित, संयुक्त राष्ट्र महासभा (यूएनजीए) में बहुभाषावाद के लिए लाए गए प्रस्ताव से हिंदी भाषा को ऐतिहासिक स्वीकृति मिली है। इसके माध्यम से आधिकारिक और गैर-आधिकारिक भाषाओं, जिनमें हिंदी भी शामिल है, में महत्वपूर्ण जानकारी और संदेशों के प्रसार के महत्व को बल मिला है।

वैश्विक प्रचार-प्रसार की दिशा में एक सहयोगी प्रयास के रूप में 'विश्व हिंदी पत्रिका' का यह अंक, आप सबके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में विभिन्न उप-शीर्षकों के माध्यम से संवाद और विचार-विमर्श की परंपरा को आगे बढ़ाया गया है। हिंदी प्रचार-प्रसार की दिशा में प्रगतिशील रहते हुए, इसमें स्थापित एवं उदीयमान लेखकों के विचारों को स्थान दिया गया है। इस अंक में हिंदी के बहुविध पक्षों, विशेषकर इसके 'ई-संसार एवं जनमाध्यम' पर विमर्श आप सबसे एक विशेष अपेक्षा रखता है। आशा है आप सब इससे लाभान्वित होंगे। ध्यातव्य है कि पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार व्यक्तिगत हैं, जिनसे संपादकीय सहमति अपेक्षित नहीं है।

विदित ही है कि डिजिटल युग के आगमन के साथ, हिंदी तेज़ी से लोकप्रिय हुई है। मेरी राय में, प्रयोक्ताओं की सुविधा की दृष्टि से अधिकाधिक शिक्षण-सामग्री को 'डिजिटलाइज्ड' कर हम हिंदी शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में 21वीं सदी के लिए अपेक्षित कौशलों, जैसे जीवनोपयोगी कौशल, संचार कौशल, रचनात्मकता, डिजिटल साक्षरता और सांस्कृतिक जागरूकता आदि के लिए यथेष्ट संसाधन विकसित कर सकते हैं। इन तकनीक-समर्थित प्रयत्नों से, निस्संदेह वैश्विक स्तर पर "**पढ़िए कभी भी, कहीं भी"** की भावना को प्रश्रय मिलेगा और हम उन प्रयोक्ताओं तक भी पहुँच सकेंगे, जो कदाचित हमारी पहुँच से बाहर हैं।

हिंदी की वैश्विक पहुँच एवं इसकी उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु, आप सबका सहयोग अपेक्षित है। इस उम्मीद के साथ कि हम इसी प्रकार संवाद और विमर्श की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए एकजुट होकर हिंदी शिक्षण-अधिगम की दिशा में नवाचारी शिक्षण हेतु अहर्निश अपने कर्तव्य पथ पर बढ़ते रहेंगे - "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" - हम सब एक साथ चलें, आपस में संवाद करें, हमारे मन एक हों !

डॉ. शुभंकर मिश्र
उपमहासचिव

अनुक्रम

हिंदी : विकास-यात्रा एवं लिपि

1.	हिंदी नई चाल में ढली	- नुनिता राई	2
2.	हिंदी की विकास-यात्रा : ऐतिहासिक संदर्भ	- डॉ. शहाबुद्दीन	9
3.	खड़ी बोली का उद्भव और विकास	- डॉ. राजेंद्र गौतम	15
4.	हिंदी का संघर्ष जारी है	- सरोजिनी नौटियाल	20
5.	खड़ी बोली गद्य के विकास में भारतेंदु की भूमिका: एक अनुशीलन	- डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव 'सागर'	25
6.	असम में हिंदी की विकास-यात्रा	- डॉ. कुसुम कुंज मालाकार	30
7.	हिंदी में प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी शब्दों के दुहरे रूप	- सीताराम गुप्ता	35

साहित्य एवं अनुवाद

8.	डॉ. यायावर की सजलों में नवगीत के तत्व	- कृष्ण कुमार यादव 'कनक'	40
9.	स्वतंत्रता-आंदोलन के अलक्षित हिंदी कवि और उनकी कविताएँ	- डॉ. ज्योति यादव	45
10.	महामानव रवींद्रनाथ एवं निराला	- अनीता गांगुली	50
11.	समकालीन हिंदी गज़ल में पर्यावरण चेतना	- महावीर सिंह	54
12.	नारी-विमर्श का सृजनात्मक परिदृश्य	- डॉ. भाऊसाहेब नवले	60
13.	फ़िजी हिंदी की साहित्यिक परंपरा	- डॉ. सुभाषिनी लता कुमार	64
14.	भारतीय गिरमिटिया समाज और रामचरितमानस	- दीप्ति अग्रवाल	70
15.	मुहावरों और लोकोक्तियों का अनुवाद	- डॉ. सुप्रिया प्रभाकर जोशी	77

हिंदी का ई-संसार एवं जन-माध्यम

16.	मीडिया का अनुवाद : समस्याएँ एवं समाधान	- प्रोफेसर (डॉ.) अर्जुन चव्हाण	85
17.	हिंदी को जन-जन तक पहुँचाता सोशल मीडिया	- डॉ. संजय कुमार	94
18.	डिजिटल विश्व में हिंदी के बढ़ते कदम	- डॉ. कमलेश गोगिया	99
19.	हिंदी का ई-संसार	- डॉ. सविता डहेरिया	103
20.	अपनी पहुँच से समृद्ध होती हिंदी	- अभिनव अरुण	108
21.	नीदरलैंड में हिंदी पत्रकारिता	- डॉ. जवाहर कर्नावट	112

विश्व में हिंदी

22. विश्व फलक पर बढ़ते हिंदी के कदम - डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव 118
23. विश्व में हिंदी : विकास एवं विस्तार - प्रो. क्षेमसिंह डहेरिया 125
24. हिंदी के वैश्विक भाषा बनने की चुनौतियाँ - सपना चमड़िया 133
25. विश्व शांति की भाषा है - हिंदी - प्रो. कन्हैया त्रिपाठी 138

हिंदी सेवी : व्यक्ति एवं संस्था

26. संपादकाचार्य पंडित देवीदत्त शुक्ल - दीपक कुमार पाण्डेय 143
27. आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल और हिंदी - राजीव रंजन 148
28. डॉक्टर धनीराम प्रेम - एक बेजोड़ प्रवासी - रोहित कुमार हैप्पी 153
29. अमीराती मरु-कुंज के हिंदी सेवी - डॉ. आरती 'लोकेश' 157
30. दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के ध्वज वाहक- प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम - डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा 162

हिंदी शिक्षण

31. श्रीलंका की उच्च शिक्षा के मानदंड एवं केलानिया विश्वविद्यालय के हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि का अनुकूलन - हसारा दसुनि हिरिमुतुगॉड 167
32. अमेरिका का साहित्यिक-शैक्षणिक परिवेश और हिंदी-शिक्षण की समस्याएँ - इला प्रसाद 174
33. उच्च शिक्षा में हिंदी शिक्षण - डॉ. साएमा बानो 178

विविध आयाम

34. गांधीगिरी में है गहन हिंदी प्रेम और गहन हिंदी चिंतन - सुरेश कुमार श्रीचन्दानी 184
35. 21वीं सदी की रोज़गारोन्मुखी हिंदी - प्रवीण कुमार सहगल 188
36. हिंदी का आज - अनिकेत गौतम 193
37. मानव-संसाधन प्रबंधन, सांगठनिक आत्मीयता एवं हिंदी - डॉ. साकेत सहाय 197

हिंदी : विकास-यात्रा एवं लिपि

1. हिंदी नई चाल में ढली - नुनिता राई

2. हिंदी की विकास-यात्रा : ऐतिहासिक संदर्भ - डॉ. शहाबुद्दीन

3. खड़ी बोली का उद्‌भव और विकास - डॉ. राजेंद्र गौतम

4. हिंदी का संघर्ष जारी है - सरोजिनी नौटियाल

5. खड़ी बोली गद्य के विकास में भारतेंदु की भूमिका - डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव 'सागर'

6. असम में हिंदी की विकास यात्रा - डॉ. कुसुम कुंज मालाकार

7. हिंदी में प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी शब्दों के दुहरे रूप - सीताराम गुप्ता

हिंदी नई चाल में ढली

नुनिता राई
सिक्किम, भारत

खड़ी बोली हिंदी के विकास के प्रारंभ के साथ-साथ परोक्ष व अपरोक्ष रूप में अनेक धारणाएँ बनने लगीं। भारतेंदु हरिश्चंद्र खड़ी बोली हिंदी के पुरोधा हैं। भारतेंदु का जो पक्ष तत्कालीन समय में हिंदी के लिए है, वह अब बहुत अधिक परिवर्तित या यह कहना चाहिए कि परिमार्जित रूप में हमारे सम्मुख है। यह कालांतर में हिंदी को दिशा मिलने व अनेक आयामों में इसके प्रवेश करने का परिणाम है। आज तकनीक, कार्यालय, शोध, संपर्क-माध्यम तथा पत्रकारिता (प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक) आदि की भाषा हिंदी के रूप में दृष्टिगोचर है। किंतु भारतेंदु युगीन परिस्थितियों में हिंदी जनचेतना व अस्मिता की राष्ट्रीय एकरूपता को लेकर द्रष्टव्य है।

सर्वप्रथम यह समझ लेना आवश्यक होगा कि भारतेंदु की धारणा 'हिंदी नई चाल में ढली' से क्या आशय है? हिंदी केवल साहित्य की विभिन्न विधाओं की भाषा ही नहीं, बल्कि आज वह जनमानस की वैचारिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। हिंदी की नई चाल उसके शिल्प-विधान, शैली, भाव-बोध तथा उद्देश्य को लेकर नवीन है।

'ईस्ट इंडिया कंपनी' द्वारा अपनाई जाने वाली खड़ी बोली जनसाधारण में प्रचलित खड़ी बोली से सर्वथा भिन्न थी। 'रानी केतकी की कहानी' में प्रयुक्त खड़ी बोली से भी वह बहुत दूर थी। यह शाहजहाँनाबाद से चली थी। यह वास्तविक अर्थ में हिंदी न होकर उर्दू थी। इसे हिंदी, उर्दू, रेख़्ता, हिंदुस्तानी आदि नामों से अभिहित किया जाता था।

कहने का अभिप्राय यह है कि जिस खड़ी बोली हिंदी का स्वरूप आज हम देख पा रहे हैं, वह तत्कालीन समय में आज के स्वरूप से भिन्न थी। उसकी शब्द-शैली अरबी-फ़ारसी मिश्रित थी। यह स्पष्ट है कि इसका कारण दरबारी भाषा का उर्दू होना था, जिसमें अरबी-फ़ारसी की बहुलता थी तथा आज जनमानस की लोक भाषा, जिसे हिंदी या हिन्दुओं की भाषा कहा गया, वह गँवारू भाषा मान ली गई। "गिलक्राइस्ट महोदय की इन कृतियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'हिंदुस्तानी' से उनका तात्पर्य उस भाषा से था, जिसका व्याकरण तो उन्हीं के शब्दों में 'हिंदवी' या 'ब्रजभाषा' से लिया गया था, किंतु संज्ञा शब्द अरबी-फ़ारसी से लिए गए थे। उन्होंने हिंदी, उर्दू, रेख़्ता और हिंदुस्तानी को समानार्थी माना है। हिंदी का अर्थ उनकी दृष्टि में 'हिंदवी' था। 'हिंदवी' को वे केवल हिंदुओं की भाषा मानते थे। गिलक्राइस्ट ने खड़ी बोली की तीन शैलियाँ निर्धारित कीं -

(क) दरबारी या फ़ारसी शैली

(ख) हिंदुस्तानी शैली

(ग) हिंदवी शैली।

इनमें फ़ारसी शैली सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न थी। हिंदवी शैली को गँवारू समझते थे। भारतेंदु इस प्रकार के वैचारिक मत से रुष्ट थे। वे खड़ी बोली हिंदी के प्रबल समर्थक व उन्नायक थे। उन्होंने ब्रज में कविता लिखी, वहीं उनकी गद्य की भाषा खड़ी बोली हिंदी बनी। उन्होंने तथा उनकी मंडली (प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि) ने इस ढाँचे को तोड़कर नवीन वैचारिकी का प्रसार किया, जिसमें हिंदी किसी की पर्याय या विकल्प नहीं थी। वह एक स्वतंत्र तथा सशक्त भाषा के रूप में भारतीय जनमानस के मन में रची-बसी लोकभाषा थी, जिसका व्यवहार भारतेंदु व उनकी मंडली के कवियों ने निरंतर बल देकर किया। अब इसमें स्थानीय लोकभाषा और बोली के शब्द व्यवहृत हुए, अरबी-फ़ारसी शब्दों का स्थान स्थानीय बोली-भाषा के शब्दों ने लिया। इसका उत्तरोत्तर विकास भारतेंदु के नाटकों द्वारा देखा जा सकता है। स्वयं भारतेंदु इस परिवर्तन को इस दृष्टि से आवश्यक मानते थे कि अपनी भाषा में ही व्यक्ति अपने भावों की अभिव्यक्ति तथा विकास प्राप्त कर सकता है, वे कहते भी हैं -

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को सूल।।

वहीं हिंदी के नवीन रूप में गढ़े जाने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं मानते थे। चूँकि पूर्व मध्यकाल व उत्तर मध्यकाल में जिन रचनाकारों की कृतियाँ ब्रज,अवधी व बुंदेली आदि में रची गईं, वे हिंदी की ही बोलियाँ हैं। फलतः खड़ी बोली हिंदी, पूर्व से ही पश्चिमी हिंदी की विभिन्न बोलियों के साथ विद्यमान थी, जिन्हें राजनैतिक प्रभाव के कारण अनदेखा कर दिया गया। बच्चन सिंह इस दिशा में अपना विचार रखते हुए कहते हैं -

"भारतेंदु ने 'हिंदी नई चाल में ढली' लिखा है।' 'चन्द्रिका' का प्रकाशन वर्ष 1874 है, 1873 नहीं। अतः भारतेंदु की दृष्टि में 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' का प्रकाशन वर्ष ही हिंदी के नई रूप में ढलने का वर्ष है। 'कवि वचनसुधा' में पहले पुरानी चाल की कविताएँ छपी करती थीं। बाद में लेख भी छपने लगे। 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' का फलक व्यापक हो गया। उसमें धर्म, राजनीति, भाषा, कला आदि पर भी लेख छपने लगे। चन्द्रिका के संपादक-मंडल में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंगाल, दामोदर शास्त्री, बिहार, राधाकृष्ण, लाहौर आदि के नाम भी सम्मिलित कर लिए गए।"

इस प्रकार हिंदी के प्रचार में पुरोधा विद्वानों का योगदान स्पष्ट दृष्टिगोचर है। इस परिप्रेक्ष्य में हिंदी की नई चाल में ढलने के मार्ग भी स्पष्ट दर्शनीय है। प्राचीन शैली व विषयवस्तुओं से हटकर नवीन विषयवस्तुओं को 'कविवचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में स्थान मिला। 'हिंदी नई चाल में ढली' पंक्ति से भारतेंदु कालांतर में आलोचकों की कसौटी पर जिस कालचक्र के लिए आजमाए जाने लगे, वह कालचक्र 1873 ई. में प्रकाश में आया। इसके अंतर्गत न केवल भारतीय घटनाओं का, अपितु संसार की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख सम्मिलित था। इन घटनाओं में क्या हिंदी की नई चाल में ढलना भी महत्त्वपूर्ण घटना हो सकती है? बच्चन सिंह प्रश्न करते हैं -

"भारतेंदु हरिश्चन्द्र 'कालचक्र' तैयार कर रहे थे। इसमें संसार में जो बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुई हैं, उनका समय निर्णय किया गया है। श्रीराम, युधिष्ठिर, सिकन्दर के आक्रमण, कर्बला के युद्ध आदि का समय निर्धारित करते हुए लेखक ने 'हिंदी नई चाल में ढली' (1873) का भी उल्लेख किया है। प्रश्न होता है कि दुनिया की प्रसिद्ध घटनाओं में हिंदी की नई चाल में ढलना भी क्या एक प्रसिद्ध घटना है?"

इसका उत्तर इस प्रकार समझा जा सकता है कि 1867 ई. में "कविवचन सुधा" का प्रकाशन प्रारंभ हुआ और यह वह पत्रिका थी, जिसने अब तक की रूढ़ियों को तोड़ा। नवीनता का मापदंड कविता-कहानी के आधार पर न आँककर तत्कालीन प्रासंगिक मुद्दों तथा समस्याओं पर आधारित आलेखों को लेकर अंक निकाला गया। कविवचन सुधा के 10 अगस्त सन् 1874 के अंक में जिन विषयों को स्थान दिया गया, वे परंपरागत विषयों से भिन्न समसामयिक मुद्दों पर आधारित थे, जिनमें गुरु कैसे होने चाहिए, स्वधर्म, भारतवर्ष में निकम्मे बहुत हैं, 'हिन्द' के बदले 'आर्य' शब्द, पब्लिक लाइब्रेरी आदि विषयों को लेकर सामाजिक मुद्दों पर साप्ताहिक अंक प्रकाशित हुए। उदाहरणस्वरूप कविवचन सुधा के जुलाई, 1874 ई. के अंक को देखा जा सकता है, जिसमें 'भारतवर्ष में अंग्रेज़ों का उपनिवेश' शीर्षक आलेख पर उनके विचार प्रकट हैं -

"पचास वर्ष पहले इसी विषय पर विचार हुआ था, उसमें अधीनस्थ महाशयों ने यही मत प्रकाशित किया था कि अंग्रेज़ लोगों को इस देश में आकर निवास करने से उभय पक्ष की हानि है, परंतु उस समय में इस प्रपत्र की मीमांसा एकाकार हो गई थी। किंतु कुछ दिन हुए स्कॉटलैंड में "भारतवर्ष में उपनिवेश" नामक एक सभा संस्थापित हुई, इसका उद्देश्य इंग्लैंड और स्कॉटलैंड के निवासियों का, जिसमें भारतवर्ष में उपनिवेश हो, इसी का यत्न किया जाता है। युद्ध के स्टेट सेक्रेटरी ड्यूक ऑफ़ आर्गाइल के निकलने, इसी विषय का एक निवेदन किया था कि न्यूज़ीलैंड और ऑस्ट्रेलिया में उपनिवेश करने गए, जिस प्रकार गवर्मेन्ट से सहायता करनी रही उसी प्रकार भारतवर्ष में दो-तीन सौ सेना व्यवसाय के लोग, जिसमें उपयुक्त स्थान में निवास कर सकें, इस निमित्त वह सहायता करें।" इसी प्रकार 'राजभक्ति का मूल कहाँ है' शीर्षकबद्ध आलेख में वे लिखते हैं -

"जिन लोगों को इतिहास का गंभीर अर्थ ग्रहण करने की शक्ति नहीं है, वे ऐसा सोचते हैं कि केवल बाहुबल के द्वारा जय लाभ हो सकता है अथवा जो राज्य चिरकाल से पराजित हुआ है, उसकी रक्षा हो सकती है, परंतु जो तत्त्वदर्शी लोग हैं, वे यही कहते हैं कि न्याय और धर्मनीति के अतिरिक्त यज लाभ व राज्य रक्षा करना दुष्कर है। अभाग्यवश इस देश के अंग्रेज़ लोग भी इस बात का मर्म नहीं जानते, क्योंकि वे कहते हैं कि इन बातों से राज्य भक्ति की हानि होती है, परंतु ये सब कितना अधिक राज विद्रोह आचार करते हैं, इसे कोई भी विचार करके नहीं देखता। अंग्रेज़ों के अत्याचार से प्रजा का हृदय विदीर्ण होता जाता है। हाँ, यह बात कुछ नवीन नहीं है। इस विषय को लिखते-लिखते संपादकों की लेखनी घिस गई।"

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदु से पूर्व हिंदी को लेकर पद्यात्मक शैली में संदेशों की प्रधानता रही, विशिष्ट व विश्वव्यापी लेखों से भी जनजागृति की जा सकती है, इस ओर विद्वानों का ही ध्यान कम आकृष्ट हुआ, जिसके परिप्रेक्ष्य में बच्चन सिंह यह वर्णित करते हैं कि प्रेमघन, भारतेंदु को राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद का अनुसरणकर्ता मानते हैं। वे यह मत देते हैं कि हिंदी के नवीन चाल में ढलने का प्रयास पूर्व में राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद प्रारंभ कर चुके थे -

"हिंदी की नई चाल में ढलने का अभिप्राय, तब तक स्पष्ट नहीं हो सकता, जब तक भारतेंदु की पूर्ववर्ती गद्य-परंपरा विश्लेषित न हो ले और उसमें तथा नई चाल में ढलने वाली हिंदी के बीच विभाजन रेखा न खींच दी जाए। भारतेंदु के पूर्व राजा लक्ष्मण सिंह और शिवप्रसाद सितारे हिंद टकसाली गद्य की रचना कर चुके थे। सितारे हिंद के गद्य की प्रशंसा करते हुए प्रेमघन भारतेंदु को सितारे हिंद का अनुकर्ता मानते थे।"

फलतः इस तथ्य को स्वीकार्य दृष्टि प्राप्त होना तनिक कठिन है कि भारतेंदु, सितारे हिंद के केवल अनुसरणकर्ता थे, क्योंकि इस स्वीकार्यता से भारतेंदु की भूमिका निश्चित ही प्रभावित होगी। विशेषकर 'हिंदी नई चाल में ढली' को लेकर, क्योंकि यह सर्वविदित है कि भारतेंदु खड़ी बोली हिंदी के उन्नायकों में अग्रणी तथा अत्यंत प्रासंगिक हैं। उनकी शब्दावली तथा गद्य के विभिन्न प्रकारों के विकास में उनकी महती भूमिका है। अतः स्वयं डॉ. बच्चन सिंह, सितारे हिंद तथा भारतेंदु की हिंदी चाल में अंतर स्पष्ट करते हुए भारतेंदु की हिंदी भाषा को लेकर प्रासंगिकता प्रकट करते हैं -

"राजा शिवप्रसाद और भारतेंदु का मुख्य अंतर यह है कि पहला टकसाली हिंदी लिखता है, तो दूसरा लोकोपयोगी हिंदी। भारतेंदु तथा उनके मंडल के लेखकों की भाषा में जो 'सजीवता', 'स्वच्छंदता' और 'उमंग' पाई जाती है, वह पूर्ववर्ती गद्य लेखकों में नहीं मिलती।" अतः हिंदी के लोकरूप ने अंग्रेज़ों को भी संपर्क भाषा हेतु आकृष्ट किया, जिसका परिणाम पूर्व में 1800 ई. में फ़ोर्ट विलियम की स्थापना के रूप में दर्शनीय है। खड़ी बोली हिंदी के विकास के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं की शिक्षा अंग्रेज़ों को देने के लिए फ़ोर्ट विलियम की स्थापना हुई, जिसके प्रथम भाषा विभाग अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट को बनाया गया -

"हिंदी खड़ी बोली के विकास में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज का बहुत बड़ा स्थान है। इस कॉलिज की भाषा-नीति ईस्ट इंडिया कंपनी की भाषा-नीति से अभिन्न रही है। सन् 1800 ई. में मार्केस वेलेज़ली ने इस कॉलिज की स्थापना की। स्थापना का दृष्टिकोण राजनीतिक था। कॉलिज में ईस्ट इंडिया कंपनी के सिविल कर्मचारी शिक्षा प्राप्त करते थे। कॉलिज में विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, हिंदुस्तानी, बांग्ला, तेलुगु, मराठी, तमिल, कन्नड़, शरीय मुहम्मदी, हिंदू-कानून, नीति-विज्ञान, न्याय-पद्धति, अंतर्राष्ट्रीय कानून, अंग्रेज़ी कानून, फ़ोर्ट सेंट जार्ज तथा बंबई के गवर्नरों द्वारा अंग्रेज़ी राज्य संचालन के लिए बनाए गए नियम, अर्थशास्त्र, भूगोल, गणित, यूरोप की आधुनिक भाषाएँ, प्रकृति-विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, नक्षत्र-विज्ञान आदि अनेक विषयों की उचित शिक्षा की व्यवस्था कॉलिज में की गई थी। 18 अगस्त सन् 1800 ई. के पत्रानुसार डॉ. जॉन बार्थविक गिलक्राइस्ट को हिंदुस्तानी भाषा का प्रोफ़ेसर बनाया गया।"

किंतु गिलक्राइस्ट का विचार हिंदुस्तानी के लिए भिन्न था, वे लिपि द्वारा हिंदुस्तानी का प्रयोग चाहते थे। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि उनकी दृष्टि में हिंदी और हिंदुस्तानी में अंतर था। वह एक न थी -

"उस समय खड़ी बोली और हिंदुस्तानी में भेद था। हिंदुस्तानी उर्दू से अभिन्न थी। दूसरे यह कि अरबी-फ़ारसी शब्दों से रहित खड़ी बोली का एक रूप फ़ोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना के पहले से चला आ रहा था। गिलक्राइस्ट महोदय ने अपनी प्रथम कृति 'ए डिक्शनरी ऑफ़ इंगलिश एंड हिंदुस्तानी' की विस्तृत भूमिका में भी अपनी भाषा-नीति प्रकट की है।"

फलतः गिलक्राइस्ट की भाषा नीति का प्रभाव तत्कालीन विद्वानों पर पड़ा। हिंदी व हिंदुस्तानी को लेकर मतों को बलाबल मिला। फ़ोर्ट विलियम कॉलिज ने जिस विकास की द्रुतगति को खड़ी बोली हिंदी के लिए अनुभव किया, वह 24 जनवरी 1854 ई. को ध्वस्त कर दिया गया। किंतु तब हिंदी के आधुनिक रूप में ढलने का मार्ग प्रशस्त हो चुका था -

"सन् 1800 ई. से लेकर 1815 ई. तक जॉन गिलक्राइस्ट द्वारा निर्धारित 'हिंदुस्तानी' ही कॉलिज की मान्य भाषा रही। 1815 ई. के बाद 'हिंदी' (आधुनिक अर्थ में) के अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया गया। 1824 ई. में कॉलिज के नव-विधान के साथ भाषा-नीति में परिवर्तन हुआ। विलियम प्राइस के विचार मान्य हुए। अधिकारियों ने हिंदी का महत्त्व समझकर उसे कॉलिज के पाठ्यक्रम में स्थान दिया। दिसंबर 1831 ई. के सरकारी आज्ञापत्र के अनुसार कॉलिज तोड़ दिया गया।"

खड़ी बोली हिंदी की नई चाल में ढलने की जिस पृष्ठभूमि का परिचय फ़ोर्ट विलियम कॉलिज नामक अध्ययन से मिलता है, उसकी परिणति भारतेंदु युग या नवजागरण युग में होती है। कालांतर में द्विवेदी युगीन कवियों से होते हुए हिंदी साठोत्तरी कवियों तक पहुँचती है। यह न केवल पद्य, अपितु गद्य की भी भाषा है, जिसका विकास निरंतर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हुआ। हिंदी केवल साहित्य या अभिव्यक्ति की भाषा नहीं बनती, बल्कि यह रोज़गार, तकनीक तथा राज-काज की भी भाषा बनकर, अपना विकास प्राप्त करती है। यह विकास निरंतर द्रुतगति से होता रहा है। जिसका

पर्याय यह है कि पूर्व में जिस ढाँचे में यह मुगल काल में दिखती है, उससे कहीं आगे बढ़कर यह इंशा अल्लाह खाँ, रामप्रसाद निरंजनी तथा राजा लक्ष्मण सिंह से होते हुए यह शिवप्रसाद सितारे हिंद तथा भारतेंदु तक परिवर्तित रूप में आ पहुँचती है। इस कालावधि में न केवल इसकी चाल या रूप बदला, बल्कि इसके शब्द-भंडार में भी वृद्धि हुई। अब तक अरबी-फ़ारसी मिश्रित शब्दावली हिंदी का बाहुल्य था, जिसे उर्दू के समकक्ष ठहराया गया, किंतु लोक भाषा व उसके शब्दों को उच्च समाज में प्रश्रय मिलने के साथ ही यह संदेह समाप्त हो गया -

"जहाँगीर के समय में ही खड़ी बोली भिन्न-भिन्न प्रदेशों में शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो चली थी। यह भाषा उर्दू नहीं कही जा सकती, यह हिंदी खड़ी बोली है। यद्यपि पहले से साहित्य भाषा के रूप में स्वीकृत न होने के कारण इसमें अधिक रचना नहीं पाई जाती, पर यह बात नहीं है कि इसमें ग्रंथ लिखे ही नहीं जाते थे। दिल्ली राजधानी होने के कारण जब से शिष्ट समाज के बीच इसका व्यवहार बढ़ा, तभी से इधर-उधर कुछ पुस्तकें इस भाषा के गद्य में लिखी जाने लगीं। विक्रम संवत् 1798 में रामप्रसाद 'निरंजनी' ने 'भाषा योगवशिष्ठ' नामक ग्रंथ साफ़-सुथरी खड़ी बोली में लिखा।"

इसके साथ ही खड़ी बोली हिंदी के स्वतंत्र अस्तित्व होने तथा किसी का पर्याय न रह जाने की सफलता में वह स्वाधीनता-संग्राम में भी बहुमूल्य भूमिका का निर्वहन करती है। जन-जागृति तथा आम जनमानस तक राष्ट्रीय चेतना की लहर पहुँचाने में खड़ी बोली हिंदी की विशिष्ट उपादेयता है, जिसका श्रेय नि:सन्देह भारतेंदु तथा उनकी मंडली को जाता है। इनके प्रयासों का ही परिणाम था कि "भारत दुर्दशा", "नीलदेवी", "अंधेर नगरी" तथा "वैदिकी हिंसा: हिंसा: न भवति" नाटकों द्वारा आम जनमानस का जागरण जिस प्रकार किया गया वैसी सफलता अन्य किसी नाटककार को तब नहीं मिल पायी थी। फलतः सितारे हिंद इस पक्ष में गौण ही दिखते हैं -

"मानव धर्म सार की भाषा राजा शिवप्रसाद की स्वीकृत भाषा नहीं। प्रारंभ काल से ही वे ऐसी चलती ठेठ हिंदी के पक्षपाती थे, जिससे सर्वसाधारण के बीच प्रचलित अरबी-फ़ारसी शब्दों का भी प्रयोग हो। यद्यपि अपने 'गुटका' में जो साहित्य की पाठ्यपुस्तक थी, उन्होंने थोड़ी संस्कृत मिली ठेठ और सरल भाषा को ही आदर्श बनाए रखा, पर संवत् 1917 के पीछे इनका झुकाव उर्दू की ओर होने लगा, जो बराबर बना क्या रहा, कुछ न कुछ बढ़ता ही गया।"

इस कारण तत्कालीन समय में भारतेंदु द्वारा कालचक्र में 'हिंदी नई चाल में ढली' कहना, खड़ी बोली हिंदी संबद्ध समस्त भ्रांतियों को तोड़ता है। भारतेंदु इस समय हिंदी के परिमार्जित-परिष्कृत शुद्ध रूप के उन्नायक तथा समर्थक द्रष्टव्य हैं, जहाँ उनका कोई सानी नहीं दिख पड़ता है -

"उर्दू के कारण अब तक हिंदी गद्य की भाषा का स्वरूप ही झंझट में पड़ा था। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह ने जो कुछ लिखा था वह एक प्रकार से प्रस्ताव के रूप में था। जब भारतेंदु अपनी मंझी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए, तब हिंदी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्राकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया।"

अतः यहाँ दर्शनीय है कि खड़ी बोली हिंदी का पुरानी शैली से निकलकर आधुनिकता का अनुगामी भारतेंदु के दौर में बनना तथा उसके उर्दू, हिंदुस्तानी की अरबी-फ़ारसी मिश्रित व्यवस्था से मुक्त नई चाल में ढलना महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसके परिदृश्य में हिंदी की अरबी-फ़ारसी मिश्रित व्यवस्था पर राजा लक्ष्मण सिंह मत देते हैं -

"अपना यह विचार उन्होंने अपने उस अंग्रेज़ी लेख में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है, जो उन्होंने बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली का पद्य' की भूमिका के रूप में लिखा था। देखिए, उसमें वे क्या कहते हैं-फ़ारसी मिश्रित हिंदी (अर्थात् उर्दू या हिंदुस्तानी) के अदालती भाषा बनाए जाने के कारण उनकी बड़ी उन्नति हुई। इससे साहित्य की एक नई भाषा ही खड़ी हो गई। पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी, जिनकी यह भाषा कही जाती है, इसे एक विदेशी भाषा की तरह स्कूलों में सीखने के लिए विवश किया जाता है।"

शनैः-शनैः हिंदी की परिवर्तित चाल अदालती काम-काज में तथा विद्यालयों में प्रवेश कर गई। शेष कार्य भारतेंदु व उनकी मंडली द्वारा किया गया, जिसके दूरगामी परिणाम निकले। द्विवेदी युग तक आते-आते महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली हिंदी का परिष्कार कार्य सँभाला। उन्होंने 1913 ई. में 'क्या हिंदी नाम की कोई भाषा नहीं' सरस्वती में प्रकाशित किया। इसके अनुसार हिंदी को मृतप्राय मानने वाले पश्चिमी उत्तर प्रदेश के विद्यालयों तथा स्थानीय कवियों की भाषाई स्थिति का अवलोकन कर, उनके मृत या सजीव होने पर अपना मत दें, का मंतव्य स्पष्ट किया गया -

"आप कहते हैं कि प्राचीन भाषा मर चुकी है और उसे मरे तीन सौ वर्ष हुए। इस पर प्रार्थना है न वह कभी मरी और न उसके मरने के कोई लक्षण ही दिखाई देते हैं। यदि आप कभी आगरा, मथुरा, फ़र्रुखाबाद, मैनपुरी और इटावा जाएँ, तो कृपा करके वहाँ के एकाध अपर प्राइमरी और मिडिल स्कूल का मुआयना न सही तो

मुलाहज़ा अवश्य ही करें। ऐसा करने से आपको मालूम हो जाएगा कि जिसे आप मुर्दा समझ रहे हैं, वह अब तक इन ज़िलों में बोली जाती है। अगर आपकी इस 'भाखा' नामक भाषा को मरे तीन सौ वर्ष हुए तो कृपा करके यह बताइए कि श्रीमान ही के सधर्मी काज़िम अली आदि कवियों ने किस भाषा में कविता की है।"

अतः हिंदी की पूर्व में स्थिति उसकी शैली, शब्द टकसाल तथा गद्य-पद्य में उसके प्रयोग को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अपना मत दिया। हिंदी की दृष्टि में वह उर्दू के समीप अरबी-फ़ारसी मिश्रित हिंदुस्तानी थी, तो किन्हीं के लिए वह लोकभाषा से जुड़ी स्वतंत्र खड़ी बोली हिंदी। इन्हीं ऊहापोह के मध्य भारतेंदु ने 'हिंदी नई चाल में ढली' को अनुभव किया। कालांतर में महावीर प्रसाद द्विवेदी भी इस पक्ष के पुरोधा बने। उन्होंने बालमुकुंद गुप्त द्वारा उनके निबंध 'भाषा और व्याकरण' में 'अस्थिरता' को लेकर 'आत्माराम की टें टें' के प्रत्युत्तर में 'सरगौ नरक ठिकाना नाहिं' लिखा। इस प्रकार हिंदी में नवीन शब्दों के निर्माण तथा उर्दू के प्रभाव से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त अनुभव होने लगा। उत्तरोत्तर अनेक प्रयोग, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा साठोत्तरी युग में देखे गए। निराला द्वारा "जूही की कली" कविता का प्रयोग कर सरस्वती 1916 में प्रेषित किया गया, जिसे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अस्वीकृत कर दिया। मतवाला के 18वें अंक में यही कविता प्रकाशित हुई। इसकी विशेष धूम भी रही। इसके उपरांत हिंदी ने नई चाल पकड़ी, जिसके मुक्त छंद की प्रधानता रही। कालांतर में दिनकर, महादेवी वर्मा, मुक्तिबोध तथा माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने हिंदी को प्रतिष्ठा प्रदान की तथा उसकी उन्नति में निरंतर अपना योगदान दिया। हिंदी की यह स्थिति, विकास के विभिन्न आयामों में प्रवेश करती गई। आधुनिक युग की तकनीकी क्रांति में सिनेमा, मीडिया-पत्रकारिता, कंप्यूटर तथा टेलीकॉम आदि के प्रत्येक क्षेत्र में हिंदी निरंतर परिवर्तनशील अवस्था में नवीन स्वरूप में ढलती रही। स्वतंत्रता के पश्चात् उद्योग, प्रशासन, राजकाज की भाषा के रूप में भी हिंदी की नवीन चाल दर्शनीय है। आशय यह है कि हिंदी की जिस नई चाल का वर्णन भारतेंदु ने किया, अद्यतन में हिंदी उससे कहीं आगे बढ़कर साहित्य, संपर्क, संचार, पत्रकारिता, सिनेमा के साथ प्रयोजनमूलक हिंदी के रूप में अवस्थित है, जिससे वह वर्तमान में ज्ञान-विज्ञान की रोज़गारोन्मुख भाषा भी साबित हो रही है -

"हिंदी अब धीरे-धीरे रोज़गार की भाषा बन रही है, प्रयोजनमूलक हिंदी को और मज़बूती प्रदान करने की ज़रूरत है। एक काल था, जब हिंदी या हिंदुस्तानी साधु-संन्यासियों की भाषा थी। आज हिंदी के महत्त्व को समग्र विश्व समझ और स्वीकार रहा है।"

अब हिंदी केवल पुस्तकों तक सीमित न रहकर कंप्यूटर पटल पर भी अंकित हो रही है, एडिटिंग, विज्ञापनों तथा 'ग्लोबल विलेज़' (global village) की अवधारणा में हिंदी अहम भूमिका निभा रही है -

"अंतर्जाल (इंटरनेट) तथा कंप्यूटर में यूनिकोड में देवनागरी लिपि में हिंदी को पूरे विश्व में उपलब्ध करवाकर ई-हिंदी को सरल एवं सुगम बना दिया है, जिससे ब्लॉग एवं ट्वीटर में हिंदी की सुविधा के कारण विपुल देशों में हिंदी-प्रेमियों में निरंतर हिंदी में विचारों का लेन-देन चल रहा है। यह बड़े गर्व की बात है कि विपुल विकसित-विकासशील देशों के विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी सांस्कृतिक आदान-प्रदान उपक्रम के अंतर्गत हमारी संस्कृति को करीब से जानने के लिए हमारे देश में आकर हिंदी सीख रहे हैं।"

इस प्रयोग में हिंदी के भिन्न-भिन्न रूपों का दर्शन होता है। यह हिंदी की क्षमता है कि वह उच्चारण, शैली और क्षेत्रीय प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में अपने-आप को बखूबी ढाल लेती है। विज्ञान के विशिष्ट युग में भी हिंदी ने स्वयं को पिछड़ने नहीं दिया। तकनीक के क्षेत्र में कंप्यूटर, सिनेमा, पत्रकारिता-मीडिया आदि के परिदृश्य में हिंदी ने नवीन शब्दों को पचाना सीखा है जिसके फलस्वरूप हिंदी का प्रयोग उत्तरोत्तर भिन्न-भिन्न कार्य क्षेत्रों में भली-भाँति हो रहा है। कंप्यूटर के संदर्भ में यह देखा जा सकता है कि पहले अंग्रेज़ी का बाहुल्य इसमें था, परंतु शनैः-शनैः हिंदी के लिए रोमन लिपि में टाइपिंग कर उसे आसान बना दिया गया है, जिससे आम जनता भी अपने कार्यक्षेत्र में अपनी प्रतिभा दिखा रही है -

"कंप्यूटर पर हिंदी टाइपिंग सीखना थोड़ा मुश्किल काम हो सकता है। इस समस्या को हल करने के लिए कंप्यूटर पर मानक (स्टैंडर्ड) हिंदी टाइपिंग का अभ्यास कराने वाले कुछ सॉफ़्टवेयर हैं। इन सॉफ़्टवेयरों पर प्रतिदिन एक घंटे अभ्यास कर लिया जाए, तो एक सप्ताह के अंदर देवनागरी लिपि में टाइपिंग सीखी जा सकती है।"

इसके अतिरिक्त आधुनिक युग की संचार-क्रांति ने भी हिंदी को नवीन साँचे में ढालने का कार्य किया है। भारतेंदु युग से अद्यतन समय तक संचार के क्षेत्र में खड़ी बोली हिंदी ने अनेक आयामों में प्रवेश किया। अनेक प्रचलित-शैलियों से गुज़रते हुए वर्तमान में हिंदी की बोलचाल एवं समाचार-पत्रों की भाषा में उन्नति को देखा जा सकता है। हिंदी का विकास एक नवीन चाल में इस प्रकार

हुआ है, जिस प्रकार एक बीज से अनेक शाखाओं वाला फलदार वृक्ष पनपता है। खड़ी बोली हिंदी भी इसी प्रकार वर्तमान में विद्त मीडिया का माध्यम बनकर भिन्न-भिन्न रूपों में अपनी भूमिका निभा रही है, जहाँ उसका श्रवण-दर्शन दृष्टिगोचर है -

"आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा सिनेमा जैसे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से जुड़े तकनीकी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की ज़रूरत है। एक संचार-माध्यम के रूप में आकाशवाणी, जनसंचार तथा जनप्रिय साधन है। दिनोंदिन बढ़ती एफ. एम. चैनलों की लोकप्रियता ने आकाशवाणी को एक सशक्त जनसंचार माध्यम बना दिया है। हाल के वर्षों में प्रौद्योगिकी क्रांति ने 'साइबर मीडिया' के रूप में 'साइबर पत्रकारिता' अर्थात् इंटरनेट पत्रकारिता को जन्म दिया है।"

खड़ी बोली हिंदी में जिस प्रकार की पत्रकारिता का अध्ययन भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा माखनलाल चतुर्वेदी आदि के युग में पढ़ने के लिए मिलता है वह अतीत का अनुभव कराते हैं, किंतु वर्तमान में जनसंपर्क की भाषा के रूप में पत्रकारिता की भाषा में नवीन शैली का दखल बढ़ा है। वर्तमान में आम व्यक्ति स्वयं भी अपनी बात को संचार- माध्यमों द्वारा संसार में फैला सकता है। जनजागृति के लिए वह समाचार-पत्र, टी.वी., रेडियो पर निर्भर नहीं रह गया है, उसे किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं रह गई है -

"इस प्रकार आजकल हम लोगों से संवाद के लिए अपने ब्लॉग के साथ ही फ़ेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया मंचों का इस्तेमाल करते हैं, जिससे कि अपने संदेश को मुख्यधारा के मीडिया में पहुँचा रहे हैं।"

इस संदेश प्रसारण के लिए आम व्यक्ति बीमा, दफ़ा, एक्ट, एफ़िडेविट, लाइव शो, औपनसोर्स, पावर पॉइंट, प्रेजेंटेशन, फ़ॉन्ट, पैनल, कमिटी, बहुराष्ट्रीय कंपनी, शेयर, स्टॉक तथा अन्य भारतीय भाषाओं से संदर्भित जैसे शब्दों का प्रयोग करते देखे जा सकते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इस नवीन शैली में अंग्रेज़ी तथा हिंदी की नवीन मिश्रित व्यवस्था ने अपनी दृढ़ता साबित की है, जिसे वर्तमान में अभिन्न स्वीकार किया जा सकता है। अब आम-आदमी आंदोलन के अपील, दफ़ा, एक्ट, नॉटरी तथा स्टैम्प आदि शब्दों से अनभिज्ञ नहीं रह गया। बैंक, शेयर मार्केट तथा सरकारी दफ़्तरों के शब्द आम-बोलचाल की हिंदी के अंग बन चुके हैं। किंतु सही अर्थों में हिंदी की सामान्य भाषा तथा प्रयोजनमूलक भाषा में अंतर है। तकनीकी भाषा के रूप प्रयोजनमूलक हिंदी का पठन-पाठन तथा प्रशिक्षण आवश्यक है। तभी इसकी पारिभाषिक शब्दावली का सही ज्ञान संभव है -

"सामान्य भाषा में एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं, किंतु एक शब्द एक अर्थ पारिभाषिक शब्दावली का प्रमुख लक्षण है। वैज्ञानिक शब्दों के तकनीकी प्रयोग में समरूपता और अर्थ की स्थिरता की अपेक्षा रहती है। इस दिशा में तकनीकी शब्दों के मानकीकरण का काफ़ी काम किया जा चुका है। शब्दावली का निर्माण एक अनवरत प्रक्रिया है, क्योंकि शब्दावली और ज्ञान दोनों का विकास एक साथ होता है। इसीलिए समय-समय पर शब्दावली को अद्यतन करते रहने की आवश्यकता होती है -

"शब्दकोशों को संवर्द्धित करना, यह एक जटिल प्रक्रिया है। विशेषकर सामान्य हिंदी का अर्थ-अभिप्राय सभी को अधिकांशतः ज्ञापित होता है, किंतु सिनेमा, पत्रकारिता, बैंक, सरकारी दफ़्तरों की भाषा को समझने हेतु शब्दकोश तैयार करना महत्त्वपूर्ण कार्य है। "हिंदी कथा साहित्य के वस्तुगत फ़िल्मांतरण का अध्ययन करने के बाद प्रस्तुत अध्ययन में फ़िल्मांतरण के कला-पक्ष अर्थात् भाषागत होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है। वस्तुतः साहित्य और सिनेमा इन दोनों कलाओं की अपनी-अपनी स्वतंत्र भाषा और शैली होती है। साहित्य की भाषा और चित्र तथा ध्वनि से बनने वाली सिनेमा की भाषा में बहुत अधिक भिन्नता होती है। फिर भी साहित्य के वस्तुगत फ़िल्मांतरण का अध्ययन होने के पश्चात् फ़िल्मांतरण के कलागत अथवा भाषागत अध्ययन करना शोध-अध्ययन में परिपूर्णता लाने के लिए आवश्यक है।"

उदाहरणतः फ़िल्म की शूटिंग में कहा गया एक्शन पारिभाषिक शब्दावली में अभिनय हेतु तैयार होने के लिए, अभिनेता को दिया गया निर्देश शब्द है, वहीं सामान्य बोलचाल में इसका अर्थ क्रिया-प्रतिक्रिया से है। यह हिंदी में आम शब्द है, जिसे सभी समझते हैं, किंतु इसी प्रकार अन्य शब्द हैं, जिससे आम जनमानस अनभिज्ञ है, जिसके संज्ञान हेतु प्रयोजनमूलक हिंदी का अध्ययन आवश्यक है। खड़ी बोली हिंदी अपने स्वरूप में इतनी चालों में ढल रही है कि कथा साहित्य में अभिव्यक्त संवेदनाओं का अब दर्शन सिनेमा द्वारा संभव है -

"फ़िल्म 'तीसरी कसम' में प्रयुक्त गीत, नृत्य एवं संगीत के द्वारा फ़िल्मकार ने मूल कहानी में निहित लोक-जीवन, लोक संस्कृति तथा लोकगीतों को फ़िल्म में प्रभावशाली ढंग से उद्घाटित किया है। चूँकि 'तीसरी कसम' कहानी का पूरा ताना-बाना लेखक ने लोकगीतों के माध्यम से बुना है, इसलिए कहानी में निहित गीत कहानी की मूल संवेदना से अटूट रूप से जुड़े हुए हैं।"

अर्थात् खड़ी बोली हिंदी में रचित साहित्य पर आधारित हिंदी सिनेमा ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह साहित्य की परिपाटी से इतर आमजन की भाषा में प्रचलित हो रही है। यह हिंदी के नवीन साँचे में ढलने का प्रमुख उदाहरण है, जिसके अंतर्गत हिंदी की चाल में दैनन्दिन परिवर्तन होता रहा। वह अपने परिवेश के अनुकूल ढलती रही। फिर वह भारतेंदु युगीन खड़ी बोली हिंदी के साहित्य, पत्रकारिता तथा नाटक-प्रहसन की भाषा हो या कालांतर में प्रशिक्षित, रोज़गारोन्मुख, उद्योग, प्रयोजनमूलक हिंदी। खड़ी बोली हिंदी अपनी परंपरागत शैली से उठकर बहुत आगे तक चली आई है, जिसका दैनन्दिन विकास हो रहा है।

निष्कर्षतः 'हिंदी नई चाल में ढली' भारतेंदु हरिश्चन्द्र की पंक्ति वर्तमान में भी हिंदी भाषा के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है, जिसने ज्ञान-विज्ञान, उद्योग, सिनेमा, पत्रकारिता आदि क्षेत्र में हिंदी की नवीन आवश्यकता को प्रस्तुत किया है, जिसके अंतर्गत साहित्य, पत्रकारिता, राज-काज, दूरसंचार, कंप्यूटर तथा विद्त मीडिया के क्षेत्र में हिंदी की चाल का स्वतः ढलना दृष्टिगोचर है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. डॉ. रामचन्द्र, तिवारी, हिंदी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-1992
2. आचार्य रामचंद्र, शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नमन प्रकाशन, दिल्ली संस्करण-2009
3. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2004
4. सुधा कविवचन, साप्ताहिक पत्रिका, भारतेंदु हरिश्चन्द्र (संपा.), 9 जुलाई, सन् 1874, काशी
5. डॉ. बापूराव, देसाई, प्रयोजनमूलक, हिंदी तथा मीडिया लेखन, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2014
6. डॉ. गोकुल क्षीरसागर, सिनेमा और फ़िल्मांतरित हिंदी साहित्य, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2022

nunitasotang@gmail.com

हिंदी की विकास-यात्रा : ऐतिहासिक संदर्भ

डॉ. शहाबुद्दीन
सिलवासा, भारत

आज विश्व-पटल पर हिंदी की जो प्रतिष्ठा है, वह एक-दो वर्षों के परिश्रम का परिणाम नहीं, दशकों की तपस्या का प्रतिफल है। 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्यवाद एवं उसकी दमनकारी नीतियों से एक ओर भारतीयों में स्वदेशी की भावना व राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई, तो दूसरी ओर गिरमिटिया मज़दूरों व प्रवासी भारतीयों के माध्यम से विश्व के अनेक देशों में हिंदी का प्रसार हुआ। स्वदेशी वस्तुओं के साथ स्वदेशी भाषा के प्रयोग से राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण भारत को एकसूत्र में बाँधने की क्षमता, भारतीय नागरिक-समुदायों के मध्य संपर्क-भाषा के रूप में प्रयोग एवं राष्ट्रीय दाय की पूर्ति में हिंदी के महत्त्व को समझते हुए अनेक यशस्वी भारतीय चिंतकों, राष्ट्र-निर्माताओं, स्वाधीनता-सेनानियों, साहित्यकारों-पत्रकारों ने अथक परिश्रम प्रारंभ किया। परिणामस्वरूप अनेक संगठन, संस्थाएँ एवं समितियाँ भारत भर में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु स्थापित की गईं। इन संगठनों, संस्थाओं एवं समितियों ने राष्ट्रीय दाय को समझा और ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाह किया।

अंग्रेज़ों के भारत आगमन से पूर्व हिंदी लोक-प्रचलित थी और सहज रूप में विकसित हो रही थी, परंतु उसके प्रचार-प्रसार हेतु तंत्र का अभाव था। प्राच्यविद् विलियम जोन्स ने 15 जनवरी, 1784 ई. को एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की, जिससे भारतीय साहित्य एवं इतिहास पर अनुसंधान-कार्यों को गति मिली। कंपनी-शासन के समय "ब्रिटिश संसद ने सर्वप्रथम सन् 1789 ई. में यह प्रावधान किया था कि भारत का कानून भारतीय भाषा में अनूदित हो।" इस निर्णय से भारतीय भाषाएँ चिंतन के केंद्र में आईं, परंतु हिंदी के विकास में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया। 4 मई, 1800 ई. को कलकत्ता में ईस्ट इंडिया कंपनी के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मार्किस वेलेज़ली ने फ़ोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना की। इससे भारतीय भाषाओं के अध्ययन के द्वार खुले। हिंदी के स्वरूप को सँवारने में कॉलिज का उल्लेखनीय योगदान रहा। इसी कॉलिज में 01 नबंवर, 1800 ई. को हिन्दस्तानी के पहले प्रोफ़ेसर जॉन गिलक्राइस्ट नियुक्त हुए, जिन्होंने 1804 तक सेवाएँ दीं। इन्होंने ही हिंदुस्तानी में अध्ययन-अध्यापन हेतु "ओरिएंटल सेमिनरी" की स्थापना की। प्रोफ़ेसर के रूप में इन्होंने अंग्रेज़ी द्वारा हिंदी-अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया। इन्होंने हिंदुस्तानी से संबंधित लगभग बीस ग्रंथ प्रकाशित कराए। 'हिंदुस्तानी' के स्थान पर 'हिंदी' शब्द को प्रचलित करने का श्रेय प्रच्याविद् विलियम प्राइस को है। इन्होंने इस संदर्भ में एक पत्र काउंसिल को भी लिखा। इन्हीं के प्रयासों से फ़ोर्ट विलियम कॉलिज में "हिंदुस्तानी विभाग" का नाम "हिंदी विभाग" हुआ। इसी हिंदी विभाग में सदल मिश्र और लल्लूलाल ने देशभाषा में पाठ्य-पुस्तकें, कोश और व्याकरण-ग्रंथ तैयार किए। फ़ोर्ट विलियम कॉलिज की एक देन यह भी है कि इसके प्रयासों से भारतीय भाषाओं में गद्य-लेखन को प्रोत्साहन मिला था।

1857 ई. के स्वाधीनता-संघर्ष में भारतीयों ने अपनी राष्ट्रीयता का परिचय दिया। यूरोप में आधुनिक राष्ट्र-राज्यों के उदय से भी भारत में राष्ट्रीयता विकासमान थी। जैसे-जैसे राष्ट्रीयता विकसित हो रही थी, वैसे-वैसे भारतीय एक राष्ट्रभाषा की कमी महसूस कर रहे थे। हिंदी के अतिरिक्त कोई भाषा ऐसी नहीं थी, जिससे संपूर्ण भारतीय आपसी संवाद कर सकें। अतः अनेक राष्ट्र-निर्माताओं एवं समाज-सुधारकों ने हिंदी को अपनाने एवं उसके प्रचार-प्रसार पर बल दिया। चूँकि 1911 ई. तक कलकत्ता अंग्रेज़ों की राजधानी थी, इसलिए वहाँ राष्ट्रीयता का प्रसार पहले हुआ। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'आनंदमठ' से उसे बल मिला। 13 सितंबर को संविधान-सभा में बहस के दौरान पंडित रविशंकर शुक्ल ने श्री केशवचन्द्र सेन के लेख जो 'सुलभ समाचार' बांग्ला साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ था, से उद्धरण देते हुए कहा कि "हिंदी का अंश भारत की सभी भाषाओं में प्रचलित है, यदि हिंदी को ही सारे भारत की भाषा बनाया जाए तो भारत में एकता स्थापित की जा सकती है।" ऐसा ही मत राजा राममोहन राय एवं स्वामी विवेकानंद का था। बंगाल में 'बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' एवं 'बंगीय हिंदी परिषद्' जैसी संस्थाओं ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया। उड़ीसा तब बंगाल प्रांत में शामिल था। 1930 से वहाँ भी हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य जारी रहा। वहाँ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रयासों से "हिंदी शिक्षण मंदिर" स्थापित हुए। कालांतर में "उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा" बनी। जगन्नाथ पुरी में भी 'हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना हुई और बाद में 'हिंदी शिक्षण केंद्रों ने हिंदी-सेवा

का कार्य किया।

पंजाब में हिंदी-प्रचार स्वामी रामतीर्थ ने प्रारंभ किया। वहाँ स्वामी दयानंद सरस्वती के "आर्य समाज" ने हिंदी-विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वे हिंदी को आर्यभाषा कहते थे। उन्होंने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी में लिखा और अपने प्रवचन हिंदी में देकर नवजागरण एवं हिंदी-विकास का कार्य आगे बढ़ाया। उनके अनुयायी, श्री नवीनचंद्र राय ने पंजाब और लाहौर में हिंदी का प्रचार किया। हिंदी के विकास में आर्य समाज की उल्लेखनीय भूमिका पर डॉ. मलिक मुहम्मद ने लिखा- "आर्य समाज ने देश की शिक्षा-प्रणाली में हिंदी को सम्मिलित कराने के प्रयास किए और साथ ही न्यायालय में भी हिंदी के प्रयोग का आन्दोलन चलाया था।" हिंदी-सेवा में 'पंजाब केसरी' लाला लाजपत राय का नाम भी उल्लेखनीय है। "इन्होंने मालवीय जी का सहयोग करके, हिंदी-उर्दू विवाद में हिंदी का समर्थन करके, शिक्षा-क्षेत्र में हिंदी को प्रवेश दिलाकर तथा डी.ए.वी. विद्यालयों की स्थापना करके अनेक प्रकार से हिंदी की सेवा की। वे लाला लाजपत राय ही थे, जिन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन के मंच से सर्वप्रथम हिंदी में भाषण देकर हिंदी को राष्ट्रभाषा की दृष्टि से सक्षम ठहराया।" शहीद भगत सिंह ने "पंजाब में भाषा एवं लिपि की समस्या" लेख में लिखा कि "डीएवी स्कूलों एवं सनातन धर्म स्कूलों में हिंदी ही पढ़ाई जाती थी"। उन्होंने गुरुमुखी और फ़ारसी लिपि की अपूर्णता एवं अवैज्ञानिकता पर चर्चा करते हुए लिखा कि "जब हमारे सामने वैज्ञानिक सिद्धांतों पर निर्भर सर्वांग संपूर्ण हिंदी लिपि विद्यमान है, फिर उसे अपनाने में हिचक क्या?"

हिंदी प्रदेश में हिंदी के विकास पर सर्वप्रथम भारतेंदु युग में गंभीर विचार-विमर्श हुआ। इस दौरान हिंदी-उर्दू लिपि/भाषा विवाद, भाषा से अधिक सांप्रदायिक विवाद प्रतीत हुआ, जबकि इसके मूल में रोज़गार की समस्या थी। "1863 ई. में सरकार द्वारा जब देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि के प्रयोग का सुझाव रखा गया, तो मालवीय जी ने उसका डटकर विरोध किया था और 'कोर्ट-कैरेक्टर एंड प्राइमरी एजुकेशन इन नोर्थ-वेस्ट प्रोविंसेज' नामक पुस्तक लिखकर रोमन लिपि की अव्यावहारिकता सिद्ध करते हुए उसकी वैज्ञानिकता की धज्जियाँ उड़ा दी थीं तथा तत्कालीन गवर्नर को उन्होंने साठ हज़ार हस्ताक्षरों वाला निवेदन देकर रोमन लिपि के खिलाफ़ जनाक्रोश एवं जनभाषा से सत्ता को परिचित कराया था।" 1867 ई. में हिंदी समर्थकों ने "अदालतों से उर्दू लिपि हटाने और उसकी जगह नागरी लागू करने के लिए सरकार को मेमोरेंडम दिया था।" 1879 ई. में संयुक्त प्रांत की अदालतों में हिंदी के प्रयोग का आंदोलन तीव्र हुआ। "महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी के अथक प्रयासों के फलस्वरूप तत्कालीन लार्ड मैकडोनल को 18 अप्रैल, 1900 को अदालतों में नागरी लिपि में लिखी हिंदी को मान्यता देने का आदेश निकालना पड़ा था।" पश्चिमोत्तर प्रांत में स्थित बिहार की अदालतों में हिंदी को प्रवेश दिलाने में श्री भूदेव मुखर्जी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

भारतेंदु युग में शिक्षा के माध्यम पर भी गंभीर विचार-विमर्श हुआ। हंटर कमीशन के समक्ष पाठ्यक्रम की भाषा को लेकर मुख्यतः चार मत उभरे, जिनका प्रतिनिधित्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद, राजा लक्ष्मण सिंह, सर सैयद अहमद खाँ और भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया। अंततः दो भाषाओं एवं लिपियों में पाठ्यक्रम-निर्माण की स्वीकृति मिली। इसी समय विचार-विमर्श के बाद ब्रिटिश भारत सरकार ने सर जॉर्ज ग्रियर्सन को भाषा-सर्वेक्षण का काम दिया, जिससे मालूम हुआ कि भारत में 169 भाषाएँ एवं 544 बोलियाँ हैं। इस परिदृश्य में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कराना चुनौतीपूर्ण था और इसके बिना राष्ट्र-निर्माण का स्वप्न अधूरा।

भारतेंदु मंडल के साहित्यकार श्री बालकृष्ण भट्ट ने "हिंदी प्रदीप" के माध्यम से जन-जागृति अभियान छेड़ा। स्वयं भारतेंदु "निज भाषा" अर्थात् हिंदी की उन्नति के पक्षधर थे। वे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और अन्य क्षेत्रों में भारतीयों का विकास हिंदी भाषा के विकास के साथ जोड़कर देख रहे थे। उन्होंने हिंदी को अपने स्वाभिमान और राष्ट्र-गौरव से जोड़ने पर बल देते हुए भाषिक हीनता-ग्रंथि से मुक्ति का मार्ग हिंदी अपनाने में देखा। इस संदर्भ में उन्होंने अनेक दोहों एवं लेखों के माध्यम से अपना पक्ष स्पष्ट किया। उन्होंने लिखा -

अंग्रेज़ी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।

भारतेंदु युग में गद्य की भाषा खड़ी बोली और कविता की भाषा ब्रजभाषा हुई। दिलचस्प यह कि भारतेंदु इसका समर्थन कर रहे थे। आलोचक रामविलास शर्मा ने उनके कथन का उल्लेख अपनी पुस्तक 'भारत की भाषा-समस्या' में किया- "मैंने कई बार परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी, इससे यह निश्चित होता है कि ब्रजभाषा में ही कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता ब्रजभाषा में ही उत्तम होती है।" स्वच्छंदतावादी कवि श्रीधर पाठक ने इस धारणा का लिखित विरोध किया। 1903 से 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के बाद से हिंदी के परिमार्जन-परिष्कार का कार्य

गंभीरतापूर्वक आरंभ हुआ। पत्रिका के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी स्वयं इस कार्य को देखते और लेखकों एवं कवियों को परामर्श व निर्देश देते थे। निराला ने आपके अवदान के विषय में लिखा- "खड़ी-बोली में प्राण-प्रतिष्ठा सौभाग्यवान आचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने की।" ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का यह विवाद छायावाद में समाप्त हुआ, जब सुमित्रानंदन पंत ने "पल्लव" में घोषणा की कि ब्रजभाषा "आउट ऑफ़ डेट" हो चुकी है।

16 जुलाई, 1893 को श्यामसुन्दर दास ने नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस की स्थापना की। नाम से स्पष्ट है कि यह सभा 'देवनागरी' लिपि के प्रचार-प्रसार हेतु बनी थी। नागरी प्रचारिणी सभा के ही प्रयासों से 01 मई, 1910 को "हिंदी साहित्य सम्मेलन" की स्थापना हुई। सम्मलेन के सूत्रधार राजर्षि टंडन थे। इसी वर्ष नागरी प्रचारिणी सभा में दिए संबोधन में दक्षिण के प्रसिद्ध नेता कृष्णस्वामी अय्यर ने कहा, 'हिंदी ही राष्ट्रभाषा के योग्य है'। किसी बड़े दक्षिण भारतीय नेता का हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारने का यह प्रथम समर्थन था। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना जैसी संस्थाओं ने बिहार राज्य में हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया।

गांधी जी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश के बाद अनुभव किया कि हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है। उन्होंने 1918 ई. के कांग्रेस के इंदौर अधिवेशन में कहा "हिंदी ही हिंदुस्तानी की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए। आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें।" 1920 में उन्होंने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। उन्होंने 'यंग इंडिया' एवं 'नवजीवन' जैसे पत्रों को हिंदी और गुजराती में प्रकाशित करवाया। 1925 ई. में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि कांग्रेस अपने सभी कार्यों में प्रादेशिक भाषाओं एवं हिंदी का प्रयोग करे। गांधी जी के परामर्श पर सरदार वल्लभभाई पटेल ने 1936 में 'काठियावाड़ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने 'भारतीय विद्या भवन' की स्थापना की। गांधी जी के प्रयासों से ही 1936 में "राष्ट्रभाषा प्रचार समिति", वर्धा और 1942 में "हिंदुस्तानी प्रचार सभा", मुंबई की स्थापना हुई।

गांधी जी एक दूरदर्शी नेता थे। उन्होंने दक्षिण भारत को ध्यान में रखते हुए विभिन्न भारतीय प्रांतों के मध्य संबंध-स्थापन हेतु भाषा के पुल निर्मित करने की बात कही। 1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के 8वें अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने, उसका प्रचार करने और विशेषतः दक्षिण-प्रदेशों में हिंदी-प्रचार की आवश्यकता पर बल दिया। उनके पुत्र देवदास, श्रीमती एनी बेसेंट, सर सी. पी. रामास्वामी अय्यर, श्री भाष्यम आयंगार आदि के सहयोग से 1918 ई. में "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा", मद्रास की स्थापना हुई और हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य आरंभ हुआ। उत्तर भारत के देशप्रेमी अवध नंदन, रामानंद शर्मा, रघुवरदयाल मिश्र, देवदूत विद्यार्थी ने दक्षिण भारत में जाकर हिंदी की सेवा का कार्य किया।

तमिल भाषा के प्रसिद्ध राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम भारती 1907 ई. से साप्ताहिक "इंडिया" में बाल गंगाधर तिलक की प्रेरणा से हिंदी के कुछ पाठ छापते थे। बाद में इसी पत्रिका में हिंदी पाठों का प्रकाशन भी होने लगा। इससे तमिलनाडु में हिंदी का परिवेश निर्मित होने में मदद मिली। 1934 ई. से 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' ने तमिलनाडु में हिंदी के आंदोलन को मज़बूत बनाने एवं हिंदी का घर-घर प्रचार करने के उद्देश्य से "हिंदी प्रचार सप्ताह" मनाने का आयोजन किया। 1934 में ही "हिंदी यात्री दल" नामक प्रचारक दल संगठित किया गया, जिसके सदस्यों ने पूना, बम्बई, दिल्ली, आगरा, प्रयाग, लखनऊ, कलकत्ता आदि शहरों में जाकर वहाँ के प्रमुख नेताओं एवं साहित्यकारों से मुलाकात की और हिंदी प्रचार-कार्य को आगे बढ़ाया। इस संस्था को 1964 ई. में भारतीय संसद ने राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषित किया था। सी. राजगोपालाचारी के नेतृत्व में 1937 में कांग्रेस मंत्रिमंडल ने मद्रास प्रांत के सभी स्कूलों में हिंदी-शिक्षण अनिवार्य किया। ऐसे ही सराहनीय कार्यों का परिणाम है कि आज मद्रास में हिंदी के अध्ययन एवं अनुसंधान के कार्य हो रहे हैं।

कर्नाटक, आर्य-द्रविड़ संस्कृति की समन्वय-भूमि के रूप में प्रसिद्ध है। हुगली, मैसूर, बैंगलूर, बेलगाँव आदि कर्नाटक के हिंदी-प्रचार केंद्र थे। गांधी जी कई बार वहाँ गए। यहीं श्री जमनालाल बजाज के सभापतित्व में हिंदी सम्मेलन से हिंदी प्रचार-कार्य को प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। गांधी जी के प्रयासों से लोगों ने हिंदी के महत्त्व को समझा और 1921 में कई हिंदी-प्रचार विद्यालय स्थापित किए। उत्तर भारत के कई हिंदी-प्रेमी जैसे स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, प्रताप नारायण वाजपेयी, ऋषिकेश शर्मा आदि दक्षिण में आए और यहाँ रहकर हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य किया। यहाँ 1935 से 1947 के बीच हिंदी-प्रचार के कार्य हेतु अनेक स्वैच्छिक संस्थाएँ भी अस्तित्व में आईं जैसे- 'बैंगलूर हिंदी प्रचार गिल्ड', 'हिंदी प्रचार सम्मेलन', 'हिंदी साहित्य परिषद्', 'कर्नाटक प्रांतीय हिंदी प्रचार सभा', धारवाड़ आदि। 1938 ई. से

वहाँ के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में हिंदी को स्थान मिलने लगा और अनुसंधान-कार्य हुए। वहाँ 1942 ई. में "मैसूर हिंदी प्रचार परिषद्" और 1943 ई. में "कर्नाटक महिला हिंदी समिति" का गठन भी हुआ। मद्रास सरकार ने लोगों में हिंदी-प्रचार हेतु यथासंभव प्रोत्साहन-नीति अपनाई थी, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ के छात्रों को देश के विश्वविद्यालयों में हिंदी-अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति मिलने लगी।

आंध्र प्रदेश उत्तर एवं दक्षिण भारत के संगम पर स्थित है और मध्य प्रदेश के निकट है। यह प्रदेश पाली-प्राकृत का प्रचार-क्षेत्र रहा है। कृष्णस्वामी अय्यर यहाँ के नेता थे। उन्होंने ही 'नागरी प्रचारिणी सभा' में हिंदी को राष्ट्रभाषा के योग्य बताया था। 1920 ई. में आंध्र प्रदेश में "हिंदी-प्रचार सभा" की एक शाखा खोली गई और श्री मोटूरी सत्यनारायण के नेतृत्व में हिंदी-प्रचार की दिशा में कार्य हुआ। 1921 ई. से यहाँ प्रतिवर्ष हिंदी महासभाएँ मनाई जाती रही हैं। 1936 ई. में हिंदी महासभाएँ स्वतंत्र रूप से संपन्न होने लगीं, जिनमें हिंदी नाटकों के मंचन ने हिंदी-प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी के अनुकूल वातावरण निर्माण हेतु हैदराबाद से चार पत्रिकाएँ ('कल्पना', 'मिलाप दैनिक', 'दक्षिण भारती' आदि पत्रिकाएँ मारवाड़ी प्रेस से और 'अंजना' पत्रिका हिंदी प्रचार सभा से) प्रकाशित होती रही हैं। कर्नाटक के अनेक स्कूलों-कॉलिजों में आज अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसंधान-कार्य हो रहे हैं।

डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर ने 'केरल के हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास' पुस्तक में हिंदी एवं द्रविड़ भाषाओं के मध्य संबंध-स्थापन के कुछ सूत्र खोजे हैं। जैसे - भारतीय चिंतन धारा, संस्कृत भाषा के तत्त्व, देश का अखंडताबोध। देश के अखंडताबोध के विषय में उन्होंने लिखा - "केरल के लोगों ने भी इसमें अपना योगदान देने के लिए हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति अपना अनुराग प्रकट किया और हिंदी को राष्ट्रभाषा का सम्मान दिया।" उनके अनुसार केरल में भक्त और गोसाईं संतों ने चावड़ी में विचार-विनिमय का माध्यम हिंदी को बनाया। मुसलमान सूफ़ी-संतों एवं जलालुद्दीन के दक्षिण आक्रमण के बाद से त्रावणकोर की दक्षिणी सीमाओं पर बहुत-से मुसलमान बसे, जिनकी भाषा हिंदी थी। हैदर अली और टीपू सुल्तान के आक्रमण के बाद मालाबार में हिंदी प्रचलित हुई और राज दरबारियों को हिंदी सीखनी पड़ी। बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन के आदेश से दक्षिण भारत प्रचार सभा ने मलयाली भाषी युवक श्री एन. के. दामोदरनुन्णी को केरल भेजा। 1928 से केरल के स्कूलों में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था हुई। 1931 ई. में त्रावणकोर की विधान परिषद् ने हिंदी अध्ययन-अध्यापन की स्वीकृति दी। फ़रवरी, 1935 ई. में काका कालेलकर ने केरल-भ्रमण किया और धनिकों से धन लेकर सभा के कार्यों को आगे बढ़ाया तथा दक्षिण के राज्यों में स्वावलंबी प्रांतीय सभाएँ स्थापित कीं। 1936 ई. में गांधी जी के केरल-भ्रमण से हिंदी-प्रचार का कार्य आगे बढ़ा। हिंदी-प्रेमी राजा ए. के. रामवर्मा की पुत्री कौमुदी ने गांधी जी को अपने सारे आभूषण दिए और शपथ ली कि कभी आभूषण न पहनेंगी तथा आजीवन उनके आदर्शों का पालन करते हुए हिंदी-प्रचार का कार्य आगे बढ़ाएँगी।

गांधी जी ने बाबा राघवदास को हिंदी-प्रचारक के रूप में नियुक्त करके असम भेजा। उनसे पूर्व श्यामनाथ शर्मा, भुवनचंद्र, कृष्णनाथ शर्मा, ध्यानदास आदि ने हिंदी-प्रचार का कार्य किया। श्री पीतांबर देव गोस्वामी के सभापतित्व में "प्रांतीय हिंदी प्रचार समिति" का गठन हुआ। चूँकि पूर्वोत्तर की भाषाओं हेतु देवनागरी लिपि का प्रयोग पहले से होता रहा है, इसलिए वहाँ हिंदी-प्रसार में सुविधा रही। वहाँ हिंदी प्रचार-प्रसार में 'केन्द्रीय हिंदी संस्थान' का उल्लेखनीय योगदान रहा है। संस्थान के तीन केंद्र गुवाहाटी, शिलांग और दीमापुर में स्थित हैं। ये सभी केंद्र वहाँ हिंदी प्रचार-प्रसार के कार्य संचालित करते हैं। मणिपुर में हिंदी साहित्य सम्मेलन ने 1928 में हिंदी प्रचार-कार्य शुरू किया। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने भी वहाँ अपनी शाखा खोली। 7 जून, 1943 को 'मणिपुर हिंदी परिषद्' की स्थापना हुई। कालांतर में मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का गठन हुआ। नागालैंड में नागालैंड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति कार्यरत है, तो मिजोरम में 'मिज़ोरम हिंदी प्रचार सभा' हिंदी प्रचार-कार्य करती है। 1976 में केन्द्रीय हिंदी संस्थान ने मेघालय में अपना शिलांग-केंद्र खोला, जो हिंदी के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य कर रहा है। इसके अतिरिक्त पूर्वोत्तर हिंदी साहित्य अकादमी भी यहाँ हिंदी प्रचार-कार्य कर रही है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद संविधान सभा में राष्ट्रभाषा-राजभाषा को लेकर तीखी बहस के बाद हिंदी को राजभाषा स्वीकार किया गया। संविधान के भाग-5, 6, 17 में राजभाषा संबंधी उपबंध भी जोड़े गए। भाग-17 का शीर्षक ही "राजभाषा" है। इसके अतिरिक्त राजभाषा आयोग-1955, संसदीय राजभाषा समिति-1957, राष्ट्रपति का आदेश-1960, राजभाषा अधिनियम-1963 के माध्यम से राजभाषा को अधिनियमित करने के प्रयास हुए। साथ ही, सरकार के विभिन्न विभाग (नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, अनेक बैंक, शिक्षा मंत्रालय एवं रेल विभाग आदि) प्रतिवर्ष 'हिंदी

दिवस' जैसे आयोजनों से अपने कार्यालयों में हिंदी के अनुकूल परिवेश निर्मित करने के प्रयास करते हैं। 1960 ई. तक आते-आते हिंदी के यंत्रीकरण का कार्य भी सरकारी स्तर पर हुआ। इलेक्ट्रॉनिक टाईपराइटर एवं कंप्यूटरीकरण के अनुकूल हिंदी को तैयार किया गया। हालाँकि हिंदी का अपना सिस्टम सॉफ़्टवेयर तो विकसित नहीं हुआ, लेकिन कई एप्लिकेशन सॉफ़्टवेयर बाज़ार में हैं, जिनकी मदद से हिंदी में कार्य करना सरल है। हिंदी ने तकनीक के साथ सामंजस्य स्थापित किया है। उसमें एकरूपता आई है। आज हिंदी यूनिकोड एवं गूगल इनपुट की मदद से हिंदी टाइपिंग आसान हुई है। इनस्क्रिप्ट भारत की आधिकारिक टाइपिंग पद्धति है, जिसे राजभाषा विभाग ने विकसित किया है। भारत सरकार ने "वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग", "केंद्रीय हिंदी संस्थान", "राजभाषा विभाग", "भारतीय साहित्य अकादमी", "हिंदी अकादमी", "महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय" आदि संस्थाएँ स्थापित कर हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसी तरह के कार्य अनेक राज्य सरकारों ने भी किए हैं। भारत सरकार सहित कई राज्य सरकारें हिंदी साहित्यकारों-अनुवादकों और अपने कर्मियों को पुरस्कार एवं सम्मान देकर हिंदी के प्रति प्रोत्साहित करती रही हैं। मध्य प्रदेश में मेडिकल की शिक्षा भी हिंदी में प्रारंभ की गई है। तकनीकी विषयों के पाठ्यक्रम भी हिंदी में विकसित करने के कार्य जारी हैं। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच पर हिंदी में भाषण देकर हिंदी का गौरव बढ़ाया। कई राष्ट्राध्यक्ष भी गत दिनों हिंदी में अभिवादन करते दिखाई दिए, जो सिद्ध करता है कि राष्ट्र के रूप में भारत ही नहीं, राष्ट्रभाषा हिंदी भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सुदृढ़ हुई है।

आज हिंदी जातीय-धार्मिक संकीर्णता से मुक्त है और उसकी स्वीकार्यता निरंतर बढ़ी है। दलित, पिछड़े आदिवासी और अल्पसंख्यक पर्याप्त संख्या में हिंदी में साहित्य-लेखन कर रहे हैं। हिंदी-विकास के आरंभ में यह संख्या नगण्य थी। पूर्वोत्तर और दक्षिण भारत में भी हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ी है। भारतीय राजनीति और बाज़ार में भी हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ी है। न्यूज़ चैनलों, समाचार-पत्रों, सोशल मीडिया, फ़िल्मों, विज्ञापनों, वेबसाइटों, रेडियो आदि पर वह छाई हई है। आज हिंदी साहित्यकार, हिंदी सिनेमा, हिंदी न्यूज़-एंकर आदि विश्वस्तरीय पहचान बनाने में सफल हुए हैं। हिंदी अब हीन नहीं, सशक्त भाषा के रूप में विश्वस्तरीय हो गई है। हिंदी भारतीय संस्कृति की पहचान है। इससे जुड़कर भारतीय ही नहीं, प्रवासी भारतीय भी गौरवान्वित महसूस करते हैं। वह अपने दायित्व के प्रति हमेशा सजग रही है।

"1975 में नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मलेन के दौरान एक विश्व हिंदी केंद्र की स्थापना का विचार मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री व प्रतिनिधिमंडल के अध्यक्ष सर शिवसागर रामगुलाम द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इस विचार ने दृढ़ संकल्प का रूप धारण किया। मॉरीशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में और लगातार कई विश्व हिंदी सम्मेलनों में मंथन के बाद मॉरीशस में **विश्व हिंदी सचिवालय** की स्थापना का विचार साकार हुआ। भारत सरकार व मॉरीशस सरकार के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए तथा मॉरीशस की विधान सभा में अधिनियम पारित किया गया।" परिणामस्वरूप "विश्व हिंदी सचिवालय" अस्तित्व में आया और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य सुव्यवस्थित ढंग से संचालित है। हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक वैश्विक संगठन, भारतीय संस्थाएँ, प्रवासी भारतीय एवं भारत सरकार आदि निरंतर कार्यरत हैं। हिंदी की संघर्षमयी गौरवपूर्ण विकास-यात्रा का अवलोकन करने के उपरांत क्या हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में देखने का भारतीयों का स्वप्न मात्र दिवास्वप्न है?

संदर्भ-ग्रंथ सूची -

1. हिंदी अनुशीलन, डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल, मानसी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2007
2. राजभाषा हिंदी, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति-2011
3. फ़ोर्ट विलियम कॉलिज, डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, दीक्षित प्रेस, वाराणसी
4. https://eparlib.nic.in/bitstream/123456789/763444/1/cad_13-09-1949_hindi.pdf (भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट)
5. प्रयोजनमूलक हिंदी, डॉ. विनोद गोदरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2009
6. विश्व हिंदी पत्रिका, 2009, संपादक-डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, राष्ट्रभाषा हिंदी (लेख), कैलाशचंद्र भाटिया, मोतीलाल चतुर्वेदी
7. भगत सिंह एवं उनके साथियों के दस्तावेज़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पेपरबैक आवृत्ति-2007
8. राजभाषा भारती, संपादक-डॉ. श्रीप्रकाश शुक्ल, अंक-152, जुलाई-सितंबर-2017
9. रस्साकशी, वीरभारत तलवार, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम पेपरबैक संस्करण-2006

10. विश्व हिंदी पत्रिका, 2009
11. भाषा साहित्य और देश, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, चौथा संस्करण-2009
12. कविता के पड़ाव, संपादक मंडल (हिंदी अध्ययन समिति, गुजरात विश्वविद्यालय), जगत भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2016
13. भारत की भाषा समस्या, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण-1978
14. निराला रचनावली, खंड-5, सं. नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1983, तृतीय संस्करण-1992
15. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण-1993, आवृत्ति-2006
16. केरल के हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास, डॉ. एन चंद्रशेखरन नायर, केरल हिंदी साहित्य अकादमी, तिरुवनंतपुरम, प्रथम संस्करण-1989, द्वितीय संस्करण-2012
17. https://hindivivek.org/335
18. https://vishwahindi.com/hi/background.aspx

shah2971983@gmail.com

खड़ी बोली का उद्भव और विकास

डॉ. राजेन्द्र गौतम
हरियाणा, भारत

लगभग एक हज़ार वर्ष की अपनी यात्रा के दौरान हिंदी की विविध बोलियाँ बनती रही हैं, लेकिन 19वीं शताब्दी के समापन के साथ-साथ क्रमश: मानकीकृत होती हुई खड़ी बोली ही हिंदी की पर्यायवाची बनी। यही हिंदी आज भारत की राजभाषा एवं संपर्क-भाषा के रूप में स्थापित एवं स्वीकृत है तथा अनौपचारिक रूप में यही भारत की राष्ट्रभाषा है। खड़ी बोली हिंदी का वर्तमान रूप लंबे परिवर्तनों से गुज़रकर निर्मित हुआ है। खड़ी बोली के वर्तमान स्वरूप पर डॉ. विश्वनाथ प्रसाद की यह टिप्पणी सटीक है -

"हिंदी का परिनिष्ठित और परिष्कृत रूप इस समय साहित्य में प्रयुक्त हो रहा है, वह किसी एक नगर, जनपद अथवा दो-चार ज़िलों में विकसित नहीं हुआ है। उसके विकास में सदियों से समस्त देशों का योगदान रहा है। असाधारण ज्ञानी और दार्शनिक से लेकर सामान्य किसान तक सभी ने इस भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध किया है। जहाँ तक शब्दावली का संबंध है, इसका साहित्यिक रूप पूर्णतया संस्कृत का ऋणी है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में अंग्रेज़ी भाषा का योगदान महत्त्वपूर्ण है। देश की हिंदीतर भाषाएँ भी अनेक क्षेत्रों में अपने चिंतन का सारभाग हिंदी को प्रदान करती रही हैं, किंतु इन नाना दिशाओं से पोषण ग्रहण करते हुए भी हिंदी के परिनिष्ठित रूप की परंपरा अविच्छिन्न रही है।"

'खड़ी बोली' की तुलना में 'हिंदी' शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है। ध्यातव्य है कि 10वीं-12वीं शताब्दी में इसका व्यवहार विशेषण और संज्ञा - दो रूपों में हुआ है। संज्ञा रूप में इसका प्रयोग परवर्ती है। फ़ारसी में विशेषण रूप में 'हिंदी' और 'हिंदवी' का अर्थ था - 'हिन्द से संबंधित', 'हिंदुस्तान का'। संज्ञा रूप में यह पहले भारत की भाषाओं के लिए प्रयुक्त हुआ, फिर 'हिंदवी' 'हिंदी' और 'हिंदुस्तानी' भाषा-विशेष के लिए रूढ़ हो गया। 'हिंदवी' और 'हिंदुस्तानी' का संबंध जहाँ समानान्तर रूप से विकसित होने वाली उर्दू से रहा है, वहीं 'हिंदी' का विकसित रूप ही 'खड़ी बोली' बना। खुसरो ने 'हिन्दवी' और 'हिंदी' का पहले विशेषण रूप में तार्किक प्रयोग किया है। वे अपनी प्रसिद्ध फ़ारसी कृति 'नूह सिपहर' में लिखते हैं :

"सिन्दी-ओ-लाहौरी-ओ-गर
धुर समन्दरी तिलंगी-ओ-गुज़र
माबरी-ओ-गोरी-बंगाल-अवध
दिल्ली-ओ-पैरामनश अन्दर हमा हद
ईं हमा हिन्दवीस्त ज़ि ऐयाम-ए-कुहन
आम्मा बकारस्त बहर गूना सुख़न"

"सिन्धी, पंजाबी, कश्मीरी, मराठी, कन्नड़, तेलुगू, गुजराती, तमिल, असमिया, बांग्ला, अवधी, दिल्ली तथा उसके आस-पास जहाँ तक उसकी सीमा है, इन सबको प्राचीन काल से ही 'हिन्दवी' नाम से जाना जाता है। बहरहाल अब मैं अपनी बात शुरू करता हूँ।"

खुसरो के इस कथन में आए 'हिन्दवी' शब्द पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है। भारतीय भाषाओं की उपर्युक्त सूची में हिंदी का नाम नहीं है, लेकिन 'दिल्ली तथा इसके आस-पास की भाषा' का ज़िक्र ज़रूर है। यों भी भाषाओं के लिए 'उर्दू', 'हिंदी' और 'खड़ी बोली' तीनों ही संज्ञाएँ बहुत बाद में अस्तित्व में आती हैं। खुसरो की फ़ारसी रचनाओं के अतिरिक्त उनका शेष लेखन इसी 'दिल्ली तथा इसके आस-पास की भाषा' में उपलब्ध होता है। जब वे अपने आपको 'हिन्दवी' का कवि कहते हैं, तब निश्चित रूप से उनका तात्पर्य खड़ी बोली हिंदी और उर्दू से है, जबकि ऊपर के उद्धरण में 'हिन्दवी' शब्द से 'भारतीय भाषाओं' का अर्थ लिया गया है। खुसरो के उपर्युक्त उद्धरण में भारत की अधिकतर भाषाओं को परिगणित किया गया है। इससे यह महत्त्वपूर्ण तथ्य रेखांकित होता है कि तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में भी भारत की एक राष्ट्र के रूप में अखंड सत्ता थी। पश्चिम में गुजराती तथा सिन्धी, उत्तर में पंजाबी तथा कश्मीरी, दक्षिण-पश्चिम में मराठी, दक्षिण में कन्नड़, तेलुगू और तमिल तथा उत्तर-पूर्व में असमिया और बांग्ला तथा हिंदी क्षेत्र से अवधी को हिन्द की भाषाओं के रूप में दिखलाकर, खुसरो द्वारा भारत-राष्ट्र की एकता और विविधता को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। उनके कथन में एक तीसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह निहित है कि ये भाषाएँ सद्यःजात नहीं हैं। इनमें लिखित साहित्य की उपलब्धता की तस्वीर भले ही कुछ और हो, लेकिन संपर्क भाषा के रूप में इनकी उपस्थिति बहुत पहले से रही है। खुसरो जब यह कहते हैं "...इन सभी को प्राचीन काल से ही 'हिन्दवी' अर्थात् हिन्द की भाषाओं के नाम से जाना जाता है।" तब वे स्पष्ट रूप से इनकी

दीर्घ परंपरा को स्वीकार करते हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास का सामान्यतः सिद्धान्त यही माना जाता रहा है कि ये क्रमशः संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं से विकसित हुई हैं, लेकिन एक तो यह विकास-प्रक्रिया बहुत मन्थर गति से घटित हुआ है, दूसरे अनेक जन-भाषाएँ ऐसी रही हैं, जिनका साहित्यिक प्रदेय भले ही बहुत बाद में सामने आया हो, लेकिन जन-संपर्क में उनका अस्तित्व बहुत पहले से रहा है। उनमें रचित साहित्य की धारा अनवरत नहीं मिलती। इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन ध्यान देने योग्य है : "किसी भाषा का साहित्य में व्यवहार न होना, इस बात का प्रमाण नहीं है कि उस भाषा का अस्तित्व ही नहीं है। उर्दू का रूप प्राप्त होने के पहले भी खड़ी बोली अपने देशी रूप में विद्यमान थी और अब भी बनी हुई है।"

आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वर्तमान में भारत में जिन भाषाओं में साहित्य की रचना हो रही है, उनकी जन-स्वीकृति की प्रक्रिया दसवीं शताब्दी के बाद तीव्र हो गई थी और तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक आते-आते ये जन-भाषाएँ भारत में साहित्य-सर्जना का माध्यम बन गई थीं। जन-भाषाओं की इस स्वीकृति और उभार को प्रो. शम्भुनाथ ने नवजागरण का एक दौर माना है। तत्कालीन भाषाई स्थिति को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं : "अरबी-फ़ारसी हो या संस्कृत-अपभ्रंश, सत्ता की भाषा छोड़कर लोकभाषा से जुड़ने की प्रवृत्ति हिंदी क्षेत्र में एक जागरण का चिह्न है।" इस सन्दर्भ में उन्होंने तत्कालीन दो बड़े कवियों का उल्लेख किया है। उन्होंने खुसरो का यह वक्तव्य उद्‌त किया है : "मैं हिन्दवी धाराप्रवाह बोल सकता हूँ। मेरे पास अरबी की मिठास नहीं है, इसलिए इसमें बात नहीं करता। आप कहें तो मैं हिन्दवी में अपनी काव्य - कला प्रदर्शित करूँ।" संस्कृत और अन्य अभिजात भाषाओं की तुलना में देसी अथवा लोक - भाषा को अपनाने का दूसरा उदाहरण उन्होंने विद्यापति का दिया :

"देसिल बयना सब जन मिट्ठा।
तें तइसन जम्पओ अवहट्ठा ।।"

आधुनिक भारतीय भाषाओं के अपभ्रंश भाषाओं से विकसित होने के सिद्धान्त को भौगोलिकता के संदर्भ में देखा जाना भी ज़रूरी है। वर्तमान दिल्ली तथा हरियाणा और उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाली खड़ी बोली का अस्तित्व एक हज़ार वर्ष से कम पुराना नहीं है। "खड़ी बोली अपने देसी रूप में किस प्रकार विद्यमान थी और अब भी बनी हुई है।" इसको सिद्ध करने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हम्मीरदेव और कबीर की रचनाओं के उदाहरण दिए हैं। कबीर की ये पंक्तियाँ उद्‌त हैं :

कबीर कहता जात हूँ, सुनता है सब कोइ। राम कहे भला होयगा, नहि तर भला न होइ॥

आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा न जीऊँगा। गुरु के सबद रम रम रहूँगा ।

कबीर से पूर्व खुसरो की रचनाओं में खड़ी बोली का बहुत स्पष्ट रूप उपलब्ध होता है :

खीर पकाई जतन से चरखा दिया जला
आया कुत्ता खा गया तू बैठी ढोल बजा

यह महत्त्वपूर्ण है कि खुसरो की कर्मभूमि दिल्ली थी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल खड़ी बोली का रिश्ता दिल्ली से ही दिखाते हैं। मध्यकाल में दिल्ली के राजनैतिक महत्त्व के बढ़ने के साथ खड़ी बोली किस प्रकार 'शिष्ट समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा' बनती है और खड़ी बोली और रेख़्ता की सीमाएँ किस प्रकार घुलमिल जाती हैं, उसको स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी लिखते हैं : "देश के भिन्न-भिन्न भागों में फैलने तथा दिल्ली की दरबारी शिष्टता के प्रचार के साथ ही दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा हो चली थी। खुसरो ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ-साथ खालिस खड़ी बोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। औरंगज़ेब के समय से ही फ़ारसी मिश्रित खड़ी बोली या रेख़्ता में शायरी भी शुरू हो गई और उसका प्रचार फ़ारसी पढ़े-लिखे लोगों में बराबर बढ़ता गया। इस प्रकार खड़ी बोली को लेकर उर्दू साहित्य खड़ा हुआ, जिसमें आगे चलकर विदेशी भाषा के शब्दों का मेल भी बराबर बढ़ता गया और जिसका आदर्श भी विदेशी होता गया।"

मध्यकाल में खड़ी बोली का दायरा पश्चिम तक सीमित था। उस समय सत्ता और समृद्धि के केन्द्र भी दिल्ली और आगरा थे। तब उत्तर भारत में 14वीं एवं 15वीं शताब्दी से ब्रज और अवधी साहित्य का माध्यम बनकर 'भाषा' पद पर अधिष्ठित हुई, जबकि दक्षिण भारत में दक्खिनी हिंदी का विकास हुआ, जिसकी प्रकृति उर्दू और खड़ी बोली - दोनों के नज़दीक थी। यों तो अनेक कवियों का इसे योगदान मिला, लेकिन वजही की रचना 'सबरस' खड़ी बोली के विकास के संदर्भ में विशिष्टतम है। एक उदाहरण देखिए :

'छिपी रात उजाला हुआ दीस का,
लगा जग करने सेव परमेस का।

जो आया झलकता सूरज दाट कर,
अँधेरा जो था सो गया न्हाट कर।'

लेकिन अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत की राजनीतिक और आर्थिक स्थितियाँ बहुत बदल गई थीं। इससे खड़ी बोली का प्रसार भी प्रभावित हुआ। इन बदली स्थितियों का जायजा लेते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है : "मुगल साम्राज्य के ध्वंस से भी खड़ी बोली के फैलने में सहायता पहुँची। दिल्ली, आगरा आदि पछांही शहरों की समृद्धि नष्ट हो चली थी और लखनऊ, पटना, मुर्शिदाबाद आदि नई राजधानियाँ चमक उठीं। जिस प्रकार उजड़ती हुई दिल्ली को छोड़कर मीर, इंशा आदि अनेक उर्दू शायर पूरब की ओर आने लगे, उसी प्रकार दिल्ली के आसपास के हिंदू व्यापारी जातियाँ (अगरवाले, खत्री आदि) जीविका के लिए लखनऊ, फ़ैज़ाबाद, प्रयाग, काशी, पटना आदि पूर्वी देशों में फैलने लगीं। उनके साथ-साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। ... इस प्रकार बड़े शहरों के बाज़ार की व्यावहारिक भाषा भी खड़ी बोली हुई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दुए मुअल्ला नहीं।"

खड़ी बोली नाम उतना पुराना नहीं है, जितनी यह भाषा। प्राकृतों एवं अपभ्रंशों के अपने क्षेत्र-आधारित नाम हैं। अनेक लेखकों के कथनों से पता चलता है कि खुसरो के समय खड़ी बोली का नाम 'देहलवी' रहा होगा। इसका संबंध कुरु जनपद से होने के कारण राहुल सांकृत्यायन ने इसे 'कौरवी' कहा है। भाषा वैज्ञानिकों ने कौरवी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से माना है। इस भाषा का विस्तार-क्षेत्र सहारनपुर, मेरठ, गाज़ियाबाद, दिल्ली, सोनीपत, बिजनौर, रामपुर तथा मुरादाबाद माना जाता है। लेकिन इस रूप में 'कौरवी' एक सीमित क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली हिंदी की एक बोली है, जबकि आज 'खड़ी बोली' की व्यापकता आविश्व है। 'खड़ी बोली' शब्द को अंग्रेज़ी के standing या standa से जोड़ते हुए इसका मानकीकृत रूप भी माना है। यों खड़ी में किसी ने 'खरी' की ध्वनि सुनी है, तो किसी ने इसे 'खड़े' स्वभाव से संबद्ध किया है। 1916 में ग्रियर्सन 'भाषा सर्वेक्षण' में भारत की प्रमुख संपर्क भाषा के रूप में इसका उल्लेख किया।

20वीं शताब्दी में खड़ी बोली के विकास पर हिंदी साहित्य सम्मेलन' और 'नागरी प्रचारिणी सभा' की पत्रिकाओं में काफ़ी विचार-विमर्श हुआ है। डॉ. देवेंद्र कुमार जैन का एक लेख "कौरवी खड़ी बोली की जन्मदात्री है?" 'सम्मेलन पत्रिका' के भाग 62, संख्या 3-4 में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने डॉ. अंबाप्रसाद, डॉ. भोलानाथ तिवारी तथा जॉर्ज ग्रियर्सन के खड़ी बोली के उद्भव संबंधी विभिन्न मतों का विश्लेषण किया है और खड़ी बोली का विकास कौरवी से मानने पर यह कहकर आपत्ति जतायी : "एक मत है कि यह कुरु जनपद की बोली है। रेख़्ता और ब्रज के अर्थ (क्रमशः गिरी हुई, माधुरी के विपरीत) के प्रचलन में आने पर उसे खड़ी बोली कहा गया। दूसरा मत है कि यह अपभ्रंश से निकली। तीसरा मत है कि वह पूर्वी पंजाबी दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की बोलियों के मिश्रण का परिनिष्ठित रूप है। इन मतों को देखते हुए खड़ी बोली की क्षेत्रीय पहचान और विकास - स्रोत का सही पता लगाना, सचमुच टेढ़ी खीर है।" ...कौरवी से खड़ी बोली का विकास मान लेने पर भी प्रश्न उठता है कि कौरवी का विकास किस भाषा से हुआ? डॉ. सुमन का कहना है कि, "शोरसैनी अपभ्रंश से राजस्थानी गुजराती और ब्रज का विकास हुआ।" प्रश्न है कि पंजाबी, हरियाणवी और जनपद यह खड़ी बोली (कौरवी) का विकास किस अपभ्रंश से हुआ? अर्थात् कौरवी से खड़ी बोली का विकास मानते हुए भी उसके ऐतिहासिक स्रोत का पता है? जिस प्रकार किसी व्यापक भाषा का क्षेत्रीय आधार होता है, उसी प्रकार क्षेत्रीय बोली का भी एक ऐतिहासिक आधार होता है? उनकी आपत्ति यह भी है कि खड़ी बोली यदि कौरवी ही थी, तो स्व. ग्रियर्सन को उसे खड़ी बोली कहने की क्या आवश्यकता थी? उनके समूचे भाषा सर्वेक्षण में खड़ी बोली ही ऐसी बोली है, जो अपने नाम का संस्कार किसी विशेष क्षेत्र के आधार पर नहीं करती।" हमारा मानना है कि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह खड़ी बोली का उद्भव भी उत्तर-पश्चिमी अपभ्रंशों, विशेषकर शौरसेनी से हुआ।

खड़ी बोली ने दिल्ली और उसके आसपास की बोलचाल की भाषा से चलकर भारत की राष्ट्रभाषा बनने का जो लंबा सफर तय किया है, उसमें इसकी अनेक भूमिकाएँ रही हैं। दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य में खड़ी बोली प्रायः ब्रजभाषा के साथ उपस्थित है। आरम्भ में यह दैनिक व्यवहार, व्यापार, और लोक - संपर्क की भाषा रही होगी। समय बीतने के साथ इसकी भूमिका क्रमशः बढ़ी। साहित्य - रचना में प्रमुखता से व्यवहृत न होने के कारण इसकी लंबे समय तक लोक - कण्ठ में उपस्थिति रही होगी। इसके लोकगीतों की समृद्धि का यही कारण है। अठारहवीं शताब्दी में जब खड़ी बोली का गद्य पनपने लगा, तब पश्चिमी क्षेत्रों में राजाश्रय अथवा जन-सामान्य में इसका प्रयोग धर्मोपदेश हेतु विशेष रूप से होने लगा। शुक्ल जी ने रामप्रसाद निरंजनी द्वारा रचित एक ऐसे ही धर्मोपदेशक ग्रन्थ 'भाषा योगवाशिष्ठ' का उल्लेख किया है। संवत् 1798 में रचित इस ग्रंथ में खड़ी बोली गद्य का बहुत निखरा हुआ और परिनिष्ठित प्रयोग देखा जा सकता है। अनुवाद रूप में जैन धर्म

के प्रचार के लिए भी इसका प्रयोग हुआ है, लेकिन ईसाई मिशनरियों द्वारा विशेष रूप से प्रयुक्त होने से खड़ी बोली गद्य का विकास गति पकड़ता है। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक भारत ब्रिटिश उपनिवेश बन चुका था। अंग्रेज़ों द्वारा प्रशासन और धर्म-प्रचार के लिए हिंदी गद्य के विकास की आवश्यकता अनुभव की गई। 1800 में स्थापित फ़ोर्ट विलियम्स कॉलिज का एक लक्ष्य खड़ी बोली गद्य का विकास भी था। यों तो इस कॉलिज की भाषा-भेदक नीति की आलोचना भी हुई, लेकिन गिलक्रिस्ट के निर्देशन में यहाँ भारतीय भाषाओं पर काफ़ी काम हुआ। इस कॉलिज से जुड़े चार लेखकों - मुंशी सदासुखलाल, सैयद इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र का योगदान हिंदी गद्य के विकास में सर्वाधिक माना जाता है। इंशा अल्ला खाँ उस समय जन-सामान्य से जुड़ी कैसी चुलबुली भाषा लिख रहे थे, उसका एक नमूना देखा जा सकता है : "इस बात पर पानी डाल दो, नहीं तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती, तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं।"

आगे चलकर अपनी मौलिक और अनूदित रचनाओं से राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मण सिंह ने हिंदी गद्य को समृद्ध किया। अब खड़ी बोली क्रमशः ज्ञान-विज्ञान और न्यायालय की भाषा भी बनने लगी। साथ ही पत्रकारिता की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित यह उन्नीसवीं शताब्दी के पुनर्जागरण का भी सशक्त माध्यम बनी। इसको शिक्षा का माध्यम बनाने के भी प्रयास होने लगे। उन्नीसवीं शती के अंत तक आते-आते यह किस प्रकार राष्ट्रीय गौरव एवं स्वाभिमान का प्रतीक बनती है, इसका पता हमें आचार्य शुक्ल द्वारा 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में उद्दत फ्रेडरिक पिन्काट के बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री को सं. 1943 के लगभग लिखे पत्र से चलता है : "आपका सुखद पत्र मुझे मिला और उससे मुझको परम आनन्द हुआ। आपकी समझ में हिंदी भाषा का प्रचलित होना उत्तर पश्चिमवासियों के लिए सबसे भारी बात है। मैं भी संपूर्ण रूप से जानता हूँ कि जब तक किसी देश में निज भाषा और अक्षर सरकारी और व्यवहार संबंधी कामों में नहीं प्रवृत्त होते हैं, तब तक उस देश का परम सौभाग्य हो नहीं सकता। इसीलिए मैंने बार - बार हिंदी भाषा को प्रचलित करने का उद्योग किया है।"

उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तर भारत में परिनिष्ठित भाषा के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति का यह परिणाम था कि अब इसमें गद्य साहित्य की धाराप्रवाह रचना होने लगी। थोड़ा विलम्ब से यह पद्य साहित्य की भी भाषा बनी। भारतेंदु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों की रचनाओं ने हिंदी के खड़ी बोली रूप को अखिल भारतीय स्वीकृति दिलाई। बीसवीं सदी के आरम्भ में ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जब 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन-भार सँभाला, तब उन्होंने कविता की भाषा को भी खड़ी बोली बनाने का संकल्प ले लिया।

गत दो सौ वर्षों में खड़ी बोली में रचित साहित्य में असीम गुणात्मक एवं मात्रात्मक वृद्धि हुई है। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना, संस्मरण आदि वे विधाएँ, जिनका हिंदी में अस्तित्व ही नहीं था, बहुत तेज़ी से विकसित हुईं। इस साहित्य की सामाजिक परिवर्तन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पिछली दो शताब्दियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद हिंदी को सहस्रों लेखकों ने अपने प्रदेय से समृद्ध किया है। इनमें से अधिकतर लेखकों का स्थान तो इतिहास में अमर है। इसके विपुल साहित्य का उद्धरण और मूल्यांकन का अलग प्रसंग है। यहाँ यह उल्लेख प्रासंगिक है कि इन लेखकों ने खड़ी बोली की अनेक शैलियों का विकास किया है। कहीं तत्सम-प्रधान हिंदी दिखाई देती है, कहीं तद्भवता को प्रमुखता मिली है। कहीं आंचलिकता है, तो कहीं लोक के चटकीले रंग। संरचना की दृष्टि से बीसवीं सदी के आरंभ में खड़ी बोली में तत्सम शब्दों का समावेश बहुत तेज़ी से होता है। आलोचना में यह प्रवृत्ति अब भी देखी जा सकती है, जबकि कविता और कथा-साहित्य में शैली-वैविध्य मिलता है। हरिऔध ने जहाँ 'प्रियप्रवास' में तत्सम शब्दावली का इस तरह से प्रयोग किया है कि वह विभक्तिहीन संस्कृत ही प्रतीत होती है। 'चुभते चौपदे' में उन्होंने तद्भव प्रधान भाषा का प्रयोग किया। मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद और पंत ने तत्सम-प्रधान भाषा को वरीयता दी है। निराला ने अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग शैलियों का प्रयोग किया है। प्रेमचंद की भाषा जन-सामान्य के बहुत नज़दीक है। फणीश्वरनाथ रेणु ने आंचलिक भाषा का प्रभावशाली प्रयोग किया है। बाद में कथा साहित्य में और कविता में भी (विशेषकर नवगीत में) आंचलिक भाषा का खूब प्रयोग हुआ। खड़ी बोली हिंदी की समृद्धि का आधार इसमें निरंतर देशज शब्दों के समावेश और अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करना है। भारतीय साहित्य के अध्ययन के संदर्भ में यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि खड़ी बोली में जहाँ अनेक शैलियों में और अनेक विधाओं में विपुल साहित्य-सर्जना हुई है, वहीं भारत की ही नहीं; विश्व की अनेक भाषाओं का श्रेष्ठ साहित्य इसमें निरंतर अनूदित हो रहा है। इससे इन भाषाओं के समृद्ध दाय को हिंदी के माध्यम से ग्रहण करना संभव हुआ है। भारतीय संस्कृति का एक समग्र बिम्ब खड़ी बोली के माध्यम से सरलता से ग्रहण किया जा सकता है।

अपने अखिल भारतीय महत्त्व के आधार पर ही खड़ी बोली हिंदी स्वतंत्रता-संग्राम की संयोजक भाषा तथा अनौपचारिक रूप में राष्ट्रभाषा भी बनी। संविधान में इसे राजभाषा घोषित किया गया, जिससे हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के विकास के साथ प्रशासनिक कार्यों एवं शिक्षा में माध्यम - भाषा बनने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

खड़ी बोली हिंदी में रोचक क्षेत्रीय विविधता है। मुंबइया हिंदी तो बहुत लोकप्रिय है ही, जब हम कोलकाता, बेंगलुरु, हैदराबाद जाते हैं, तब नए अंदाज़ की हिंदी सुनते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक व्याप्त रंगों की विविधता की यह छटा कोई समस्या नहीं, बल्कि इसकी सुंदरता है। मॉरीशस में हिंदी में आपको भोजपुरी की मिठास भी खुली मिल सकती है और अन्य भाषाओं का प्रभाव भी। जब सन् 2004 में प्रो. केदारनाथ सिंह और मैं इस देश में गए थे, तब हमने खड़ी बोली की समृद्धि, विविधता और इसके गौरवपूर्ण इतिहास का उल्लेख भी अपने व्याख्यानों में किया था।

हम कामना करते हैं कि नई पीढ़ी, चाहे वह भारत की हो, मॉरीशस की हो, फ़िजी, सूरीनाम, इंग्लैंड ऑस्ट्रेलिया या किसी अन्य देश की हो, हिंदी को नया विकास देने का संकल्प ले!

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. विश्वनाथ, प्रसाद, दक्खिनी हिंदी का उद्भव और विकास, प्राक्कथन
2. गोपीचन्द नारंग, अमीर खुसरो का हिन्दवी काव्य
3. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास
4. शम्भुनाथ, हिंदी नवजागरण और संस्कृति
5. 'सम्मेलन पत्रिका', भाग 62, संख्या 3-4

rajendragautam99203@gmail.com

हिंदी का संघर्ष जारी है

सरोजिनी नौटियाल
देहरादून, भारत

वर्ण, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ - इन पाँच तत्त्वों पर भाषा की विराट संरचना खड़ी होती है। हर भाषा की अपनी एक परंपरा है। यह न तो कोई आकस्मिक उपलब्धि है और न किसी की पैतृक संपत्ति ही। विश्व में प्रचलित भाषाएँ मानव-सभ्यता के बारे में बहुत-कुछ कहती हैं। भाषा संस्कृति की अभिव्यक्ति और संवाहिका है।

इतिहास के कई दृश्य-अदृश्य कारक, किसी भाषा की स्थिति और प्रसार के पीछे क्रियाशील रहते हैं। सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया के चलते भाषा के किसी रूप को महत्त्व मिल जाता है और वह छा जाती है, जबकि कुछ भाषाएँ हाशिए पर चली जाती हैं और कुछ विलुप्त तक हो जाती हैं। किसी भाषा का विलुप्त होना मानव-सभ्यता की किसी कड़ी का खो जाना है। भाषाओं के आने-जाने के क्रम में किसी काल विशेष में एक से अधिक भाषाओं का चलन में रहना सामान्य बात है। भक्ति काल, रीति काल व आधुनिक काल के भारतेंदु युग यानी उन्नीसवीं सदी के अंत तक समृद्ध साहित्य की भाषाओं के रूप में विराजित ब्रज भाषा व अवधी बीसवीं सदी के आते-आते क्षेत्र विशेष की बोलियों के रूप में संकुचित हो गईं, जबकि वहीं एक अस्थिर, अपरिष्कृत, असाहित्यिक व बोलचाल की ज़ुबान के रूप में उभर रही खड़ी बोली, जिसकी कोई विशिष्ट साहित्य परंपरा भी नहीं थी, बोली से उठकर भाषा बन गई और आगे चलकर देश की भाषिक आवश्यकता बनी।

भाषा है, तो उसका साहित्य भी है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। भाषा साहित्य को आश्रय देती है, तो साहित्य भाषा को संरक्षित रखता है। साहित्य लिखित और मौखिक - दोनों प्रकार का हो सकता है। साहित्य से अभिप्राय पंडितों-कवियों का रचा कुलीन-शास्त्रीय साहित्य ही नहीं है, अपितु लोकगीतों, लोक-कथाओं, किंवदन्तियों, कहावतों, कलाओं, नौटंकियों और शिलापटों में व्याप्त लोक-चेतना की भाषिक अभिव्यक्ति भी है। आम बोलचाल में इसे लोक साहित्य कहा जाता है। अपने साहित्य से कोई भाषा अपने उद्भव और विकास क्रम का परिचय देती है।

भाषा पर भौगोलिक विशिष्टताओं के साथ-साथ सांस्कृतिक विशिष्टताओं का भी प्रभाव पड़ता है। यह सामाजिक ही नहीं जातीय और व्यक्तिपरक भी होती है। पेशा, जाति और शिक्षा के प्रभाव से एक ही स्थान पर रहने वाले विभिन्न व्यक्तियों के भाषा-व्यवहार में भिन्नता होती है। शिक्षित और सुसंस्कृत लोग, जिस भाषा में व्यवहार करते हैं, वह भाषा अधिक मान्यता प्राप्त हो जाती है। यही कारण है कि मानकीकरण के लिए भाषा के स्वरूप के चयन का आधार केवल 'कितने लोग बोलते हैं' ही नहीं है, 'कौन लोग बोलते हैं' भी है।

भाषा किसी पर आक्रमण नहीं करती, लेकिन भाषा को लेकर युद्ध होते हैं। बांग्लादेश के निर्माण में भाषा एक महत्त्वपूर्ण घटक रहा है। राजनीतिक परिस्थितियाँ अलग-अलग संस्कृतियों के परस्पर टकराने और मिलने का वातावरण सृजित करती हैं। अरबी भाषा आक्रमण के बल पर पहले ईरान की ज़ुबान फ़ारसी में पहुँची और फिर मुगल काल में फ़ारसी की मार्फ़त हिंदी में प्रविष्ट हो गई। इसी प्रकार अंग्रेज़ों के आने से हिंदी में अंग्रेज़ी व अन्य लैटिन भाषाओं के अनेकानेक शब्द समाहित हो गए। भाषाएँ हर वक्त सफ़र में रहती हैं। गतिशीलता उनके अस्तित्व के लिए ज़रूरी भी है। जो ठहरी रहती हैं, अपने में रहती हैं, वे खतरे में पड़ जाती हैं। कबीर ने संस्कृत की जड़ता पर कटाक्ष करते हुए कहा है - संस्कृत है कूपजल, भाषा बहता नीर।

भाषा बदलती रहती है। पाणिनि के पूर्ववर्ती यास्क कह गए हैं कि समय के साथ भाषा में वर्णागम, वर्णलोप, वर्ण विकार, वर्ण विपर्यय और अर्थ विकार - ये पाँच परिवर्तन होते रहते हैं। भौगोलिक विस्तार से भाषा की कई शैलियाँ विकसित हो जाती हैं। जिस भाषा का क्षेत्र जितना व्यापक होगा, उसके उतने ही परिवर्तित आकार होते हैं। हिंदी एक बहुत बड़े भू-भाग की भाषा है। स्वाभाविक है, इसके कई स्वरूप हैं। जयपुरी, मारवाड़ी, मेवाती, मालवी, ब्रज भाषा, खड़ी बोली, हरियाणवी, पश्चिम पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, कन्नौजी, अवधी, छत्तीसगढ़ी, बुन्देली, भोजपुरी, बघेली, मगही और मैथिली। उर्दू को भी, व्यापकतम रूप में, हिंदी की एक शैली मान लिया जाता है।

भाषा की इस पृष्ठभूमि में हिंदी की विकास यात्रा को देखें, तो निकलकर यह आता है कि अनुवांशिक रूप से संस्कृत से जन्मी हिंदी पालि, प्राकृत जैसी जनबोलियों में पनपती हुई शौरसेनी अपभ्रंश से कायान्तरित हुई। सन् 1000 ईसवी आते-आते बोलचाल

की भाषा में खड़ी बोली के लक्षण उभरने लगे थे। अमीर खुसरो के समय यानी चौदहवीं शताब्दी के आसपास दिल्ली के दायरे में खड़ी बोली अस्तित्व में आ गई थी। पन्द्रहवीं शती गुज़रते-गुज़रते निर्गुण सम्प्रदाय के संत कबीर, रैदास, गुरुनानक, दादू, संत ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि की रचनाओं में खड़ी बोली के प्रयोग से हिंदी का महत्त्व बढ़ने लगा।

मुगल सामंत इसे अपने साथ दक्षिण भारत ले गए जहाँ वह दक्खिनी कहलाई। दिल्ली की बढ़ती आबादी और बढ़ते राजनीतिक महत्त्व से हिंदी कही जाने वाली खड़ी बोली का क्षेत्र विस्तृत हुआ। मुगल काल में हिंदी में अरबी, फ़ारसी और तुर्की के कई शब्द जुड़ गए और इसका रूप हिंदुस्तानी हो गया। 18वीं शती में मुगल साम्राज्य का पतन हुआ। अस्थिरता फैली। दिल्ली, मेरठ और आगरा की बस्तियाँ उजड़ीं। व्यापारियों, कवियों और कर्मचारियों ने पूरब का रुख किया। जहाँ-जहाँ वे गए, हिंदी भी चली गई। हिंदी का भौगोलिक विस्तार हुआ। इसकी कई शैलियाँ उभरीं यानी आकार में परिवर्तन होने लगा। 19वीं शती में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के प्रचार-अभियान से खड़ी बोली को देश के कोने-कोने तक पहुँचा दिया। ईसाई प्रचारकों ने भी अपने धर्म का प्रचार खड़ी बोली में किया और हिंदी सुदूर आदिवासी क्षेत्रों तक चली गई।

उन्नीसवीं शती के अंत तक हिंदी भारतेंदु की कलम से साहित्य में प्रविष्ट हो गई। हिंदी सिनेमा व गीतों ने तो हिंदी की धूम मचा दी। पड़ोसी मुल्कों तक में हिंदी लोकप्रिय हो गई। व्यापार, अध्यात्म और ज्योतिष ने यूरोपवासियों को भारत की सभ्यता-संस्कृति की ओर आकृष्ट किया और संस्कृत व हिंदी के प्रति यूरोप की उत्सुकता बढ़ी।

बीसवीं शती के आगाज़ के साथ ही हिंदी आंदोलन, साहित्य और राष्ट्रीय चेतना की भाषा बन गई। पूरे विश्व में विप्लव मचा हुआ था। भारत भी अंग्रेज़ों से मुक्ति के अभियान में प्राण-प्रण से लगा हुआ था। महात्मा गांधी भाँप गए थे कि देश को कई प्रकार की गुलामियों से आज़ाद कराना है। एक गुलामी भाषा की है। गांधी जी देश को हिंदी के लिए तैयार करने में लग गए। हिंदी साहित्य सम्मेलन के आयोजनों से वे देश में हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। दक्षिण के राज्यों में हिंदी के लिए उन्होंने कई भाषा संचेतकों को लगा रखा था। उनमें से एक उनके पुत्र देवदास गांधी भी थे। गांधी जी के दक्षिण अभियान में तमिलनाडु के सर सी.पी. रामास्वामी अय्यर व भाष्यम् अभ्यंकर तथा केरल के उण्णी के अथक परिश्रम से वहाँ हिंदी की जड़ें जमीं। गांधी जी का हिंदी से आशय हिंदुस्तानी से था। हिंदुस्तानी यानी जिसे आम जन बोलता-लिखता है, जिसमें न तो संस्कृत के शब्दों की अधिकता हो और न ही अरबी-फ़ारसी शब्दों की भरमार।

स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ भाषा का आंदोलन भी चल पड़ा। हिंदी को व्याकरणसम्मत बनाने और इसे विभिन्न प्रयोजनों के लिए तैयार करने की दिशा में विचार किया जाने लगा। महात्मा गांधी जैसे जननायक, राजेन्द्र प्रसाद जैसे देश-चिंतक, गणेश शंकर विद्यार्थी, जैसे ओजस्वी पत्रकार, प्रेमचंद जैसे कथाशिल्पी, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, जैसे भाषा संस्कारी, बालमुकुन्द गुप्त, जैसे भाषाविद् हिंदी के परिष्कार और प्रतिष्ठा के पावन कर्म में पूरे जी-जान से जुटे हुए थे। अहिंदी क्षेत्रों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। देश के आज़ाद होने तक हिंदी पूरी तरह से नागरी बन गई थी। अब वह केवल बोलचाल की भाषा ही नहीं शासन, साहित्य, शिक्षा, मनोरंजन, कारोबार, पत्रकारिता और सिनेमा की भाषा भी थी, पहले से अधिक समृद्ध।

ऐतिहासिक कारणों से हिंदी में फ़ारसी और अंग्रेज़ी का प्रभाव पड़ा है। फ़ारसी के आँगन में हिंदी खेलते-कूदते बड़ी हुई थी। वहीं हिन्दवी, हिंदुई, ज़ुबान-ए-हिन्द से हिंदी बनी। लेकिन अब उसमें केवल अरबी, फ़ारसी और तुर्की भाषाओं के शब्द ही नहीं, अंग्रेज़ी और अन्य लैटिन भाषाओं के शब्द भी घुल-मिल गए थे। हिंदी को न फ़ारसी से दिक्कत थी और न अंग्रेज़ी से परेशानी। भाषाओं में परस्पर ग्राह्यता होती है। मिलने पर वे एक-दूसरे को समृद्ध करती हैं।

भारत एक विशाल देश है। इसकी वैविध्यपूर्ण सामाजिक संरचना और बहुभाषिकता ताकतवर-से- ताकतवर को भी इतनी छूट नहीं देती कि कोई इसे एक लाठी से हाँक ले जाए। इसके बावजूद अंग्रेज़ी ने देश के भाषा मनोविज्ञान को बुरी तरह प्रभावित किया। अंग्रेज़ आए, अंग्रेज़ी आई। शासन, शिक्षा और अदालत की भाषा अंग्रेज़ी। अंग्रेज़ी में बोलने और सोचने वाले काले अंग्रेज़ भी तैयार किए गए। वे देश को नहीं पहचानते थे और देश उनको। देश कई रूपों में बँटने लगा। देश ने खुद को धर्म, क्षेत्र और भाषा के आधार पर बँटते देखा।

अंग्रेज़ी विज्ञान और टेक्नोलॉजी की भाषा तो थी ही, अब

वर्चस्व की भाषा भी बन गई। भारत में जहाँ पाँच भाषा परिवारों की भाषाएँ चलन में हैं, जहाँ बारह भाषाएँ तो इतनी ताकतवर हैं कि उनके आधार पर आज़ादी के बाद देश में राज्यों का गठन हुआ और जहाँ हिंदी को उसकी भाषिक संभावनाओं के कारण संपर्क भाषा बनाने की कवायद चल रही थी, वहाँ नए-नए आज़ाद हुए देश में अंग्रेज़ी को राजभाषा बनाने की पैरवी करने वालों की कमी नहीं थी। वस्तुतः आज़ादी के बाद अंग्रेज़ी, भाषा नहीं, हमारी कमज़ोरी बन गई। शासन और अदालत से इसे बेदखल करना असंभव-सा हो गया है। देश की जनसंख्या का मात्र डेढ़ प्रतिशत अंग्रेज़ी जानने वाले भारत की संसद में राष्ट्र-भाषा को लेकर अंग्रेज़ी वालों के जो तेवर दिखे और हिंदी के विरोध में जो हंगामा हुआ, उस पर तत्कालीन सांसद प्रख्यात विद्वान बी. पट्टाभि सीतारमैया के कहे इन शब्दो पर गौर करने की आवश्यकता है -

"अंग्रेज़ों ने केवल भारत के भू-भाग पर ही कब्ज़ा नहीं किया, अपितु यहाँ के चिंतन, मनोविज्ञान और मूल्यों पर भी कब्ज़ा कर लिया है।"

महात्मा गांधी, पं. नेहरू, यशवंत राव चव्हाण जैसे नेताओं को एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ा, संविधान में हिंदी, जिसकी लिपि देवनागरी है, को भारत संघ की भाषा दर्ज करवाने में, वह भी कई अनुबंधों के साथ। अंग्रेज़ी सह राजभाषा बनी। प्रांतीय भाषाओं को आठवीं अनुसूची में रखा गया, समुचित संरक्षण और परिवर्धन के आश्वासन के साथ।

देश-विदेश की भाषाओं से कड़ा संघर्ष करके निकली हिंदी की खड़ी बोली अपनी सत्रह बोलियों के मध्य भारत संघ की राजभाषा बनी। उसके महत्त्व और दायित्वों को देखते हुए उसके परिमार्जन के कार्य ने और गति पकड़ी। आगत भाषाओं के कई शब्दों को हिंदी की चाल में ढाल कर अपना लिया गया। मानकीकरण से एकरूपता देकर हिंदी को शासन, शिक्षा और जनसंचार माध्यमों के लिए तैयार किया गया। वाणिज्य, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, कानून, बाज़ार आदि की प्रयुक्तियों के लिए हिंदी की रिक्तियों को भरा जाने लगा। उसका सरलीकरण भी शुरू कर दिया गया। सरलीकरण अर्थात् हिंदी को संस्कृत के व्याकरण से यथा औचित्य मुक्त करना। शिक्षा मंत्रालय और गृह मंत्रालय के अधीन राजभाषा विभाग के अंतर्गत केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, तकनीकी शब्दावली आयोग और अनुवाद ब्यूरो सतत इन कार्यों में लगे हैं।

राजभाषा के लिए हिंदी का चयन कोई राजनीतिक छल या षड्यंत्र नहीं था। संसद में हिंदी के पक्ष में बोलने वालों में अधिकतर नेता गैर हिंदी राज्यों के थे। भारत को अपनी भाषिक पहचान चाहिए थी। यह पहचान अंग्रेज़ी हो नहीं सकती थी और देश की अन्य भाषाओं में किसी का भी विस्तार हिंदी जितना नहीं था। हिंदी के लिए चुनौतियाँ कम नहीं थीं। हिंदी अपेक्षाकृत एक नई भाषा थी। तमिल, तेलुगु और बांग्ला जैसी भाषाओं के समकक्ष इसके पास प्राचीन और समृद्ध साहित्य की परंपरा नहीं थी। लेकिन हिंदी में फैलाव, क्षमता और संभावना थी। वह लंबे समय से तैयार हो रही थी, नई ज़िम्मेदारियों के लिए।

आज हिंदी बड़ी सहजता से अपना प्रसार कर रही है - देश में और विदेश में। विश्व के लगभग 80 देशों में हिंदी बोली, समझी और पढ़ी जाती है। विश्व की महत्त्वपूर्ण तेरह भाषाओं में जानने-समझने वालों की संख्या के आधार पर चीनी और अंग्रेज़ी के बाद हिंदी तीसरे स्थान पर है। विश्व के कई देशों में हिंदी भाषी भारतवंशी छितराए हुए हैं। सांस्कृतिक प्रभाव के कारण पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, म्यांमार, इंडोनेशिया, जैसे पड़ोसी मुल्कों में हिंदी अपनी भाषा की तरह बोली-समझी जाती है।

ऐतिहासिक कारणों से स्थान विशेष की भाषाओं से क्रिया - प्रतिक्रिया करते हुए हिंदी की कई विदेशी शैलियाँ भी विकसित हो गई हैं। सरनामी हिंदी, फ़िजी बात, दक्षिण अफ़्रीकी हिंदी जैसी शैलियाँ विश्व में एक भाषा के रूप में हिंदी के फैलाव को दर्शाती हैं। अमेरिका और यूरोप में हिंदी के प्रवासी लेखन में हिंदी की एक नई शैली - यूरो-अमेरिकन भी आकार ले रही है। आर्थिक दृष्टि से भी हिंदी भारत जैसे एक बड़े बाज़ार की भाषा है। हिंदी के इस बढ़ते महत्त्व के कारण विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण विभाग खुले हैं।

इस सबके बावजूद हिंदी चैन से नहीं बैठ पाती। आज भी देश में अंग्रेज़ी राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावशाली बनी हुई है। देश में हिंदी की बात करना भाषा से अधिक राजनीति का मुद्दा बन जाता है। विदेश में भी हिंदी की वैसी माँग नहीं है, जैसी चीनी, जापानी, कोरियाई जैसी एशियाई भाषाओं की। वस्तुतः हिंदी अभी भी इन भाषाओं की तरह बाज़ार और रोज़गार की भाषा नहीं बन पाई है। भारतवंशियों की अच्छी -

खासी संख्या के कारण लघु भारत कहे जाने वाले मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद, टोबैगो जैसे देशों में फ़िजी को छोड़ हिंदी कहीं भी आधिकारिक भाषा नहीं बन पाई। यहाँ पर हमको यह भी समझना होगा कि इन देशों में हिंदी सत्तासीनों की नहीं, अधीनस्थों की भाषा थी। जिसकी सत्ता, उसकी भाषा। और तो और, अब हिंदी को वहाँ अन्य एशियाई भाषाओं से भी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। भाषा राजनीतिक कारणों से ही नहीं, आर्थिक कारणों अर्थात् बाज़ार से भी ऊपर-नीचे होती है और इस मामले में चीनी-जापानी कहीं आगे हैं।

विदेशों में हिंदी की इतनी पूछ न होने का एक कारण स्वदेश में हिंदी को अपेक्षित महत्त्व न मिलना भी है। देश का आम जन अंग्रेज़ी को सफलता की पहली सीढ़ी समझता है। अपनी जुबान को हेय समझने और अंग्रेज़ी को संपूर्ण अस्तित्व-व्यक्तित्व मान लेने की कुंठा देश के नौनिहालों में व्याप्त हो गई है। आज देश की जनसंख्या बढ़ी है और साक्षरता का प्रतिशत भी, लेकिन हिंदी पत्रिकाओं की स्थिति शोचनीय हो रही है। वैश्वीकरण के इस दौर में देश का उच्च शिक्षित युवा अपने अर्थशास्त्र में इतना निमग्न हो गया है कि उसके लिए राष्ट्र-प्रेम, राष्ट्र-भावना और राष्ट्र-भाषा जैसे शब्द अप्रासंगिक से हो गए हैं। हिंदी के निपात तो जैसे उसकी जिह्वा से बहिष्कृत ही हो गए हैं। बात-बात पर साहित्यकारों की उक्तियों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि को उद्‌धत करने वाली पीढ़ी लुप्त होती जा रही है। बोलचाल की भाषा और साहित्य के अन्तर्संबंध में एक शून्य उभर रहा है।

हिंदी के समक्ष विज्ञान और टेक्नोलॉजी में मौलिक पुस्तक लेखन की भी चुनौती है। केवल अंग्रेज़ी से अनुवाद कर-करके हिंदी में पुस्तक उपलब्ध कराने से हिंदी निशंक भाव से विचरण नहीं कर सकती। हर क्षेत्र में मौलिक लेखन ही हिंदी को परिपूर्ण बना सकता है। अनुवाद की अपनी आवश्यकता है, अपना महत्त्व है। लेकिन यह दोयम दर्जे का लेखन कहलाता है और मूल भाषा के महत्त्व को परिलक्षित करता है।

भाषा चूँकि अस्मिता से जुड़ा मुद्दा है। स्वाभाविक है कि सब अपनी ज़ुबान की स्वतंत्र पहचान के लिए उत्कंठित रहते हैं। इसी के चलते मैथिली को अब अलग भाषा का दर्जा मिल गया है। भोजपुरी व अन्य भी इस दौड़ में हैं। कभी-कभी ऐसे प्रयासों के पीछे भाषिक आवश्यकता कम, राजनीतिक उद्देश्य अधिक होते हैं। कुछ भाषा-चिंतकों को मैथिली को हिंदी समूह से अलग करना हिंदी की प्रभुता को आघात पहुँचाने की विद्वेषपूर्ण चाल लगी। हिंदी, जो बोलने-समझने वालों की संख्या के बल पर विश्व की प्रमुख भाषा के रूप में अपना दावा ठोकने की मुद्रा में आ गई है, को लेकर ऐसे उद्योग भीतरघात ही कहलाएँगे।

किसी भाषा के भविष्य की चिंता होना भाषा के लिए शुभ संकेत नहीं है। लेकिन यह भी सत्य है कि जब भाषा में अपना दम होता है, तब वह अपने नए रास्ते तलाश लेती है और स्वभाव से सहिष्णु, उदार और समावेशी हिंदी ने अपनी ताकत दिखाई है। विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या बढ़ी है। देश और विदेश दोनों जगह हिंदी में उत्तम साहित्य रचा जा रहा है, हिंदी में अनुवाद कार्य हो रहा है। हिंदी ने रोज़गार और बाज़ार की भाषा बनने की भी खूबी दिखाई है।

वस्तुतः हिंदी संघर्ष की भाषा है। इसने आकार ही संघर्ष के बीच लिया। यह भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की आवाज़ बनी। समाज-सुधारकों के प्रवचन और संदेश की भाषा बनी। इसमें क्रान्ति के गीत रचे गए। विदेशी सत्ता को चुनौती देने वाला साहित्य इसमें लिखा गया। आज़ादी के बाद हिंदी अन्याय और शोषण के खिलाफ कवियों की भाषा बनी। इसे विडंबना ही कहेंगे कि देश के संघर्ष की अभिव्यक्ति बनी हिंदी अपने अस्तित्व को लेकर भी सतत संघर्षशील रहती है। भाषा के अखाड़े में प्रतिद्वन्दी बनी अंग्रेज़ी अंगद की तरह पैर जमाए खड़ी है। प्रांतीय भाषाओं के ठेकेदारों को संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेज़ी चाहिए। हिंदी से उनको अपनी भाषा के लील लिए जाने का खतरा है। हिंदी की क्षेत्रीय बोलियाँ अपनी अलग पहचान की घुड़की देने में लगी रहती हैं। इतना ही नहीं, सरकार हिंदी के लिए कोई प्रस्ताव ला पाए, इससे पहले ही हिंदी ठुकना शुरू हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भले ही हिंदी अपने अस्तित्व की लड़ाई जीत गई है, लेकिन वह निरन्तर एक मनोवैज्ञानिक संघर्ष से जूझ रही है।

हमें यह समझना होगा कि भारत जैसे बहुभाषी देश में हिंदी ने अपने बल पर राष्ट्रभाषा होने का गौरव हासिल किया है। भारत की राष्ट्रभाषा बनने के लिए किसी भी अन्य भाषा की तुलना में हिंदी का दावा निश्चित तौर पर सर्वाधिक मज़बूत था। गांधी ने यूँ ही हिंदी के लिए वर्षों इतना जटिल युद्ध नहीं लड़ा। गांधी ही नहीं, अन्य अनेक राष्ट्र-चिंतकों ने भी देश की संपर्क भाषा के रूप में हिंदी

की क्षमता, विस्तार और संभावनाओं को पहचान लिया था। इस संबंध में स्वतंत्रता से बहुत पहले ही वर्ष 1928 में राजाजी (चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) के कहे इन शब्दों पर गौर करना समीचीन होगा -

"यदि दक्षिण भारतीय क्रियात्मक रूप से पूरे देश के साथ एक सूत्र में बँधकर रहना चाहते हैं और वे अखिल भारतीय मामलों से और उससे संबंधित निर्णयों से अपने को दूर नहीं रखना चाहते, तो उन्हें हिंदी अवश्य पढ़नी चाहिए।"

आज के गतिमान दौर में उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम, संपूर्ण भारत में हिंदी लोगों के द्वारा व्यवहृत होती है। हिंदी केवल एक भाषा नहीं है, यह देश की पहचान है, भारत की ज़ुबान है। बापू ने कहा था – हिंदी भाषा नहीं, भावना है, राष्ट्रीय भावना है।

लेकिन दुर्भाग्यवश हिंदी का सामना ऐसे तत्त्वों से होता रहता है, जो अपनी क्षुद्र राजनीति के चलते भाषा के नाम पर देश में विघटन का ज़हर घोलते हैं। भाषा सामाजिक संगठन और सामाजिक बिखराव - दोनों का माद्दा रखती है। भाषा जैसे संवेदनशील मुद्दे को हथियार बनाकर हिंदी-विरोध से जन्मी राजनीतिक विचारधारा जब-तब हिंदी को आहत करती रहती है। आश्चर्य तो तब और होता है, जब हिंदी की खाने-कमाने वाले कुछ महारथी भी उसके पर काटने के लिए हाथ में कैंची लिए ताक में बैठे रहते हैं। परिणामतः भारत संघ की राजभाषा घोषित होने के बावजूद हिंदी कभी अपना ताज नहीं पहन पाती।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. भाषा-विज्ञान का रसायन, डॉ. कैलाश नाथ पाण्डेय, गाज़ीपुर साहित्य-संसद, गाज़ीपुर (उ.प्र.)
2. राजभाषा भारती (स्वर्ण जयन्ती विशेषांक, जनवरी 2000) भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग
3. भाषा की अनस्थिरता : एक ऐतिहासिक बहस, संपादक - भारत यायावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर-अक्टूबर 2019 (साहित्य अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका), संपादक - ब्रजेन्द्र त्रिपाठी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
5. गगनांचल - पत्रिका (संयुक्तांक सितंबर-दिसंबर 2022), संपादक - डॉ. आशीष कंधवे, भारत सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली
6. यही तो हिंदी का बड़प्पन है, सुधीश पचौरी, हिन्दस्तान दिनांक 16.6.2019

snautiyal1@gmail.com

खड़ी बोली गद्य के विकास में भारतेंदु की भूमिका : एक अनुशीलन

डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव 'सागर
चंडीगढ़, भारत

परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है। सत्ता, सरित प्रवाह और अभिव्यक्ति माध्यम, युग परिस्थितियों और युग सत्य के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं। परंतु परिवर्तन ही विकास की ओर अग्रसर होता है। भारतीय राजनीति में 17वीं सदी से एक परिवर्तन दिख पड़ने लगा था। खड़ी बोली मध्ययुगीन जड़ता के टूटन का प्रतिफल है। अंग्रेज़ी सत्ता भी इसी बोली से जनता तक अपनी बात रखना चाहती थी और सफल भी हुई। ईसाई धर्म के प्रचारकों ने बाइबल का अनुवाद भी खड़ी बोली में किया। इस धार्मिक प्रक्रिया में और जनता की सुप्त अवस्था में एक नया प्रकाश भरने के लिए आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद सरस्वती और ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने अपने प्रचार-प्रसार और साहित्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली को अपनाया।

यह एक शाश्वत सत्य है कि कोई भी घटना अकस्मात नहीं होती। एक परंपरा पहले से ही विद्यमान रहती है। हिंदी खड़ी बोली का प्रारंभिक रूप अन्य बोलियों की तरह अपभ्रंश तथा अवहट्ट में ही प्राप्त होने लगता है। 'हेमचंद' ने अपने 'अपभ्रंश व्याकरण' में जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, उनमें खड़ी बोली के हृदय के साथ रूप भी स्पष्ट दिखता है-

भल्ला हुआ जुमारिया, बहिणी म्हारा कंतु।

आधुनिक काल तक आते-आते भाषा का बदला हुआ रूप साहित्य में स्वीकृत किया गया; परंतु खड़ी बोली को स्थापित करने का या कहें अवधी और ब्रज के केंचुली को उतारने का प्रयास हिंदी साहित्य के पुरोधा कहे जाने वाले 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' ने किया। वे एक व्यक्ति से बढ़कर संस्था थे। भारतेंदु ने खड़ी बोली की उस अव्यवस्था के युग में एक पुनर्प्रसूत भाषा के प्रवाह के लिए उचित भूमि तैयार किया, जो एक महत्त्वपूर्ण कार्य था।

वे एक सामान्य भाषा-शैली के जन्मदाता थे। वे एक सजग साहित्यकार थे। अतः खड़ी बोली गद्य का विकास भी उन्होंने मनमाने ढंग से नहीं, अपितु सुविचारित और योजनाबद्ध ढंग से किया। उन्होंने हिंदी साहित्य के अभावग्रस्त पक्षों की कमी को पूरा करने का प्रयास किया। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- "उन्होंने क्रांतिकारी हथौड़े से काम नहीं लिया, उन्होंने मृदु संशोधक निपुण वैद्य की भाँति रोगी की नाजुक स्थिति की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त कर उसकी रुचि के अनुसार उचित पथ्य की व्यवस्था की। भारतेंदु की वह अपनी विशेषता थी। वे केवल बँधी रूढ़ियों के कायल नहीं थे। भारतेंदु जीवन-प्राण धारा के मूर्त विग्रह थे।" कदाचित इसी कारण इस युग का नाम भी उन्हीं के नाम पर 'भारतेंदु युग' पड़ा।

1873 में 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' का प्रकाशन अपने युग की एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जा सकती है। बाद में, इसे 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का नाम दे दिया गया था। इस पत्रिका के माध्यम से भारतेंदु ने खड़ी बोली गद्य की नई शैली को जन्म दिया। पुरातत्व, इतिहास तथा जीवन-चरित संबंधी निबंधों की सृष्टि करके खड़ी बोली गद्य के बहुमुखी उद्देश्य को प्रस्तुत किया। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में -'भारतेंदु जी ने एक नई भाषा-शैली को जन्म दिया। उनकी भाषा-शैली की नवीनता इस बात में थी कि उनके समय में एक ओर तो राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद द्वारा प्रवर्तित 'आमफ़हम' भाषा-शैली के प्रति आग्रह किया जा रहा था, तो दूसरी ओर संस्कृत समन्वित विशुद्ध हिंदी भाषा-शैली का प्रयोग किया जा रहा था। भारतेंदु की दृष्टि में ये दोनों ही प्रकार की भाषा-शैली अनुपयुक्त थी और इस कारण उन्होंने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया।' इसलिए आलोचकों का प्रायः यह मंतव्य है कि- 'भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप, भारतेंदु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।' 'हिंदी भाषा' नामक पुस्तक में उन्होंने शुद्ध हिंदी के रूप में निम्नलिखित उदाहरण दिए हैं -"पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए, क्या उस देस में बरसात नहीं होती, या किसी सौत के फंदे में पड़ गए हैं कि इधर की सुधि भूल गए हैं। कहाँ (तो) वह प्यार की बातें, कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहाँ जाऊँ, कैसे करूँ मेरी तो ऐसी कोई मुँह बोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ, कुछ इधर-उधर की बातों से ही जी बहलाऊँ।"

भारतेंदु की गद्य रचनाओं, विशेष रूप से नाटकों में इसी प्रकार की हिंदी का प्रयोग हुआ है। जब संवत् 1925 में भारतेंदु ने

नाटक लिखना आरंभ किया, तब तक अंग्रेज़ी नाटकों की धूम मचने लगी थी। बांग्ला में भी नाटक लिखे जा रहे थे पर हिंदी में नाटक न के बराबर थे। इसी से भारतेंदु ने नाटक पर अधिक ध्यान दिया। उन्होंने पुराने ढर्रे के नाटकों के स्थान पर नए नाटक लिखे, जो अपनेपन के परदे में तो थे, परंतु नएपन के साथ। उन्होंने हिंदी भाषा के नाटक के लिए संस्कृत, अंग्रेज़ी और बांग्ला के बीसियों बड़े-बड़े पोथे पढ़े और 'नाटक' नाम की एक पुस्तक लिखी, जिसमें इस बात पर विचार किया गया कि हिंदी में नाटक किस तरह से लिखना चाहिए तथा यह भी बताया कि नाटकों में पुरानेपन और नएपन का मेल होना चाहिए। इसके साथ ही हिंदी भाषा को समृद्ध करते हुए कई अंग्रेज़ी और बांग्ला के नाटकों का भी हिंदी में अनुवाद किया। हिंदी भाषियों की सुविधा के लिए विलायती अनजाने नामों को देसी साँचे में ढाल दिया, जैसे वेनिस का नाम वंश नगर, पोर्शिया का पुरश्री, वर्सेनिया का वसंत, शाईलॉक का शैलाक्ष। उन्होंने बांग्ला के दो नाटकों का सहारा लेकर 'विद्या सुंदर' और 'भारत जननी' नाटक लिखे। कई मौलिक नाटक भी लिखे- भारत-दुर्दशा, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, विषस्य विषमौषधम, नीलदेवी, अंधेर नगरी, प्रेम जोगनी, सती प्रताप (अधूरा)। 'अंधेर नगरी' में खड़ी बोली का उदाहरण व्यंग्य के रूप में देखिए:

चूरन नाटक वाले खाते। इसकी नकल पचाकर लाते।।

चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हज़म कर जाते।।

चूरन खाते एडिटर जात। जिनके पेट पचे नहिं बात।।

भारतेंदु मूल रूप से भावुक साहित्यकार थे। उन्होंने विविध साहित्यिक विषयों पर अनेक निबंध और लेख लिखे। इनमें हिंदी भाषा, जातीय संगीत, ग्रीष्म ऋतु, भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है, कंकर स्रोत, अंग्रेज़ी स्रोत विशेष उल्लेखनीय है। इन निबंधों की भाषा अत्यंत मधुर, सरस, प्रवाहमयी और भावपूर्ण है। आलंकारिक तत्सम प्रधान शब्दावली का माधुर्य एक-एक वाक्य में उमड़ पड़ता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

"अहा! यह भी कैसी भयंकर ऋतु है, 'ग्रीष्मानातुर भवन्नतिप्रियामच्छ रणाम' इसमें प्रचंड मार्तंड अपनी घोर किरणों से स्थावर, जंगम और जल- सबका रस खींच लेता है। जीते जी सब निर्जीव हो जाते हैं। जीवन केवल जीवन में आ अटकता है और वह जल भी इस उग्र सूर्य से इस ऋतु में इतना डरता है कि प्रायः छोटी नदी और छोटे सरोवर तो शुष्क ही हो जाते हैं, कूपों में यद्यपि जल इतना नीचे छिपा रहता है कि सूर्य की दुखदायी किरणावली वहाँ न पहुँचे तो भी मारे डर के थर-थर काँपता है।"

भारतेंदु ने हिंदी बोली के माध्यम से गद्य साहित्य को बहुत ही सशक्त बनाया। उनकी भाषा-शैली में भाव, विचार और प्रसंग को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता है। भारतेंदु ने हिंदी भाषा का प्रयोग सामाजिक असमानता को दूर करने हेतु भी किया। उनके निबंध 'सबै जाति गोपाल की' इस कथन की पुष्टि करती है, जिसमें उन्होंने भारत में बढ़ रहे असमानता के ज़हर को पूर्णतः दर्शाया है देखिए :

"क्षत्री : 'महाराज देखिए बड़ा अंधेर हो गया कि ब्राह्मणों ने व्यवस्था दे दी कि कायस्थ भी क्षत्री हैं। कहिए अब कैसे-कैसे काम चलेगा ?

पंडित : क्यों, इसमें दोष क्या हुआ? सबै जात गोपाल की और फिर यह तो हिंदुओं का शास्त्र पंसारी की दुकान है और अक्षर कल्पवृक्ष है। इसमें तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है, पर दक्षिणा आपको बाएँ हाथ में रखकर देनी पड़ेगी। फिर क्या फिर तो सबै जाति गोपाल की'

सबै जाति गोपाल की में, भारतेंदु जी ने दर्शाया कि ब्राह्मण को भेंट देते ही धर्म एवं जाति परिवर्तन में देर नहीं लगती।

इस प्रकार से उस समय के पाखंडों का भांडा फोड़ते हुए भारतेंदु जी ने दिखाया है कि जहाँ पंडित लोग नीच को ऊँच बनाने में देर नहीं लगाते, वहीं उत्तम को नीच बनाने में भी नहीं चूकते। यहाँ भाषा की विविधता दिखाई देती है। जहाँ संस्कृतनिष्ठ शब्द लिखे गए हैं, वहीं उर्दू के शब्दों का प्रभाव भी दिखाई दे रहा है, परंतु भाषा खटकती हुई दिखाई नहीं दे रही। यही भारतेंदु की भाषा की विशेषता है।

भाषा का मिश्रित रूप 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' निबंध में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अंग्रेज़ों के कारण देश का धन, अन्य देश में जा रहा है और भारतवर्ष कंगाल बन रहा है। जनता से ही उन्होंने स्वावलम्बी बनकर और स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग कर धन बचाने का आग्रह 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' निबंध के माध्यम से किया -

"भाई हिंदुओं! तुम भी मत-मतांतर का आग्रह छोड़ो, आपस में प्रेम बढ़ाओ। इस महामंत्र का जप करो, जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू-हिंदू की सहायता करे। बंगाली, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मण, मुसलमान

सबका हाथ पकड़ो। कारीगर जिससे तुम्हारे यहाँ बढें, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहे वह करो। देखो, जैसे हज़ार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली है, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हज़ार तरह से इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है। दियासलाई ऐसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है। जरा अपने ही को देखो। तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो वह अमेरिका की बनी है। जिस लंकिलाट का तुम्हारा अंगा है, वह इंग्लैंड का है। फ़ारस की बनी कंघी से तुम सिर झाड़ते हो और वह जर्मनी में बनी चर्बी की बत्ती तुम्हारे सामने जल रही है। यह तो मिसाल हुई कि एक बेफ़िक्रे मंगली का कपड़ा पहनकर किसी महफ़िल में गए। कपड़े को पहचान कर एक ने कहा, 'अजी यह अंगा फलाने का है' दूसरा बोला 'अजी टोपी भी फलाने की है। तो उन्होंने हँस कर जवाब दिया कि घर की तो मूँछें ही मूँछें है।' हाय अफसोस, तुम ऐसे हो गए कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते। 'भाइयों, अब तो नींद से जागो, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो। जिससे तुम्हारी भलाई हो। वैसी ही किताबें पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो, परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो, अपने देश में और अपनी भाषा में उन्नति करो।"

भारतेंदु ने हिंदी गद्य लेखन के प्रोत्साहन में 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' तथा 'बाल बोधिनी' इन तीनों पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। भारतेंदु हिंदी साहित्य ही नहीं, बल्कि हिंदी पत्र संपादन-कला के भी जन्मदाता हैं। बंगाल में नवजागरण का आरंभ 50 वर्ष पहले ही हो चुका था, परंतु हिंदी में इस नवजागरण की प्रथम किरण भारतेंदु की रचनाओं और प्रवृत्तियों में ही उद्घाटित हुई। यद्यपि हिंदी समाचार-पत्र और पत्रकला का उदय 40 वर्ष पूर्व हो चुका था, परंतु उसकी परंपरा को स्थाई बनाने और उसे राजनीतिक जागृति के प्रतीक के रूप में उपस्थित करने का श्रेय भारतेंदु को ही मिलेगा। उन्होंने 'कवि वचन सुधा' हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता को नए आयाम प्रदान किए। रामविलास शर्मा ने तो इस पत्र के लिए भारतेंदु को एक नए युग का सूत्रधार माना है। 1867 ई. में प्रकाशित होने वाला भारतेंदु का 'कवि वचन सुधा' काशी का तीसरा पत्र था। पहले यह मासिक पत्र था और इसमें प्राचीन कवियों जैसे चंदबरदाई की रासो, कबीर की साखी, जायसी का पद्मावत, बिहारी के दोहे इत्यादि की कविताएँ छपती थीं। बाद में, नए कवियों को भी स्थान मिलने लगा। कुछ समय बाद यह पाक्षिक हो गया और इसमें राजनीति और समाज संबंधी निबंध छपने लगे। अंत में, साप्ताहिक हो गया। पत्रकला के क्षेत्र में भारतेंदु का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रयत्न 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' (हरिश्चंद्र चंद्रिका) है। यह मासिक पत्र 1873 ई. में आरंभ हुआ। भारतेंदु इस पत्र को 'मिसलेनियस' या विविध विषयक बना रहे थे। उन्होंने इसका क्षेत्र अत्यंत विशाल रखा था - साहित्य, विज्ञान, पुरातत्व, पुस्तक समीक्षा, इतिहास, काव्य-कल्प इत्यादि। इतने विषय की तो किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के जून 1884 के अंक में भारतेंदु ने 'बेगम उर्दू का स्यापा' शीर्षक संपादकीय लिखा, जिसमें हिंदी-उर्दू की तुलना का जवाब है, जो इस प्रकार है :

'अलीगढ़ इंस्टिट्यूट और बनारस अखबार देखने से ज्ञात हुआ कि बीबी उर्दू मारी गई और परम अहिंसक होकर भी राजा शिव प्रसाद ने यह हिंसा की। हाय-हाय! बड़ा अंधेर हुआ, मानो बीबी उर्दू अपने पति के साथ सती हो गई। यद्यपि हम देखते हैं कि अभी साढ़े तीन हाथ की उटनी-सी बीबी उर्दू पागुर करती जाती है। पर हमको उर्दू अखबारों की बात का पूरा विश्वास है कि हमारी तो वही कहावत है : एक मियाँ साहब परदेश में रिश्तेदारी पर नौकर थे। कुछ दिन पीछे घर का एक नौकर आया और कहा कि मियाँ साहब, आपकी जोरू रांड हो गई। मियाँ साहब ने अपना सर पीटा, रोए-गाए बिछौने से अलग बैठे, सोग माना, लोग भी मातमपुरसी को आए। उनमें से चार-पाँच मित्रों ने कहा कि मियाँ साहब आप बुद्धिमान होकर भी ऐसी बात मुँह से निकालते हैं, भला आपके जीते आपकी जोरू कैसे रांड होगी। मियाँ साहब ने उत्तर दिया- भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकल दी है। मैं भी समझता हूँ। मेरे जीते-जी मेरी जोरू कैसे रांड होगी। पर नौकर पुराना है, झूठ कभी न बोलेगा। जो हो बहरहाल, हमें उर्दू का ग़म वाजिब है।'

'बाल बोधिनी' पत्रिका 1874 से 1877 तक निकाली गई। यह हिंदी की पहली स्त्री संबंधी पत्रिका है। यह साहित्यिक तो नहीं, बल्कि स्त्रियों को सचेत करने हेतु लिखी गयी थी। भारतेंदु की पत्रकारिता के योगदान की प्रशंसा करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है- "भारतेंदु ने पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य को एकदम सही दिशा की ओर मोड़ा।

भारतेंदु ने हिंदी बोली के गद्य स्वरूप में रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज़ जैसी नवीन गद्य विधाओं को भी आकार- प्रकार दिया। अपने संपर्क में आने वाले व्यक्तियों की आकृति, स्वभाव-व्यवहार, गुणावगुण का अत्यंत मनोवैज्ञानिक यथार्थ और सजीव चित्रण किया

है। भाषा की यह सजीवता देखिए :

'यह नाटा, खोटा अच्छे हाथ-पैर, का साँवले रंग का आदमी है, बड़ी मूँछ, छोटी आँख, कछाड़ा कसे, लाल पगड़ी बाँधे, हरा दुपट्टा कमर में लपेटे, सफ़ेद दुपट्टा ओढ़े, जात का कुनबी है। इसका नाम हौली है। हौली आजकल मेरे बहुत मुँह लग रहा है, इससे जो बात किसी को मुझ तक पहुँचानी होती है, वह लोग उससे कहते हैं। रेवड़ी के वास्ते मस्जिद गिराना इसी का काम है।'

भारतेंदु के हिंदी गद्य में एक ओर तद्भव एवं देशज शब्दों एवं मुहावरों का प्राधान्य है, तो दूसरी ओर जनजीवन में घुले हुए विदेशी शब्दों से भी विशेष परहेज़ नहीं किया गया है। भारतेंदु के प्रसिद्ध प्रहसन नाटक 'अंधेर नगरी' का एक उदाहरण, जिसमें उन्होंने सरकारी तंत्र पर कटाक्ष किया है -

'अंधेर नगरी चौपट राजा।

टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।।'

उन्होंने हिंदी भाषा को एक नए कलेवर व एक नए साँचे में ढालने का कार्य किया। खड़ी बोली के सरल रूप को गद्य में स्थापित किया। भारतेंदु लोकभाषा के समर्थक थे। वे टकसाली भाषा के विरुद्ध थे। टकसाली अर्थात् 'गढ़ी हुई भाषा'। भारतेंदु निज भाषा के उन्नति के पक्षधर थे। वे कहते थे :

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।"

भारतेंदु की भाषा, विषय, भाव-दशा एवं स्थिति अनुकूल परिवर्तित होती थी और वह विविधमुखी रूप धारण करती थी। प्रणय, शोक, विरह वर्णन में उनकी भाषा का सुकुमार-मधुर रूप देखने को मिलता है और हास्य के प्रसंगों में वह चुलबुला रूप धारण कर लेती है। उनके नाटकों तथा समीक्षात्मक निबंधों की भाषा-शैली में पर्याप्त अंतर है। वे भाषा के मर्म को समझते थे तथा प्रसंगानुकूल भाषा प्रयोग में वे निपुण थे। भारतेंदु ने भाषा से ग्राम्यत्व हटाकर नागरिक स्निग्धता प्रदान करने का भी प्रयत्न किया, परंतु उन्हें भाषा का पूर्ण परिमार्जन करने के स्थान पर भाषा के व्यावहारिक अथवा आदर्श रूप की प्रतिष्ठा करने का श्रेय अधिक प्राप्त है। कहीं-कहीं ब्रजभाषा का प्रभाव भी उनके गद्य पर लक्षित होता है। भारतेंदु ने नूतन भाषा-शैली का विकास किया। उन्होंने उस युग में प्रचलित प्रायः सभी शैलियों को आज़माने की कोशिश की, पर तरजीह दी, एक मध्यम मार्गी शैली को। उदाहरणार्थ :

1. तत्सम प्रधान शैली - कैसी अपूर्व और विचित्र वर्षा ऋतु साम्प्रत प्राप्त हुई। अनवरत आकाश मेघाछन्न रहता है।

2. तद्भव प्रधान शैली - पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए, क्या उस देस में बरसात नहीं होती, या किसी सौत के फंदे में पड़ गए।

3. फ़ारसी प्रधान शैली - सबो रोज दिलवर की सुहबत रहे रंजो-ग़म दूर हो।

4. पूर्वीपन लिए शैली - साहेब आप कब्बो कलकत्ता गए हो कि नाहीं।

5. अंग्रेज़ी प्रधान शैली - सैकड़ो गैंग इधर से उधर कुली लिए फिरते हैं लालटेन में गिलास बल रहे हैं।

वस्तुतः विविध प्रयोगों का कारण कुछ तो तत्कालीन था और कुछ परिस्थिति और पात्र के अनुसार था। तत्कालीन पत्रिका 'मित्र विलास' में लिखे ये वाक्य कितने स्पृहणीय हैं :

"क्योंकि हिंदी के रसिक एक स्वर से यही कहते आए हैं कि हिंदी के मुख्य प्रचारक श्री हरिश्चंद्र जी हैं। पक्षपात शून्य होकर विचार करने से यही सिद्ध होता है कि कारण उनके पूर्व की जो हिंदी है, उसमें ऐसा सहज माधुर्य नहीं पाया जाता। जो लोग विवेकी हैं, वे इसे अवश्य स्वीकारेंगे कि श्री हरिश्चंद्र जी ने उस बिगड़ी हुई भाषा को जो ग्रामीण स्त्री के वेश में थी, सुधार कर सुसंपन्न नागरी करके नागरी शब्द को सार्थक कर दिखाया।"

सन् 1880 के बाद उनकी कृतियों में एक आदर्श खड़ी बोली का स्वरूप प्राप्त होता है। इस संबंध में आचार्य शुक्ल का कथन अत्यंत सार्थक है - "जब भारतेंदु अपनी मंझी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए, तब हिंदी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्रकृत साहित्यिक रूप मिल गया और ब्रजभाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया। भाषा का स्वरूप स्थिर हो गया।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि खड़ी बोली गद्य के विकास और प्रकर्ष में भारतेंदु जी का अभूतपूर्व योगदान रहा है। उन्होंने हिंदी में एक नई परंपरा को जन्म दिया। भावी पीढ़ियों के लिए नवीन आदर्शों की प्रतिष्ठा की। उनका योगदान केवल एक साहित्यकार के रूप में ही नहीं, अपितु जीवन जन-जागृति के अग्रदूत के रूप में भी रहा है। उन्हें स्वदेश और स्वभाव की चिंता बराबर सताए रहती थी। हिंदी गद्य की इस परंपरा के सुनियोजित और सुविचारित विकास के मूल में भी भारतेंदु

जी की यही जीवन दृष्टि सक्रिय रही है। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की छाप केवल उनके निबंधों, नाटकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि पर ही नहीं, अपितु उन विविध सामाजिक सभा-संगठनों पर भी है, जिसके माध्यम से उन्होंने भारत की चहुँमुखी उन्नति के महान लक्ष्य की बात सोची थी। भारतेंदु जी को केवल खड़ी बोली का प्रवर्तक कहना अधूरी बात है, वे तो एक ऐसे प्रकाश-स्तंभ की तरह थे, जिनकी साहित्यिक कृतियों की आभा उनके समकालीन साहित्य को ही नहीं, अपितु परवर्ती साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को भी आज तक प्रकाशित की हुई है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास
2. सं. डॉ. कैलाश नाथ पाण्डेय, भाषा विज्ञान का रसायन
3. सं. ब्रजरत्न दास, भारतेंदु ग्रंथावली, खण्ड-1
4. हरिश्चंद्र मैगज़ीन 15 मई 1974 उपक्रम तीयसर्वस्व, भारतेंदु ग्रंथावली, भाग-3
5. सबै जाति गोपाल की, भारतेंदु ग्रंथावली, खण्ड-3
6. सं. ब्रजरत्न दास, भारतेंदु ग्रंथावली, खण्ड-3
7. सं. जय सिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास
9. एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती, भारतेंदु ग्रंथावली, खण्ड-3
10. सं. ब्रजरत्न दास, अंधेर नगरी, भारतेंदु ग्रंथावली

shipra.sagar@gmail.com

असम में हिंदी की विकास-यात्रा

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
गुवाहाटी, असम, भारत

पूर्वोत्तर भारत हमेशा से अपनी कला-संस्कृति, मनोरम प्रकृति एवं अपने प्राकृतिक संपदाओं के लिए समृद्ध रहा है। भारत के पूर्वोत्तर में आठ राज्य हैं, जिनमें एक चर्चित व सुंदर राज्य है - **असम**। पूर्वोत्तर के इन सभी आठ राज्यों में असम का बड़ा महत्त्व है तथा इसे ही पूर्वोत्तर का प्रवेश द्वार कहा जाता है। किसी भी क्षेत्र या प्रांत की पहचान उसकी कला-संस्कृति, भाषा एवं परंपराओं से होती है। पूर्वोत्तर का असम राज्य प्राचीनकाल से अपनी कला-संस्कृति एवं अनूठी परंपराओं के लिए हमेशा से समृद्ध रहा है। अपनी भाषा के बिना किसी प्रांत या राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता। असम की मुख्य भाषा असमिया है। अपनी सादगी व सरलता के कारण यह भाषा हिंदी की तरह अपने क्षेत्र में अत्यंत लोकप्रिय है। हिंदी जैसे प्राचीन संस्कृत भाषा की प्रमुख उत्तराधिकारिणी है, वैसे ही असमिया का उदय भी आर्यभाषा से हुआ। इससे दोनों भाषाओं के मूल का पता चलता है। भारत के अन्य प्रांतों की तरह असम में भी हिंदी अपने पाँव पसार रही है। इस प्रांत के लोग बोलचाल के लिए असमिया के बाद हिंदी का ही अधिक प्रयोग करते हैं। संक्षेप में कहें, तो हिंदी यहाँ की प्रमुख संपर्क भाषा है। किंतु इतना होने पर भी यहाँ के व्यवहारिक हिंदी की स्थिति काफ़ी दयनीय है। सरकारी काम-काज हो या फिर दैनिक क्रियाकलाप, इनमें विदेशी भाषा की तुलना में हिंदी का प्रयोग नाममात्र ही होता है। इसके लिए ज़रूरी है कि हम व्यक्तिगत अथवा सरकारी संस्थानों की मदद से कुछ ऐसे प्रयास करें, जिनसे यहाँ के लोगों के मन में हिंदी सीखने के प्रति जिज्ञासा ऊपजे तथा वे विदशी भाषा को छोड़ व्यावहारिक तौर पर हिंदी का प्रयोग करने लगे।

असम में हिंदी भाषा का उदय

आचार्य शुक्ल ने असम में हिंदी भाषा की शुरुआत सातवीं शताब्दी से माना। उनके अनुसार सिद्ध साहित्य हिंदी भाषा के विकास का पहला चरण था, इसलिए इसका श्रेय सिद्ध साहित्यकारों को जाता है। इसी संदर्भ में वे लिखते हैं कि "हिंदी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।"

शुक्ल जी का मानना था कि इन सिद्ध साहित्यकारों के प्रमुख कवि सरहपा, लुइपा समेत अन्य कवियों का संबंध पूर्वोत्तर से था। ये सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक पूर्वोत्तर में रहे तथा यहाँ के तत्कालीन समाज को प्रभावित किया। इसके बाद पुनः 14वीं शताब्दी में हिंदी भाषा प्रकाश में आई। धार्मिक गुरु महापुरुष श्री मंत शंकरदेव जब संपूर्ण देश की तीर्थयात्रा कर असम पहुँचे तब उन्होंने "ब्रजबुली भाषा" में नाटक, काव्य, बरगीत आदि लिखना शुरू किया। यह ब्रजबुली भाषा मूलतः मैथिली और बांग्ला भाषा का मिश्रण था। अपनी प्रांत से आगे बढ़कर संपूर्ण देश में अपने धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से ब्रजबुली भाषा को उनके परवर्ती कवियों ने भी अपना लिया और इसी में वे साहित्य-सृजन करने लगे। इन भक्त-कवियों में मुख्यत श्री माधवदेव अन्यतम थे। अपनी क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर संपूर्ण राष्ट्र में मानवतावाद का संदेश पहुँचाना ही उन भक्त-कवियों का उद्देश्य रहा। इसलिए इन्होंने अपनी भाषा में साहित्य का सृजन न करते हुए ऐसी भाषा में साहित्य-सृजन किया, जो काफ़ी लोकप्रिय थी।

आधुनिक काल में जब गांधी जी ने भारत की स्वतंत्रता के लिए हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहा तब असम के युवाओं ने भी इस पहल को स्वीकार करते हुए अपना-अपना योगदान दिया; जिनमें हिंदी स्कूल निर्माण, हिंदी अखबारों का छापना, पुस्तकालय का निर्माण आदि कार्यों में उन्होंने अपना योगदान दिया। इन लोगों में केसर देव शर्मा, श्री केदारमल ब्राह्मण, जगदीश जी सांगानेरीया, राम प्रसाद जालान आदि प्रमुख थे। परवर्ती काल में जोरहाट के पुलिस सुप्रिटेंडेंट राजाराम खारधरिया फुकन ने 1832 में हिंदी भाषा के प्रचार के लिए 'हिंदी व्याकरण और अभिधान' नामक पुस्तक की रचना की। इस ग्रंथ के माध्यम से जिन हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी व्याकरण को लेकर काम नहीं हुआ था, वहाँ उन्होंने इसका श्रीगणेश किया।

असम में हिंदी भाषा का एक विषय के रूप में अध्ययन कराने की शुरुआत भुवनचंद गोगोई ने की। इन्होंने 1926 में असम के शिवसागर ज़िले में 'असम पॉलिटेक्निक इंस्टीट्यूशन' नामक विद्यालय की स्थापना की, जहाँ पहली बार हिंदी को एक अनिवार्य विषय के तौर पर लागू किया गया। इसके बाद असम के तत्कालीन मुख्यमंत्री लोकप्रिय गोपीनाथ बोरदोलोई जी ने भी हिंदी के लिए अपनी रुचि प्रकट की, जिसके फलस्वरूप उनकी अध्यक्षता में पहली बार असम में 'हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना हुई और इसी समिति के कार्यों द्वारा असम में हिंदी तेज़ी से बढ़ती चली गई।

असम में हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति

पूर्वोत्तर के सभी आठ राज्यों की अपनी-अपनी स्वतंत्र लोक संस्कृति एवं भाषाएँ हैं। इन क्षेत्रों में अनेक भाषाएँ एवं बोलियाँ प्रचलित हैं, जिनमें केवल असमिया, बोडो और संथाली को ही भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इतना होने पर भी इन सभी राज्यों के लोग आपस में मिल-जुलकर रहते हैं। इसलिए इन राज्यों को एक साथ 'आठ बहनें' कहकर पुकारा जाता है। 2001 की जनगणना के अनुसार असम में प्रयोग की जाने वाली भाषाओं में असमिया– 48.3%, बांग्ला– 27.5%, बोडो– 4.8%, नेपाली– 2.12%, हिंदी– 5.88% अन्य– 11.8% थी, जबकि 2011 की जनगणना में ये आँकड़ें बदले, जिनमें असमिया– 48.8%, बांग्ला – 28.9%, हिंदी– 6.7%, अन्य–11.8% हुई। इस तरह देखने से इन 10 वर्षों में हिंदी बोलने वालों की संख्या असम में 5.88% से 6.7% तक पहुँची। इससे यह प्रमाणित होता है कि हिंदी असम में धीरे-धीरे विकासशील अवस्था में है।

पूर्वोत्तर के असम और अरुणाचल को छोड़कर शेष छह राज्यों में हिंदी की वर्तमान स्थिति दयनीय है। इन राज्यों के अधिकतर लोग अपनी जनजातीय बोलियों तथा भाषाओं का ही प्रयोग करते हैं, लेकिन इनके सरकारी कार्यालयों की भाषा अंग्रेज़ी है। इन राज्यों में केवल यहाँ बसे प्रवासी भारतीय लोगों द्वारा ही हिंदी का सामान्य प्रयोग होता है, जो आपस में बातचीत के दौरान होता है। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि यहाँ पर हिंदी की वास्तविक स्थिति अभी भी शोचनीय है। इन क्षेत्रों में हिंदी के विकास के लिए कठोर प्रयास करना आवश्यक है।

1. **शिक्षा-व्यवस्था में हिंदी :**

असम एक हिंदीतर क्षेत्र है। इसलिए यहाँ के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा अपनी मातृभाषा के साथ-साथ अंग्रेज़ी में देने का प्रावधान है। किंतु हिंदी हमारी राजभाषा होने के कारण इसे यहाँ के विद्यालयों में कहीं वैकल्पिक तो कहीं अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। हिंदी को अपनाने के दृढ़ संकल्प के अभाव में यहाँ के बच्चों की विचारधाराओं पर इसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता।

असम के विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षकों की कमी अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। अब यहाँ के अनेक युवा हिंदी पढ़ना एवं पढ़ाना चाहते हैं। आज अनेक कारणों से इनमें हिंदी के प्रति रुचि बढ़ी है और इनकी रुचि बढ़ाने में सरकार ने भी अपना संपूर्ण सहयोग दिया है। एक अहिंदी प्रांत में हिंदी शिक्षण के लिए उपयुक्त संसाधनों को इकट्ठा करना कोई आसान काम नहीं है। आज संपूर्ण असम प्रांत में 42000 सरकारी विद्यालय तथा उनमें 192 से भी अधिक हिंदी माध्यम के विद्यालय प्रचलन में हैं।

लगभग 50 वर्ष पूर्व असम के कुछ गुवाहाटी विश्वविद्यालय, असम विश्वविद्यालय, सिलचर विश्वविद्यालय, तेजपुर विश्वविद्यालय, कॉटन विश्वविद्यालय तथा नगांव महाविद्यालय आदि को छोड़ अन्य महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग नाम से कोई स्वतंत्र विभाग नहीं था। किंतु 2015-2016 के बाद से असम के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की तस्वीरें बदली हैं। आज यहाँ के अनेक महाविद्यालय में एक स्वतंत्र हिंदी विभाग देखा जा सकता है, जिनमें तिनसुकिया महाविद्यालय, महिला महाविद्यालय आदि प्रमुख हैं। पूर्वोत्तर में हिंदी की उच्च शिक्षा के लिए ऐसे प्रयास सराहनीय हैं।

2. **संपर्क भाषा के रूप में हिंदी :**

असम की मनोरम प्राकृतिक आभा एवं सादगीपूर्ण जीवन सभी को अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेता है। असम का इतिहास विविध जातियों एवं जनजातियों के आगमन का इतिहास है। असम आर्य, तिब्बती, बर्मी और ऑस्ट्रो एशियाई संस्कृति के लोगों के आवागमन का एक सच्चा दस्तावेज़ है। इस प्रांत में लोगों के आवागमन की घटना कोई नवीन बात नहीं है। भारत के कोने-कोने से अनेक लोग अपने विविध उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यहाँ आते हैं,

जिनमें शिक्षा, व्यापार, रोज़गार आदि उद्देश्य प्रमुख हैं।

असम में वर्तमान प्रवासी हिंदी भाषी लोगों में अधिकतर श्रमिक वर्ग ही है। ये सभी भारतवर्ष के अन्य राज्यों से रोज़गार की तलाश में यहाँ आते हैं, जिनमें बंगाल और बिहार राज्यों के मज़दूरों की संख्या अधिक होती है। मज़दूरी के उद्देश्य से आने के कारण इन्हें केवल अपनी देशीय हिंदी भाषा ही आती है। फिर भी वे अपनी हिंदी भाषा के सहारे धीरे-धीरे यहाँ निर्वाह करने लगते हैं और असमिया भाषा सीखने लगते हैं। इनके अतिरिक्त व्यापार से जुड़े लोग भी हिंदी का प्रयोग यहाँ प्रचुर मात्रा में करते हैं। असम में भले ही हिंदी लेखनी का अधिक प्रयोग न होता हो, फिर भी आम बोलचाल में इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि हिंदी असम की असमिया तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के बीच एक सेतु का काम करती है।

3. **असम के साहित्य में हिंदी :**

एक समय असम में हिंदी भाषा और साहित्य के शिक्षण के लिए उपयुक्त संसाधनों का अभाव था। प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तरों पर हिंदी की मौलिक पुस्तकों का मिलना असंभव-सा था। किंतु आज असम प्रांत में प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा हेतु हिंदी की आवश्यक पाठ्य-सामग्री बाज़ार में सुलभ हैं। आज बाज़ार में हिंदी भाषा की अनेक पुस्तकों के साथ-साथ असम के शिक्षकों एवं प्राध्यापकों द्वारा लिखी गयी अनेक मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। असमिया भाषा की अनेक लोकप्रिय पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद कर हिंदी भाषी पाठकों को असमिया भाषा, साहित्य और संस्कृति से परिचित होने का मौका दिया जा रहा है। इन कार्यों से दोनों भाषाओं के बीच एक सेतु का निर्माण हुआ है। इसी संदर्भ में डॉ. गार्गीशरण मिश्र जी ने कहा था : "यहाँ के श्रेष्ठ साहित्यकार श्री शंकरदेव, माधवदेव और उनके अनुयायियों ने मैथिली, ब्रज, असमिया मिश्रित 'ब्रजबुली' भाषा में अनेक गीतों और नाटकों का सृजन किया। इससे असमिया और हिंदी के बीच सेतु बना और दोनों भाषाएँ एक-दूसरे के नज़दीक आईं तथा दोनों के बीच अनुवाद का व्यापक सिलसिला प्रारम्भ हुआ।"

इसी प्रकार आज भी असम में दोनों भाषाओं में अनुवाद का कार्य बड़े ही ज़ोरों से चल रहा है। दोनों भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों का अनुवाद कर दोनों के साहित्य को समृद्ध करना मानो इन अनुवादकों का उद्देश्य रहा है। इसी संदर्भ में डॉ. गार्गीशरण मिश्र बताते है कि असम के कृष्णनाथ शर्मा द्वारा 'हिंदी रामायण' का असमिया में अनुवाद हुआ। यज्ञराम खारघरिया फुकन जी द्वारा 'हिंदी-असमिया कोश तैयार किया गया। डॉ. बिरंचि कुमार बरुवा द्वारा 'लक्ष्मी नारायण सुधांशु के 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' का अनुवाद हुआ। हरीनारायण दत्त बरुवा द्वारा वैष्णव ग्रन्थ 'चित्र भागवत' का असमिया में अनुवाद हुआ। कल नारायण देव तथा चक्रेश्वर भट्टाचार्य द्वारा हिंदी से असमिया और असमिया से हिंदी में अनेक कहानियों का अनुवाद किया गया तथा नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा हेम बरुवाजी के असमिया साहित्य का हिंदी अनुवाद और रजनीकान्त बरदले के उपन्यास 'मिरी जियरी का हिंदी अनुवाद किया गया।

4. **राजभाषा के रूप में हिंदी :**

भारत सरकार ने 14 सितंबर 1949 को संविधान के 343-351 अनुच्छेद के तहत हिंदी को सरकारी कार्यालयों की भाषा के तौर पर स्वीकार करते हुए इसे राजभाषा का दर्जा दिया। यह निर्णय संपूर्ण भारतवर्ष के लिए था। किंतु इतना होने पर भी पूर्वोत्तर के किसी भी क्षेत्र में सरकारी कार्यालयों की भाषा हिंदी नहीं है। यहाँ के लोग या तो अपने क्षेत्रीय भाषा में कार्य करते हैं या फिर अंग्रेज़ी में। वे हिंदी में बात करना पसंद करते हैं, किंतु व्यवहारिक तौर पर उसकी अवहेलना करते हैं। इसके लिए हमें स्वयं ज़िम्मेदारी उठानी होगी और उन्हें हिंदी लिखने की सही जानकारी देनी होगी। तब जाकर कहीं वे इस दिशा में अपनी रुचि प्रकट कर सकेंगे। पूर्वोत्तर के असमिया, बोडो और संथाली भाषाओं को संविधान में जगह मिली है, जो पूर्वोत्तर के लिए गौरव की बात है, लेकिन हिंदी के लिए अभी भी प्रयास करना ज़रूरी है।

5. **मीडिया में हिंदी :**

असम में दैनंदिन हिंदी की लोकप्रियता क्रमशः बढ़ती जा रही है। इस लोकप्रियता के कारण मीडिया में हिंदी की माँग बढ़ी है, चाहे वह प्रिंट, डिजिटल या फिर सामाजिक मीडिया ही। असम की प्रिंट मीडिया के अंतर्गत समाचार-पत्र, जर्नल, मैगज़ीन आदि प्रमुख हैं। दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक आदि हर दिन सैकड़ों की संख्या में समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। इनमें कुछ प्रमुख

समाचार-पत्र इस प्रकार हैं - पूर्वांचल प्रहरी, सेंटिनल, पूर्वोदय, खबर आदि। ये पत्र-पत्रिकाएँ दैनिक समाचार देने के अतिरिक्त हिंदी के विकास में अहम भूमिका अदा कर रही हैं। इसी संदर्भ में डॉ. गार्गीशरण मिश्र कहते हैं कि "असम की डिब्रूगढ़ से प्रकाशित पहला साप्ताहिक 'नव जागृति' और गुवाहाटी से प्रकाशित 'अकेला' साप्ताहिक ने भी हिंदी के प्रसार-प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।"

6. **व्यापार एवं रोज़गार में हिंदी :**

असम अपनी प्राकृतिक संपदाओं के लिए हमेशा से विख्यात रहा है। इसलिए भारत के अन्य प्रांतों के लोग यहाँ कारोबार एवं रोज़गार के सिलसिले में आते हैं। यहाँ व्यावसायिक कारोबार एवं लेन-देन हिंदी में ही होता है। क्योंकि भारत के कोने-कोने से आने वाले लोगों के लिए हिंदी ही एकमात्र सरल भाषा होती है, जिससे उन्हें व्यापार में अपनेपन का अहसास होता है तथा इनके रिश्ते सुदृढ़ होते हैं।

रोज़गार के लिए हिंदी भाषा एक वरदान स्वरूप है। हिंदी भाषा के माध्यम से आधुनिक समय में अनेक कार्य किये जा सकते हैं। जैसे, पटकथा-लेखक, नाटककार, गीतकार, शिक्षक, साहित्यकार, अनुवादक आदि हिंदी से जुड़े प्रमुख रोज़गार हैं। ये रोज़गार केवल असम में ही नहीं, अपितु हिंदी प्रेमी कहीं से भी कर सकते हैं। इनके अलावा असम में मेहनत करने वाले अधिकतर श्रमिक जिनमें मिस्त्री, व्यापारी, कुली, रिक्शा तथा ठेला चालक आदि भी हिंदी भाषा के माध्यम से अपने भूखे पेट को भरते हैं।

असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था :

किसी भी भाषा को सुदृढ़ एवं सशक्त उसके प्रयोगकर्ता ही बनाते हैं। जितने उसके प्रयोग करने वाले होंगे उतनी ही उस भाषा की गरिमा बढ़ती जाती है। हिंदी हमारी अपनी भाषा है, जिसके सहारे महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता का सपना देखा था। लेकिन दुर्भाग्यवश आज भी कहीं-कहीं हिंदी अपने अस्तित्व के लिए जूझती हुई दिखाई देती है। असम इन्हीं क्षेत्रों में से एक है, लेकिन खुशी की बात है कि असम में हिंदी के प्रचार का जिम्मा कुछ सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों ने अपने कंधों पर लिया है; जिनमें असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नराकास, केंद्रीय हिंदी संस्थान, शब्द भारती आदि प्रमुख रूप से सक्रिय हैं।

असम में, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की महत्ता सर्वाधिक है। इसकी स्थापना 1938 में हुई थी। यह संगठन प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक के पाठकों के लिए हिंदी की लगभग 80 प्रतिशत पुस्तकें स्वयं प्रकाशित कराती है। यहाँ तक कि समस्त पूर्वोत्तर के राज्यों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का दायित्व सरकार ने इसी संस्था पर दे रखा है। इसलिए पूर्वोत्तर में हिंदी से उच्च शिक्षा की अभिलाषा रखने वाले छात्रों के लिए यह संस्था सभी संसाधनों का प्रबंध करती है तथा परीक्षण की व्यवस्था करते हुए, उन्हें प्रमाण-पत्र प्रदान करती है। असम सरकार ने हिंदी पाठ्यक्रम के मुद्रण, प्रकाशन और वितरण का काम इसी समिति को सौंपा था। इस दायित्व को यह बखूबी निभा रही है। इसी संस्था की अन्यतम उपलब्धि में संस्था द्वारा प्रकाशित 'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' नामक पत्रिका है, जो 1951 से क्रमशः प्रकाशित होती आ रही है।

नराकास असम में हिंदी का कार्यान्वयन करने का कार्य संभालता है। सरकारी कार्यालयों में हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता पैदा करना तथा इसका प्रचार करने हेतु उपयुक्त सुझाव देना इसका प्रमुख उद्देश्य है।

केन्द्रीय हिंदी संस्थान असम में केन्द्रीय सरकार की एक प्रतिनिधि कार्यालय है। इसके आगरा स्थित मुख्यालय में हिंदी में बी.एड की शिक्षा दी जाती है, जिससे पाठक आगे चलकर किसी विद्यालय में अध्यापन का कार्य कर अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर संगोष्ठी, कार्यशाला आदि के द्वारा केंद्रीय तथा राज्य सरकार के कर्मचारियों को हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता पैदा करना इस संस्था का मूल उद्देश्य रहा है।

शब्द भारती असम के विविध प्रांतों में व्याप्त एक गैर-सरकारी संगठन है। इस संगठन के द्वारा पाठकों को हिंदी-अंग्रेज़ी अनुवाद का प्रशिक्षण दिया जाता है। पाठकों को हिंदी के व्यावहारिक पक्ष तथा रोज़गार व प्रयोजनमूलक हिंदी से परिचित कराना इस संगठन का मूल उद्देश्य रहा है।

उपरोक्त संस्थानों के अतिरिक्त अनेक संस्थाएँ, समितियाँ आदि भी असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयासरत हैं।

हिंदी की प्रासंगिकता व भविष्य :

पूर्वोत्तर प्रांत में हिंदी की वर्तमान स्थिति भले ही शिथिल हो,

किंतु भविष्य में इसकी स्थिति अवश्य सुदृढ़ होगी। पूर्वोत्तर में हिंदी भाषा के विकास का इतिहास कोई आज की बात नहीं है। समय-समय पर किए गए प्रयासों में 1927 में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना तथा 1953 में पूर्वोत्तर के मणिपुर में 'मणिपुर हिंदी परिषद्' का गठन तथा 1972 में नागालैंड में 'केंद्रीय हिंदी संस्थान' के अधीनस्थ हिंदी कार्यशाला का आयोजन, 1973 में मेघालय में 'हिंदी संस्थान शिलांग केन्द्र' की स्थापना तथा 1956 में अरुणाचल में केंद्र सरकार द्वारा सभी स्कूलों में हिंदी को अनिवार्य विषय करना आदि कुछ सराहनीय कार्य हैं। सिक्किम राज्य में भी आज अनेक साहित्यकार हिंदी भाषा में साहित्य-सृजन कर रहे हैं। इनके एक नाटककार 'सुवास दीपक' की 'बढ़ती बीस कदम' नामक नाटक सिक्किम का प्रथम हिंदी नाटक है। इसके अतिरिक्त आज पूर्वोत्तर के हिंदी सेवकों में लाइयुम ललित माधव शर्मा, अरब घनश्याम शर्मा, नंदलाल शर्मा, नवीन चंद्र शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अपनी सहज सरल गुणों से हिंदी आज पूर्वोत्तर में अपने पाँव पसारते हुए अपनी स्थिति मज़बूत कर रही है।

हिंदी भाषा की माँग आज दैनिक जीवन में काफ़ी तेज़ी से बढ़ रही है। आज हिंदी की सबसे बड़ी ताकत यह है कि वैश्वीकरण के दौर में हिंदी भाषा इंटरनेट की भाषा बन चुकी है। भारत सरकार की 'डिजिटल इंडिया' मुहिम के तहत अब देश में सभी सरकारी कार्यालयों के काम-काज के अतिरिक्त खेल, शिक्षा, व्यापार, रोज़गार या फिर मनोरंजन जगत की खबरें आदि इंटरनेट के ज़रिए घर बैठे ही पाई जा सकती हैं। इसलिए अब लोग इंटरनेट पर निर्भर होते जा रहे हैं। "भारत में पिछले वर्ष इंटरनेट इस्तेमाल करने वालों की संख्या 62.2 करोड़ थी, आज वह बढ़कर 80 करोड़ तक पहुँच गई है और एक सर्वे के अनुसार 2025 तक आते-आते भारत में कुल सक्रिय इंटरनेट की आबादी के 90 करोड़ तक पहुँचने की संभावना है।" यह संख्या क्रमशः बढ़ती ही जाएगी। किंतु ज़रूरी बात यह है कि भारत में इंटरनेट की सभी सुविधाएँ विशेषकर हिंदी व अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में ही उपलब्ध हैं। हालाँकि कुछ क्षेत्रीय भाषाएँ भी इसमें उपलब्ध हैं, किंतु अधिकतर वेबसाइट हिंदी व अंग्रेज़ी में ही सक्रिय हैं। यही कारण है कि अब चाहे भारत में रहने वाला किसी भी प्रांत का हो, हिंदी भाषी क्षेत्रों से या फिर अहिंदी भाषी क्षेत्रों से, उसे इंटरनेट का भरपूर इस्तेमाल करना है। यदि इस पर काम करना है अथवा इसका मज़ा उठाना है, तो उसे कम-से-कम प्राथमिक दर्जे की हिंदी आना आवश्यक है। इस कार्य से अब हिंदी सीखने वालों की तथा प्रयोग करने वालों की संख्या में बढ़ोतरी होगी। अतः अब वह दिन दूर नहीं जब भारत की सबसे लोकप्रिय भाषा हिंदी दुनिया में एकछत्र राज करेगी।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. मनोहर पुरी, (प्र. सं.) (2015), स्मारिका (10वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन), विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली
2. सोर्स टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 5 सितंबर 2022
3. शइकिया, डॉ. क्षीरदा कुमार (2015), द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी
4. रिपोर्ट (india.com)

kusumkunja@gmail.com

हिंदी में प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी शब्दों के दुहरे रूप

सीताराम गुप्ता
दिल्ली, भारत

अपने गज़ल-संग्रह 'साये में धूप' की भूमिका में दुष्यन्त कुमार लिखते हैं कि गज़लों को भूमिका की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए, लेकिन एक कैफ़ियत इनकी भाषा के बारे में ज़रूरी है। कुछ उर्दूदाँ दोस्तों ने कुछ उर्दू शब्दों के प्रयोग पर एतराज़ किया है। उनका कहना है कि शब्द 'शहर' नहीं 'शह्र' होता है, 'वज़न' नहीं 'वज़्न' होता है। दुष्यन्त कुमार आगे लिखते हैं कि मैं उर्दू नहीं जानता, लेकिन इन शब्दों का प्रयोग यहाँ अज्ञानतावश नहीं, जान-बूझकर किया गया है। यह कोई मुश्किल काम नहीं था कि 'शहर' की जगह 'नगर' लिखकर इस दोष से मुक्ति पा लूँ, किंतु मैंने उर्दू शब्दों को उस रूप में इस्तेमाल किया है, जिस रूप में वे हिंदी में घुल-मिल गए हैं। उर्दू का 'शह्र' हिंदी में शहर लिखा और बोला जाता है, ठीक उसी तरह जैसे हिंदी का 'ब्राह्मण' उर्दू में 'बिरहमन' हो गया है और 'ऋतु' 'रुत' हो गई है। दुष्यन्त कुमार कहते हैं कि उर्दू और हिंदी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती है, तब उसमें फ़र्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। इसलिए ये गज़लें उस भाषा में कही गई हैं, जिसे मैं बोलता हूँ।

शब्दों की संख्या की दृष्टि से हिंदी एक अत्यंत समृद्ध भाषा है। हिंदी की एक विशेषता यह भी है कि इसमें सर्वाधिक पर्यायवाची शब्द मिलते हैं, क्योंकि हिंदी की जननी संस्कृत है। अतः हम संस्कृत के मूल अथवा तत्सम शब्दों का प्रयोग तो करते ही हैं, साथ ही उसके परिवर्तित रूपों अर्थात् तद्भव शब्दों का प्रयोग भी करते हैं। इसके अतिरिक्त, हिंदी के अपने देशज शब्द तो हैं ही और हिंदी में दूसरी भाषाओं के शब्द अथवा विदेशी शब्द भी कम नहीं हैं। अंग्रेज़ी व अरबी-फ़ारसी के हज़ारों शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में ऐसे घुलमिल गए हैं कि वे पराए लगते ही नहीं। यह हिंदी की शब्द-संपदा के लिए अच्छी बात है, लेकिन हिंदी में ऐसे अनेक शब्द भी हैं, जिनके दो या अधिक रूप प्रचलित हैं। इन प्रचलित रूपों में से कौन-सा रूप शुद्ध है व कौन-सा अशुद्ध है और क्यों शुद्ध अथवा अशुद्ध है, इन बातों को लेकर भी कम विवाद उत्पन्न नहीं होते हैं।

ऐसे शब्द जिनके दो या अधिक रूप प्रचलित हैं, कुछ तद्भव शब्द भी हैं, जैसे हरिद्रा से हलदी व हल्दी, मृत्तिका से मिट्टी व माटी (कई लोग मट्टी भी बोलते हैं), वर्षा से बर्खा व बरखा, गृध से गीध व गिद्ध, द्विगुण से दूना, दुगुना या दोगुना आदि, लेकिन ऐसे अधिकांश शब्द हिंदी में उर्दू से आए हुए फ़ारसी व अरबी के विदेशी शब्द हैं, जो विवाद उत्पन्न करते हैं। ऐसा ही एक शब्द है - 'ज़बान'। हिंदी में कुछ लोग इसे 'ज़बान' बोलते हैं तो कुछ लोग 'ज़ुबान' बोलते हैं। इसके दो अन्य रूप 'ज़बाँ' व 'ज़ुबाँ' भी प्रयोग में लाए जाते हैं। इस प्रकार के कई शब्दों में से कौन-सा रूप शुद्ध है, जिसे प्रयोग करना चाहिए, इस पर विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ऐसा क्यों होता है? अर्थात् कुछ मिलते-जुलते शब्दों के दो-दो या अधिक रूप क्यों प्रचलन में आ जाते हैं? इसमें संदेह नहीं कि अज्ञानता के कारण ही बहुत-से शब्दों को गलत लिखा या बोला जाता है, लेकिन इसके और भी कई कारण होते हैं।

हम किसी भी शब्द का उच्चारण या तो दूसरों से सुनकर करते हैं अथवा पढ़कर करते हैं। यदि हम सुनने या पढ़ने में गलती कर देते हैं, तो इससे हमारा उच्चारण अथवा वर्तनी निश्चित रूप से प्रभावित होने की संभावना बनी रहती है। यदि स्पष्ट न बोला अथवा लिखा जाए, तो भी गलती होने की संभावना बढ़ जाती है। यदि लिपि में ही पूर्ण स्पष्टता न हो, तो भी गलती होना स्वाभाविक है। उर्दू भाषा को लिखने के लिए जो अरबी-फ़ारसी रस्मुलख़त अथवा लिपि प्रयोग में लाई जाती है, उसमें भी उपर्युक्त प्रकार की त्रुटियों के होने की संभावना अत्यधिक रहती है। उर्दू भाषा के लिए प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी लिपि में प्रायः ह्रस्व 'इ' व ह्रस्व 'उ' के लिए मात्रा चिह्न नहीं लगाए जाते, इसलिए इसे पढ़ने वाले गलती कर बैठते हैं और इससे भी शब्दों के एक से अधिक रूप मौखिक ही नहीं लिखित रूप में भी प्रचलन में आ जाते हैं, जैसे 'चराग़' व 'चिराग़', 'फ़ज़ा' व 'फ़िज़ा', 'ख़ज़ाँ' व 'ख़िज़ाँ', 'ख़ज़ाना' व 'ख़िज़ाना' आदि।

उर्दू लिपि की इसी विशेषता के कारण कई बार ह्रस्व 'इ' अथवा ह्रस्व 'उ' का लोप भी देखने को मिलता है, जैसे 'शिगूफ़ा' व 'शगूफ़ा', 'क़ियामत' व 'क़यामत', 'क़ितार' व 'क़तार', 'क़ियाम' व 'क़याम', 'फ़ुज़ूल' व 'फ़ज़ूल' आदि। कई लोग 'फ़िज़ूल' भी इस्तेमाल करते हैं। कई लोग तो 'फ़ज़ूल' व 'फ़िज़ूल' में बेवजह बे उपसर्ग लगाकर 'बेफ़ज़ूल' व 'बेफ़िज़ूल' तक बना देते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि एक मात्रा का लोप हो जाता है और उसकी जगह दूसरी

मात्रा लगा दी जाती है, जैसे 'गिरोह'। इस शब्द का मूल अथवा शुद्ध रूप 'गुरोह' है, लेकिन गुरोह में 'ग' पर लगे ह्रस्व 'उ' की मात्रा का लोप होने के साथ-साथ, इसमें ह्रस्व 'इ' की मात्रा भी जुड़ गई और 'गुरोह' का 'गिरोह' बन गया। अब हिंदी में 'गिरोह' शब्द इतना प्रचलित हो चुका है कि 'गुरोह' का मूल अथवा शुद्ध रूप लिखना या बोलना असंभव ही नहीं, अपितु गलत-सा ही प्रतीत होगा।

शाहजहाँ का एक बेटा था दारा शिकोह, लेकिन अनेक स्थानों पर उसका नाम दारा शुकोह भी मिलता है। दारा शिकोह अथवा दारा शुकोह का नाम लेते ही कश्मीर घाटी के श्रीनगर में स्थित परी महल की याद आ जाती है, जो एक कई मंजिला खूबसूरत बाग है। शाहजहाँ की पत्नी मुमताज के पिता आसफ़ ख़ान द्वारा निर्मित निशात बाग भी बहुत ही सुंदर है। 'निशात' लफ़्ज़ का अर्थ है – 'खुशी'। निशात बाग को देखकर लोग खुशी के मारे झूम उठते हैं, लेकिन कम लोग ही जानते हैं कि सही लफ़्ज़ 'निशात' नहीं 'नशात' है। निशात की तरह ही 'निशान' अथवा 'निशाँ' का सही रूप भी 'नशान' है। साथ ही, आसफ़ लफ़्ज़ पर भी विचार कर लेते हैं। जिस आसफ़ ख़ान ने निशात बाग लगवाया था, उसका मक़बरा लाहौर में स्थित है, लेकिन वहाँ उसे आसफ़ ख़ान का मक़बरा न कहकर आसिफ़ ख़ान का मक़बरा कहा जाता है। इससे तो यही पता चलता है कि किसी शख़्स के नाम के भी दो रूप प्रचलित हो सकते हैं।

ऐसा ही एक शब्द है – 'गिरेबान', लेकिन उर्दू में यह 'गिरीबान' ही है, जिसे 'गिरीबाँ' भी लिखा जाता है। अब 'र' पर दीर्घ 'ई' की मात्रा 'ए' की मात्रा में कैसे परिवर्तित हो गई? यह भी लिपि के कारण ही हुआ है। उर्दू में दीर्घ ई, ए व ऐ की मात्राएँ समान होती हैं। इसलिए आप इसे 'गिरेबान' व 'गिरीबान' ही नहीं, 'गरेबान' अथवा 'गरीबान' भी पढ़ सकते हैं और जो जैसा पढ़ेगा, वह वैसा ही उच्चारण भी करेगा, इसमें संदेह नहीं। 'गिरेबान' अथवा 'गिरीबान' के 'गरेबान' व 'गरीबान' दो अन्य रूप मिलने का कारण है; 'ग' पर लगी ह्रस्व 'इ' की मात्रा का लोप। यही कारण है कि उर्दू में 'मील', 'मेल' अथवा 'मैल' एक ही तरह से लिखा जाता है। इसी तरह से उर्दू में दीर्घ 'ऊ', 'ओ' व 'औ' की मात्राएँ भी समान होती हैं, जिससे यह पता लगाना मुश्किल होता है कि 'रूम' लिखा है या 'रोम' लिखा है अथवा 'सूम' लिखा है या 'सोम' लिखा है। इसी प्रकार से 'चूर' व 'चोर', 'बूर' व 'बौर', 'दूर' व 'दौर' अथवा 'तूल' व 'तौल' को सही-सही पढ़ना मुश्किल हो जाता है, जिससे बोलने व पुनः लिखने में गलती होने की संभावना बनी रहती है।

एक और इत्तिफ़ाक अथवा संयोग देखिए। उर्दू लफ़्ज़ 'इत्तिफ़ाक़' को भी हिंदी में आमतौर पर 'इत्तफ़ाक़' ही बोला और लिखा जाता है। ह्रस्व 'इ' की मात्रा का लोप शब्द के प्रारंभ में ही नहीं मध्य में भी हो जाता है। इस पैटर्न के शब्दों की सूची काफ़ी विस्तृत है। उर्दू अल्फ़ाज़ 'इंतिकाम', 'इंतिक़ाल', 'इंतिख़ाब', 'इंतिज़ाम', 'इंतिज़ार' आदि भी हिंदी में 'इंतकाम', 'इंतक़ाल', 'इंतख़ाब', 'इंतज़ाम' व 'इंतज़ार' हो गए हैं। अब जो लोग उर्दू भी जानते हैं अथवा इन शब्दों के मूल रूपों से परिचित हैं, वे 'इत्तिफ़ाक़', 'इंतिकाम', 'इंतिक़ाल', 'इंतिख़ाब', 'इंतिज़ाम' अथवा 'इंतिज़ार' ही लिखते-बोलते हैं और यही कारण है कि इनके दोनों रूप प्रचलन में आ चुके हैं। आप कह सकते हैं कि भई ये तो इंतिहा हो गई। अब इस लफ़्ज़ 'इंतिहा' के भी दो रूप प्रचलित हो चुके हैं, क्योंकि हिंदी में इसे प्रायः 'इंतहा' ही लिखा और बोला जाता है।

यही कारण है कि उर्दू में 'दल' व 'दिल', 'बल' व 'बिल', 'पता' व 'पिता', 'नशा' व 'निशा', 'बताया' व 'बिताया', 'कल' व 'कुल', 'पल' व 'पुल', 'धन' व 'धुन', 'मल' व 'मिल', 'हल' व 'हिल', 'मलाई' व 'मिलाई', 'भलाई' व 'भिलाई', 'सलाई' व 'सिलाई' जैसे शब्दों को पढ़ने में गलती हो सकती है। यहाँ हमने दो शब्दों 'नशा' व 'निशा' पर चर्चा की। 'नशा' अरबी भाषा का शब्द है, जिसका मूल रूप 'नश्शा' है। हिंदी में 'नशा' बोलते हैं, लेकिन उर्दू में 'नशा' व 'नश्शा' दोनों ही रूप चलते हैं। उर्दू में पूरे वाक्य को पढ़े बिना ऐसे शब्दों को ठीक से पढ़ना संभव ही नहीं हो सकता। हिंदी में ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनके अंत में ह्रस्व 'इ' व ह्रस्व 'उ' लगते हैं। जैसे – 'रवि', 'कवि', 'गति', 'पति', 'रति', 'छवि', 'शशि', 'मुनि', 'नीति', 'बुद्धि', 'सिद्धि', 'ध्वनि', 'रश्मि', 'मूर्ति', 'गुरु', 'मनु', 'साधु', 'अश्रु', 'प्रभु', 'भानु', 'बिंदु', 'सिंधु', 'वस्तु', 'ऋतु', 'धातु' आदि। उर्दू में ह्रस्व 'इ' व ह्रस्व 'उ' की मात्रा के अभाव में इन्हें ठीक-ठीक लिखना संभव ही नहीं। उर्दू में एक शब्द है - 'बहार'। इसे 'बहार', 'बिहार' अथवा 'बुहार' तीनों ही तरह से पढ़ा जा सकता है। 'बिहारी' को 'बुहारी' व 'बुहारी' को 'बिहारी' पढ़ सकते हैं।

कुछ व्यक्ति उपर्युक्त तथ्य पर आपत्ति कर सकते हैं, जो ठीक भी है। उर्दू लिपि में कुछ ऐसे चिह्न हैं जिन्हें ह्रस्व 'इ' व ह्रस्व 'उ' के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि इनका प्रयोग किया ही नहीं जाता। लिपि अथवा लिखने की असुविधा के कारण उर्दू में इस प्रकार के शब्दों को लिखने का चलन ही कम है, जिनके अंत में ह्रस्व 'इ' व ह्रस्व 'उ' की मात्रा लगती है। उर्दू में हिंदी के देशज शब्दों के साथ-साथ अवधी व ब्रजभाषा आदि के शब्दों का खूब इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन

तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है। उर्दू में या तो 'मूर्ति' के लिए 'मूरत', 'ऋतु' के लिए 'रुत' जैसे शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं या फिर इनके उर्दू पर्यायवाची इस्तेमाल किए जाते हैं। अब 'रश्मि' शब्द को ही लीजिए। इसके लिए उर्दू वाले या तो 'किरन' शब्द प्रयोग में लाते हैं या फिर 'शुआअ' व 'शुआएँ' (बहुवचन रूप) अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल करते हैं।

यहाँ एक समस्या और उत्पन्न हो जाती है। व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों को तो नहीं बदला जा सकता। किसी के नाम का किसी दूसरी भाषा में कैसे अनुवाद किया जा सकता है? यदि किसी व्यक्ति का नाम इकारांत अथवा उकारांत है, तो उसे कैसे लिखें? ऐसे में उर्दू में ह्रस्व 'इ' के स्थान पर दीर्घ 'ई' व ह्रस्व 'उ' के स्थान पर दीर्घ 'ऊ' का प्रयोग किया जाता है, जिससे 'रवी', 'कवी', 'गती', 'पती', 'छवी', 'शशी', 'जाती', 'नीती', 'रश्मी', 'गुरू', 'मनू', 'भानू' आदि लिखने के लिए बाध्य होना पड़ता है। वर्तमान पंजाबी भाषा में भी अंत में ह्रस्व 'इ' व ह्रस्व 'उ' की मात्रा वाले शब्द बहुत कम हैं। यद्यपि पंजाबी में ह्रस्व 'इ' व ह्रस्व 'उ' की मात्रा का खूब इस्तेमाल होता है, लेकिन वर्तमान पंजाबी भाषा में इकारांत व उकारांत शब्दों को ईकारांत व ऊकारांत बना दिया गया है।

कई बार किसी शब्द के दोनों ही रूप अत्यधिक प्रचलित हो जाते हैं। अतः ऐसे में दोनों रूपों को ही ठीक मान लिया जाता है, जैसे 'ज़बान' व 'ज़ुबान'। कई बार जिन शब्दों के जो रूप अत्यधिक प्रचलित हो जाते हैं, उन्हें पूरी तरह से ख़ारिज करना असंभव हो जाता है। वैसे भी भाषा का विकास प्रयोग के आधार पर जनसाधारण द्वारा ही स्वाभाविक रूप से होता है, न कि वैयाकरणों अथवा भाषावैज्ञानिकों द्वारा। किसी भी भाषा में दूसरी किसी भाषा से आए हुए शब्दों का थोड़ा-बहुत बदल जाना भी अस्वाभाविक नहीं होता। फ़ारसी का एक लफ़्ज़ है – 'गिरिफ़्तार'। हिंदी में यह 'गिरफ़्तार' हो गया है। शब्द अपना करिश्मा दिखलाते रहते हैं। हिंदी में जो 'करिश्मा' शब्द है, वह भी फ़ारसी से ही आया है, लेकिन फ़ारसी में यह शब्द 'किरिश्मा' है।

हाँ, हिंदी ही नहीं किसी भी भाषा में जिन शब्दों के रूप निश्चित हैं, उनके लिए प्रचलित अथवा मानक वर्तनी का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। बेशक किसी शब्द की वर्तनी कितनी ही कठिन क्यों न हो, उसे शुद्ध रूप में लिखना अनिवार्य है। किसी नियम की जानकारी के अभाव में भी हमें किसी शब्द की गलत वर्तनी लिखने अथवा अनुपयुक्त प्रयोग करने का अधिकार नहीं मिल जाता। साथ ही, किसी भी संदर्भ में केवल उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करना भी अनिवार्य है। सादृश्यता के कारण मनमाने शब्दों का प्रयोग भी अर्थ का अनर्थ कर देता है। उर्दू का एक शब्द है - 'ज़रूरत'। कई लोग 'ज़रूरत' को 'ज़ुअत' अथवा 'ज़ुर्रत' बोलते हैं, जो एकदम गलत है। इन दोनों शब्दों के अर्थ में पर्याप्त अंतर है। सही शब्द 'ज़ुअत' है, 'ज़ुर्रत' नहीं, जिसका अर्थ है साहस, हिम्मत, उत्साह अथवा धृष्टता या दुस्साहस, जबकि 'ज़रूरत' का अर्थ है - 'आवश्यकता'।

शब्दों के सही अर्थ न जानने से भी इस प्रकार की त्रुटियाँ अथवा अशुद्धियाँ होना आम बात है, इसलिए शब्दों की सही वर्तनी के साथ-साथ शब्दों के सही अर्थ भी जानने का प्रयास करना चाहिए। हिंदी में जिन दूसरी भाषाओं के शब्द सम्मिलित हो गए हैं, कुछ लोग उन भाषाओं को जानते हैं और तर्क देते हैं कि मूल भाषा में अमुक शब्द की अमुक वर्तनी अथवा अमुक अर्थ है, इसलिए हिंदी में भी उसे वैसे ही लिखा या समझा जाना चाहिए, लेकिन यह बात किसी भी तरह से ठीक नहीं लगती। हिंदी में स्वयं अनेक तत्सम शब्दों के अर्थ बदल चुके हैं। या तो उन शब्दों के अर्थों में संकुचन हो गया है या फिर विस्तार हो गया है। हम वर्तमान में शब्द की प्रचलित वर्तनी व अर्थ की उपेक्षा नहीं कर सकते।

हिंदी में अनेक देशज अथवा विदेशी शब्दों के भी दो-दो रूप प्रचलित हो चुके हैं। एक शब्द है - 'हलका' अर्थात् जो भारी न हो। इसको अधिकांश लोग 'हल्का' लिखते हैं। 'हलका' को 'हल्का' नहीं, 'हलका' ही लिखा जाना चाहिए। वास्तविकता यह है कि हम बेशक 'हलका' लिखें, लेकिन इसका उच्चारण 'हल्का' ही करते हैं। हम कहते हैं कि हिंदी में जैसा लिखा जाता है, वैसा ही बोला जाता है। इसका विपरीत भी उतना ही सही है, अर्थात् जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा भी जाता है। सच्चाई यह है कि हम सभी शब्दों को वैसा नहीं पढ़ते, जैसा लिखा होता है। साथ ही, हम जैसा बोलते हैं, वैसा ही लिखने का प्रयास भी करते हैं, जिससे शब्दों के परिवर्तित रूप भी चलन में आ जाते हैं। हम लिखते हैं 'हलदी', लेकिन बोलते हैं, 'हल्दी'। जब 'हलदी' को बार-बार 'हल्दी' बोलेंगे, तब एक दिन ऐसा भी आएगा कि हम 'हल्दी' ही लिखना भी शुरू कर देंगे।

हम 'कमल' लिखते हैं, लेकिन बोलते हैं 'कमल्'। 'कमला' या 'गमला' लिखते हैं, लेकिन बोलते हैं 'कम्ला' या 'गम्ला' ही। 'रजनी' लिखते हैं, लेकिन बोलते हैं 'रज्नी' ही। 'उपमा' अथवा 'सफलता' को भी 'उप्मा' अथवा 'सफल्ता' ही पढ़ते या बोलते हैं। यह कोई त्रुटि नहीं, अपितु स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसी स्वाभाविक प्रक्रिया के कारण हम गलत ठहरा दिए जाते हैं और यह भी अस्वाभाविक नहीं। गलती तो गलती है। हिंदी में अकारांत शब्दों के अंतिम अक्षर

के उच्चारण में संस्कृत की तरह पूरा बल नहीं दिया जाता, जिससे उच्चारण के स्तर पर अंतिम अक्षर व्यंजनांत हो जाता है। इसी प्रकार से शब्द के अंत में दीर्घ मात्रा लगी होने पर, उससे पूर्व के किसी अकारांत अक्षर पर कम बल लगने के कारण उच्चारण के स्तर पर वह अपना स्वर (अ) खो बैठता है। ऐसे शब्द अपवादस्वरूप गिने-चुने नहीं, अपितु बहुत अधिक संख्या में हैं।

एक लफ़्ज़ है – 'सुरूर'। 'सुरूर' अर्थात् 'नशा' अथवा 'हर्ष'। 'सुरूर' को भी हिंदी में कई लोग 'सरूर' लिखते हैं, जो अशुद्ध माना जाता है। ऐसे ही शब्द हैं, 'क़ुसूर' और 'ग़ुरूर', जिन्हें हिंदी में 'क़सूर' व 'ग़रूर' भी लिखा जाता है और गलत भी नहीं माना जाता। तात्पर्य यह है कि एक ही पैटर्न से बने या परिवर्तित हुए शब्दों में से कुछ को सही माना जाता है, तो कुछ को गलत माना जाता है। कुछ शब्दों के मूल रूप को सही की मान्यता मिल जाती है, तो कुछ शब्दों के परिवर्तित रूप को सही की मान्यता मिल पाती है, लेकिन कुछ शब्दों के दोनों रूपों को ही सही की मान्यता प्राप्त हो जाती है। ऐसे में सही शब्द के निर्धारण अथवा उसकी स्वीकृति के विषय में संदेह अथवा विवाद होना स्वाभाविक है, लेकिन किसी शब्द का किसी विशेष अर्थ अथवा भाव के लिए बार-बार प्रयोग किया जाना, इस चुनौती की स्वीकृति अथवा समाधान भी कहा जा सकता है।

उर्दू में 'ज़बान' या 'ज़ुबान' अथवा 'क़ुसूर' या 'क़सूर' एक ही तरह से लिखे जाते हैं। इसी प्रकार से 'शग़ल' अथवा 'शग़्ल' या फिर 'शुग़ल' अथवा 'शुग़्ल' इनमें क्या सही है, कहना मुश्किल होता है। हिंदी में प्रायः 'शग़ल' लिखते हैं, लेकिन उर्दू में 'शग़ल', 'शग़्ल', 'शुग़ल' अथवा 'शुग़्ल' सभी को ठीक मान लिया गया है। इसका एक रूप 'शुग़ुल' भी प्रचलन में है। सही पूछो तो एक लिखित भाषा होते हुए भी उर्दू का उच्चारण मौखिक परंपरा से ही आगे बढ़ता है। ऊपर वर्णित एक शब्द 'हलका' पर चर्चा करते हुए एक अन्य शब्द 'हलक़' भी याद आ गया, जिसका अर्थ है 'कंठ' अथवा 'गला'। हिंदी में बेशक इसे 'हलक़' बोलते हैं, लेकिन मूल शब्द तो 'हल्क़' ही है। 'हल्क़' की श्रेणी का ही एक शब्द है, 'फ़स्ल'। हिंदी में लेखन के स्तर पर ही नहीं, उच्चारण के स्तर पर भी यह लफ़्ज़ 'फ़सल' हो गया है। 'फ़स्ले-ख़रीफ़' व 'फ़स्ले-रबीअ' को हम 'ख़रीफ़ की फ़सल' व 'रबी की फ़सल' ही लिखते व बोलते हैं।

इस संदर्भ में फ़ारसी के शब्द 'शह्द' व 'शह्र' पर विचार करना भी अनुचित नहीं होगा। ये दोनों शब्द लेखन के स्तर पर ही नहीं उच्चारण के स्तर पर भी हिंदी में 'शहद' व 'शहर' हो चुके हैं। हम पसीना बहाकर जो कसरत करते हैं, वह अरबी का लफ़्ज़ 'कस्रत' है, लेकिन क्या हिंदी में इसे कोई 'कस्रत' लिखता है? सब 'कसरत' लिखते हैं, लेकिन बोलते हैं 'कस्रत' ही। यही हाल फ़ारसी लफ़्ज़ 'शत्रंज' का भी है। हिंदी में इसे लिखते हैं 'शतरंज' और बोलते हैं 'शत्रंज'। अरबी लफ़्ज़ 'क़स्बा' भी हिंदी में 'क़सबा' लिखा जाता है, लेकिन उच्चारण किया जाता है 'क़स्बा' ही। 'क़ह्त', 'क़ह्र' अथवा 'क़ह्वा' भी ऐसे अरबी अल्फ़ाज़ हैं, जो हिंदी में 'क़हत', 'क़हर' व 'क़हवा' लिखे जाते हैं, लेकिन उच्चारण के स्तर पर 'क़ह्त', 'क़ह्र' व 'क़ह्वा' ही रहते हैं।

फ़ारसी अल्फ़ाज 'तनहा' अथवा 'तनहाई' को हिंदी में भी 'तनहा' व 'तनहाई' ही लिखा जाता है। अतः 'तन्हा' अथवा 'तन्हाई' लिखना अशुद्ध होगा, लेकिन उच्चारण के स्तर पर क्या किया जा सकता है? 'तन्हा' अथवा 'तन्हाई' बोलने पर तो रोक नहीं लगाई जा सकती और ये अकारण भी नहीं हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि लेखन के स्तर पर ही शब्दों के कई-कई रूप प्रचलित नहीं हैं, अपितु ऐसे भी अनेकानेक शब्द हैं, जिनके लेखन व उच्चारण में भी अंतर है। ऐसे में लेखन के स्तर पर शब्दों के प्रचलित एक से अधिक रूपों को नकारा नहीं जा सकता है और ना हीं उनके उच्चारण को ही पूरी तरह से नकारना संभव होगा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. दुष्यंत कुमार - साये में धूप (गज़ल संग्रह)
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी, मानक हिंदी का स्वरूप
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा
4. नवभारत टाइम्स (दैनिक) नई दिल्ली, नवभारत टाइम्स दैनिक समाचार-पत्र की भाषा का नियमित रूप से अवलोकन व विश्लेषण
5. हिन्दस्तान (दैनिक) नई दिल्ली, हिन्दस्तान दैनिक समाचार-पत्र की भाषा का नियमित रूप से अवलोकन व विश्लेषण
6. हिंदी व उर्दू की विभिन्न पत्रिकाओं की भाषा का नियमित रूप से अवलोकन व विश्लेषण

srgupta54@yahoo.co.in

साहित्य एवं अनुवाद

1. डॉ. यायावर की सजलों में नवगीत के तत्व - कृष्ण कुमार यादव 'कनक'

2. स्वतंत्रता आंदोलन के अलक्षित हिंदी कवि और उनकी कविताएँ - डॉ. ज्योति यादव

3. महामानव रवींद्रनाथ एवं निराला - अनीता गांगुली

4. समकालीन हिंदी गज़ल में पर्यावरण चेतना - महावीर सिंह

5. नारी-विमर्श का सृजनात्मक परिदृश्य भारतेंदु की भूमिका - डॉ. भाऊसाहेब नवले

6. फ़िजी हिंदी की साहित्यिक परंपरा - डॉ. सुभाषिनी लता कुमार

7. भारतीय गिरमिटिया समाज और रामचरितमानस - दीप्ति अग्रवाल

8. मुहावरों और लोकोक्तियों का अनुवाद - डॉ. सुप्रिया प्रभाकर जोशी

डॉ. यायावर की सजलों में नवगीत के तत्त्व

कृष्ण कुमार यादव 'कनक'
फ़िरोज़ाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

नवगीत को विशेष रूप से हमारे देश के तात्कालिक परिवेश तथा परिस्थितिजन्य स्थितियों के परिणाम के रूप में स्वीकार किया गया है। हिंदी साहित्य के अनेक युगों तथा आंदोलनों की भाँति ही नवगीत अपने नाम से ही पूरी काव्य-धारा के मौलिक स्वरूप को स्पष्टता प्रदान नहीं करता, बल्कि वह तो केवल संकेत मात्र ही करता है। वास्तविकता में तो नवगीत को मूल रूप से गीत के स्वरूप में ही स्वीकार करना होगा, क्योंकि जिस प्रकार गीत में लय और छंद उसके अस्तित्व के अनिवार्य तत्त्व हैं, ठीक उसी प्रकार नवगीत में भी इन दोनों की उपस्थिति उतनी ही अनिवार्य है। यह बात भिन्न है कि नवगीत संगीत की रूढ़ तथा कठोर शास्त्रीय परिपाटी के साथ दृढ़ता से आबद्ध नहीं है, परंतु ध्यातव्य तथ्य यह भी है कि नवगीत किसी अवास्तविक अर्थ में अपना विश्वास प्रकट नहीं करता।

नवगीत आधुनिकता तथा युग-बोध की एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसे युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में बड़ी ही स्पष्टता और सहजता से पहचाना जा सकता है। नवगीत के प्रतिस्थापन व उत्थान के संदर्भ में 'पाँच जोड़ बाँसुरी' नवगीत संकलन के संपादक चंद्रदेव सिंह लिखते हैं - "नई कविता के समर्थकों ने गीत पर इसलिए भी बार-बार आक्रमण कर उसे पुराना, घिसा-पिटा और पिछड़ा कहा, ताकि हिंदी कविता को नई दृष्टि दे सकें; जो वैज्ञानिक चेतना को आत्मसात कर सके, ताकि छंद, लय, गेयता, रागात्मकता से कविता को मुक्ति दिला सकें, जिससे वह आधुनिक जीवन-बोध को यथार्थ रूप में व्यक्त करने की शक्ति से भरपूर हो उठे। आधुनिक युगबोध की उपलब्धि, अनास्था, कुंठा, पराजय, विघटन का प्रकटीकरण गीत के माध्यम से संभव हो सकेगा"- यहाँ स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि भले ही नई कविता के समर्थक यह मानते हैं कि गीत में वह क्षमता नहीं जो नई कविता में है, किंतु वास्तविकता में गीत उन सभी तथ्यों को अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है, जिनके लिए विशेष रूप से नई कविता जैसी विधा विशेष को विशिष्ट माना जाता है।

नवगीत के उदय की संभावित परिस्थितियों पर विचार करते हुए सुप्रसिद्ध समालोचक आचार्य श्री नरेश शांडिल्य लिखते हैं -

"कविता में जैसे महाकवि निराला ने छंद को तोड़ा और एक नए छंद की उत्पत्ति की - 'मुक्त छंद', ये कदापि 'छंद मुक्त' नहीं था, जैसा कि कुछ कवियों ने उसे बना दिया। ठीक उसी प्रकार 'नवगीत' की विधा सामने आई। इसमें नए-नए विमर्शों, नए-नए प्रतीकों, नए-नए बिंब-विधानों की उत्पत्ति और उनका विकास हुआ। पारंपरिक गीतों में अधिकतर प्रेम गीत और श्रृंगार गीत रचे जाते थे, जिनमें सौंदर्य, अलंकार, छायावाद आदि-आदि का बोलबाला था। इसी के समानांतर (विरोध में नहीं) नवगीत विधा का प्रादुर्भाव हुआ। नवगीत में यथार्थ, सामाजिकता, विचार और समष्टिवाद को तरज़ीह दी गई। भाव और विचारों का सामंजस्य पैदा किया गया"

यहाँ लेखक का आशय यह है कि 'नवगीत' वास्तविकता में गीत का ही विकसित स्वरूप है, जिसने अपने भीतर उन सभी महनीय तथ्यों को समाहित किया, जिनके माध्यम से साहित्य को आधुनिक समाज की मूलभूत संरचना के लिए उपयोगी सिद्ध किया जा सके। इस प्रकार 'नवगीत' एक ऐसे विकल्प के रूप में सामने आया, जो गीत की उपादेयता को बनाए रखते हुए साहित्य जगत में अपनी उपस्थिति की अनिवार्यता का साधन सिद्ध हुआ।

'नवगीत एकादश' नामक कृति में संकलित ग्यारह नवगीतकारों में सबसे पहले क्रम पर प्रकाशित जगदीश श्रीवास्तव जी के वक्तव्य में नवगीत के संदर्भ में कहा गया है -

"नवगीत भीड़ भरे सूनेपन की ईमानदार अभिव्यक्ति है। वह कल्पना के पंख लगाकर हवा में नहीं उड़ाता, वह धूप तापी नंगी चट्टानों पर नंगे पाँव चलता है। माटी की गंध, ग्रामीण परिवेश, खपरैलों से निकलता धुआँ, बादलों की परछाइयाँ, मौसम के बदलते रंग, महानगरों का संत्रास व मानवीय संवेदनाओं ने नए छंदों, नए प्रतीकों व बिंबों से नवगीत को नवचेतना से सँवारकर, गीतों की धारा को मन की गहराई तक पहुँचाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। बदलते परिवेश में शाश्वत मूल्यों को भाषा की रोचकता से संजोया व सँवारा है। नवगीत के शिल्प में जहाँ बिंब व प्रतीकों का प्रयोग हुआ है और जिनमें अंतर्वर्त्ती लय का समावेश है, उन गीतों में ही सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्फुटित होती है।"

अर्थात् गीत जब राष्ट्र व समाज की मूलभूत अवधारणा के सापेक्ष खड़ा होकर अपनी बात अपने नवीनतम स्वरूप में प्रस्तुत करता है, तब वह नवगीत कहलाता है। इसी संदर्भ को व्याख्यायित करते हुए डॉ. शंभुनाथ सिंह जी 'नवगीत अर्द्धशती' नामक नवगीत

संकलन की भूमिका में "नवगीत विकास यात्रा" शीर्षक में लिखते हैं - "नवगीत किसी अंग्रेज़ी शब्द का अनुवाद है या कि अंग्रेज़ी के किसी काव्यांदोलन या काव्य प्रवृत्ति का अनुकरण है, ऐसा नहीं माना जा सकता। निष्कर्ष यह है कि नवगीत नई कविता की तरह पश्चिम से आयातित काव्य प्रवृत्ति नहीं है, न तो वह हिंदी की नई कविता के वज़न पर गढ़ा हुआ शब्द है। नई कविता के प्रारंभ से बहुत पहले ही नए ढंग से गीतों की रचना प्रारंभ हो गई थी, उसका नामकरण 'नवगीत' भले ही बाद में हुआ। नवगीत भारतेंदु युग से चली आती उस गीत परंपरा की संज्ञा है, जो प्रारंभ से ही लोक जीवन से संपृक्त थी और युगीनबोध से उत्तरोत्तर परिपुष्ट होती रही।" इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि नवगीत समय की धारा में प्रवाहित होते हुए गीत का नया स्वरूप है, जो वर्तमान समय की माँग को पूरा करने में पूरी तरह से समर्थ, सक्षम तथा सशक्त है।

इस प्रकार नवगीत के आचार्यों के मंतव्यों की विवेचना के पश्चात् ज्ञात होता है कि हिंदी साहित्य में गीत का वह नवीनतम स्वरूप नवगीत है, जो सामाजिक जीवन के यथार्थ, मानवीय-मूल्यों व संवेदनाओं, राष्ट्रीय वैचारिकी, वैश्विक चिंतन, सर्वव्यापी सरोकार, वैयक्तिक प्रोन्नति, सामाजिक विकृतियों व विसंगतियों आदि को नवीन बिंबों व प्रतीकों के माध्यम से नवीन शिल्प व लयात्मक स्वरूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार इस संपूर्ण अवलोकन के पश्चात् ज्ञात होता है कि नवगीत के महनीय तत्त्वों के रूप में नवीन बिंब, नवीन प्रतीक, नवीन वैचारिकी, नवीन सामाजिक चिंतन, सामाजिक विकृतियों तथा विडंबनाओं का यथार्थ चित्रण आदि को प्रमुखता से स्थान प्राप्त हुआ है। इस आधार पर यदि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों का मूल्यांकन किया जाए, तो उनकी सजलों में ये सभी नवगीत के प्रमुख तत्त्व सहज ही खोजे जा सकते हैं।

सजल के संबंध में अपनी आलोचनात्मक कृति "तीसरी आँख और सजल" में युवा कवि एवं सुप्रसिद्ध साहित्यालोचक कृष्ण कुमार 'कनक' लिखते हैं -

"सजल हिंदी साहित्य की गीतिकाव्य-धारा की नवीन विधा है, जो कि उर्दू की गज़ल के समकक्ष कही जा सकती है; उर्दू गज़ल से प्रभावित या उससे उत्पन्न नहीं। इस विधा के प्रस्तोता आचार्य डॉ. अनिल गहलोत हैं। वे एक व्हाट्सएप ग्रुप पर थे, जिसका नाम था, 'गज़ल है ज़िंदगी'। उस ग्रुप पर लोग गज़ल के समान ही देवनागरी लिपि में रचनाएँ करते थे। कुछ गज़लें तो पूरी तरह से गज़ल के व्याकरण तथा मानकों पर खरी उतरती थीं; बस उनकी विशेषता यह होती थी कि वे नागरी लिपि में थी, शेष रचनाएँ वे थीं, जिन्हें 'पूर्णिका' कहा जाना ही उचित और समीचीन है। गहलोत जी को गज़ल के व्याकरण का अच्छा ज्ञान था और उनके देवनागरी लिपि में लिखी हुई शुद्ध उर्दू गज़लों के दो संकलन भी प्रकाशित हो चुके थे। गज़ल के ज्ञाता विद्वान होने के कारण गहलोत जी का उस समूह के सभी सदस्यों पर अच्छा-खासा प्रभाव भी था। अगस्त 2016 में एक दिन उस समूह पटल पर किसी ने 'हिंदी दिवस' पर चर्चा छेड़ दी, तो उस समूह के अन्य विद्वानों ने भी उत्साह से उस चर्चा में भाग लिया और चर्चा बढ़ते हुए गज़ल तक आ पहुँची। डॉ. अनिल गहलोत ने तभी प्रस्ताव रखा कि क्यों न हम हिंदी में किसी ऐसी विधा का विकास करें, जो गज़ल के समकक्ष हो, उसका अपना व्याकरण, शिल्प, भाषा और विधान हो; जोकि हिंदी कवियों को गज़ल के आकर्षण से बचा सके, साथ ही अपनी मौलिकता के लिए हिंदी साहित्य जगत् में सम्मानजनक स्थान भी प्राप्त कर सके। गहलोत जी के इस विचार ने हिंदी के विद्वानों और कवियों तथा समीक्षकों में एक सकारात्मक ऊर्जा का संचार किया, साथ ही सबकी निगाहें उन्हीं पर आकर टिकीं। एक दिन, दो दिन या फिर चार-छः दिन नहीं, बल्कि पूरे एक माह तक विचार-मंथन चला। एक माह के सघन विचार-मंथन के उपरांत सहमति बनी 'सजल' विधा के नाम पर तथा 'सजल' के अंग-उपांगों के हिंदी नाम पर सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया। 'सजल' की भाषा, व्याकरण और शिल्प के मानक भी सुनिश्चित किए गए। उसके उपरांत 5 सितंबर 2016 को उस ग्रुप पर 'सजल' विधा के हिंदी साहित्य में पदार्पण की घोषणा की गई और ग्रुप का नाम बदलकर 'सजल सर्जन' कर दिया गया। 'सजल' विधा के उद्भव के संदर्भ में डॉ. महेश दिवाकर 'डि.लिट.' लिखते हैं -

"डॉ. अनिल गहलोत जी के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण, हिंदी के प्रति उनके समर्पण और भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी सुनिष्ठ प्रज्ञा ने 'सजल' जैसी हिंदी गीतिकाव्य की इस नई विधा को संज्ञानित किया। अपनी इस शाश्वत संकल्पना के मूल में डॉ. अनिल गहलोत ने 'सजल' के रूप-बंध को लेकर भाषा और शिल्प के स्तर पर नवीन मौलिक प्रस्थापनाएँ कीं हैं। सजल को विशुद्ध रूप से हिंदी काव्य की विधा मानते हुए, उन्होंने इसे दोहा और मुक्तक की सहगोत्री बताया है, साथ ही हिंदी की नई कविता और नवगीत की भाँति ही इसे भी स्वतंत्र विधा माना है।"

इस लेखांश में 'पूर्णिका' शब्द का प्रयोग हुआ है, उसे समझना भी परम आवश्यक है क्योंकि एक बड़ा प्रश्न यह उठा कि

जो रचनाएँ उर्दू गज़ल के मानकों पर खरी उतरती हैं, वे तो उर्दू गज़ल कहलाएँगी और जो सजल के मानकों पर खरी उतरती हैं वे सजल; किंतु इस पूरे कालखंड में इन दोनों के गुणों को लिए हुए जो रचनाएँ हुईं उन्हें क्या माना जाए? या फिर ऐसी रचनाएँ जो गज़ल और सजल दोनों के गुणों से युक्त होंगी, वे क्या कहलाएँगी? तो इस प्रश्न के सहज उत्तर की खोज डॉ. सफलनाथ यादव 'प्रेम' जी ने की। उन्होंने कहा कि जो रचनाएँ न तो पूरी तरह से गज़ल हैं और न पूरी तरह से सजल, किंतु वे काव्यमय एवं स्वयं में पूर्ण रचनाएँ तो हैं ही; अतः उन्हें 'पूर्णिका' कहा जाना चाहिए। डॉ. सफलनाथ यादव 'प्रेम' जी का यह कथन इस दृष्टि से भी उचित है कि इस प्रकार की रचनाओं को हिंदी गज़ल, गीतिका, मुक्तिका, तेरी, नागरी गजल आदि अनेक नाम दिए गए, किंतु उनका कोई सुनिश्चित व्याकरण न होने के कारण, उन्हें विधा के रूप में स्वीकार किया जाना संभव न हो सका। अतः 'इन रचनाओं के लिए 'पूर्णिका' शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 'सजल' हिंदी गीतिकाव्य परंपरा में सम्मिलित होने वाली एक ऐसी नवीन विधा है, जिसका विकास हिंदी के द्विपंक्तिक पारंपरिक छंदों से हुआ है। इस विधा के विकास का मूल उद्देश्य हिंदी कवियों को उर्दू गज़ल के आकर्षण से बाहर निकालने के साथ ही हिंदी में उर्दू गज़ल के समानांतर एक ऐसी विधा की स्थापना करना है, जो देवनागरी लिपि के मानक स्वरूप का संरक्षण करे और हिंदी भाषा के प्रचलित स्वरूप के प्रयोग से पाठक को वही आनंद प्रदान करे, जिसकी खोज में वह उर्दू गज़ल की ओर आकर्षित होता है। यहाँ यह बात भी समझ लेना आवश्यक है कि 'सजल' का उद्देश्य यह नहीं कि उर्दू या किसी अन्य भाषा का विरोध किया जाए, अपितु हिंदी भाषा की मौलिकता को संरक्षित करने के सद्प्रयास का नाम ही 'सजल' है अर्थात् 'सजल' के माध्यम से यह कहने का प्रयास नहीं किया गया है कि 'सजल' में उर्दू अथवा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग पूरी तरह से वर्जित कर देना ही अनिवार्य है, अपितु यह निवेदन किया गया है कि जब तक हिंदी शब्दकोश में आपके भावों को प्रकट करने हेतु सटीक शब्दों का अभाव न हो, तब तक आप किसी अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग सायास कदापि न करें अर्थात् 'सजल' में हिंदी भाषा के प्रचलित स्वरूप को स्वीकार्यता प्रदान की गई है, किंतु अनावश्यक रूप से किसी अन्य भाषा के शब्दों के प्रयोग की वर्जना है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'सजल' विधा हिंदी भाषा तथा व्याकरण दोनों की संपोषक है।

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी उन सजलकारों में से हैं, जिनके एकल सजल-संग्रह सबसे पहले प्रकाशित हुए। डॉ. यायावर जी के अब तक दो सजल-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, 1- तृषा का आचमन, 2- जलती रेत दहकता मरुस्थल। इन कृतियों में से 'तृषा का आचमन' कृति को सजल विधा के प्रथम एकल संग्रह के रूप में स्वीकार किया गया। डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों में नवगीत के वे सभी तत्त्व विराजमान हैं, जो नवगीत विधा के मूल तत्त्व हैं। इन तत्त्वों को डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों में अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है।

नवगीत का सबसे प्रमुख तत्त्व है, यथार्थ चित्रण। इस बिंदु पर विमर्श करने से ज्ञात होता है कि साहित्य में जिस आदर्शवाद को चित्रित किया जाता रहा है, वास्तविकता में धरातल पर वैसा सामाजिक स्वरूप होता नहीं है; यानी कि धरातल का यथार्थ साहित्य के कल्पित आदर्शवाद से भिन्न पाया जाता है जो कि सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार का है किंतु समाज में व्याप्त विकृतियाँ इतनी अधिक हैं कि यहाँ सकारात्मक यथार्थ की मात्रा नगण्य-सी प्रतीत होती है। इस वास्तविक यथार्थ को नवगीतों के महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इस दृष्टि से यदि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों को देखा जाए, तो ज्ञात होगा कि इन सजलों में सजलकार ने वास्तविक यथार्थ को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। यायावर जी की एक सजल के कुछ पदिक द्रष्टव्य हैं -

इस युग में किरदार की बातें।
मत सोचो बेकार की बातें।।
हत्या, चोरी, लूट, अपहरण।
रोज यही अखबार की बातें।।
चारा, चीनी, कोल घोटाले।
बहुत बड़ी सरकार की बातें।।"

यहाँ सजलकार मानवीय संवेदनाओं और भारतीय राजनीति के बिगड़ते स्वरूप और उसके भोंडे यथार्थ को स्पष्ट स्वर देता हुआ दृष्टिगत हुआ है। नि:संदेह वर्तमान समय में मानव-मूल्यों का ह्रास इस कदर हुआ है कि किसी पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि सजलकार कहता है कि इस युग में किरदार यानी कि व्यक्तित्व के सापेक्ष उसके आचरण की अपेक्षा तक बेमानी लगने लगी है। सच तो यह है कि इस प्रकार की बातें करना भी अब मात्र समय की बर्बादी ही है। जहाँ गाँव के प्रधान से लेकर देश के सर्वोच्च पदों तक के सभी आला अधिकारी, कर्मचारी और जन प्रतिनिधि पहले अपना कमीशन तय करते हैं उसके बाद ही फ़ाइल

साइन करते हैं। प्रधान और प्रधानाचार्य मिलकर मिड-डे-मील खा जाते हैं, आंगनवाड़ी की पंजीरी भैंसों के लिए बेच दी जाती है, सभासद और पार्षद गली-खड़ंजे खा जाते हैं, महापौर नाले-नालियाँ खा जाता है, विधायक-सांसद हाई-वे खा जाते हैं। प्राचार्य पाँच रुपए की काँच की परखनली को पाँच सौ रुपए में खरीदकर बच्चों की प्रयोगशाला खा जाते हैं और फिर भी जो कुछ बच भी जाता है उसे सरकारी कर्मचारी नामक दीमक चुन लेती है। वर्तमान के इसी यथार्थ को सजलकार ने बड़े सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। आज का मीडिया भी बस उतना ही छापता है, जितना कि उसके स्वयं के स्वास्थ्य के अनुकूल हो। इसी परिप्रेक्ष्य में एक पदिक और देखें -

"बचपन ढला बुढ़ापे में।
खोई किधर जवानी बोल।।"

एक यथार्थ यह भी है कि आज के समय में लोगों के घरों में या तो बचपन दिखाई देता है या फिर बुढ़ापा; जवानी की हालत यह है कि या तो वह गरीबी और भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ चुकी है, या अपनी आजीविका की खोज में किसी महानगर की तंग गलियों में कोचिंग-कोचिंग खेल रही है, या दो जून की रोटी कमाने के लिए मत्था फोड़ रही है। इस कड़वे यथार्थ को स्वर देता एक पदिक और देखें -

"वर्षों पहले जिनको जिला बदर हो जाना था।
"आज वही बैठे हैं घर में बनकर बड़ी बुआ।।"

इस प्रकार डॉ. यायावर जी की सजलों में उच्च कोटि के यथार्थ-बोध का दर्शन होता है।

नवगीत के एक महनीय तत्त्व के रूप में मानव-मूल्य, पारिवारिक व मानवीय संवेदनाओं को भी माना गया है। इस दृष्टि से भी डॉ. यायावर जी की सजलें नवगीत के बेहद समीप कही जा सकती हैं। एक पदिक देखें -

"फाँसी देकर निरपराध को मुक्त कर दिया अपराधी को।
बोला न्यायधीश कि अब यह न्याय पूर्ण निष्पक्ष हो गया।।"

मानवीय संवेदनाओं का ह्रास इस प्रकार हुआ है कि जहाँ एक ओर जनता सर्वाधिक विश्वास न्यायालयों पर करते हुए यह विचार करती है कि न्यायालय में उसे न्याय अवश्य ही मिलेगा किंतु संवेदनहीन न्यायाधीश भी अब बड़ी बेशर्मी से धन के लालच या सत्ताओं के दबाव में निरपराधों को सज़ा सुनाने में नहीं हिचकते। समय के साथ एकल परिवारों में मरती पारिवारिक संवेदनाओं को उजागर करते हुए दो पदिक देखें -

"बेच दी बाबा की फ़ोटो आज उसने हाट में।
पुत्र इस दीवार पर अब पेंटिंग लटकाएगा।।
हो गया बूढ़ा चलेगी अब कुल्हाड़ी देखिए।
फ़लसफ़ा दुनियाँ का यह गिरता सजर बतलाएगा।"

पारिवारिक विघटन से उत्पन्न एकल परिवारों में अपने पूर्वजों के प्रति जो आधुनिक पीढ़ी की संवेदना घटी है, उसी का परिणाम है कि आज दीवारों पर रंग-बिरंगी चित्रकारियाँ तो आसानी से मिल जाती हैं, किंतु घर के बुज़ुर्गों के चित्र दिखाई नहीं देते।

आधुनिक परिवारों की स्थिति यह है कि घर के बुजुर्ग इतने अकेले हो गए हैं कि उन्हें प्रत्येक क्षण का जीवन एक कठिन घड़ी-सा प्रतीत होने लगा है।

नवगीत की प्रमुख विशेषताओं में से एक विशेषता नवीन बिंब-विधान भी है। इस दृष्टि से भी डॉ. यायावर जी की सजलें नवगीतनुमा ही हैं। दृश्य बिंब का एक पदिक देखें -

"अब न घूँघट न पनघट न धीमी हँसी।
खो गया है कहीं लाज का आभरण।।"

इसी प्रकार श्रव्य बिंब का उदाहरण देखें -

"सच मर गया अदालत में।
खबर छपी अखबारों में।।"

स्पर्श बिंब का एक उदाहरण देखें -

"बने दीप घट कुल्हड़ सब।
पहले मिट्टी सानो तो।।'

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों में विविध प्रकार के नवीन बिंब उपस्थित हैं, जो कि उनकी सजलों को नवगीत के सापेक्ष खड़ा करने में पूर्ण रूपेण सक्षम हैं।

नवीन प्रतीकों का प्रयोग भी नवगीत का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इस दृष्टि से डॉ. यायावर जी की सजलों को देखें, तो इन सजलों में भरपूर मात्रा में नवीन प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए एक सजल के कुछ पदिक द्रष्टव्य हैं -

"कंचन कुर्सी वाले सब।
तन मन धन के काले सब।।
भोलापन आँखों में है।
मन में तीखे भाले सब।।"

उपर्युक्त पदिकों में 'कंचन कुर्सी वाले' वर्तमान नेताओं का

प्रतीक है और 'तीखे भाले' आधुनिक मानव की कुत्सित मानसिकता का प्रतीक। इसी प्रकार नवीन प्रतीकों से परिपूर्ण एक पदिक और द्रष्टव्य है -

"सूर्य - चंद्र तक हार मान लेते हैं तम से कभी-कभी।
जीत न पाया अंधकार दीपक की नन्ही जान से।।"

यहाँ सूर्य और चंद्रमा को भले मनुष्यों के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है, वहीं दीपक को एक दृढ़ संकल्पित वीर योद्धा यानी कि भारतीय सीमाओं की रक्षा में तैनात एक सैनिक के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है, जो अपनी अंतिम श्वास तक दुश्मन को अपनी सीमा में प्रवेश नहीं करने देता।

उपर्युक्त पदिकों के माध्यम से स्पष्ट है कि जिस प्रकार नवगीत में नवीन प्रतीकों का स्थान महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार डॉ. यायावर जी की सजलें भी नवीन प्रतीकों के प्रयोग से परिपूर्ण दिखाई देती हैं।

तदुपरांत नवगीत की एक अन्य प्रमुख विशेषता नवीन छंद और नवीन लय विधान की है, तो इस दृष्टि से भी डॉ. यायावर जी की सजलें नवगीत के समक्ष ही हैं, क्योंकि इनका शिल्प विधान बहुत सीमा तक नवगीत के विधान के समीपस्थ है। तथापि सजल का अपना अलग-अलग शिल्प विधान है, अतः इन सजलों को नवगीत तो नहीं कहा जा सकता; किंतु यह अवश्य ही स्पष्ट है कि डॉ. यायावर की सजलों में नवगीत के प्रमुख तत्त्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

नवगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विकास क्रम, भाव तथा कला पक्ष पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी के अब तक प्रकाशित दोनों सजल-संग्रहों में संकलित सजलों का सांगोपांग अध्ययन करने एवं साहित्य विश्लेषण व गवेषणात्मक अनुशीलन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों में नवगीत के सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्व उपस्थित हैं। इन सजलों का भाव पक्ष उतना ही धारदार है, जितना कि एक उत्तम कोटि के नवगीत का स्वीकार किया जाता है। ठीक उसी प्रकार इन सजलों का कला पक्ष भी उतना ही सटीक एवं पुष्ट दिखाई देता है, जितना कि नवगीत का। इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. यायावर जी की सजलें नवगीत के सभी प्रमुख तत्त्वों से परिपूर्ण हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. चंद्रदेव सिंह : पाँच जोड़ बांसुरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 9 अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता -27 ; प्रथम संस्करण : 1969 ई
2. कृष्ण कुमार 'कनक' : हिंदी गीत परंपरा में नवगीत : "नवगीत : जब गीत के बदले तेवर", नरेश शांडिल्य:, अविकल्प प्राण प्रकाशन, प्रज्ञा हिंदी सेवार्थ संस्थान ट्रस्ट, "कनक-निकुंज", ठार मुरली नगर, गुंदाऊ, लाइन पार, फ़िरोजाबाद -283203; प्रथम संस्करण : 2021 ई
3. भारतेंदु मिश्र : नवगीत एकादश, अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली, नई दिल्ली-110030; प्रथम संस्करण : 1994 ई
4. डॉ. शंभुनाथ सिंह : नवगीत अर्द्धशती, पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली - 32; प्रथम संस्करण : 1985 ई
5. कृष्ण कुमार 'कनक' : तीसरी आँख और सजल, अविकल्प प्राण प्रकाशन, प्रज्ञा हिंदी सेवार्थ संस्थान ट्रस्ट, "कनक-निकुंज", ठीक मुरली नगर, गुंदाऊ, लाइन पार, फ़िरोजाबाद - 283203; प्रथम संस्करण : 2023 ई
6. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : तृषा का आचमन, जवाहर पुस्तकालय, हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा -281001; प्रथम संस्करण : 2017 ई
7. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : जलती रेत : दहकता मरुथल, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 37, "शिवराम कृपा", विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-10 प्रथम संस्करण : 2021 ई

kanakkavya@gmail.com

स्वतंत्रता-आंदोलन के अलक्षित हिंदी कवि और उनकी कविताएँ

डॉ. ज्योति यादव
उत्तर प्रदेश, भारत

भारत अपनी आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहा है। यह महोत्सव आज़ादी के पचहत्तर वर्ष पूरे होने और यहाँ के लोगों, उनकी संस्कृति और उपलब्धियों के गौरवशाली अतीत को याद करने तथा जश्न मनाने के लिए भारत सरकार की एक पहल है। यह महोत्सव भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पहचान को प्रगति की ओर ले जाने वाली सभी चीज़ों का एक मूर्त रूप है। इस महोत्सव की आधिकारिक यात्रा 1930 में महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह की शुरुआत करने के दिन यानी 12 मार्च 2021 से शुरू हुई, जो 75 सप्ताह बाद 15 अगस्त 2023 को पूरी हुई। आज़ादी के अमृत महोत्सव का सबसे प्रमुख विषय स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में मील का पत्थर रहे, गुमनाम नायकों की कहानियों को जीवंत करने में मदद करना है, जिनके बलिदान ने हमारे लिए स्वतंत्रता को वास्तविक बना दिया। भारत में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ़ लड़ाई एक अनूठी लड़ाई रही है, जो हिंसा से प्रभावित नहीं, बल्कि वीरता, बहादुरी, सत्याग्रह, समर्पण और बलिदान की विविध कहानियों से भरी है। ये कहानियाँ समृद्ध भारतीय सांस्कृतिक-विरासत और परंपराओं को रेखांकित करती हैं। हमें स्वतंत्रता-संग्राम के उन भूले-बिसरे नायकों को याद करने का अवसर प्रदान करती हैं, जिन्हें किन्हीं कारणों से भुला दिया गया है। अतीत की यादों के रूप में पड़ी इनकी कहानियों को फिर से उजागर करने और सामने लाने का उद्देश्य आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन के एक माध्यम के रूप में काम करेगा। इस महोत्सव का उद्देश्य ही देश के अलक्षित नायक, आंदोलन, संगठनों और स्थलों को केन्द्र में लाना है।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में पूरे देश के सभी धर्मों, जातियों, प्रांतों के लोगों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। इनमें राजनेता, वकील, अध्यापक, विद्यार्थी, पत्रकार और साहित्यकार प्रमुख थे। साहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से देश के लोगों को जागरूक करने तथा अपने हक के लिए लड़ने को तैयार करने में प्रमुख भूमिका अदा की। उन्होंने बर्तानिया हुकूमत की जेल, ज़ब्ती और ज़ुर्माने की परवाह न करते हुए देश के लोगों को अपने विरुद्ध किए जा रहे अत्याचार के प्रति आगाह किया। अपनी कलम से देश के लोगों की आत्मा को झकझोरा, अपने गौरवशाली अतीत की याद दिलाई और इस गुलामी के जुए को उतार फेंकने का आह्वान किया। भारत की जनसंख्या का अधिकांश भाग हिंदी भाषा को जानता और समझता है। अतः हिंदी भाषा के कवियों ने देश की दारुण दशा को देखकर अपनी कविताओं में स्वदेश-प्रेम, अतीत गौरव-गान, वर्गहीन समाज की स्थापना, किसानों, मज़दूरों की समस्या, ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय धन के लूट इत्यादि मुद्दों को उठाकर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया। इन कवियों ने देश की दुर्दशा पर अपने गीतों के माध्यम से क्षोभ प्रकट कर अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध संघर्ष के लिए जनमानस को प्रेरित कर राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी सहभागिता की पृष्ठभूमि तैयार की। इनके गीत सहज और सरल रहने के कारण शीघ्र ही एक-दूसरे तक पहुँच जाते थे। उस दौर में 'वंदेमातरम्' जैसे गीत और 'इंकलाब ज़िंदाबाद' जैसे नारे देश की आज़ादी का तराना बन गए थे।

हिंदी कवियों द्वारा ब्रिटिश सरकार के शोषण को अपनी कविताओं में लाने की शुरुआत भारतेंदु हरिश्चन्द्र से होती है। जिन्होंने भारत की हो रही दुर्दशा पर खेद प्रकट करते हुए कहा - "रोवहु सब मिलियन आवहु भारत भाई/ हा, हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई"। औद्योगिक क्रांति के बाद भारत से कच्चा माल सहित अन्य उपायों द्वारा देश के धन को लंदन ले जाने 'धन निकासी' जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न को भी भारतेंदु ने अपनी कविताओं में उठाया- "अंग्रेज राज सुख साज, सबै विधि भारी/ पै धन विदेश चलि जात यहै है ख्वारी"। भारतेन्द के बाद प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, राधाकृष्ण दास, बाल मुकुंद गुप्त, अंबिका दत्त व्यास, मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी', रूप नारायण पाण्डेय, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामनरेश त्रिपाठी, पं. माधव शुक्ल, सत्यनारायण 'कविरत्न', सियारामशरण गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, निराला, रामधारी सिंह 'दिनकर', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, किशोरीदास वाजपेयी, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, बंशीधर शुक्ल, बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस', श्यामलाल गुप्त 'पार्षद', शिवमंगल सिंह 'सुमन', नाथूराम शर्मा 'शंकर', रामेश्वरी देवी 'चकोरी', तोरन देवी शुक्ल 'लली', पं. कृष्ण बिहारी मिश्र, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', रामनाथलाल सुमन, परन्तप, शोभाराम धेनुसेवक, रामावतार यादव 'शक्र' जैसे हज़ारों जाने-अनजाने कवियों ने जनता के जीवन में अपनी कविताओं के माध्यम से देश पर न्यौछावर होने की भावना जागृत की। प्रस्तुत

शोध-आलेख में स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान के मुख्य धारा के चर्चित कवि और उनकी कविताओं के साथ ही भूले-बिसरे, मुख्य धारा से कटे अलक्षित हिंदी कवियों और ऐसी ही गुमनाम हिंदी कविताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जिन्हें कहीं-न-कहीं भुला दिया गया है।

ब्रिटिश सरकार में देश के लोगों को जगाना सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करना था। इसमें देशद्रोह का मुकदमा तथा कालापानी की सज़ा होती थी। इन्हीं कारणों से तमाम लेखकों और पत्रकारों ने अपने नाम छद्म नामों से लिखना शुरू किया। इनमें धनपतराय का 'प्रेमचंद' हो जाना सभी जानते हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' भी पहचान छिपाने के लिए कई नामों से कविता व कहानियाँ लिखते थे। 'शहीद-ए-आज़म' भगत सिंह तक ने अपनी पहचान छुपाकर लेख लिखे। पहचान ज़ाहिर न हो, इसलिए बहुतों ने पत्र-पत्रिकाओं में अनाम, अज्ञात, एक भारतीय, एक देशभक्त इत्यादि जैसे नामों से भी कविताओं को लिखा। नवयुवकों को देश की खातिर बलि जाने का आह्वान करती ऐसी ही एक कविता जिसमें कवि का नाम नहीं है, अप्रैल 1928 में लाहौर से निकलने वाली 'ज्योति' पत्रिका में 'स्वदेशानुराग' नाम से मिलती है, जिसमें अपनी मातृभूमि पर बलिदान का आह्वान किया गया है -

"घिस जाय सिल पर क्यों न चंदन की महक जाती नहीं।
बंध जाल में भी बुलबुलों की, वह चहक जाती नहीं।।
अभिजात मित्र, अमित्र हो, दुःख बीज का बोता नहीं।
प्रिय देश के दुःख से जला, सुख नींद से सोता नहीं।।

° ° ° ° °

मद मत्त करि वर वृन्द में भी, सिंह शिशु डरता नहीं।
बलिदान हो जो जन्म भू पर, वह अमर मरता नहीं।।
परमार्थ प्रेमी स्वार्थरहित नित, पाप को ढोता नहीं।
प्रिय देश के दुःख से जला, सुख नींद से सोता नहीं।।"

माखनलाल चतुर्वेदी की प्रसिद्ध कविता 'पुष्प की अभिलाषा' फ़रवरी 1922 में 'प्रभा' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, जिसमें लेखक माखनलाल चतुर्वेदी का नाम न होकर "एक भारतीय आत्मा" नाम से कविता छपी है। इस कविता में एक पुष्प किसी राजा, महाराजा, सुंदरी या देवी- देवता के गले का हार बनने की अपेक्षा देश पर मर मिटने वालों के पैरों के नीचे रहने में ही अपने को गौरवान्वित समझ रहा है। यह कविता इस प्रकार है -

"चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि! डाला जाऊँ,
चाह नहीं, मैं सुर बाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध, प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, देवों के शिर पर चढ़, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना बनमाली! उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक॥"

देश की तत्कालीन दशा से पीड़ित नवयुवकों ने क्रांति का रास्ता अपनाया। गांधीजी के अहिंसा सिद्धांत से इतर तमाम नौजवानों ने ब्रिटिश सरकार के सुधारों को अस्वीकार कर दिया। नरमपंथियों की राजनीति को वे भिखमंगी राजनीति कहते थे। सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु जैसे युवाओं ने 'वैयक्तिक शौर्य' का रास्ता अपनाया। उन्होंने 'गूँगों और बहरों को सुनाने के लिए' असेंबली में बम फेंका। वे देश की खातिर फ़ना हो जाना चाहते थे। जलियाँवाला हत्याकांड का आदेश देने वाले जनरल डायर की हत्या शहीद ऊधम सिंह ने लंदन में जाकर कर दी। देश के नौजवानों में देश के प्रति सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना का संचार हिंदी की कविताओं ने बखूबी किया। बिष्णु दिगम्बर की 'मातृ-भूमि' ऐसी ही एक कविता है -

"ऐ मातृ भूमि तेरे चरणों में सिर नमाऊँ। मैं भक्ति भेंट अपनी तेरी शरण में लाऊँ॥

माथे पे हो चंदन-छाती पे तू हो माला, जिह्वा पे गीत तू हो, मैं तेरा नाम गाऊँ।

जिससे सपूत उपजें, श्रीराम कृष्ण जैसे, उस तेरी धूलि को मैं, निज शीश पे चढ़ाऊँ।

मानी समुद्र जिसकी धूलि का पान करके, करता है मान, तेरे उस पैर को नमाऊँ।

वे देश मान वाले चढ़ कर उतर गये सब, गोरे रहे न काले, तुझको ही एक पाऊँ।

सेवा में तेरी सारे भेदों को भूल जाऊँ, वह पुष्प नाम तेरा, प्रति दिन सुनूं सुनाऊँ।

तेरे ही काम आऊँ, तेरा ही मंत्र गाऊँ, मन और देह पर, बलिदान हो चढ़ाऊँ।"

स्वतंत्रता-आंदोलन के यज्ञ में आहुति देने का आह्वान करने वाली कविताएँ सिर्फ़ पुरुष कवियों ने ही नहीं लिखी, अपितु महिलाओं ने भी इस प्रकार की कविताओं की रचना की है। अपने जेल जाते बेटे को देखकर किस माँ का कलेजा नहीं निकल आएगा? परंतु भारत माता की रक्षा के लिए जेल जाते बेटे को देखकर भारतीय माताएँ रोई नहीं, अपितु पुत्रों को देशभक्ति से विचलित न होने को कहती हैं, भले ही उस खातिर अपना सिर क्यों

न कटाना पड़े। काशी से निकलने वाले 'आज' अखबार में 'जननी की आसीस' नामक कविता की रचयिता का नाम न मिलकर 'एक कारावासी सुत की माता' मिलता है। निश्चय ही, इस माँ का पुत्र देश की आज़ादी की खातिर जेल में बंद रहा होगा। कविता की पंक्तियाँ हैं -

"कहियो जननी की आसीस।
जन्मभूमि- वत्सल सुत जीवो॥
निडर अनंत बरीस।
धर्म सत्य धीरता न तजियो।
नहिं बिसारियो ईस।
देशभक्ति से नहीं बिचलियो।।
देन परै चहै सीस!
यह अन्याय मिटिट्टै यह निश्चय ।
राखो विस्वाबीस।
भारत पुनि स्वतंत्रता लहिहै।।
है सहाय जगदीस।"

जंग-ए-आज़ादी में जहाँ पति-पत्नी साथ में जेल जा रहे थे, माँ अपने बेटे को देश की खातिर बलिदान होने की कामना कर रही थीं, तो बहनें कैसे पीछे रहतीं? वे भी अपने भाइयों से राखी बंधवाई का उपहार माँग रही हैं, लेकिन यह उपहार खरीदा नहीं जा सकता था। यह उपहार देश की आज़ादी में अपना योगदान देने को था। अपनी भारत माता को गुलामी की जंजीरों की जकड़न से छुड़ाना था। ऐसी ही एक कविता काशी से निकलने वाले 'यादवेश' में कृष्णकुमारी यादव की 'रक्षाबंधन' नाम से मिलती है। जिसमें कवयित्री ने कुछ इस तरह अपने भाई को लिखा है - "*श्रीमान् पूज्य भ्राता डाक्टर कुं० महाराज सिंह जी यादव, धीरपुरा, आगरा के कर कमलों में लघु बहिन कृष्णकुमारी यादव, झाँसी का रक्षाबंधन-*

"आज बाँधती हूँ भैया! इन हाथों में रक्षा बन्धन
निज रक्षा का भार आज करती तेरे हाथों अर्पण।
इस अबला का व्यर्थ कहीं रक्षा का पावन तार न हो,
कहीं शत्रु सन्मुख भय्या! तेरी कुण्ठित करवाल न हो।
उच्च हिमाचल-सा मस्तक झुक जाने को तैयार न हो,
दुश्मन से प्रस्ताव सन्धि का करने को तैयार न हो ।
कहीं पीठ पर तेरी दुश्मन की बरछी का घाव न हो,
इन नैनों से कभी दीनता के पानी का स्राव न हो।
अन्तिम घड़ियों तक सीने में शत्रु दमन की चाव रहे,
अबला बहनों की सतीत्व-रक्षा का पावन भाव रहे।
यदि भय्या! इस धर्म-युद्ध में काम कहीं आ जाओगे,
स्वर्ग-सिंहासन से मुझको जौहर करते पाओगे।"[7]

जन्मभूमि पर बलिदान करने को सिर्फ़ पुरुष ही आतुर नहीं थे। महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन में प्रवेश के साथ ही उनके आह्वान पर महिलाएँ भी स्वतंत्रता-संग्राम के रण में पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलीं। महात्मा गांधी के साथ कस्तूरबा गांधी, लक्ष्मण सिंह के साथ सुभद्रा कुमारी चौहान सहित देश की तमाम स्त्रियों ने राष्ट्रीय आंदोलन में पतियों के साथ जेल जाना सहर्ष स्वीकार किया। कवियों ने महिलाओं को इस हेतु बखूबी प्रेरित किया। प्रभा में 'स्वतंत्रता का मूल्य' नामक पद्यात्मक कविता लिखते हुए कुँवर रामसिंह 'विशारद' कहते हैं- "हे देवियो ! यदि तुम्हें स्वतंत्रता का सुख चाहिए तो अपने पतियों सहित कारागार के कष्ट उठाकर देवकी की तरह अपनी सात सन्तानों का बलिदान करो।" इन अपीलों का व्यापक असर पड़ा। महिलाएँ जेल जाने में ही नहीं अपितु देश पर खुद को न्यौछावर करने में भी पीछे नहीं हटीं। स्त्रियों की सचित्र मासिक पत्रिका 'सहेली' के जनवरी 1934 अंक में 'श्री रत्नकुमारी काव्यतीर्थ' देश पर बलिदान होने की इच्छा खुशी-खुशी व्यक्त करती हैं -

"छिपी कहाँ अज्ञात शक्ति तू आ मुझको पावन कर दे।
मेरे इन निर्बल प्राणों में नवजीवन-जागृति भर दे॥
मेरा अंतर जाग उठे यह जाग उठे सोये अरमान।
हँस कर माता के चरणों में चढ़ा सकूँ अपना बलिदान॥"

नवजागरणकालीन पत्र-पत्रिकाओं में आपको ऐसी बहुत-सारी कविताएँ मिलेंगी, जिनमें कवि का नाम न होकर 'एक कारागारवासी', एक भारतीय युवक, एक भारतीय, एक बैठाठाला ग्रेजुएट, अष्टावक्र, एक राष्ट्रीय पथिक, एक तटस्थ, अभिलाषी, नवयुवक, हृदय, सहिष्णु, भक्त इत्यादि मिलेगा। इनकी कविताएँ देशभक्ति से ओतप्रोत थीं। इनका मुख्य ध्येय अपने सोए हुए देशवासियों को जगाना था। देश में घट रही घटनाओं और स्थितियों के प्रति उन्हें आगाह करना था, ऐसी परिस्थितियों और निर्मिति से उन्हें तैयार करना था, जिससे देश को अंग्रेज़ी राज से मुक्ति मिले। ऐसी कविता के गुमनाम रचयिताओं में एक नाम लखनादौन, मध्य प्रदेश के शोभाराम धेनुसेवक का भी है, जिनकी कविताएँ हमें विभिन्न समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में मिलती है, जो देशभक्ति से ओतप्रोत रहती थीं। प्रसिद्ध पत्रिका 'चाँद' के बहुचर्चित 'अछूत अंक' (मई 1927) तथा 'फाँसी अंक' (नवम्बर 1928) में भी धेनुसेवक की कविताएँ मिलती हैं। वैयक्तिक उपलब्धियों से इतर देश के लिए

कुछ करने का संदेश देती उनकी एक कविता 'सीखो' धर्माभ्युदय के मार्च 1923 अंक में मिलती है -

"कहना तज कर मित्र, काम का करना सीखो।
रह अधर्म से दूर, धर्म पर मरना सीखो॥
पाकर संपति शक्ति, देश दुख हरना सीखो।
आडम्बर तज ध्यान देश का करना सीखो ॥
निज बल पर भय विघ्न से, निर्भय तरना सीखिये।
देश लाभ हित व्यक्ति गत, स्वार्थ बिसरना सीखिये।
० ० ० ० ०
हैं गौरव देश के, जो देश हित में लीन होते हैं ।
किसी के सामने हरगिज़ नहीं वे दीन होते हैं।।
जो देते देश को स्वाधीनता, स्वाधीन होते हैं।
वही नर देश सुख-निधि के, मनोहर मीन होते हैं।।"[10]

महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने के बाद देश का राजनीतिक परिदृश्य अचानक से बदल गया। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध गांधी की शांति और अहिंसा की नीति बेहद कारगर रही। जलियाँवाला बाग हत्याकांड से पूरा देश उद्वेलित था। चम्पारण, अहमदाबाद और खेड़ा आंदोलन की सफलता के बाद उन्होंने अंग्रेज़ी हुकूमत के अत्याचारों के खिलाफ़ असहयोग आंदोलन चलाया। सरकार से सभी प्रकार असहयोग तथा विदेशी शिक्षण संस्थानों का बहिष्कार सहित स्वदेशी को उन्होंने इस आंदोलन का मूल आधार बनाया। इन कार्यक्रमों द्वारा उन्होंने अंग्रेज़ी सरकार की जड़ें हिला दी। जनता ने स्वदेशी वस्तुओं को अपनाया और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया। स्वदेशी वस्तुओं से देश को होने वाले लाभ और विदेशी वस्त्रों से हो रहे नुकसान की जानकारी देशवासियों को बखूबी दी गई। गांधीजी की इच्छा हर घर में चरखा लगाने की थी। प्रत्येक व्यक्ति को अपने पहनने भर के कपड़े को बुनने का आह्वान किया गया। इसका समाज पर व्यापक असर पड़ा, फिर साहित्य कैसे अछूता रह जाता? इस दौर में बहुत-सारी कविताएँ स्वदेशी और चरखे पर लिखी गईं। ऐसी ही एक कविता महात्मा गांधी, चरखा और स्वदेशी का गुणगान करते हुए 'आरती' नाम से मिलती है। जिसके रचयिता का नाम नहीं मिलता है -

"ओ जय-जय चरखे देवा।
वस्त्र विदेशी चक्र सुदर्शन मेनचस्टर ढावा।
भारत माता भाग्य विधाता तू स्वराज्य दाता।
पराधीनता नाश भई है जब तुझको ध्याता॥
दीनन पालन दुःख मिटावन भारत भयहारी।
आत्म शुद्धि के करने हारे सेवें सब नर नारी॥
भारत की है मेशिनगन तू तू ठण्डा गोला।
पिडिं बडीं कारतूस चलीं जब दुष्टासन डोला।।
त्रेता में धनुवान भयो और सतयुग में फरसा।
द्वापर में भयो चक्र सुदर्शन कलियुग में चरखा।।
श्री चरखे को प्रेम से आरति जो कोई गावे।
कहें महात्मा गांधी जी वह नर सुख सम्पति पावे।।"

आज़ादी बिना संघर्षों, बलिदान और कुर्बानियों के नहीं मिलती। कवियों को भी यह बात पता थी। वे सीधे अंग्रेज़ी सरकार का विरोध नहीं कर प्रतीक और चिह्नों का प्रयोग करते थे। इससे वे प्रतिबंध और ज़ब्ती से बचने के लिए अपनी कविताओं के माध्यम से लोक परम्परा में राम, कृष्ण जैसे देवताओं के नामों का प्रयोग कर वे राक्षसों, अन्यायियों, अत्याचारियों और दुराचारियों की हत्या करने के कामों को न्यायसंगत ठहराते थे। वे लोगों से इन देवताओं का अनुसरण करते हुए अन्यायियों और अत्याचारियों का वध करने को कहते थे। रायकृष्ण दास जी अपनी गद्यात्मक कविता 'समुचित कर' के माध्यम से कहते हैं -

"ऋषियो! यदि तुम्हें भगवान रामचन्द्र की परमा शक्ति सीता के जन्म की आकांक्षा हो तो तुम्हें घड़े भर खून का कर देना ही होगा।

उसके बिना सीता का शरीर कैसे बनेगा?

और बिना सीता का आविर्भाव हुए रामचन्द्र अपना अवतार कैसे सार्थक कर सकेंगे?

अतः ऋषियो! उठो; अविलम्ब अपना रक्त प्रदान करो!"

स्वतंत्रता मुफ़्त में नहीं मिलनी थी, उसका मूल्य चुकाना ही पड़ता। बिना मूल्य चुकाए वस्तु पाने की आशा करना व्यर्थ था। इसीलिए रायकृष्ण दास अपनी एक अन्य गद्यात्मक कविता 'चेतावनी' में सचेत करते हैं -

"पथिक, तुम्हें बड़े टेढ़े रास्ते से जाना है। यदि तुम्हें निर्दिष्ट मन्दिर तक पहुँचना है, तो इसके सिवा अन्य मार्ग नहीं।

देखो! यदि तुम्हें मुक्त होने की अभिलाषा है, तो तुम्हें सिद्धियों का लोभ संवरण करना पड़ेगा।

और पथ में मार-सेना का अत्याचार सहने को प्रस्तुत रहना पड़ेगा।

सिंहासन पर तुम अशुल्क नहीं बैठ सकते; तुम्हें उसका

मूल्य अवश्य देना होगा।

यदि तुम्हें उस पद की आकांक्षा हो, तो तुम्हें इस सब के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए।"

इस प्रकार स्वतंत्रता-संग्राम के इस महायुद्ध में हमारे कवियों, कवयित्रियों सहित देश के आम नागरिकों ने अपनी महती भूमिका निभाई। अपनी आज़ादी के इस अमृत महोत्सव में उन लाखों अनजाने और अलक्षित स्वतंत्रता-संग्राम के नायकों, सेनानियों और आमजनों के योगदान से हमें न सिर्फ़ परिचित होना है, अपितु उनसे सारे देश को परिचित कराना है। आज यदि हम आज़ाद हवा में साँसें ले रहे हैं, तो यह उनके शौर्य और बलिदान के कारण ही संभव हुआ है।

संदर्भ सूची -

1. हेमन्त शर्मा (सं.), भारतेंदु समग्र, हिंदी प्रचारक पब्लिकेशन वाराणसी, पंचम संस्करण- 2002
2. ज्योति, अप्रैल 1928
3. प्रभा, फ़रवरी 1922
4. अभ्युदय, जनवरी 1922
5. आज, 14 जून 1922
6. यादवेश, तृतीय खण्ड, संदेश-12, काशी श्रावण संवत् 1995
7. प्रभा, वर्ष-3, खण्ड-2, संख्या-3
8. सहेली, जनवरी 1934
9. धर्माभ्युदय, मार्च 1923
10. प्रभा, जून 1922

umesh198129@gmail.com

महामानव रवींद्रनाथ एवं निराला

अनीता गांगुली
हैदराबाद, भारत

बांग्ला साहित्य में नए युग को लाने का श्रेय रवींद्रनाथ को है। उनसे पहले ईश्वर चंद्र विद्यासागर का नाम आता है, फिर मधुसूदन की काव्य-प्रतिभा ने प्राच्य-पाश्चात्य का मिलन करवाया। सर्वप्रथम बंगलावासियों या यूँ कहिए भारतवासियों ने इन्हीं के माध्यम से मिल्टन, वड्र्सवर्थ, कीटस्, यीट्स, शेक्सपियर और शैली को जाना। मधुसूदन बांग्ला साहित्य में नूतन कविता के स्रष्टा थे। बंगाल सदैव क्रांति का अग्रदूत रहा है। क्रांति की कोई भी लहर हो, बंगाल में उपजी तथा उससे अन्य प्रदेश प्रभावित हुए।

रवींद्रनाथ बांग्ला साहित्य में अपनी विपुल प्रतिभा वैविध्य एवं उज्ज्वलता लेकर अवतरित हुए। वे साहित्यकार, नाटककार, चित्रकार, कलाकार, शिल्पकार, अध्यापक, समाज-सुधारक और चिंतक थे। साहित्य में उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध और पत्रों के अलावा नृत्यनाटिका, गीति नाटिका, कविता, गीत और गान से बांग्ला साहित्य को समृद्ध कर गए। वे युग परिचायक थे।

उन्हीं को केंद्र में रखकर रवींद्रयुग एवं रवींद्रोत्तर युग कहते हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा गीतधर्मी थी। उनकी आत्मा कविता में बसती थी। उनके वरदस्पर्श से बांग्ला कविता कमनीयता एवं नमनीयता को प्राप्त हुई। काव्य लक्ष्मी की वंदना करते हुए वे कहते हैं -

'जगतेर माझे कतो विचित्र तुमि हे तुमि विचित्र रूपिणी'

उनकी आत्मा संगीतिक है। मानवीय प्रेम सर्वोपिरि है। उनके ऊपर चंडीदास की इन पंक्तियों का काफ़ी प्रभाव पड़ा - **'साबार ऊपर मानुष सत्य ताहार ऊपर नाई'** हिंदी में पंत ने इन विचारों से प्रभावित होकर कहा -

'सुंदर है विहग, सुमन सुंदर मानव तुम सबसे सुंदरतम'

हिरण्यमयी बैनर्जी कहते हैं - रवींद्रनाथ की प्रकृति संबंधी कविताओं में उस रोमांच की धड़कन है, जो उन्होंने विभिन्न भावास्थाओं में अनुभव की। उनमें प्रकृति के अद्त एवं सुंदर पक्ष से जागृत भावना का मात्र प्रभावशाली चित्रण ही नहीं है, वे उसके पीछे छिपी अदृश्य सत्ता के बारे में प्रश्न उठाते हैं। जैसे -

धान के खेतों पर भागती धूप छाया
आज आँख मिचौनी का खेल खेल रही है।
नील गगन में श्वेत मेघों के ये जोड़े
किसने बहाए, वह कौन है?

इस प्रकार जिज्ञासा मात्र से उनको संतोष नहीं है। जिस शक्ति की उपस्थिति दिखाई नहीं देती पर महसूस होती है। उसके साथ संपर्क की लालसा भी विकसित हो गई है। जैसे -

मेरा मन आज मोर की तरह नाच रहा है।
सैकड़ों रंग से झिलमिल भावना का ज्वार
मोर के पंखों की तरह फैल रहा है
और आकाश की ओर उल्लास से दृष्टि उठा
लालायित हृदय से किसी को ढूँढ रहा है।

रवींद्रनाथ प्रकृति को देख खुश होते हैं। उन्होंने लिखा है - उषा, संध्या, फूल, कोमल कलरव, मर्मर, ओस के वन, नदी, निर्झर, हरे-भरे खेत, खुला आसमाँ, ठंडी हवा, लहराते पेड़-पौधे मेरे एकाकी किशोर आत्मा को, मन को और शरीर को अपनी ओर खींचते हैं। रवींद्रनाथ अणु-अणु एवं कण-कण में उसकी शक्ति का आभास करते हैं और आश्चर्य में डूबकर यह प्रश्न करते हैं कि रहस्यमयी तुम कौन हो? यहाँ हम कवि पंत के और उनके मौन निमंत्रण को याद किए बिना नहीं रह सकते।

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अनजान
न जाने नक्षत्रों से कौन/निमंत्रण देता मुझको मौन

रवींद्रनाथ को उनके पिता ने बैरिस्टरी पढ़ने के लिए लंदन भेजा था, परंतु वे वहाँ पाश्चात्य कवियों शैली, वड्र्सवर्थ, कीट्स, इलियट से प्रभावित हुए। पाश्चात्य साहित्यकारों से मिलकर वे उनके साहित्य का रसास्वाद कर लौट आए। बैरिस्टरी असफल रही।

महाप्राण निराला का जन्म महिषादल बंगाल में हुआ था, अर्थात् वे बंगाल में जन्मे। बचपन में बांग्ला संस्कृति को अपनी आँखों से देखा। उन्होंने बांग्ला साहित्य का गहन अध्ययन किया था। उनकी कविताओं पर बांग्ला का प्रभाव परिलक्षित होता है। वे कहते थे मेरी दो मातृभाषाएँ हैं - बांग्ला और हिंदी। अपना जन्मदिन

वे बसंत पंचमी को ही मनाते थे, क्योंकि वे सरस्वती पुत्र थे। प्रारंभ में निराला ने रवींद्रनाथ की कविता पर पुस्तक लिखी थी - 'रवींद्र कविता कानन' निराला ने रवींद्रनाथ की कई कविताओं का बांग्ला अनुवाद भी किया। शुरू में वे बांग्ला में कविताएँ लिखा करते थे। बाद में बांग्ला में लिखना छोड़ दिया। उन्होंने उन कविताओं का संग्रह भी नहीं किया। अतः आज वे अनुपलब्ध हैं।

निराला बांग्ला एवं रवींद्रनाथ से प्रभावित थे। उनकी प्रसिद्ध कृति "राम की शक्तिपूजा" बांग्ला की इष्ट (माँ दुर्गा) की आराधना है। इसकी सामग्री उन्होंने कृतिवास रामायण से ग्रहण करते हुए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यक्त की है। राम की विजय और सीता की मुक्ति को हम राष्ट्र-मुक्ति या देशप्रेम मान सकते हैं। असत्य पर सत्य की विजय यानि अंग्रेज़ों पर विजय।

रवींद्रनाथ में भी देशप्रेम और देशभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी। तभी तो बांग्लादेश एवं भारत का राष्ट्रीय गान उनकी ही रचना है। मातृभूमि वंदना में वे आगे हैं -

नमो नमो नमो सुंदरी मम जननी बंगभूमि
सागर तीर स्निग्ध समीर, जीवन जुड़ाले तुमि
अवारित माठ गगनललाट चूमे तव पद धूलि
छाया सुनिविड शांतिर नीड छोटो छोटो ग्राम गुलि

दूसरी ओर "वर दे वीणा वादिनी वर दे" गीत के बिना कोई भी शैक्षिक कार्य आरंभ नहीं होता। शैक्षिक जगत इस रचना के लिए हमेशा निराला जी का ऋणी रहेगा।

रवींद्रनाथ के सांध्यगीत में प्रकृति प्रेम का वर्णन है। निराला की "संध्यासुंदरी" कविता भी प्रकृति के सजीव रूप को हमारे सामने रखती है -

दिगवसान का समय
मेद्यमय आकाश से
उतर रही है
यह संध्या सुंदरी परी-सी
धीरे-धीरे

प्रकृति की छवि रवीन्द्रनाथ की कविता, निराला की पत्रिका मतवाला से पहले कलकत्ते से प्रकाशित हुई। बाद में मिर्ज़ापुर से। बंगाल उनका पहला कर्मक्षेत्र था।

प्रकृति रवींद्रनाथ की कविता में ही नहीं गद्य में भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। रामगढ़ (नैनीताल) का प्रकृति सौंदर्य इस प्रकार पहाड़ का सौंदर्य, फूलों का समारोह, सेब, अमरूद, ओक आड़ू, खुमानी, अखरोट, गार्डन की निर्जन उपस्थिति से हिमालय पर्वतमाला झकझक कर रही है। उस समय बाज़ार हाट भी उतने नहीं थे। सिर्फ़ पहाड़ी रास्तों का समारोह, पत्थर बिछे घोड़ों के रास्ते।

'हेमंती' बांग्ला कुछ दूर नीचे था। जंगलों के मध्य से काशी नदी प्रवाहित होती है। पथरीला रास्ता, वृक्षों के बीच से हिमालय का चिरंतन सौंदर्य लक्षित होता है। अंत में पेड़-पौधे, पहाड़, रास्ते में पहाड़ी झरना। आँखों को तृप्त करने वाली शैल श्रेणी। एक घास के अग्रभाग की जो अनंत शक्ति व आनंद है, उससे पहाड़ी मार्ग की चढ़ाई-उतराई की जा सकती है। आकाश के उत्तर की ओर हिमालय की तुषार शुभ्र शिखर हम लोगों के पैदल चलने की क्लांति दूर कर रही है।"

प्रकृति के बीच रहने का मौका भी वे कभी नहीं चूकते। मुझे सितंबर 2023 को राँची में पहाड़ी पर स्थित टैगोर हिल देखने का मौका मिला। बड़े-बड़े पेड़-पौधे, जंगल व हरियाली के बीच जहाँ अक्सर रवींद्रनाथ अपना समय व्यतीत करते थे। वहाँ सूचनापट्ट पर लिखा था - "भूले हुए बुद्धिजीवी श्री ज्योतिन्द्रनाथ टैगोर भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण के प्रतीक एवं प्रथम नोबेल पुरस्कृत भारतीय श्री रवींद्रनाथ को सँवारने वाले एक कवि, गायक, चित्रकार रवींद्रनाथ टैगोर अपने बड़े भाई ज्योतिन्द्रनाथ की कृति हैं।"

निराला भारतमाता के अमर सपूत हैं। रवींद्रनाथ की तरह वे भी अपनी पहली कविता जन्मभूमि में जन्मभूमि की वंदना करते हुए कह उठते हैं -

बन्द मैं अमल कमल चिरसेवित चरण युगल,
शोभामय शान्तिनिलय पाप तापहारी।
मुक्त बंध, घनानंद मुद मंगलकारी,
बधिर विश्व चकित भीत सुन भैरवी वाणी,
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।

वे यह मानते हैं कि जब तक राष्ट्र-वंदन के माध्यम से राष्ट्र जागरण नहीं होगा, तब तक राष्ट्र मुक्ति संभव नहीं। मेरी मातृभूमि सबसे श्रेष्ठ 'जगन्महारानी' है। यहाँ महाकवि निराला एवं विश्वकवि रवींद्रनाथ दोनों में भावसाम्य परिलक्षित होता है। उनको भारतभूमि के कण-कण, नदी-नदी, वन-उपवन, पर्वत-पठार, शस्यश्यामला भूमि, हरित वनांचल में सर्वत्र हमारी संस्कृति का निनाद सुनाई देता है। यह संस्कृति विश्व-संस्कृति में श्रेष्ठ है, जैसे -

भारत ही जीवन धन ज्योतिर्मय परम रमण
सर सरित वन-उपवन

तपः पुंज गिरि कंदर
निर्झर के स्वर पुष्कर
दिक् प्रस्तर मर्म मुखर
मानव मानव – जीवन।

बहुसर्जक, बहुमुखी प्रतिभा के धनी-निराला जी की मूल प्रतिष्ठा कथाकार, निबंधकार, नाटककार, अनुवादक, आलोचक के रूप में नहीं थी, बल्कि वे युगशिल्पी, क्रांतिकारी महाकवि के रूप में विख्यात थे। उनकी आत्मा कविता में बसती थी, जैसे -

शेरों की माँद में आज आया है स्यार
जागो फिर एक बार।

यह कविता जागरण कविताओं में अन्यतम है। दोनों ही बौद्ध संस्कृति की करुणा और अहिंसा से प्रभावित है। निराला ने बुद्ध के बहाने सांसारिक भौतिकवाद के विकास की आलोचना की तथा रवींद्रनाथ ने बौद्ध संस्कृति के अनुराग के कारण ही शांतिनिकेतन में बौद्धशास्त्र के अध्ययन की व्यवस्था की थी।

निराला की कविता में ऐसे बहुत सारे तत्त्व हैं, जो रवीन्द्र की कविता से मेल खाते हैं। निराला पर रवींद्रनाथ के माध्यम से उपनिषदों के ईशावास्यमिदम् सर्वम् (ईशोपनिषद्) का प्रभाव दिखता है। साधारणत: प्रकृति, मनुष्य एवं ईश्वर रवींद्रनाथ की कविताओं के विषय रहे हैं। कवि जगत की इस विचित्र सृष्टि के बीच परम ब्रह्म के प्रकाश का अनुभव करता है, जो आनंद स्वरूप है - **"सीमार माझे असीम तुमि बाजाओं आपन सुर"**

निराला में भी कुछ ऐसा भाव साम्य है -

उस असीम में ले जाओ
मुझे न कुछ तुम दे जाओ

निराला का विचार रहस्यपरक है -

"नवजीवन की प्रबल उमंग
जा रही मिलने के लिए
पाकर सीमा प्रियतम असीम के संग।"

निराला को रवीन्द्र ने तथा रवींद्र को शैली, उपनिषद् तथा कबीर ने प्रभावित किया था।

रवींद्रनाथ के मन में सहज प्रकृति के प्रति तृष्णा थी। निसर्ग सौंदर्य से उन्होंने सौंदर्य को देखा, परंतु 1902 से 1907 के मध्य अपने व्यक्तिगत दुख-वेदना को उन्होंने झेला। मृत्यु को करीब से देखा। अपनी पत्नी (1902) पुत्री रेणुका (1903) पिता (1905) पुत्र शमीन्द्रनाथ (1907) की मृत्यु देखी, जिसे उन्होंने अपनी असीम शक्ति से जय किया। पत्नी वियोग में उन्होंने 27 कविताएँ लिखीं, जो "स्मरण" में संकलित हैं। इसके पश्चात् टूटे हुए रवींद्रनाथ ने स्वयं को ईश्वर और प्रकृति की गोद में समर्पित कर दिया। साथ ही, बाहरी जीवन की ललक लिए हुए 'एकला चेलो रे' के महानायक अकेलेपन की पगडंडी पर दूर तक निकल जाते हैं।

निराला को भी पारिवारिक मृत्युवेदना सहनी पड़ी। पत्नी विरह के साथ ही पुत्री वियोग का दुख झेला। पुत्री की याद में उन्होंने 'सरोज स्मृति' नामक कविता लिखी, जो हिंदी में अपनी तरह का अकेला शोकगीतों का संग्रह है। इन पंक्तियों को पढ़कर किसके आँसू नहीं बहने लगेंगे -

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहे आज जो नहीं कही
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर सकता मैं तेरा तर्पण

निराला ने काफ़ी आर्थिक अभाव झेले। पुत्री की मृत्यु पर शोक संतप्त हो विलाप करना हृदय विदारक है। बिखरे हुए निराला ने अपने को सँभाला और स्वयं को सृजन सागर में डुबो दिया। इसके अलावा दोनों ही बचपन में माँ की ममता व स्नेह से वंचित रहे।

जीवन के अंतिम क्षणों में जब उनकी अवस्था ढल रही थी तब वे एकाकीपन का अनुभव करते हैं। "मैं अकेला" में इसे अभिव्यक्त करते हैं। अपनी आत्मकथा में वे कहते हैं - जब पिताजी नहीं, माताजी नहीं, पत्नी नहीं, केवल मैं हूँ, केवल मैं, केवल मैं।

दोनों ने जगत् की वास्तविकता को प्रस्तुत किया है। यदि कुछ भव्य है, सुंदर है तब भी विनाश होगा। यदि कुछ दुख है, दीनता है, तो वह भी नष्ट होगी ही। इसलिए प्रकृति से बहुत कुछ सीखते हुए, अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए। पेड़ पर पत्ते, फूल, फल आते हैं और समय के साथ उसकी भव्यता समाप्त हो जाती है। एक समय ऐसा आता है, उसके पत्ते पीले पड़ जाते हैं उसका साथ छोड़ देते हैं, लेकिन पेड़ निराश नहीं होता। फिर से उस पर नये पत्ते आते हैं, उसकी ज़िंदगी चलती है। उसी प्रकार मनुष्य का जीवन है - कभी खुशी कभी गम।

इस प्रकार यह स्पष्ट है, देशकाल अलग होने पर भी समय और परिस्थितियों के वशीभूत बहुत कुछ एक-सा हो जाता है। निराला का व्यक्तिगत जीवन भी एक बिंदु पर रवींद्रनाथ के साथ मेल खाता है।

रवींद्रनाथ की कविता, जिसमें उन्होंने विश्व के श्रमजीवी,

कृषिजीवी, मेहनती मनुष्यों का वर्णन किया है, ये साधारण मनुष्य भूमिसंतान हैं। नामहीन, ख्यातिहीन पर कर्ममुखर। इनके ही तिल-तिल दान से सभ्यता समृद्ध से समृद्धतर होती हुई अग्रगति से चलती है। वे भविष्य-स्रष्टा हैं। जैसे -

ओरा काज कोरे, नगेर प्रान्तरे/ओरा काज कोरे देश देशांते
अंग बंग कलिंगेर समुद्रनदीर घाटे-घाटे
पांजाब बोम्बई गुजराटे/गुरु गुरु गर्जन गुन गुन स्वरे
दिनरात्रे गाँथा पडि दिन यात्रा करिछे मुखर
दुख सुख दिवसरजनी/मंद्रित कोरिया तोले जीवनेर महामंत्र ध्वनि
शत शत साम्रज्येर भग्नशेष पोरे/ओरा काज कोरे

उक्त कविता निराला की "तोड़ती पत्थर" की याद दिलाती है। निराला की दृष्टि ने इलाहाबाद की सड़क पर उस श्रमिक महिला को देखा, जो भीषण गर्मी में सड़क किनारे पत्थर तोड़ रही है। अभाव पीड़ित महिला का दारुण रूपांकन। इसके अलावा भिक्षुक और विधुर उनके मन में करुणा उत्पन्न करते हैं, जैसे-

वह आता/दो टूक कलेजे के करता/पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर है एक/चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को/भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता।

विश्वकवि रवींद्रनाथ ने अपने देश में ही नहीं देश से देशांतर विदेशों में उन मेहनती मज़दूरों को देखा, जो नूतन सभ्यता रचते हैं। ज़मींदारी के कार्य में, जब उनको नदी, समुद्र एवं सड़क से बंगाल के गाँवों में घूमना पड़ा था। तब उन्होंने प्रकृति को, मानव (नाविक, कृषक, मछुआरे, मज़दूर आदि) को निकट से देखा। ये लोग ही शहर, नगर, बंदरगाह, हवाई अड्डे के निर्माता हैं। ये लोग नवनिर्माण कर सभ्यता के शब्दहीन भविष्य निर्माता हैं। इस कविता में उन्होंने कृषकों का मार्मिक वर्णन किया है -

ओरा चिरकाल/टाने दॉड धरे थाके हाल
ओरा माठे-माठे/ बीज बोने, पाका धान काटे
ओरा काज कोरे, नगरे प्रान्तरे

रवींद्रनाथ की मानवतावादी दृष्टि की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि वे महलों में पलकर भी दीन-हीन जनों की भावनाओं से खुद को जोड़ते थे। उन्होंने छोटी कहानी भिखारिणी और करुणा लिखी। उनकी दो बीघा ज़मीन, कविता के रूप में लिखी गई कहानी गरीबों के शोषण का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती है। शोषित वर्ग की दुर्दशा को व्यक्त करती है।

अंत में, गीतांजलि के इस गीत में कवि समर्पित भाव से सर्वशक्तिमान ईश्वर से अपने घनिष्टतम से प्रार्थना या निवेदन करते हैं कि अपनी आत्मा, समाज व देश के विकास के लिए जिन चीज़ों की आवश्यकता है, वे सभी चीज़ें मानव मात्र को प्रदान करें, जिससे विश्व में शांति की स्थापना हो।

अंतर मम विकसित करो अंतरतर हे -
निर्मल करो, उज्जवल करो, सुंदर करो हे ।।
जाग्रत करो, उद्यत करो, निर्भय करो हे ।
मंगल करो, निरलस, निसंशय करो हे ।।

दोनों ही करुणा एवं वेदना के कवि रहे हैं। संसार के दुखी प्राणियों के दुख से दुखी हुए। दोनों का हृदय विश्व-प्रेम एवं मानव-प्रेम से भरा हुआ था। दोनों की रचनाओं में देश, जाति एवं मानव-कल्याण की भावना निहित है। विश्व कुटुंब की भावना से ओत-प्रोत विश्व-कल्याण "सर्वे भवंतु सुखिन, सर्वे संतु निरामया" का स्वप्न उन्होंने अपनी खुली आँखों से देखा। दोनों ही सरस्वती-पुत्र मानव नहीं महामानव थे।

संदर्भ सूची -

1. श्रीलंका हिंदी समाचार, वर्ष 5, अंक-5, जनवरी, 2021, स्वामी विवेकानंद केंद्र कोलंबो।
2. अनुसंधान, वर्ष 15, अंक-14, जुलाई-दिसंबर, 2019, अनुसंधान समिति, इलाहाबाद वि. वि. प्रयागराज।
3. हिंदी काव्य-संग्रह - केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, वर्ष 2000
4. अखिल भारतीय हिंदी साहित्य की परंपरा, के.हि.सं., आगरा, वर्ष 1990
5. हिरणयमयी बनर्जी (सं) रवींद्रनाथ, सूचना एवं प्रकाशन मंत्रालय, भारत सरकार, वर्ष 1971
6. नवल नंदकिशोर (सं) निराला रचनावली भाग-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 2014
7. डॉ. पी. पेरिसेट्टी श्रीनिवास राव (संपा) कवींद्र रवींद्र का भारतीय साहित्य पर प्रभाव, अक्षरा सहिती सांस्कृतिक पीठम् राजमहेद्रवरम्, विजयवाड़ा, आ.प्र. वर्ष 2016
8. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पितृस्मृति, जिज्ञासा पब्लिकेशन कलिकाता वर्ष 1988

anitaganguly1954@gmail.com

समकालीन हिंदी गज़ल में पर्यावरण चेतना

महावीर सिंह
कोटा, राजस्थान, भारत

मानव का प्रकृति के साथ संबंध सनातन है, क्योंकि मानव-जीवन का उद्भव एवं पोषण प्रकृति से ही होता है। इसलिए प्रकृति को मानव की जीवनदात्री भी कहा जाता है। प्रकृति के बगैर मानव के अस्तित्व की कल्पना भी असंभव है, क्योंकि मानव शरीर का सृजन जिन पंचमहाभूतों - जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि व आकाश से होता है, वे प्रकृति के ही अजैविक घटक हैं। इसके अतिरिक्त मानव का पालन-पोषण भी विभिन्न प्राकृतिक उपादानों से ही होता है। जीवन के लिए आवश्यक प्राणवायु भी पर्यावरण की ही देन है। इन बातों की अभिव्यक्ति मध्यकालीन कविता के कवि शिरोमणि 'तुलसीदास' की इस चौपाई व समकालीन हिंदी गज़लकार डी एम मिश्र के इन शेरों से हुई है -

"क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा ।।" (तुलसीदास)
"रक्त का संचार है पर्यावरण
साँस की रफ़्तार है पर्यावरण।
जन्म से लेकर मरण तक साथ दे
ज़िंदगी का सार है पर्यावरण" (डी एम मिश्र)

अतः मनुष्य का प्रकृति प्रेम नैसर्गिक है। साहित्य मानवीय चेतना व मानव-जीवन की प्रतिकृति होने के नाते मानव के इसी प्रकृति प्रेम की अभिव्यक्ति आदिकालीन संस्कृत काव्य से लेकर समकालीन हिंदी गज़ल में किसी-न-किसी रूप में परिलक्षित होती है। इस प्रकृति प्रेम के कारण जहाँ एक ओर कवि मन प्रकृति के शब्दातीत सौंदर्य पर रीझकर उसे कविता में रचता है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के विनाश से चिंतित हो, उसके संरक्षण के लिए अपनी कविता को माध्यम बनाकर समाज में पर्यावरण संरक्षण की चेतना जागृत करने का प्रयास करता है। हिंदी गज़लकारों का यह प्रकृति प्रेम आरंभ में प्रकृति के असीम स्वर्गिक सौंदर्य वर्णन के रूप में व्यक्त हुआ, वहीं बाद में यह मानव जनित व्यापारों के कारण प्रकृति या पर्यावरण के विकृत होते सौंदर्य एवं स्वास्थ्य और इसके कारण मानव-जाति पर मंडराते पर्यावरणीय संकट के खतरों के प्रति चिंता एवं चिंतन के बतौर पर्यावरण चेतना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। हिंदी गज़ल में प्रकृति के सौंदर्यशाली एवं प्रलयकारी दोनों रूप वर्णित हैं। परंतु समकालीन हिंदी गज़ल में इनमें से दूसरा रूप - पर्यावरणीय चेतना का स्वर अधिक मुखर है। समकालीन हिंदी गज़ल में पर्यावरण प्रदूषण के वैश्विक संकट के कारणों एवं दुष्प्रभावों के प्रति चिंता व पर्यावरण-संरक्षण की पैरवी के रूप में पर्यावरणीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

प्रकृति मानव के लिए एक अमूल्य उपहार है। लेकिन पर्यावरण का यह उपहार तभी तक वरदान है, जब तक मानव द्वारा पर्यावरण के प्रति सहजीविता एवं सह-अस्तित्व की जीवन-शैली अपनाते हुए प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकतानुसार सीमित मात्रा में ही दोहन किया जाए तथा प्रकृति या पर्यावरण का संपोषण व संरक्षण भी साथ-साथ किया जाए, अन्यथा यही उपहार अभिशाप भी बन जाता है। हमारी सनातन संस्कृति में प्रकृति के पूजन एवं संरक्षण की परंपराओं के मूल में यही प्रकृतिपोषी उद्देश्य चेतना रही है। लेकिन भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में पूँजीवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध में एक रेखीय विकास से मोहाविष्ट भोगवादी स्वार्थ लिप्सा में अंधा वैश्विक मानव समुदाय विज्ञान एवं तकनीक के सहारे प्रकृति पर स्वामित्व के अहम् भाव से पूरित है, जिससे प्रकृति का स्वास्थ्य एवं संतुलन बिगड़ रहा है। आज विकास की अंधी दौड़ में मानव-समाज प्रकृति के अजैविक घटकों - ज़मीन, जंगल, जलवाहिनियों (नदियों) एवं पहाड़ों को नष्ट करता जा रहा है, जिससे प्रकृति के ये अवयव क्षत-विक्षत होते जा रहे हैं, प्रकृति लहूलुहान हो रही है और उसका सौंदर्य, संतुलन एवं स्वास्थ्य निरन्तर क्षरित होता जा रहा है। अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति हेतु प्रकृति के अवैधानिक व अनियंत्रित दोहन का पूरा माफ़ियातंत्र खड़ा हो चुका है। इस तंत्र के द्वारा किए जा रहे अप्राकृतिक दोहन के कारण धरती माँ का पहाड़ रूपी हृदय विदीर्ण हो रहा है, उसके फेफड़े रूपी जंगल क्षयग्रस्त हो गए हैं तथा धरती की रक्त वाहिनियाँ रूपी नदियाँ विषाक्त जल रूप रक्त को ढो रही हैं। इस अकूत दोहन एवं इससे प्रकृति के बिगड़ते सौंदर्य की चिंताजनक अभिव्यक्ति आज की हिंदी गज़ल में हुई है -

"पेड़ रोते हैं कुल्हाड़ा देखकर
किस कदर लाचार है पर्यावरण।" (डी एम मिश्र)
"माफ़िया के मक़तल में आज मेरी बारी है
जल-ज़मीन-जंगल की जंग रोज़ जारी है
काट लें हरे जंगल, खोद लें नदी परबत
मुफ़्त की ये दौलत तो हर किसी को प्यारी है" (राम मेश्राम)

"मोड़ पर, समतलों पर, चढ़ावों पे है,
दृष्टि मेरी पहाड़ों के घावों पे है।" (वशिष्ठ अनूप)
"शजरहीन जंगल, खतम होते पर्वत
नदी जल की प्यासी, हवा में ज़हर है।" (वशिष्ठ अनूप)
कहाँ है धरती कहाँ है जंगल कहाँ है बादल रहे जो कल तक
घुला है जो कुछ यहाँ हवा में कहूँ ये कैसे ज़हर नहीं है। (विनय मिश्र)

पर्यावरण, जल, मिट्टी, वायु जैसे अनेक अजैविक एवं पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं, अपघटक जैसे बहुत-से जैविक घटकों से मिलकर बना होता है। मानव सहित समस्त जीव-जगत के जीवन एवं सम्यक विकास के लिए पर्यावरण के इन तत्त्वों में संतुलन बना रहना नितांत ज़रूरी है। यदि किसी कारण से पर्यावरण के किसी एक घटक में असंतुलन या विकार उत्पन्न होता है, तो उसका प्रभाव अन्य घटकों पर भी पड़ता है और पर्यावरण विकृत होता है, जिसका जीव-जगत पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, तो उसे पर्यावरण प्रदूषण कहा जाता है। वर्तमान में मानव द्वारा पर्यावरण के अजैविक घटकों - ज़मीन, जंगल और जल के अत्यधिक व अनुचित दोहन एवं अन्य कारणों से ये अजैविक घटक विकृत एवं प्रदूषित हो रहे हैं, जिससे पारिस्थितिकीय असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। यूँ कहें कि वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण एवं मृदा-प्रदूषण का स्तर लगातार भयावह होता जा रहा है, जिससे मानव व जीव-जगत का जीवन खतरे में है। हिंदी गज़लकारों ने पर्यावरण प्रदूषण के विविध रूपों - वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण एवं मृदा-प्रदूषण के विभिन्न कारणों एवं प्रभावों को अपने शेरों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके जीवननाशी प्रभाव को बयाँ करता यह शेर उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

"हवा में ज़हर है और पानी भी है ज़हरीला
कहाँ तक ज़िंदगी मरने से अब देखें बचाती है।" (विनय मिश्र)

मानव व जीव-जगत के लिए सबसे ज़रूरी प्राकृतिक तत्त्व शुद्ध हवा है। लेकिन वायु प्रदूषण के कारण शुद्ध एवं स्वच्छ हवा की उपलब्धता आज एक बहुत बड़ी चुनौती बन गई है। शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं अन्य विकास योजनाओं के लिए अत्यधिक मात्रा में पेड़ों को काटे जाने से प्राणवायु प्रदाता पेड़-पौधों की संख्या लगातार घट रही है, जिससे वायु प्रदूषण निरंतर बढ़ रहा है। कल-कारखानों की चिमनियों से निकलने वाली ज़हरीली गैसों, पेट्रोल-डीज़ल जैसे जीवाश्मी ईंधन से चलने वाले वाहनों के धुएँ से निकलने वाली विषाक्त गैसों, कोयले के दहन से निकलने वाले धुएँ एवं विस्फोटक पदार्थों के धुएँ एवं गैसों के कारण वायु प्रदूषण का स्तर व संकट लगातार बढ़ता जा रहा है। इस प्रदूषण के कारण महानगरों व शहरों में पर्याप्त प्रकाश के बावजूद धुँध एवं कोहरा छाया रहता है, जिससे साँस लेना भी दूभर हो जाता है तथा श्वसन संबंधी अनेक बीमारियाँ जन्म लेती हैं। वायु-प्रदूषण के कारण मानव सहित सभी जीव-जंतुओं का जीवन संकट में है। बढ़ता वायु-प्रदूषण शहरों के साथ आज गाँवों की भी समस्या बन गया है। जिस पर हिंदी गज़लकार लिखते हैं -

"हवा हुई ज़हरीली कुछ,
नगर छोड़ सब शहर गए।" (वेद मित्र शुक्ल)
"मिल की चिमनी का धुआँ हर खेत पर छाने लगा
अब शहर वाला प्रदूषण गाँव तक आने लगा।" (चन्द्रसेन विराट)
"बदबू देते हैं पवन के झोंके,
ऊँचे उड़ते विमान रोते हैं।" (शरद मिश्र)
"डीज़ल की बू में फूल एक
धीरे-धीरे लापता हुआ।" (सूर्यभानु गुप्त)
"इस कदर फैला हवाओं में ज़हर है
धुँध में डूबा हुआ सारा शहर है।" (रोहिताश्व अस्थाना)

हवा के बाद जीव-जगत के लिए दूसरा सबसे ज़रूरी प्राकृतिक तत्त्व जल है। परंतु बढ़ते जल प्रदूषण के कारण पीने के लिए शुद्ध पेयजल की उपलब्धता भी आजकल बड़ी चुनौती हो गई है। घरों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों, फ़ैक्ट्रियों से निकलने वाले अपशिष्ट तरल या घुलनशील रासायनिक कचरे, खेती में प्रयुक्त कीटनाशकों व रासायनिक खादों के जल-स्रोतों में बहाव एवं अन्य मानवीय गतिविधियों के कारण जल-प्रदूषण का स्तर लगातार बढ़ता जा रहा है। नदी, झील, तालाब से लेकर समुद्र तक सभी प्रदूषित होते जा रहे हैं। जिससे शहर से लेकर गाँव तक सभी जल-प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त होते जा रहे हैं। जल-प्रदूषण का प्रभाव मानव के साथ-साथ सभी जलीय जीव-जंतुओं पर भी पड़ता है। बढ़ते जल-प्रदूषण के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए हिंदी गज़लकार लिखते हैं -

"गाँव के नालों नदी के तीर में बहता हुआ
शहर वाले कारखानों का ज़हर जाने लगा।" (चन्द्रसेन विराट)
"शहर का सारा कीचड़ बह रहा है
नदी में बूँद भर पानी नहीं है।" (वशिष्ठ अनूप)
"पानी-पानी को तरसती सोच में डूबी नदी
हो रही हर रोज़ दूषित ज़िंदगी खतरे में है।" (वशिष्ठ अनूप)
"हर नदी के लिए गंदगी सागर के चूमे पग

बदसूरती शायद बढ़ी इसी से व्हेल में।" (शरद मिश्र)

मिट्टी में ऐसे विषाक्त पदार्थों या तत्त्वों की मात्रा बढ़ जाना, जिससे उसके जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन होता है, जिसका विपरीत प्रभाव मानव सहित समस्त जीव-जगत के पोषण व मिट्टी की उत्पादकता पर पड़ता है, मृदा-प्रदूषण कहलाता है। मृदा-प्रदूषण आज एक गंभीर पर्यावरणीय चुनौती है। कृषि में कीटनाशकों एवं रासायनिक खादों के अत्यधिक प्रयोग, खनन गतिविधियों, कल-कारखानों के ठोस अपशिष्ट एवं प्लास्टिक कचरे आदि कारणों से मृदा प्रदूषित होती है। वनों की कटाई, बाढ़ एवं अन्य कारणों से मिट्टी की परत का बह जाना - मृदा-अपरदन भी मृदा-प्रदूषण का ही एक रूप है। मृदा-प्रदूषण से मिट्टी बंजर एवं अनुपजाऊ हो जाती है। इसके साथ ही मृदा-प्रदूषण के कारण कैंसर, त्वचा संबंधी रोगों एवं अन्य बीमारियों का खतरा उत्पन्न होता है। हिंदी गज़ल में मृदा-प्रदूषण पर चुनिंदा गज़लकारों ने अपनी बात रखी है -

"इतरा के कह रहा है कि हम बम से कम नहीं
टुकड़ा हवा में उड़ता हुआ पॉलिथीन का।" ('श्याम कश्यप बेचैन')

"जिएँ तो प्लास्टिक, मरें तो प्लास्टिक
ज़मीं को कूड़े की खान करना।" (राम मेश्राम)

"कचड़ा, कबाड़, प्लास्टिक उपहार में मिले
सैलानियों के द्विज हुए हैं मेज़बाँ पहाड़।" (द्विविजेन्द्र द्विज)

"मिट्टी बही चट्टानें खिसकती चली गईं,
जाएगी निरर्थक सनम पहाड़ की तलाश।" (शरद मिश्र)

पर्यावरण प्रदूषण अपने तमाम रूपों (वायु, जल, मृदा) में संपूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर चुनौती है। पर्यावरण प्रदूषण के अनेक दुष्प्रभाव सामने आने लगे हैं, जिनमें से एक भयंकर दुष्प्रभाव वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग) है। वनोन्मूलन, अत्यधिक औद्योगीकरण, जीवाश्म ईंधनों के अतिशय प्रयोग एवं अन्य कारणों से कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि गैसों का सांद्रण वायुमंडल में निरंतर बढ़ता जा रहा है। ये गैसें वायुमंडल में एक परत बनाती है, जो सूर्य से आने वाली किरणों को धरती पर तो आने देती है, पर धरती से परावर्तित किरणों को वायुमंडल के बाहर जाने से रोकती है, जिससे संपूर्ण धरती का तापमान बढ़ रहा है, जिसे ग्लोबल वार्मिंग या वैश्विक तापन कहते हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार 21वीं सदी के अंत तक धरती का तापमान डेढ़ डिग्री से 5 डिग्री के बीच बढ़ जाएगा, जो पिछले दस हज़ार वर्षों में हुई वृद्धि से कहीं ज़्यादा है। वैश्विक तापमान में होती यह बढ़ोतरी कई गंभीर समस्याओं की जनक है। हिंदी गज़लकार मानव को ही इसके लिए ज़िम्मेदार मानते हुए इसके प्रति चिंता व्यक्त करते हैं -

"गरम होती सतह धरती की मरती सूखती नदियाँ
वनों ने ये ही लौटाया है अत्याचार के बदले।" (कमलेश भट्ट 'कमल')

"धरती पे हमने आग लगा दी है हर तरफ़
आकाश से बरसा जो शरर कैसा लगेगा।" (वशिष्ठ अनूप)

"सूरज का ये गोला हमें निगलने वाला है
हमने ही भट्टी में इसके कोयला डाला है।" (प्रताप सोमवंशी)

ग्लोबल वार्मिंग के कारण धरती पर पेयजल के सबसे बड़े स्रोत हिम ग्लेशियरों के पिघलने की दर लगातार बढ़ती जा रही है। जिससे एक ओर आने वाले समय में पेयजल की समस्या उत्पन्न होगी, तो दूसरी ओर उनके पिघलने से समुद्री जलस्तर लगातार बढ़ता जा रहा है। एक मोटे अनुमान के अनुसार विगत एक सदी में समुद्र का जलस्तर 15 से 20 सेंटीमीटर बढ़ गया है। तथा 21वीं सदी के अंत तक इसके 20 से 50 सेंमी. तक बढ़ जाने की संभावना है। इसके कारण जहाँ एक ओर मालदीव जैसे अनेक समुद्र तटीय देश व द्वीप जलमग्न हो जाएँगे और दुनिया की बहुत-सी आबादी बेघर हो जाएगी। वहीं दूसरी ओर समुद्र के खारे जल के ऊपर आ जाने से पेयजल की भयंकर समस्या हो जाएगी। पेयजल स्रोत ग्लेशियरों के पिघलने पर चिंता व्यक्त करते हुए हिंदी गज़लकार लिखते हैं -

"हिमनद सिकुड़ रहे हैं जो मौसम की मार से,
कल की कहाँ बुझा सकेंगे तिश्नगी पहाड़।" (प्रेम भारद्वाज)

पर्यावरण प्रदूषण का एक भयंकर दुष्प्रभाव वैश्विक तापन के कारण जलवायु परिवर्तन के रूप में सामने आया है। जलवायु परिवर्तन तापमान, वर्षण एवं ऋतु चक्र से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। इसके कारण गर्मी, सर्दी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि और तूफ़ान जैसी अतिरेकी मौसमी घटनाएँ सामने आने लगी हैं। इसके कारण ही बाढ़, सूखा, सुनामी जैसे तूफ़ानी आपदाओं में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। सर्दी में गर्मी, गर्मी में बरसात, सर्दी में अत्यधिक सर्दी, गर्मी में अत्यधिक गर्मी, रेगिस्तान में बाढ़, तो अधिक वर्षा वाले स्थानों में सूखा, एक ही दिन में कई सालों की बरसात जैसे अनेक मौसमी बदलाव जलवायु परिवर्तन से जुड़े हुए हैं। मौसम के ये बदलाव एवं मौसम की अतिवादी स्थितियाँ इसी जलवायु परिवर्तन की देन है, जो संपूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर चुनौती है। इस जलवायु परिवर्तन के कारण ऋतुओं के अनुसार होने वाले परिवर्तन भी अब प्रकृति एवं पर्यावरण में दृष्टिगत नहीं होते हैं, बल्कि ऋतु के विपरीत मौसम भी देखने को मिल रहा है। हिंदी गज़लकार बढ़ते प्रदूषण से नाराज़

प्रकृति की नाराज़गी एवं क्रोध को जलवायु परिवर्तन से जोड़कर इस समस्या को उजागर करते हुए लिखते हैं -

"हम सूखती नदियों का बदन देख रहे हैं
फागुन में बहारों का रुदन देख रहे हैं।" (आचार्य भगवत दुबे)
"एक सूरज बरस रहा है अब
कैसी बरसात का ये मौसम है।" (विनय मिश्र)

अतिवृष्टि-अनावृष्टि -

"औचक फटे बादल तेरे कल रात झमाझम
क्या टूट के बरसी कोई बरसात झमाझम।
रूठे तो सूखा दे भुई, टूटे तो डुबो दे
आषाढ़-ता-भादो की खुराफ़ात झमाझम।" (राम मेश्राम)

तूफ़ानी आपदा (सुनामी) - "रोने के लिए भी न वहाँ कोई बचा था
सब ले गया सागर ही तो साथ अपने बहाकर।" (विनय मिश्र)

पर्यावरण प्रदूषण के कारण जलवायु परिवर्तन से मौसम में आ रहे बदलावों का दुष्प्रभाव यह हो रहा है कि धरती के जल-स्रोतों में जलराशि धीरे-धीरे घटती जा रही है, जलस्रोत सूखते जा रहे हैं, भूमिगत जलस्तर निरंतर कम होता जा रहा है, वनस्पतियाँ सूखती जा रही हैं, मिट्टी की उर्वरा शक्ति लगातार घट रही है, मिट्टी बंजर होती जा रही है तथा सरसब्ज इलाके रेगिस्तान में तब्दील होते जा रहे हैं। इससे संपूर्ण वैश्विक समुदाय के सामने खाद्यान्न एवं पेयजल की एक गंभीर समस्या खड़ी होने वाली है। हिंदी गज़लकार लिखते हैं -

"छोड़ना ही पड़ा घर उसे हो विवश
आजकल रेत में रह रही है नदी।" (चन्द्रसेन विराट)
"हलक सूखे हैं नदी के हँस रहे अंधे कुएँ
रो रही है अंचलों में ढाँप के मुँह क्यारियाँ।" (राजशेखर)

रेगिस्तान का प्रसार -

"रेत कर रही है कब्ज़ा
पानीदार ठिकानों पर।" (आचार्य सारथी रूमी)
"कल तक लेकर जाती थी जो नदियों तक
उन आँखों में रेत बिछी है मीलों तक।" (विनय मिश्र)

पर्यावरण प्रदूषण का एक दुष्प्रभाव वायुमंडल की ओजोन परत का धीरे-धीरे क्षरण होना है। वनों की कटाई, अत्यधिक औद्योगीकरण एवं विलासितापूर्ण जीवन-शैली के कारण क्लोरोफ्लोरोकार्बन, कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन गैसों की मात्रा बढ़ जाने से वायुमंडल की ओज़ोन परत धीरे-धीरे क्षय होता जा रहा है। यह ओज़ोन परत सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी विकिरणों से धरती की रक्षा करती है। इसमें छिद्र हो जाने से पराबैंगनी किरणें धरती तक पहुँच रही है, जिससे प्रतिरक्षा क्षमता में कमी, त्वचा कैंसर एवं अनेक बीमारियाँ जन्म ले रही हैं। ओजोन परत के छिद्र को मानव व अन्य जीवों के लिए अभिशापी छिद्र बताते हुए हिंदी गज़लकार लिखते हैं -

"शब्द थे कुछ इस तरह ओज़ोन के उस छिद्र के,
भूल मत जाना मुझे मानव तेरा अभिशाप हूँ।" (शरद मिश्र)

पर्यावरण प्रदूषण का एक दुष्प्रभाव अम्लीय वर्षा भी है। जीवाश्मी ईंधन के दहन, विनिर्माण प्रक्रियाओं एवं अन्य मानवीय या प्राकृतिक गतिविधियों से उत्सर्जित सल्फ़र डाइ ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड वर्षा जल के साथ मिलकर जब सल्फ़्यूरिक एसिड एवं नाइट्रिक एसिड के रूप में बरसात की बूँदों के साथ धरती पर गिरती है, तब इसे अम्लीय वर्षा कहा जाता है। अम्लीय वर्षा जन्तु एवं वनस्पति जगत दोनों के लिए ही क्षतिकारक है। यह धरती के उपजाऊपन को कम कर उसे बंजर बनाती है, जिससे पौधों का विकास अवरुद्ध होता है। अम्लीय वर्षा जल के जल-स्रोतों में बहाव से जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को भारी नुकसान होता है। पानी पीने योग्य नहीं रह जाता है। इसके साथ ही स्मारकों एवं इमारत को भी क्षति होती है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण अमृतमयी दूधिया बारिश के स्थान पर तेज़ाबी बारिश होने की समस्या व चिंता हिंदी गज़ल में व्यक्त हुई है -

"बारिशें होती हैं अब तेज़ाब की
दूधिया बूँदों का सावन अब कहाँ।" (माधव कौशिक)
"क्या हुआ कि चाँदनी में जिस्म अब जलने लगे हैं
यह अजब बारिश हमें तेज़ाब से नहला रही है।" (वशिष्ठ अनूप)

पर्यावरण प्रदूषण निरंतर बढ़ता जा रहा है तथा उसके दुष्प्रभाव भी सामने आने लग गए हैं। फिर भी वैश्विक मानव समुदाय पर्यावरण या प्रकृति की क्षति से पूरी तरह बेखबर हो, उसके अंधाधुंध दोहन में लगा हुआ है। मानव के पर्यावरण विरोधी कृत्यों को देखकर लगता है कि मानव पेड़ों पर कुल्हाड़ी चलाकर अपने खुद के पैर काट रहा है, अपनी साँसों की डोर काट रहा है, पहाड़ों को खोदकर अपनी कब्र खुद खोद रहा है। ऐसी स्थिति में उसे विनाश से बचाने वाला कोई नहीं है। मानो वह खुद आत्महत्या करना चाहता है और दोष प्रकृति पर मढ़ रहा है। जंगलों को काटना मानो साँसों की चोरी या सामूहिक आत्मदाह है। हिंदी गज़लकार वैश्विक मानव समुदाय के पर्यावरण विरोधी कदमों को सामूहिक आत्महत्या का प्रयास मानकर उसे सावधान करते हुए लिखते हैं -

"ये समझो कि कटता जंगल
सब की साँसें चुरा रहा है वो।" (वशिष्ठ अनूप)
"वृक्ष काटे जला दिए जंगल
आदमी खुद विनाशकारी है।" (आचार्य भगवत दुबे)
"तुम कुल्हाड़ी हाथ में लेकर खड़े तो हो मगर
याद रखना जंगलों के हर शजर में आग है।" (महेश अग्रवाल)
"दूसरों को क्या पड़ी है फ़िक्र कोई क्यों करे
हम सभी तैयार हैं जब खुदकुशी के वास्ते।" (कमलेश भट्ट 'कमल')

वर्तमान में भौतिकता की दौड़ में अंधा मनुष्य प्रकृति के अंगों - जंगल, ज़मीन, पहाड़, नदियाँ आदि को नष्ट करता जा रहा है। प्रकृति के इन अवयवों को क्षरित कर उसे घायल कर रहा है तथा उसकी तरफ़ से ऐसा संवेदनहीन बना हुआ है, मानो उसे प्रकृति से कोई लेना-देना नहीं है। वह किसी दूसरे ग्रह पर रहने जा रहा है। हिंदी गज़लकार प्रकृति के प्रति क्रूर बने हुए वैश्विक मानव समुदाय को बताना चाहते हैं कि भौतिक उन्नति के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण या प्रकृति के साथ सहजीविता आवश्यक है। पर्यावरण की कीमत पर भौतिक उन्नति ठीक नहीं है, क्योंकि मानव चाहे कितनी भी भौतिक उन्नति कर ले, प्राकृतिक तत्त्वों के अभाव में उसका जीवन संभव नहीं है। जीवन के लिए शुद्ध ताज़ा हवा एवं शुद्ध पेयजल नितांत आवश्यक है और मानव किसी फैक्ट्री में इनका उत्पादन नहीं कर सकता है। इसलिए धरती के ये अवयव और पर्यावरण सुरक्षित है, तभी तक उसका जीवन और भविष्य सुरक्षित है, तभी तक समस्त जीव-जगत सुरक्षित है और तभी तक ब्रह्मांड सुरक्षित है। हिंदी गज़लकार वैश्विक मानव समुदाय को पर्यावरण संरक्षण के प्रति सावधान करते हुए लिखते हैं -

"नक्षत्रों पर जाएगी
छोड़ धरा की लाश सदी।" (चन्द्रसेन विराट)
"तरक्की ठीक है इसका ये मतलब तो नहीं लेकिन
धुआँ हो, चिमनियाँ हो, फूल कम हो, तितलियाँ कम हो।" (कमलेश भट्ट 'कमल')
"ज़िंदगी के वास्ते कुछ भी करो लेकिन
ज़िंदगी चलती नहीं है बिन हवा-पानी।" (विनय मिश्र)
"ये फूल, बच्चियाँ, नदियाँ, पहाड़ ये सागर
ये सब बचेंगे तो सारा जहाँ सुरक्षित है।
हरेक ग्रह नक्षत्र कहकशाँ सुरक्षित है
ज़मीं बचेगी तभी आसमाँ सुरक्षित है।" (वशिष्ठ अनूप)

मानव द्वारा प्रकृति को पहुँचाए गए नुकसान के दुष्परिणाम-स्वरूप धरती से वनस्पतियाँ सूख रही हैं, जल स्रोत घटते जा रहे हैं। यदि मानव द्वारा प्रकृति का इसी प्रकार क्षरण किया जाता रहा, तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य को जीने के लिए शुद्ध हवा एवं पीने के लिए शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं होगा। ऐसी स्थिति में वैश्विक मानव समुदाय तमाम भौतिक उन्नति व साधनों के बावजूद हवा, पानी जैसे ज़रूरी प्राकृतिक तत्त्वों के अभाव में ज़िंदा नहीं रह पाएगा। हिंदी गज़लकार वशिष्ठ अनूप उस स्थिति में मानव की जीने की छटपटाहट भरी बेचैन दशा की भविष्यवाणी करते हुए लिखते हैं -

"नदी के पार के बदले अगर हम विष पिलाएँगे।
तो एकेक बूँद पानी के लिए हम तरस जाएँगे।
पहाड़ों के दिलों के घाव गर बढ़ते रहे यूँ ही
तो एक दिन क्रुद्ध होकर वे भी हम पर कहर ढाएँगे।
वनस्पतियाँ हमारी धरती माता की सहेली हैं
इन्हें मारा अगर तो माँ के हत्यारे कहाएँगे।
हवाओं में ज़हर घुलता रहा अगर दिन-ब-दिन यूँ ही
तो एक दिन साँस लेने के लिए हम छटपटाएँगे।" (वशिष्ठ अनूप)

विज्ञान एवं तकनीक के इस दौर में तकनीक के सहारे प्रकृति पर विजय भाव से पूरित अहंकारी एवं प्रकृति के प्रति हृदयहीन वैश्विक मानव समुदाय घायल क्षत-विक्षत प्रकृति की करूण पुकार व विलाप नहीं सुन रहा है, लेकिन जब यही प्रकृति क्रुद्ध हो अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का बदला लेते हुए संतुलन स्थापित करेगी, तब मानव का विश्व विजय का सारा मद चूर-चूर हो जाएगा। तब प्रकृति की रूलाई के आँसुओं के कयामती सैलाब में न तो मानव व जीव-जगत बचेगा, न ही यह धरती। हिंदी गज़लकार मानव जाति के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए उसे प्रकृति के प्रति संवेदनशील हो, प्रकृति के संरक्षण की हिदायत देते हुए लिखते हैं -

जब कभी बनाएगी धरती अपना संतुलन,
हम भी नहीं बच पाएँगे हो आपको ज्ञातव्य। (शरद मिश्र)
विश्व विजय का सारा मद उतरा उनका
विपदाएँ जब पहुँची दंभी देशों तक। (विनय मिश्र)
गर्क कर देगा अश्क का सैलाब
तह में मत जा मेरी रुलाई की। (श्याम कश्यप बेचैन)

पर्यावरण या प्रकृति स्वस्थ एवं सुरक्षित है, तभी तक जीवन सुरक्षित है, क्योंकि जीवन के लिए ज़रूरी तत्त्व प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं। हमारी पुरातन संस्कृति में इसीलिए प्रकृति के पूजन की परंपरा रही है। हिंदी गज़लकार प्रकृति या पर्यावरण में पेड़ों के महत्त्व को वर्णित करते हुए प्रकृति के संरक्षण की चेतना जागृत

करते हैं। वनोन्मूलन या पेड़ों की कटाई वर्तमान की पर्यावरणीय समस्याओं का एक बहुत बड़ा कारण है। पेड़ों का संरक्षण इन पर्यावरणीय समस्याओं का एकमात्र समाधान है। पेड़ों से ही मानव एवं अन्य जीवों के जीवन के लिए आवश्यक आधारभूत चीज़ें हवा, पानी एवं भोजन प्राप्त होते हैं। हिंदी गज़लकार हर तरह से सक्षम मानव को अपने भविष्य को बचाए रखने के लिए अपनी क्षमता का प्रकृति के संरक्षणार्थ सदुपयोग करने की सीख देते हुए लिखते हैं -

"ये सूरज ये चंदा ये पर्वत ये नदियाँ
ये जंगल सभी की खुशी के लिए है।
बचाकर बचोगे मिटाकर मिटोगे
ये संदेश अपनी सदी के लिए है।" (वशिष्ठ अनूप)
"धूप मिट्टी हवा और बारिश का
एक नायाब जायका है पेड़।" (विनय मिश्र)
"हमारे जंगलों की बादलों के साथ यारी है
यह साँसे भी हमें देंगे हमेशा हमको जल देंगे।" (वशिष्ठ अनूप)
"हित के लिए प्रकृति के रहो आज से प्रतिश्रुत,
इतना तो नहीं है कि तुम क्षमता विहीन हो।" (शरद मिश्र)

समकालीन हिंदी गज़लकार प्रलयकारी पर्यावरणीय संकट से बचाव एवं मानव-जीवन के अस्तित्व के लिए पर्यावरण संरक्षण की ज़ोरदार वकालत करते हैं। इसके लिए वे वैश्विक मानव-समाज को पेड़ों से प्रेम करने तथा पेड़ लगाकर धरती का शृंगार करने के लिए प्रेरित करते हैं। हिंदी गज़लकार पर्यावरण संरक्षण के लिए मानव-समाज को प्रेरित ही नहीं करते, अपितु वे खुद भी इसके लिए प्रतिबद्ध हैं। उनकी एकमात्र कामना जीव-जगत के हितार्थ पर्यावरण-संरक्षण की है। इसलिए यदि उन्हें अवसर मिले, तो वे देवताओं से हरे-भरे जंगलों से युक्त जीवनपोषी स्वस्थ एवं सुंदर पर्यावरण का ही एकमात्र वरदान माँगना चाहते हैं -

"जीवन को बढ़ाना है तो ऐसा हो तरु से प्रेम,
जैसा था घनानन्द को अपनी सुजान पर।" (शरद मिश्र)
"पेड़-पौधे ये धरती के सिंगार हैं
जितना संभव हो इनको सजाया करो।" (वशिष्ठ अनूप)
"उतरा हूँ एक ऐसी नदी के बचाव में
बहते हुए जिसे यहाँ देखा नहीं कभी।" (विनय मिश्र)
"दिनों-दिन ज़हर फैलता जा रहा है,
हवा फूल, ख़ुशबू बचाने की ज़िद है।" (वशिष्ठ अनूप)
पूछे जो हमसे देवदूत माँगेंगे यही वर,
वन हों घने-घने उनमें बने हों कई स्तूप।" (शरद मिश्र)

संदर्भ ग्रंथ -

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्किंधाकांड (टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार मोटा टाइप सचित्र सटीक) गीताप्रेस, गोरखपुर
2. डी एम मिश्र, वो पता ढूँढें हमारा, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2019
3. राम मेश्राम, आग में उड़ान, अंतिका प्रकाशन प्रा. लि. गाजियाबाद, 2024
4. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006
5. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, साहित्य भंडार, प्रयागराज, द्वितीय संस्करण 2022
6. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशें, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2020
7. विनय मिश्र, ज़िंदगी आने को है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली 2023
8. वेद मित्र शुक्ल, जारी अपना सफ़र रहा, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2019
9. हरेराम नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017
10. सं. प्रणय, शरद सर्जना : गज़ल खण्ड-तीन, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2020
11. हरेराम नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017
12. हरेराम नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन खंड-3
13. हरेराम नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार एक अध्ययन, भावना , भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018
14. सं. ज़हीर कुरेशी एवं मीनाक्षी दुबे, सादगी का सौंदर्य : वशिष्ठ अनूप का सृजन, साहित्य भंडार, प्रयागराज,.2023
15. राम मेश्राम, आग में उड़ान, अंतिका प्रकाशन प्रा. लि. गाजियाबाद, 2024
16. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023
17. हरेराम समीप, हिंदी गज़ल की पहचान, एनीबुक, 2023
18. प्रेम भारद्वाज, अपनी ज़मीन से, ब्रज प्रकाशन, हिमाचल प्रदेश, 2005
19. विनय मिश्र, लोग जिंदा है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2021

th.mahaveersingh@gmail.com

नारी-विमर्श का सृजनात्मक परिदृश्य

डॉ. भाऊसाहेब नवले
महाराष्ट्र, भारत

पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य में नारी-विमर्श की पहल नई नहीं है। नारी-विमर्श का अपना लंबा इतिहास है। वर्तमान संदर्भ में या बदलते जीवनगत संदर्भ में नारी-विमर्श के नारी-मुक्ति, स्वातंत्र्य, अस्तित्व, अस्मिता से संबंधित नारों को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। नारी-विमर्श के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए सखुविंदर कौर बाठ कहती हैं -

"नारी-विमर्श नारी-मुक्ति से संबद्ध एक विचारधारा है। यह ऐसा विमर्श है, जो नारी जीवन के छुए-अनछुए पीड़ा जगत् के उद्‌घाटन के अवसर उपलब्ध कराता हैं।"

नारी-विमर्श को विभिन्न रचनाकारों तथा समीक्षकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। लेकिन कहना गलत न होगा कि नारी-विमर्श के केंद्र में नारी विषयक विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्ति देने में ही महिला लेखिकाएँ अपना दायित्व मानती हैं। विमर्श के केंद्रीय स्वर के रूप नारी-मुक्ति संघर्ष परिलक्षित होता है। डॉ. कमल कुमार कहती हैं -

"अमरीका में, 1965 में नारियों की स्वाधीनता व अधिकारों को लेकर बेंटी फ़्रायडेन ने 'द फ़ेमिनिन मिस्टीक' नामक चर्चित पुस्तक लिखी। 1966 से महिलाओं के राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई, जिसके आधार पर 1970 के आसपास के आंदोलन हुए।"

भले ही नारी-मुक्ति के आंदोलन का सूत्रपात पश्चिम में हुआ हो, वहाँ के नारी आंदोलन एवं संगठनों की पृष्ठभूमि अलग थी। वहाँ नारी आंदोलन के केंद्र में 'सेक्स के निषेध' का नारा था। लेकिन भारतवर्ष की संस्कृति एवं नारी-विमर्श का धरातल अलग परिलक्षित होता है। जहाँ एक ओर पश्चिम में शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ था, वहाँ दूसरी ओर भारतीय नारी लंबे अंतराल तक 'शिक्षा' से वंचित एवं उपेक्षित रही। उसके खोखलेपन एवं अन्याय-अत्याचार का मुख्य कारण यही रहा। भारतीय समाज सदियों से धार्मिक प्रथा-परंपराओं की आड़ लेता रहा है, जिससे उसके विकास में अवरोध पैदा हुआ। गौरतलब है कि जब पश्चिम में 'सेक्स विरोधी आंदोलनों की नींव डाली गई, उसी समय भारत में राजाराम मोहनराय ने नारियों को उनके अस्तित्व का एहसास कराया और स्त्रियों को शोषण से राहत दिलाने का कार्य प्रारंभ किया। भारत में रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज और प्रार्थना समाज ने राष्ट्रीय जागरण के साथ-साथ स्त्री-स्वाधीनता के आंदोलन के लिए भी कार्य किया। भीकाजी कामा, एनी बेसंट, सरोजनी नायडू, अरुणा आसफ़ अली, विजयालक्ष्मी पंडित तथा सुचेता कृपलानी आदि स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय महिलाओं ने नारी-विमर्श रूपी भवन की नींव पक्की की। महात्मा ज्योतिबा फुले तथा सावित्रीबाई फुले की शिक्षा के प्रति सक्रियता से महिलाओं के लिए शिक्षा के अवसर निर्मित होते गए। महिलाओं की शिक्षा जगत् की उपस्थिति ने ही उन्हें अपने अधिकार, स्वातंत्र्य, अस्तित्व, स्वाभिमान एवं चेतना का एहसास कराया। स्त्रियों में जगी स्वाधीनता की चेतना ने विभिन्न संगठनों के माध्यम से जो व्यापक स्वरूप धारण किया है, वही 'नारी-विमर्श' है। कहा जा सकता है कि स्वतंत्र स्त्री उसे माना जाए, जिसके पास अपनी स्वयं की एक दृष्टि है, जो समाज के प्रति अपना दायित्व बखूबी निभा सकती है, जो समाज में समानता की अधिकारी है तथा जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र है।

प्रस्तुत आलेख में नारी-विमर्श विषयक महिला लेखिकाओं के सृजनगत परिदृश्य को उजागर करने का प्रयास किया गया है। हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं की उपस्थिति विशेष है। पता नहीं, हमने क्यों महिला लेखिकाओं को अलग कोटि में रखा है और पुरुष लेखकों को अलग। जहाँ हम नारी-विमर्श का ज़िक्र करते हैं, वहाँ पुरुष-विमर्श का भी ज़िक्र होना ज़रूरी है। वस्तुतः लेखक, लेखक ही होता है, चाहे वह स्त्री-लेखक हो या पुरुष लेखक। लेखक को लेखकीय प्रतिबद्धता से अलग नहीं किया जा सकता। कहना सही होगा कि हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं ने लेखकीय दायित्व का निर्वाह बेबाकी के साथ करते हुए अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। 'द सेकंड सेक्स की लेखिका सीमोन द बोउवार का कहना सही है कि "स्त्रियाँ ही नारी जगत् को पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा आंतरिकता से जानती है, क्योंकि उनकी जड़ें इसके निहित हैं।" गौरतलब है कि जहाँ 'नारी-विमर्श' को महिला लेखिकाओं ने अपने अनुभव जगत से समृद्ध बनाया है, वहाँ पुरुष लेखकों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती। नारी का अनुभव जगत् एवं उसकी साहित्य में अभिव्यक्ति जानदार एवं शानदार होती है, जो पाठकों को बारीकी एवं गंभीरता से सोचने के लिए बाध्य करती है। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं उपन्यास,

कहानी, कविता, नाटक, एकांकी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र आदि में नारी-लेखन की अमिट छाप परिलक्षित होती है। हिंदी आत्मकथा-लेखन में महिलाओं की सक्रियता निश्चित ही सृजन के नव-संदर्भों को बेबाकी के साथ तलाशती दिखाई देती है। मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भंडारी, अलका सरावगी, नमिता सिंह, चित्रा मुद्गल, तसलीमा नसरीन, नासिरा शर्मा, ममता कालिया, मालती जोशी, मधु कांकरिया, रमणिका गुप्ता, पद्मा सचदेव, कृष्णा सोबती, कुसुम कुमार, कुसुम अंसल, अमृता प्रितम, राजी सेठ के साथ अन्यान्य लेखिकाओं ने अपने लेखन के माध्यम से हिंदी-साहित्य में नारी की उपस्थिति से पाठकों को अवगत कराया है।

वैश्वीकरण और कैरियर के चलते टूटते मूल्यों के प्रति आस्था

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी-साहित्य में जिन महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का ज़िक्र किया जा सकता है, उनमें महिला लेखिकाओं के कथा साहित्य में निहित योगदान को रेखांकित किया जा सकता है। हिंदी महिला लेखिकाओं ने सहानुभूति की अपेक्षा स्वानुभूति को अत्यधिक महत्त्व दिया है। ममता कालिया का नाम हिंदी कथा जगत् में एक पहचान रखता है। आपका साहित्य मात्र कोरी कल्पना की उपज नहीं, अपितु आपके लेखन के केंद्र में समसामयिक समस्याओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत होता है। सृजन के नए संदर्भ तलाशने में ही महिला लेखिकाएँ अपनी सफलता मानती हैं। 'दौड़' ममता कालिया का बहुचर्चित उपन्यास है। उपन्यास वैश्वीकरण, बाज़ारवाद एवं भूमंडलीकरण के पनपते मानवीय मूल्य एवं रिश्तों के टूटते परिदृश्य को उजागर करता है। वैश्वीकरण से प्रभावित माहौल के कारण मनुष्य अंधी दौड़ में शामिल हो रहा है। इस दौड़ में वह अपना भूत, वर्तमान एवं भविष्य भी भूलता जा रहा है। बाज़ारवाद के दबाव के कारण रिश्ते-नाते, भाईचारा, आत्मीयता, अपनापन एवं संस्कृति जैसे विषय कमज़ोर परिलक्षित हो रहे हैं। कृष्ण मोहन लिखते हैं-"बीसवीं सदी के अंत में भारतीय समाज के सबसे गहरे सांस्कृतिक संकट का आख्यान है 'दौड़'।" कहना गलत न होगा कि लेखिका ने युवा वर्ग की रोज़गार, नौकरी एवं कैरियर संबंधी मानसिकता को अभिव्यक्ति दी है। उपन्यास का नायक पवन जो अपने परिवार से ज़्यादा कैरियर को महत्त्व देता है। यहाँ तक कि पवन अपने पिताजी से कह देता है - "पापा मेरे लायक यहाँ नौकरी कहाँ ? मेरे लिए कैरियर महत्त्वपूर्ण है और कैरियर बनाने के लिए कल्चर से अधिक कंज्यूमर कल्चर की ज़रूरत है, "मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।" कहना गलत न होगा कि अपनी संस्कृति एवं माटी के जुड़ाव से टूटती युवा पीढ़ी एवं अकेलेपन के शिकार माता-पिता जो पाठकों की सहानुभूति के पात्र बन जाते हैं। मिसेस सोनी के पति की मृत्यु के बाद बेटा अंतिम संस्कार के लिए उपस्थित नहीं रह सकता, वह माँ को सलाह देते हुए कहता है -"आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा मानकर दाह-संस्कार करवाइए।" यहाँ कैरियर की अंधी दौड़ में युवा पीढ़ी को पिताजी का अंतिम संस्कार भी गौण लगता है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के अनुरूप हर माता-पिता की इच्छा होती है कि उनका दाह-संस्कार बेटे के हाथों हों। लेकिन बेटे का यह कहना भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों के प्रति प्रश्नचिह्न खड़ा कर देते हैं। कहना समीचीन होगा कि ममता कालिया ने युवाओं के सांस्कृतिक मूल्यों से टूटते परिवेश को उजागर कर समाज के युवा वर्ग को सोचने के लिए बाध्य किया है। यहाँ तक कि ममता कालिया ने 'दौड़' के माध्यम से युगीन संदर्भों को जोड़ने की कोशिश की है।

मारवाड़ी महिला का संघर्ष एवं व्यापार में सक्रियता

हम इस बात से परिचित हैं कि नारी-जीवन सदैव दुःख, पीड़ा एवं विभिन्न प्रकार की त्रासदियों का शिकार रहा है। आधुनिक महिला लेखिकाओं में प्रभा खेतान की अपनी विशिष्ट पहचान रही है। मारवाड़ी संस्कारों में पली प्रभा खेतान वह लेखिका है, जिसने पहली बार व्यापार में सक्रिय स्त्रियों के जीवन संघर्ष को व्यापक धरातल पर मुखरित किया है। प्रभा खेतान के उपन्यासों के केंद्र में नारी का स्वर प्रबलतम रहा है। 'छिन्नमस्ता' प्रभा खेतान की अपने आप में विशिष्ट रचना है। इसमें लेखिका ने परंपरा और आधुनिक के समन्वय में पिसती मारवाड़ी नारी की मनोदशा को उजागर किया है। वस्तुतः यह वह रचना है, जो संयुक्त परिवार में स्त्रियों के बनते-बिगड़ते संबंधों को एवं मूल्यों की टकराहट को अभिव्यक्ति देती है। उपन्यास की प्रिया अपनी उम्र के नौ वर्ष में ही अपने ही परिवार में स्वयं को असुरक्षित महसूस करती है। यहाँ तक कि वह अपने ही भाई की वासनांधता का शिकार बनने से आतंक का अनुभव करती है। अपने कॉलिज जीवन में भी वह प्रोफ़ेसर की वासना की शिकार बनती है। परिवार के विरोध के बावजूद वह अपनी पढ़ाई पूरी करती है। "वह अपनी भाभी और अम्मा की तरह शिक्षित होकर भी घुटनभरी ज़िंदगी नहीं जीना चाहती, क्योंकि उसने अपने कॉलिज प्रोफ़ेसर चैटर्जी से ही सीखा था कि स्त्री होना कोई अपराध नहीं है, पर नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है।"

प्रभा खेतान ने प्रिया के माध्यम से संघर्षरत एवं अन्याय-अत्याचार को सहती हुई और जीवन के प्रति आस्थावान नारी के विद्रोह को उजागर किया है। यहाँ तक कि प्रिया परिस्थिति एवं परिवेश पर जीत पाकर अपने पति के सहयोग के सिवा स्वयं की एक सफल व्यापारी के रूप में पहचान बनाती है।

राजनीतिक स्वार्थांधता, खोखलापन एवं दलित चेतना

हिंदी साहित्य में मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' के माध्यम से राजनीतिक परिदृश्य को बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया है। जहाँ एक ओर प्रस्तुत उपन्यास राजनीतिक तिकड़मों को अभिव्यक्ति देता है, वहाँ दूसरी ओर दलित चेतना के प्रखर स्वर का भी उद्‌घाटन करता है। " मन्नू भंडारी का 'महाभोज' उपन्यास इस धारणा को तोड़ता है कि महिलाएँ या तो घर-परिवार के बारे में लिखती हैं, या अपनी भावनाओं की दुनिया में ही जीती-मरती हैं।" यह वह रचना है, जो मात्र तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य को ही नहीं, अपितु वर्तमान राजनीति तथा समाज को प्रभावित करने में भी सफल दृष्टिगोचर होती है। उपन्यास का बिसू दा साहब एवं सुकुल बाबू के राजनीतिक हथकंडों का खुलकर विरोध करता है। हरिजन बस्ती में लगी आग और आग के खिलाफ़ बिसेसर का असह्य आक्रोश एवं विद्रोह ही उसकी मौत का कारण बन जाता है। वह कहता है-"क्या दोष था, इन हरिजनों का ? यह न कि सरकारी रेट पर मज़दूरी माँग रहे थे ? ... तभी तो ज़िंदा जला दिए गए और जिन्होंने जलाया उन पर कोई उँगली उठाने की कोशिश की तो हमेशा के लिए चुप कर दिया गया था उसे।" स्पष्ट है कि बिसेसर निठल्ले के साथ लड़ता है। लेकिन राजनीतिक हथकंडों में माहिर शक्तियाँ दलितों के अस्तित्व को ही मिटा देती है। आज भी परिदृश्य इससे अलग नहीं है। सामंती परंपरा एवं यथास्थितिवाद का विरोध 'अपनी सलीबें' नमिता सिंह का सामाजिक सरोकार, संवेदना एवं शिल्प के अनूठेपन का सशक्त उदाहरण है। इसमें सामंती परंपरा एवं यथास्थितिवाद का विरोध परिलक्षित होता है। उपन्यास की नीलिमा पुलिस अफ़सर इशू के साथ प्यार इसलिए करती है कि वह आई.ए.एस. अधिकारी बना था। लेकिन जब उसे रिक्शेवाले से पता चलता है कि ईश्वरचंद्र दलित परिवार से है, तब वह उसे कह देती है-"झूठे हो तुम ईशू ! तुमने धोखा दिया है मुझे। ...तुमने अपनी जाति छिपाई।" इशू के निम्न परिवार से होने के कारण नीलिमा उसे स्वीकारने का साहस नहीं जुटाती है। नमिता सिंह का यह कहना "सैंकड़ों साल से बनी जहनियत... संस्कार इतनी आसानी से नहीं दूर हो सकते.. हमारे तुम्हारे सबके तयशुदा प्रयास के बिना यह बड़ा काम नहीं हो सकता।" स्पष्ट है कि सामंती संस्कारों की जड़ें जो अत्यधिक ज़हरीली प्रतीत होती हैं, जिससे सहज मुक्ति संभव नहीं है। इशू नीलिमा से उम्मीद करता है कि प्यार में बनी जातीयता की दीवारों को तोड़ना है। सामंती संस्कार एवं व्यवस्था पर व्यंग्य प्रहार करते हुए वह कहता है-"मुझे मालूम है तुम लोगों की असलियत ! रस्सी जल गई लेकिन ऐंठन नहीं गई।" वह सामंती समाज एवं उसकी मानसिकता को बेबाकी के साथ प्रस्तुत करता है। कहना सही होगा कि नमिता सिंह ने जातीयता के बंधनों को तोड़ने की अपील करते हुए अंतर्जातीय एवं प्यार की दीवारों को सशक्त बनाने की कामना की है।

सांप्रदायिकता की समस्या :

हिंदी साहित्य में गीतांजलि श्री की लेखकीय प्रतिबद्धता की अपनी अलग पहचान है। प्रस्तुत उपन्यास सांप्रदायिक दंगों से ग्रस्त समाज एवं उसके भयंकर परिणामों को यथार्थता के साथ अभिव्यक्ति देता है। लेखिका उस बरस का मात्र ज़िक्र करती है, लेकिन आज के संदर्भ में उस बरस के औचित्य एवं अनौचित्य का सच भी उजागर करती है। यह वह रचना है, जिसमें बाबरी मस्जिद के प्रसंग को प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्ति देने की हिमायत करती है। इस उपन्यास में शरद, श्रुति और हनीफ़ की रिपोर्ट का विशिष्ट महत्त्व है। शरद बार-बार बोलता चला जाता है कि "रूढ़िग्रस्त लोगों में भरोसा, शिक्षा, अपनेपन का जज़्बा आए, हिंदू में भी, मुसलमान में भी और धर्मों में भी। उनकी कुंठाएँ, उनके आपस के शकों को इंसानियत के उसूलों से सुलझाया जाए।" स्पष्ट है कि गीतांजलि श्री ने चहारदीवारी की बात से परे होकर राष्ट्रीय समस्या को अपने लेखक के केंद्र में रखा है। यहाँ उसने सांप्रदायिक ताकतों को उजागर करते हुए उसके गंभीर परिणामों को सीधी-सादी शैली में अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका टुकड़े-टुकड़े सच को आधार मानती है। लेखिका ने धर्म के नाम पर पाखंडों को बढ़ावा देती मानसिकता को उजागर किया है। ज्योतिष जोशी का कहना सही है कि "यह उपन्यास भी हिंदू राष्ट्रवाद की कट्टरता को लक्ष्य करता है और उसके दुष्परिणामों को दिखाता है।" कहना सही होगा कि हिंदी साहित्य में जहाँ पुरुष लेखकों ने देश-विभाजन की त्रासदी को अभिव्यक्ति दी है, वहाँ महिला लेखिकाओं की इस क्रम में सक्रियता विशिष्ट परिलक्षित होती है।

राजनीतिक सड़ांध, मज़दूर और स्त्री विमर्श की बेबाक पहल

चित्रा मुद्गल यह वह नाम है, जो 'आवां' की लेखिका के रूप में जाना-माना एवं पहचाना जाता है। अनुभव जगत् का लेखा-जोखा प्रस्तुत उपन्यास का केंद्रीय विषय बना है। लेखिका कहती है कि " मैं मीरा ताई की संस्था 'जागरण' से जुड़ी, जो घरों में चौका-बासन करने वाली मज़दूर पत्नियों की संस्था थी- उनके बुनियादी हक की लड़ाई लड़ने वाली।" 'आवां' जहाँ एक ओर स्त्री जीवन की दास्तानों को परत-दर-परत उजागर करता है, वहाँ दूसरी ओर राजनीतिक षडयंत्र एवं मज़दूर संगठनों की नाकामियों एवं कमियों को बेबाक ढंग से अभिव्यक्त करता है। भले ही मज़दूर संगठन 'श्रमिक शक्ति' का सूचक है, लेकिन यही संगठन शक्ति स्वार्थांध एवं सत्तालोलुपों की कठपुतली बनने पर संगठन को खोखला बना देती है। प्रस्तुत उपन्यास में केंद्रीय चरित्र के रूप में नमिता पांडे को चित्रित किया गया है। 'आवां' नमिता के संघर्ष का दस्तावेज़ कहा जा सकता है। ज्योतिष जोशी की टिप्पणी सही लगती है कि "यह उपन्यास संघर्ष की असल ज़मीन का उपन्यास है ... आवां के भीतर के ताप को बर्दाश्त कर पूरी तरह पकने को प्रेरित करता है।" अभावों को सहते पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करते जीवन के प्रति असीम आस्था का स्वर नमिता का स्थायीभाव बन जाता है। 'कामगार आघाड़ी' के अन्ना साहब जैसे अग्रणी नेता के साथ विमला बेन, पवार और शेवड़े जैसे पात्र मज़दूर संगठनों को अक्षम करने में माहिर हैं। संगठनों के आपसी मनमुटाव और अंतःसंघर्ष के कारण मज़दूर संगठन सक्षम नहीं हो पाते हैं।

संदर्भ सूची -

1. सं. प्रा. श्रीराम शर्मा - समकालीन हिंदी साहित्य विविध विमर्श
2. सं. अरुण तिवारी- प्रेरणा त्रैमासिक, नारी अस्मिता अंक-दो
3. सीमोन द बोउवार - स्त्री-उपेक्षिता, भूमिका से उद्‌त
4. www.http://pustak.org/home.php.bookid
5. ममता कालिया – दौड़
7. प्रभा खेतना - छिन्नमस्ता
8. मन्नू भंडारी - महाभोज, प्रकाशकीय वक्तव्य से उद्‌त
9. मन्नू भंडारी - महाभोज
10. नमिता सिंह - अपनी सलीबें
13. गीतांजलि श्री - हमारा शहर उस बरस
14. ज्योतिष जोशी - उपन्यास की समकालीनता
15. चित्रा मुद्गल - आवां

drbhausahebnavale@gmail.com

फ़िजी हिंदी की साहित्यिक परंपरा

डॉ. सुभाषिनी लता कुमार
फ़िजी

भारत से हज़ारों मील दूर होते हुए भी फ़िजी देश में हिंदी संसद की मान्यता प्राप्त भाषाओं में से एक है। फ़िजी हिंदी यहाँ की बोलचाल की भाषा है और जात-पाँत, धर्म, वर्ग के भेद-भाव मिटाती हुई, यह एकता और प्रेम के सूत्र में गिरमिटियों और उनके वंशज को बाँधती है। फ़िजी हिंदी मुख्य रूप से अवधी और हिंदी की अन्य बोलियों से व्युत्पन्न भाषा है, इसमें अन्य भारतीय भाषाओं का समावेश है। यह भाषा न तो पूर्णत: अवधी है और न ही भोजपुरी। यह फ़िजी में विकसित एक नई भाषिक शैली है, जिसकी संरचना तो सामान्यत: अवधी की है, भोजपुरी का उस पर प्रभाव है तथा अंग्रेज़ी और फ़िजियन के तत्सम और तद्भव शब्दों का सहज समावेश है। इसमें फ़िजियन और अंग्रेज़ी भाषा से बड़ी संख्या में शब्द उधार लिए गए हैं।

फ़िजी के विभिन्न गाँवों व शहरों में दैनिक व्यवहार के लिए जिस प्रकार की हिंदी काम में लाई जाती है, उसका प्रयोग फ़िजी हिंदी लेखन में देखा जा सकता है। फ़िजी हिंदी में लेखन की नींव बहुत पहले पड़ चुकी थी, जिसका आरंभ पंडित बाबूराम की 100 पृष्ठों की छोटी-सी व्यंग्यात्मक पुस्तक से हुआ। उसके बाद महाबीर मित्र की कविता की पुस्तकें, रामनारायण गोबिंद और रामकुमारी की लोकगीतों की पुस्तकें आईं। कुछ वर्ष पहले ठाकुर रणजीत सिंह ने शांतिदूत के लिए फ़िजी हिंदी में लेख लिखे। इन रचनाओं द्वारा पाठकगण फ़िजी की मिट्टी की सुगंध, यहाँ का प्राकृतिक परिवेश और सामाजिक जीवन के साथ-साथ फ़िजीबात का मधुर आनंद उठा सकेंगे।

फ़िजी हिंदी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द हैं, जो फ़िजी में बसे प्रवासी भारतीयों को नए माहौल में ढलने के लिए ज़रूरी थे। भारतीयों ने मुख-सुख और सुविधा के लिए कुछ अंग्रेज़ी शब्दों का हिंदीकरण किया तथा कुछ अंग्रेज़ी शब्दों का ज्यों-का-त्यों प्रयोग किया, जैसे - task-तास, cane top-कनटॉप, crowbar-कुरबाल, sardaar-सरदारवा, agreement-गिरमिट आदि। उदाहरण के लिए 'आप क्या कर रहे हैं?' को फ़िजी हिंदी में कहा जाएगा 'तुम कौनची करता'?

'फ़िजी हिंदी' पर कई विदेशी विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें रोडने मोग का 'फ़िजी हिंदी' नामक एक परिचयात्मक पुस्तक है। फ़िजी हिंदी के साथ अक्सर यह संदेह रहा है कि यह एक अपूर्ण टूटी-फूटी, व्याकरणहीन भाषा है और इसका प्रयोग सिर्फ़ बोलचाल के लिए ही उपयुक्त है। इसलिए स्कूलों और लेखन में मानक हिंदी को ही महत्त्व दिया गया। पाठशालाओं में बच्चों को हिंदी की शिक्षा खड़ी बोली हिंदी में उपलब्ध कराई जाती है, पर घर, खेत, बाज़ार, खेल-कूद के मैदान, आदि अनौपचारिक स्थलों पर फ़िजी हिंदी का सरल सुबोध प्रयोग होता आ रहा है।

इक्कीसवीं शताब्दी में फ़िजी हिंदी साहित्य की एक नई लहर उठी, जिसके फलस्वरूप भारतीय मूल के अंग्रेज़ी प्रोफ़ेसरों तथा प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने भी अंग्रेज़ी के मोह को छोड़कर हिंदी में साहित्यिक कृतियाँ लिखनी प्रारंभ कीं। सन् 1926 से भारतीय बच्चों के लिए औपचारिक शिक्षा की शुरुआत के साथ फ़िजी हिंदी के बजाय मानक हिंदी का अधिक समर्थन होने लगा। हालाँकि, फ़िजी हिंदी बहुसंख्यक भारतीय मूल के फ़िजियनों की मूल भाषा के रूप में स्थापित भाषा है, किंतु शिक्षा-प्रणाली में फ़िजी हिंदी के उपयोग को अस्वीकारा गया। लेकिन 2013 के संविधान के बाद से, फ़िजियन कक्षाओं में फ़िजी हिंदी के उपयोग के दायरे का विस्तार हुआ है तथा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए फ़िजी के शिक्षा मंत्रालय ने गैर-भारतीय छात्रों को वार्तालापीय फ़िजी हिंदी सिखाने के लिए एक उल्लेखनीय पहल की है। फ़िजी सरकार ऑनलाइन पोर्टल के अनुसार, भूतपूर्व माननीय शिक्षा मंत्री, फ़िलिप बोले ने 22 जनवरी 2014 को घोषणा की थी कि सभी प्राथमिक विद्यालयों में वार्तालापीय भाषा कार्यक्रम के तहत वोसा वाकाविती और फ़िजी हिंदी पढ़ाई जाए। यह घोषणा फ़िजी गणराज्य के संविधान की धारा 31 (3) को पूरा करती है, जो एक ऐसे भविष्य की कल्पना करती है, जहाँ छात्र एक-दूसरे की भाषाओं को बहुसांस्कृतिक परिवेश में समझते और बोलते हों। हालाँकि, हिंदी भाषी समुदाय में कुछ ऐसे समूह हैं, जो शिक्षा-प्रणाली में फ़िजी हिंदी पढ़ाने के विरुद्ध हैं, वे मानक हिंदी की तुलना में फ़िजी हिंदी को एक भ्रष्ट और अपूर्ण भाषा मानते हैं।

फ़िजी हिंदी शब्दावली

फ़िजी हिंदी मुख्य रूप से अवधी, भोजपुरी और हिंदी की

अन्य बोलियों से व्युत्पन्न भाषा है, जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं के अलावा फ़िजियन और अंग्रेज़ी भाषा से बड़ी संख्या में शब्द उधार लिए गए हैं। सन् 1879 और 1916 के बीच भारत में तत्कालीन ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा लगभग साठ हज़ार भारतीयों को गन्ने, नारियल और कपास के बागानों में काम करने के लिए फ़िजी द्वीप समूह लाया गया था। चूँकि ये भारतीय विविध भारतीय क्षेत्रों से थे, इसलिए उन्हें संवाद करने के लिए एक संपर्क भाषा की आवश्यकता पड़ी। उन दिनों फ़िजी पर ब्रिटिश सरकार का राज था और औपनिवेशिक प्रभाव के कारण यहाँ हिंदी की विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों में अंग्रेज़ी और फ़िजियन देशज शब्दों का मिश्रण हुआ। इसमें बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द हैं, जो गिरमिट काल के दौरान कृषि जीवन और नए माहौल में ढलने के लिए ज़रूरी थे।

सुब्रमनी जी की औपन्यासिक कृतियाँ 'फ़िजी माँ' और 'डउका पुरान' में मुख्यतः फ़िजी के लम्बासा ज़िले में प्रयुक्त होने वाली फ़िजी हिंदी की लोकगंध मिलती है। सुब्रमनी जी ने इन औपन्यासिक कृतियों में फ़िजी हिंदी के ऐसे अनूठे शब्दों को संग्रहित किया है, जो आधुनिक भाषाओं के मोह में लुप्त हो रहे थे, जैसे - 'मनहई', 'छीछर लेदर', 'बजर भट्', 'टिर्राई', 'नारियल के बूलू', 'टिबोली', 'झाप', 'निपोरिस', 'ठिनकही', 'गोदना', 'झाप','बकेड़ा', 'दाबे', 'झाप', 'आवा-गावा' आदि फ़िजी हिंदी शब्दों का पुरालेख है। इसके अतिरिक्त इसमें फ़िजियन भाषा के बहुत से शब्द उधार लिए गए हैं, जैसे - बकेड़ा (केकड़ा), लोलो (नारियल दूध),वनुवा (गाँव), तबाले (साला), मातंगाली (सामंत), तईतई (खेत) आदि। सुब्रमनी ने अपने उपन्यासों में फ़िजी हिंदी के अश्लील शब्दों को भी अंकित किया है, जैसे - चुतर, दोगला, उठल्लू, चिन्हार, बजाडू, पतुरिया आदि।

'फ़िजी माँ' उपन्यास में प्रो. सुब्रमनी ने देवी-पूजा, भूमि-पूजा, लोकगीत, बकरी-पूजन, पियरी झाड़ना, खान-पान की चीज़ें, शादी-ब्याह आदि को उपन्यास की कथा में समाहित किया है। उदाहरण के लिए 'सतवा' एक प्रकार का मिष्ठान है, जो फ़िजी के लम्बासा ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित था, पर वर्तमान पीढ़ी इसके बारे में बहुत कम जानती है और आज के अधिकांश युवा वर्ग ने इस मिष्ठान को चखा तक नहीं है। 'फ़िजी माँ' में नायिका बेदमती अपनी माँ से 'सतवा' के विषय में पूछती है -

"मइया थरिया में रकम रकम के दाल निकारे रही सबेरे पीसे के खातिर- उर्दी, मटर, तूर, मकई। माँ, सतुवा कइसे बने?... रोज देखत हिव, पता नइं तोके ? काहे सिखियो, तोके कहां चक्की चलाय के है। पता नइं का करियो आगे चल के।...

सात रंग के दाल से बने सतवा।"

जब बेदमती की बहन बिंदा बीमार पड़ती है, तब माँ एक साधू (महादेव) से पियरी उतारने को कहती हैं। पियरी उतारने का वर्णन लेखक ने इन शब्दों में दिया है-

"चूना मंगाइस, पूजा वला थाली में दूब गिरास अउर पियाली में पानी। महादेव चूना राउन से पूजा वला थाली में डारिस, उप्पर से पानी छोड़िस। दूब गिरास के मोटा से गुहिस। बिंदा के ठीक से सामने बैठारिस, बताइस थाली में देखो। महादेव मंतर पढ़े के सुरू करिस अउर दूब गिरास थाली के राउन घुमाय लगा। ...महादेव मइया के थाली के तरफ़ इसारा करिस। हम लोग सब कोई थाली देखे लगा। थाली में चूना पियर होई लगा। मइया बिंदा के आँखी हाथ से खोल के देखिस। 'सच्चे महादेव आँखी बहुते फरका लगे'।"

इस प्रकार फ़िजी हिंदी साहित्य प्रवासी भारतीयों की भाषा, रीति-रिवाज़, उनके आचार-विचार, आशा-आकांक्षाओं और उनके उत्थान-पतन का आख्यान है।

इसके अतिरिक्त कंवल जी ने भी अपने उपन्यासों में संवादों में पात्रानुकूल फ़िजी हिंदी का प्रयोग किया है। जैसे 'सवेरा' का प्रेम सिंह बीस साल से फ़िजी में रह रहा है और इस कारण वह मानक हिंदी के बजाय फ़िजी हिंदी में बातें करता है - "आओ महाजनों, कौनची है?..तुमार बप्पा के नाम कौनची है? ...तुम कैसे जान गवा कि हम फ़िजी में रहित है।" इसमें भाषा का स्वाभाविक रूप उभरकर सामने आता है तथा 'करवट' का माधो भी लोकभाषा में गीत गाकर अपने दोस्तों का मनोरंजन करता है।

"सब दुखन की खान कम्पनी की कोठारिया
याही में खाना, याही में सोना
याही में बहत पनरिया
तास कड़ा सरदरवा देवे
सर पै हनत कुदरिया
मुड़ फटत है, देह दुखत है
टूटी जात कमारिया"

उपर्युक्त लोकगीत सी.एस.आर कंपनी द्वारा गिरमिटिया श्रमिकों पर किए गए अत्याचारों को दर्शाता है, जिसे प्रवासी भारतीय मज़दूर आपस में अपना दुख-दर्द बाँटने के लिए गाते थे। वहीं 'सात समुद्र पार' की नायिका निर्मला की सास और जेठानी, फ़िजी में

जन्मे और पले-बढ़े, इसलिए वे भी एक-दूसरे से अपनी मातृभाषा फ़िजी हिंदी में बातें करते हैं। 'सात समुद्र पार' से फ़िजी हिंदी का उदाहरण दृष्टिगोचर है - "ईह कैसन भासा बोले तुम। कौनची भईस गोपाल के?" (तुम कौन-सी भाषा बोल रही हो। गोपाल को क्या हुआ?) "गोपाल के मूड़ पिराए (गोपाल के सिर में दर्द है) (सात समुद्र पार, पृष्ठ 76)।"

अतः फ़िजी हिंदी फ़िजी के कई समूहों के लिए पहचान और संस्कृति का आधार बनी तथा साहित्य में प्रयुक्त हुई।

फ़िजी हिंदी में लिखित साहित्य और साहित्यकार

फ़िजी के प्रवासी भारतीय मानक हिंदी की तुलना में, फ़िजी हिंदी में अपनी भाव-भंगिमाओं को अच्छी तरह से अभिव्यक्त करते हैं। डॉ. विमलेश कांति वर्मा का विचार है - "भाषा सुरक्षित और सबल तब होती है, जब वह सृजनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। लिखित अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर अच्छा अधिकार होना आवश्यक है। यह अधिकार सीखी हुई भाषा पर उतना कभी नहीं होता, जितना अपनी मातृभाषा पर होता है।" इसीलिए भारतवंशी साहित्यकारों ने अंग्रेज़ी भाषा के मोह को छोड़कर हिंदी में साहित्यिक कृतियाँ तैयार कीं।

फ़िजी हिंदी में लिखित कुछ ग्रंथ इस प्रकार हैं :-

फ़िजी हिंदी - रोडनी मोग

फ़िजी हिंदी पर कई विदेशी विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें अमेरिकी भाषावैज्ञानिक रोडने मोग का 'फ़िजी हिंदी' एक परिचयात्मक ग्रंथ है। इन्होंने फ़िजी में कई वर्ष रहकर, फ़िजी की भाषा और संस्कृति का अध्ययन कर, भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इस ग्रंथ को लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक फ़िजी हिंदी के भाषिक स्वरूप पर आधारित है। फ़िजी हिंदी के व्याकरणिक विवेचन के अतिरिक्त इसमें पाठकों के लिए व्याकरणिक अभ्यास भी दिए गए हैं। पुस्तक के आरंभ में लेखक की एक संक्षिप्त भूमिका है, जिसमें वे लिखते हैं - "सन् 1879-1920 के मध्य गिरमिटियों के रूप में भारतीय भारत के विभिन्न क्षेत्रों से फ़िजी आए और अपनी-अपनी भाषाएँ बोलते थे, किंतु कालांतर में सबके मिश्रण से बनी फ़िजी हिंदी का प्रयोग सभी भारतीयों ने किया।" डॉ. रोडनी मोग द्वारा लिखी गई इस पुस्तक में भाषावैज्ञानिक दृष्टि फ़िजी हिंदी का महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया गया है।

से इट इन फ़िजी हिंदी (Say it in Fiji Hindi) - जे.एफ. सीगल

सन् 1977 में जे.एफ. सीगल ने 'से इट इन फ़िजी हिंदी' नामक वार्तालाप पर आधारित पुस्तिका लिखी। 77 पृष्ठों की इसे लघु वार्तालापी पुस्तिका का प्रकाशन पैसिफ़िक पब्लिकेशंस, सिडनी से हुआ था। पुस्तिका के मुख्य पृष्ठ पर लिखा हुआ है कि यह फ़िजी की आधी से अधिक जनसंख्या के दैनिक व्यवहार के लिए उपयोगी पुस्तक है। भूमिका में लेखक कहते हैं कि फ़िजी हिंदी को बहुत से लोग मिश्रित भाषा कहते हैं, उसे टूटी-फूटी तथा अपभ्रंश भी कहते हैं, किंतु यह अशुद्ध हिंदी न होकर भारत में बोली जाने वाली हिंदी की एक जीवंत बोली है, जिसका अपना विशिष्ट व्याकरण है तथा फ़िजी के परिवेश के अनुकूल शब्द-भंडार है।

डउका पुरान - प्रो. सुब्रमनी

प्रोफ़ेसर सुब्रमनी फ़िजी के प्रमुख गद्य लेखकों, निबंधकारों और आलोचकों में से एक हैं। 'डउका पुरान' की भाषा ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इस उपन्यास के माध्यम से प्रो. सुब्रमनी ने फ़िजी के भारतीयों की भाषा, रीति-रिवाज़, सोच-विचार, आकांक्षाएँ, उत्थान एवं पतन, मनोविनोद, खेती-बाड़ी, परंपरागत विश्वास तथा उनके भीतर अंकुर रूप में फूट रहे प्रवृत्तियों के अध्ययन द्वारा राजनीतिक-पारिवारिक विघटन, अंधविश्वास, ज़मीन की लीस आदि समस्याओं का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है। 'डउका पुरान' हिंदी के विस्तार का अनूठा प्रामाणिक दस्तावेज़ है। अपनी रचना के माध्यम से उन्होंने फ़िजी हिंदी भाषा को लिपिबद्ध करते हुए, साहित्य जगत् में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

प्रो. सुब्रमनी फ़िजी हिंदी को सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए अधिक समर्थ समझते हैं, इसीलिए उन्होंने अपना बृहत उपन्यास 'डउका पुरान' फ़िजी हिंदी में लिखकर विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की।

अधूरा सपना - रेमंड पिल्लई

रेमंड पिल्लई फ़िजी के प्रसिद्ध और प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उन्हें न केवल फ़िजी में ही, बल्कि दक्षिण प्रशांत के साहित्यिक क्षेत्र में भी अग्रणी कलाकार माना जाता है। सन् 1980 में उन्होंने अपना पहला अंग्रेज़ी लघु कहानी-संग्रह 'द सेलिब्रेशन' प्रकाशित किया। उनकी कृति 'अधूरा सपना', फ़िजी हिंदी में लिखी प्रसिद्ध साहित्यिक कृति है। 'अधूरा सपना' पर 2007 में विमल रेड्डी के

निर्देशन में हिंदी फ़िल्म बनी और रेमंड पिल्लई ने पहली फ़िजी हिंदी फ़िल्म 'अधूरा सपना' के लिए पटकथा लिखकर अपना नाम फ़िजी हिंदी साहित्य के इतिहास में दर्ज करा लिया। 'अधूरा सपना' की कहानी एक मेहनती भारतीय गन्ना किसान के बारे में है, जिसकी पत्नी की इच्छा है कि वे सुखी जीवन के लिए विदेश जाकर बस जाएँ।

प्रो. बृज वी. लाल के अनुसार, "रेमंड पिल्लई लघु कथा-साहित्य के प्रमुख लेखक हैं। उन्होंने अपनी सहज शैली में भारतीय-फ़िजियन समुदाय के आंतरिक अनुभवों को बड़े हास्यात्मक शैली और संवेदनशीलता के साथ कैप्चर किया है ... ये रेमंड पिल्लई जैसे लोग हैं, जिन्होंने इस विचार को हमारे बीच रोप दिया कि हमारी दुनिया लिखने लायक है और अगर हमने ऐसा नहीं किया, तो कोई नहीं करेगा।"

फ़िल्म 'अधूरा सपना' ने फ़िजी में बसे भारतीय प्रवासियों के संघर्ष को वैश्विक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। विस्थापित लोगों की सांस्कृतिक पहचान को नया आयाम देने में डायस्पोरिक सिनेमा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आज डायस्पोरिक सिनेमा न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक उत्पाद भी है।

कोई किस्सा बताव - प्रवीण चंद्रा

सन् 2018 में फ़िजी हिंदी का प्रथम कहानी-संग्रह 'कोई किस्सा बताव' का संपादन श्री प्रवीण चंद्रा द्वारा किया गया। इस कहानी-संग्रह में फ़िजी के वरिष्ठ साहित्यकारों; प्रो. सुब्रमनी, प्रो. सतेन्द्र नंदन, डॉ. ब्रिज लाल, डॉ. रामलखन प्रसाद, श्री खेमेंद्रा कुमार, श्रीमती सरिता चंद, श्रीमान नरेश चंद, श्रीमती सुभाषिनी कुमार आदि लेखकों ने फ़िजी हिंदी में अपनी कृतियों को संकलित किया है। 'कोई किस्सा बताव' कहानी-संग्रह एक ऐसी कलाकृति है, जिसमें फ़िजी के प्रवासी भारतीयों की जीवन-शैली को कहानी की विधा में बाँधा गया है।

भूतपूर्व फ़िजी निवासी श्री प्रवीण चंद्रा, जो फ़िलहाल ब्रिसबेन, ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहे हैं, ने इस संग्रह का संकलन और संपादन किया है। 'कोई किस्सा बताव' कहानी-संग्रह का प्रकाशन ऑस्ट्रेलिया के कारिन्दाले प्रकाशन और यूनिवर्सिटी ऑफ़ द साउथ पैसिफ़िक द्वारा किया गया है। 191 पृष्ठों के इस संकलन में सोलह कहानियाँ, एक कविता और एक अप्रकाशित उपन्यास का एक अंश भी शामिल किया गया है। कोई किस्सा बताव' कहानी-संग्रह की कहानियों का विषय वैविध्यपूर्ण है। फ़िजी का प्राकृतिक सौंदर्य, लोगों का दुख-दर्द, पारिवारिक विघटन, समाज में बिखराव, ठहराव, हताशा, लाचारी, हँसी-मज़ाक, जीवन के खट्टे-मीठे क्षणों आदि विविध विषयों को कहानी में स्थान दिया है।

फ़िजी माँ - प्रो. सुब्रमनी

प्रो. सुब्रमनी फ़िजी हिंदी को सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए अधिक समर्थ समझते हैं इसका प्रमाण उनका बृहत उपन्यास 'फ़िजी माँ : हज़ारों की माँ' है। प्रो. सुब्रमनी का 'फ़िजी माँ' अपनी तरह की एक अलग कृति है। सन् 2019 में इसका लोकार्पण द यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी के 'ग्लोबल गिरमिट इंस्टिट्यूट' ने 'अंतर्राष्ट्रीय गिरमिट कॉन्फ्रेंस' के दौरान किया। यह पुस्तक फ़िजीबात अर्थात् फ़िजी हिंदी में लिखी गई है, जो सुल्तानपुर और फैज़ाबाद के आसपास बोली जाने वाली अवधी का विस्तारित स्वरूप है। यह बृहद औपन्यासिक कृति 1026 पृष्ठों की है, जिसमें प्रोफ़ेसर सुब्रमनी ने ऐसी जानकारियाँ दी हैं, जो पाठक को स्तब्ध करती हैं।

'फ़िजी माँ : हज़ारों की माँ' में लेखक ने अपनी निजी यादों और जीवनकाल की स्मृतियों को नायिका वेदमती के द्वारा अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास के संबंध में डॉ. दानेश्वर शर्मा का विचार है कि "फ़िजी हिंदी को साहित्यिक सृजन की भाषा के रूप में मान्यता मिल रही है, तो वहीं सुब्रमनी द्वारा लिखित दूसरा उपन्यास 'फ़िजी माँ' फ़िजी हिंदी की यात्रा में एक और मील का पत्थर साबित होता है।" डॉ. दानेश्वर शर्मा के अनुसार उपन्यास के मूल तत्त्व में महिलाओं की मुक्ति, सबाल्टर्न (subaltern) इतिहास, मदर इंडिया का वैश्विक विस्तार, सुदूर द्वीपों का ग्रामीण जीवन तथा विदेशी भूमि में भारतीय संस्कृति और प्रवास का आघात सम्मिलित है। उपन्यास की कथा वेदमती का बचपन, स्कूली शिक्षा, दांपत्य जीवन, ग्रामीण लम्बासा गाँव से शहरी विधवा का जीवन और उसकी वृद्धावस्था प्रस्तुत करती है। वृद्धावस्था में भिखारी वेदमती, सूवा शहर की व्यस्त सड़कों पर एक बैंक के द्वार पर बैठी अपनी जीवन स्मृतियों को याद करती है।

एक अनोखी कथा - प्रवीण चंद्रा

'एक अनोखी कथा' एक फ़िजी हिंदी उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन् 2023 में प्रवीण चंद्रा द्वारा हुआ है। यह 184 पृष्ठों की संवाद-शैली में प्रस्तुत रचना है। लेखक मूलतः लौटोका, फ़िजी के निवासी हैं, पर वर्तमान समय में ब्रिसबेन, ऑस्ट्रलिया में निवास

कर रहे हैं। प्रो. सुब्रमनी के फ़िजी हिंदी उपन्यास "डउका पुरान" से प्रोत्साहन पाकर उन्होंने फ़िजी हिंदी में लिखना आरंभ किया "प्रो. सुब्रमनी के अनुरोध पर मैंने फ़िजी हिंदी में लघु कथाओं की एक पुस्तक, 'कोई किस्सा बताव' का संपादन और प्रकाशन किया।...2022 में मैंने प्रो. सुब्रमनी के प्रोत्साहन पर फ़िजी हिंदी में एक उपन्यास लिखने का फ़ैसला किया।"

'एक अनोखी कथा' के मुख्य पात्र भास्कर प्रसाद और सरोजनी देवी हैं, जो सालों बाद एक दिन वृद्ध अवस्था में ऑस्ट्रेलिया में मिलते हैं। दोनों एक बार फिर अपने जीवन के बीते पलों को जीते हैं और खट्टे-मीठे यादों को एक-दूसरे के साथ साझा करते हैं। ऐसे कई बैठकों के बाद एक-दूसरे के प्रति अपने बचपन के आकर्षण को व्यक्त करते हैं। भास्कर फ़िजी में बिताए अपने बचपन, युवावस्था, गृहस्थ-जीवन और प्रवासी-जीवन की कई कथाएँ सरोज के साथ बाँटता है और जीवन की कसौटी पर खुद को तौलता जाता है कि क्या सही हुआ और कहाँ गलती हुई - "दूसर रोज हम अउर सुरेन जग के सीसा, बरस, टूथपेस्ट, टाउल अउर दाढ़ी बनाए वाला अउजार ले के नद्दी गया। लउट के आया तो फूस वाला घर में पिताजी के साथे नीचे बैठ के खाना खावा गए। हम पहिला दफे देखा कि सबेरे वाला खाना में कल रात वाला दाल भात भी परोसा गए अउर बाप बेटा के साथे हमहउ दाल भात खाया।" भास्कर अपने लम्बासा के मित्र के यहाँ बिताए दिनों का वर्णन करता है।

फ़िजी का हिंदी साहित्य प्रधानतः भारतीयों के फ़िजी आगमन एवं उनके संघर्ष और विकास का दस्तावेज़ है। प्रवास में एक ओर व्यक्ति के मन में नई जगह जाने का उत्साह, चुनौती, नई आशाएँ और कामनाएँ हैं, तो वहीं दूसरी ओर विछोह की पीड़ा है, विस्थापन का कष्ट और भविष्य की आशंकाएँ हैं। स्वदेश और विदेश की भावनाओं में डूबता-उतरता मानव-प्रवास का जीवन जीता है। इन्हीं संवेदनाओं को फ़िजी के रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में दर्शाया है।

फ़िजी हिंदी का वैशिष्ट्य और प्रयोग

गिरमिट प्रथा (1879-1920) के दौरान फ़िजी हिंदी का वास्तविक महत्त्व विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमि के भारतीयों के बीच एक संपर्क-भाषा के रूप में बना रहा। प्रवासी श्रमिक फ़िजी द्वीप-समूह के अलग-अलग हिस्सों में रहने लगे। प्रवास के दौरान उन्हें धीरे-धीरे अपनी जाति-व्यवस्था सहित रीति-रिवाज़ों और आदतों को त्यागना पड़ा। नए वातावरण से उभरी नई संस्कृति के अलावा, हिंदी की एक नई भाषिक शैली फ़िजी हिंदी उभरकर सामने आई, जिसका प्रयोग फ़िजी का भारतीय समुदाय अपनी मातृभाषा के रूप में करता चला आ रहा है।

सन् 2020 में दैनिक समाचार-पत्र 'फ़िजी सन' द्वारा किए गए सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हुआ कि फ़िजी के प्रवासी भारतीय फ़िजी हिंदी को अत्यधिक समर्थन देते हैं। भाषा-विशेषज्ञ जैसे प्रो. सुब्रमनी, प्रो. बृज लाल, डॉ. मोहित प्रसाद, सलेश कुमार, राजेन्द्र प्रसाद आदि भी फ़िजी हिंदी का समर्थन करते हैं। हालाँकि, फ़िजी हिंदी और मानक हिंदी में कोई प्रतियोगिता नहीं है, फिर भी फ़िजी में यह एक बहस का मुद्दा है। जहाँ फ़िजी हिंदी प्रवासी भारतीयों की पसंदीदा वार्तालापी भाषा है, वहीं मानक हिंदी शिक्षा एवं धार्मिक प्रचार-प्रसार और संस्कृति की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। फ़िजी हिंदी को लेकर वर्तमान बहस यह है कि फ़िजी हिंदी का प्रयोग सार्वजनिक रूप से नहीं किया जाए। कुछ राजनेताओं, धार्मिक नेताओं और सोशल मीडिया टिप्पणीकारों का मत है कि पत्रकारिता के लिए फ़िजी हिंदी उपयुक्त नहीं है।

रेडियो पर फ़िजी हिंदी का उपयोग ऐतिहासिक और समाज शास्त्रीय वास्तविकता को दर्शाता है। साथ ही, भाषा के दृष्टिकोण से एक बदलाव भी दर्शाता है। वस्तुतः फ़िजी हिंदी को पारंपरिक रूप से निम्न कोटि की भाषा के रूप में दर्शाया गया है। वहीं मानक हिंदी प्रतिष्ठित भाषा के रूप में सभी कार्यों को पूरा करती आ रही है। फ़िजी में मानक हिंदी अभी भी संदर्भ की भाषा के रूप में कार्य करती है, लेकिन एक बहुसांस्कृतिक संदर्भ में सांस्कृतिक निर्माण और पहचान के रूप में महत्त्वपूर्ण है। जबकि फ़िजी हिंदी एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्थापित है और एक बहुभाषी समाज की गतिशील और व्यावहारिक भाषा है।

श्री सलेश कुमार, यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी (सुवा कैंपस) में भाषाविज्ञान के प्राध्यापक तथा भूतपूर्व रेडियो फ़िजी पत्रकार व फ़िजी टीवी प्रस्तुतकर्ता रहे हैं, उनके अनुसार फ़िजी हिंदी की त्रासदी यह है कि इसे अपने ही जीवित माता-पिता द्वारा अनाथ बनाया जा रहा है। उनका मत है कि फ़िजी हिंदी एक स्वाभाविक भाषा है, लेकिन कुछ लोग मानक हिंदी को प्रतिष्ठित भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए फ़िजी हिंदी का विरोध कर रहे हैं, जिसकी वजह से शायद युवा पीढ़ी हिंदी से दूर जा रही है।

डॉ. निकहत शमीम भाषाविज्ञान के विशेषज्ञ, फ़िजी हिंदी के उपयोग पर किए गए अपने शोध अध्ययन के आधार पर भारतीय समुदाय को सावधान करती हैं कि बच्चों द्वारा शहरी क्षेत्रों में फ़िजी

हिंदी का उपयोग कम हो रहा है। शहरी स्कूलों में फ़िजी हिंदी की तुलना में बच्चे अंग्रेज़ी में दक्षता दिखाते हैं। वहीं ग्रामीण स्कूलों में, बच्चें फ़िजी हिंदी और अंग्रेज़ी में समान दक्षता दिखाते हैं। यह भी देखा गया है कि प्राथमिक विद्यालयों में मानक हिंदी और उर्दू के अध्ययन में कमी हो रही है। बच्चे इसे उच्च स्तर में लेने का विकल्प नहीं चुन रहे हैं, क्योंकि यह एक 'कठिन' विषय है। इसलिए स्कूलों में फ़िजी हिंदी के उचित शिक्षण और संरक्षण की आवश्यकता है।

फ़िजी हिंदी फ़िजी के प्रवासी भारतीय मज़दूरों की बोलियों और भाषाओं के मिश्रण से उत्पन्न भाषा है, जिसकी शुरुआत कलकत्ता के डिपो से, श्रमिक जहाज़ों में और फ़िजी के खेतों में कामकाज के दौरान हुई। फिर देशकाल के अनुरूप इसमें अंग्रेज़ी और फ़िजियन भाषा से शब्द उधार लिए गए। आज फ़िजी हिंदी के माध्यम से प्रवासी भारतीय अपनी विशिष्ट पहचान और संस्कृति को कायम रखने में सक्षम हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. "Compulsory Teaching of Vernaculars in Schools." *फ़िजी सन (Fiji News)* . 22 जनवरी 2014. Retrieved from https://fijisun.com.fj/2014/01/22/compulsory-teaching-of-vernaculars-in-schools/
2. सुब्रमनी, *फ़िजी माँ*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ द साउथ पेसिफ़िक, फ़िजी, 2018
3. कंवल, जोगिन्द्र सिंह, सवेरा सिंह पब्लिशज़, फ़िजी, 1976, पृ. 89.
4. वर्मा, विमलेश कांति, "गिरमिटिया हिंदी : संवर्धन और संरक्षण," *गगनांचल*, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली, 2017 (जनवरी-अप्रैल), अंक 1-2
5. मोग, रोडनी. *Fiji Hindi : A basic course and reference grammar*. Australian National University, Canberra, 1977
6. सीगल, जे.एफ. *से इट इन फ़िजी हिंदी (Say it in Fiji Hindi)*. Pacific Publications (Aust) Pty Ltd. Sydney, 1977
7. सुब्रमनी, *डउका पुराण*, स्टार पब्लिकेशन, नई दिल्ली. भूमिका, 2001.
8. मिश्रा, विजय, *Literature of the Indian Diaspora : Theorizing the Diasporic Imaginary*, New York : Routledge, 2007
9. चंद्रा, प्रवीण, *कोई किस्सा बताव*, सम्पादकीय, कारिन्दाले प्रकाशन, ऑस्ट्रेलिया और यूनिवर्सिटी ऑफ़ दा साउथ पैसिफ़िक, 2018
10. शर्मा, दानेश्वर, *"Subramani's Fiji Maa : A Book of a Thousand Readings,"* December, 2008, Transnational, http://fhrc.flinders.edu.au/transnational/home.html
11. चंद्रा, प्रवीण, *एक अनोखी कथा,* केरिनडेल पब्लिशिंग, ऑस्ट्रेलिया 2023
12. Delaibatiki, Nemani, "Overwhelming Support For Fiji Hindi Over Hindi," *Fiji Sun*, 12 Feb 2020.

subashni.kumar@fnu.ac.fj

भारतीय गिरमिटिया समाज और रामचरितमानस

दीप्ति अग्रवाल
दिल्ली, भारत

वर्ष 1834 से 1920 तक भारत से अनेक श्रमिक मॉरीशस (1834), ब्रिटिश गयाना (1838), त्रिनिदाद, (1845) दक्षिण अफ़्रीका, (1860) सूरीनाम (1873) और फ़िजी (1879) आदि देशों में अनुबंधित श्रमिक के रूप में गए। अनजान धरती पर जाते हुए वे अपने साथ अपनी गठरी में, जिसे 'जहाज़ी बंडल' की संज्ञा दी गई थी, रामचरितमानस आदि ले गए थे, जो बाद में उनके दुख-सुख का साथी और उनकी नवनिर्मित संस्कृति का आधार बनी।

ये अनुबंधित श्रमिक, दक्षिण भारत से विशाखापट्टनम, कोयम्बतूर, तंजोर, तिरुचिरापल्ली, मद्रास आदि और पश्चिमी भारत से पूना, सतारा, रत्नागिरी, नागपुर आदि और उत्तर भारत से छोटा नागपुर, आजमगढ़, इलाहाबाद, गोंडा, सुल्तानपुर, गाजीपुर और बिहार क्षेत्र से गए। 19वीं सदी में भारत से जाने वाले अधिकतर श्रमिक पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार के थे और हिंदी भाषी क्षेत्र से थे। वे अवधी, भोजपुरी, मारवाड़ी या मगही बोलते थे। परस्पर व्यवहार की भाषा अवधी और भोजपुरी ही रही। दिन भर हाड़तोड़ मेहनत और गोरों की मारपीट सहने के बाद शाम के समय सभी श्रमिक एक जगह इकट्ठे होते थे, जिसे 'बैठका' कहते थे। वहाँ वे अपने दुख-दर्द बाँटते, बातचीत करते और भजन गाते थे। ऐसे समय में रामचरितमानस उनका बहुत बड़ा संबल बनी। इस महाकाव्य में वे सभी गुण हैं, जो किसी भी ग्रंथ को वैश्विक बना सकते हैं, जैसे - सुलभता, ग्राह्यता, सार्वजनीयता और इसकी मनोरम भाषा।

प्रवासी श्रमिक भारतीयों में 'रामचरितमानस' की प्रसिद्धि का मुख्य कारण 'जहाज़ी-भाइयों' के प्रवास और राम के वनवास में कई समानताएँ हैं जैसे - श्रमिक अपने परिजनों को स्वदेश में छोड़कर दूसरे देश गए थे। उन्हें यह आशा थी कि गिरमिट की अवधि पूरी होने के बाद वे स्वजनों से मिलेंगे। इसी तरह श्री राम को अयोध्या से 14 वर्ष के लिए वनवास मिला था और उन्हें भी यही उम्मीद थी कि वनवास पूरा होने के बाद वे अपने परिजनों से मिलेंगे। श्रमिक उत्तर से दक्षिण की ओर, नंगे पैर, जहाज़ के द्वारा अपनी मंज़िल की ओर गए थे। राम भी नंगे पैर, उत्तर से दक्षिण की ओर नदी और समुद्र पार करके वन में गए थे। परदेस की स्थितियाँ उन साधारण ग्रामीणों के लिए अनजानी थी। उन्होंने वहाँ के लोगों के साथ सामंजस्य बिठाया। वन का वातावरण भी राम के लिए अनजाना था। उन्होंने भी जंगल के लोगों और जानवरों के साथ रहना सीखा। श्रमिकों ने संघर्ष करते हुए समस्याओं का सामना किया। राम ने भी अपने कर्तव्य का पालन करते हुए वन की कठिनाइयों को झेला। राम की कहानी ने अनुबंधित श्रमिक प्रवासियों को जीवन की सीख प्रदान की।

फ़िजी में रामायण को 'रामायण महारानी' सूरीनाम को 'सिरीराम देश' और मॉरीशस को 'मारीच देश' नाम देना रामायण के प्रति सम्मान प्रकट करना रहा। 'मानस' की चौपाइयाँ गाते-गाते प्रवासी भारतीयों की भाषा में अवधी हिंदी का पुट आ गया। विभिन्न देशों में रामचरितमानस कैसे फली-फूली? इसका वर्णन निम्नांकित है :

मॉरीशस

मॉरीशस 'रामायण देश' के नाम से विख्यात है। यूरोपीय विद्वान जॉन लिंकन के अनुसार (हज़ारी सिंह 1975) भारतीय श्रमिक दिन भर कुदाल और फावड़े से कठिन परिस्थितियों में काम करते थे। लेकिन फिर भी रात्रि में देर तक तथा भोर से पहले उनके दीये जलते रहते थे तथा प्रार्थना, रामायण-गान और एक-दूसरे को सांत्वना देती हुई उनकी आवाज़ सुनाई देती थी। तब छपे हुए ग्रंथ सहज उपलब्ध नहीं थे, हस्तलिखित ग्रंथ ही पढ़े जाते थे। संभवत: गुदारसिंह ने सबसे पहले 'मानस' की हस्तलिखित प्रति तैयार की। शुरू के दिनों में 'बैठका' में रामायण के दोहे और चौपाई झाल और ढोलक पर गाते थे। एक उदाहरण देखिए -

"गौरी शिव शंकर के मंदिरवा।
री शिव पूजै, गौरी शिव पूजै हो रामा।"

श्रमिकों को रामायण पढ़ने और लोकगीत गाने से गोरे मालिक रोकते थे कि कहीं उनके बीच विद्रोह का जन्म न हो। भारी निगरानी के बीच भी श्रमिकों ने जगह-जगह हनुमान जी के छोटे-छोटे चौतरे बनाए। श्री जयनारायन राय के अनुसार - "गोरे मालिकों के दबाव में आकर कुछ पूर्वजों ने रामायण-पाठ बंद कर दिया था। भाषा का शिक्षण घरों से ही प्रारम्भ होता था। तुलसीकृत रामचरितमानस कहानियाँ सुनाना, सस्वर-पाठ तथा प्रवचन से

मातृभाषा सीखने में मदद मिलती थी। कालांतर में श्रमिकों के बच्चों की प्राथमिक पाठशाला भी बनी, जहाँ वे अपने बच्चों को हिंदी का ज्ञान कराते थे। पढ़ाई का प्रारम्भ ईश वंदना से होता था, जिसका पहला शब्द ही राम था-

राम गति देहु सुमति
सर सर सर सर सनझा कारी
सोने रूप गिरवार धारी
जे जाने गिरवर के भेद
नित उठ पूजे गनपत देव।

मॉरीशस की सरिता बुधु के अनुसार - "हिंदी को अपने आगमन के साथ ही आप्रवासियों ने सदैव प्रतिष्ठा प्रदान की। बैठकों में हिंदी सिखायी जाती है, ताकि बच्चे रामायण पढ़ सकें।" बाद में, रामायण मंडलियाँ बनीं, सत्संग के बाद हस्तलिखित रामचरितमानस की प्रतियाँ तैयार की जाती थी। मॉरीशस के रामयाद बताते हैं कि मॉरीशस के नौ ज़िलों में कम-से-कम चार या पाँच रामायण सभाएँ हैं। जैसे वृंदावन नव युवक सभा और वृंदावन सार्वजनिक मंदिर समिति और रामायण सेंटर। रामायण का पाठ शुरू करने से पहले आज भी ऐसी वाणी गायी जाती है -

तुलसी मगन भैल, हरि गुण गायके
हरि गुण गायके |
राम चले वन को, भरत चले घर को
तुलसी मगन भैल हरि गुण गायके।

1967 में स्वतंत्र भारत से कवि और लेखक मॉरीशस गए। मॉरीशस के प्रवासी भारतीय, उन्हें देखकर भाव-विभोर हो गए उनके नयन भर आए और उन्होंने रामचरितमानस की कथा सुनाई, गंगा तालाब पर पचास फुट ऊँची स्फटिक पत्थर की प्रतिमा का स्थापन रामकथा के प्रति प्रेम और आस्था का प्रमाण है। कमला रत्नम ने अपनी कविता में कहा, "पवन पुत्र जो हमेशा वायु में गमन करते हैं, आज शिलामूर्ति रूप धारण कर जल पर अपने प्रस्तर पैरों से चलकर मॉरीशस गए हैं।" 1967 में स्वामी कृष्णानंद ने मॉरीशस के बोशां विद्यालय में सुंदरकांड की कथा सुनाई। वह कथा वाचन इतना अनोखा था कि सभागार में तिल रखने की भी जगह नहीं थी। रामनवमी पर विशेष रूप से रामायण बाँची जाती है। मॉरीशस के हिन्द भवन में मुरारी बापू भी रामकथा वाचन के लिए गए थे। मॉरीशस के रामायण सेंटर में 24वाँ अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन भी इसी की एक कड़ी है। यहाँ के प्रसिद्ध गंगा तालाब पर महादेव के मंदिर में कृष्ण, राम, विष्णु आदि की मूर्तियाँ होना, यहाँ के लोगों की रामचरितमानस में आस्था होने का ही प्रमाण है। मॉरीशस का लालोरा का हनुमान मंदिर पूरे देश में प्रसिद्ध है, इन प्रवासी भारतीयों की भोजपुरी में रामकथा अत्यंत मार्मिक है। उदाहरण के तौर पर राम-सीता को वनवास पर साथ जाने को मना करते हैं और कहते हैं कि घर पर रहकर कौशल्या माता की सेवा करो -

'फिरिजाहू ए सीता फिरिजाहू, घर के लवटी जाव हो।'

सन् 1971 में सेवा शिविर तथा ह्मैन सर्विस ट्रस्ट के स्वामी कृष्णानंद जी महाराज ने रामचरितमानस की 30000 पुस्तकों को घर-घर वितरित करवाया। ह्मैन सर्विस ट्रस्ट 1980 से रामायण-गायन के कार्यक्रमों का नित्य आयोजन करता रहा है। चित्रकूट, वाले दे प्रेट (Vallee Des Pretres) के रामेश्वरनाथ हनुमान मंदिर ने रामचरितमानस के कुछ पदों को रिकॉर्ड कर कैसेट बनाई है, जिसकी बिक्री से प्राप्त पैसे का प्रयोग चित्रकूट के मंदिर-निर्माण के लिए किया जाता है। योगी रमन के हिन्द दर्शन आंदोलन के अंतर्गत रामायण-पाठ की अनेक प्रतियोगिता होती है।

सन् 1909 से पूर्व तक मॉरीशस में धार्मिक साहित्य कैथी लिपि में उपलब्ध था। 'संतनामा' और 'मानस' की पांडुलिपियाँ आज भी संतों के वंशजों के पास है। हिंदी में धार्मिक और सांस्कृतिक लेखन बासुदेव विष्णुदयाल ने आरंभ किया। 1983 से रामायण सेंटर के अध्यक्ष पं. राजेन्द्र अरुण इस विधा को बढ़ा रहे थे, लेकिन हाल ही में वे राम के लोक चले गए। उनकी पुस्तक हरिकथा अनंता' इस क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है। मॉरीशस सनातन धर्म टेम्पल्स फ़ेडरेशन के मंदिरों में रामायण-गान होता है। एम. बी. सी. रेडियो पर हर शुक्रवार को नियमित रूप से व्याख्या सहित रामायण का पाठ होता है।

त्रिनिदाद और गयाना

सुंदरनाथ सुरेन्द्रनाथ कपिलदेव के शब्दों में,"...भारत से हज़ारों मील दूर "काला पानी" के पार छोटे-से कैरिबियन द्वीप में दूसरे भारत का बीज बोया गया, अंकुरित हुआ, जड़ें पकड़ी और तुलसीदास और 'रामचरितमानस' के फल के रूप में अद्त प्रसाद पाया और तुम और मैं अपने पूर्वजों के दिए हुए योगदान के रूप में अपने बच्चों और उनके बच्चों के साथ इस फल का स्वाद चखेंगे और इस राष्ट्र के जीवन को समृद्ध बनाएँगे।" "*द इतिहास दे से स्टार्टेड इन भारत कूली जहाज़ी बंडल ऑन द फटेल रजाक रामायण, कोरान, झंडी फॉर न्यू तीरथ*" में इस तरह की अभिव्यक्ति भारतीयों के त्रिनिदाद आने के 150 वर्ष पूरे होने के अवसर पर दी

गई थी। जिस प्रकार बनारस में मानस कथा होती है, उसी प्रकार कैरिबियन क्षेत्र त्रिनिदाद और गयाना में भी होती है। रामायण का पाठ सामूहिक रूप से भजन और भोजन इसके अंग हैं। त्रिनिदाद में इसे 'झाल रामायण' और गयाना में 'रामायण बानी' कहा जाता है।

दक्षिण अफ़्रीका

दक्षिण अफ़्रीका में शर्तबंद मज़दूर हिंदी भाषा और संस्कृति को कठिन परिस्थितियों में जीवित रखने के लिए कटिबद्ध थे। कलकत्ता और मद्रास से आने वाले विभिन्न भाषी समूह राम के भक्त थे। हिंदू तुलसीदास की रामचरितमानस पढ़ते थे, तो तेलुगू भास्कर और रंगनाथन की रामायण पढ़ते थे और तमिल कंबन की रामायण। उषा देवी शुक्ल ने अपने शोध-प्रबंध में लिखा -

"रामचरितमानस ने प्रवासियों की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति की। धर्म-ग्रंथ होने के कारण वह आध्यात्मिक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत था। उसकी कथा और घटनाएँ मनोरंजन का साधन बनीं; साथ ही रामचरितमानस हिंदी सीखने के लिए पाठ्यपुस्तक के रूप में उपयोगी सिद्ध हुई (शुक्ल: 1989: 180) दक्षिण अफ़्रीका में भाषा और संस्कृति अन्योन्याश्रित थी। अवधी, भोजपुरी और हिंदी भी आपसी सहयोग से सह-अस्तित्व बनाए हुए थी। रामचरितमानस से धर्म को पुष्टि मिली और भाषा से धार्मिक प्रचार संभव हुआ।"

हिंदी भाषा के प्रचार में भी 'रामचरितमानस' मील का पत्थर सिद्ध हुई। एक शोधार्थी का कथन है - 'प्रांरभिक काल में दक्षिण अफ़्रीका के भारतीय प्रवासियों में संस्कृति की रक्षा भाषा करती थी, जबकि वर्तमान काल में संस्कृति भाषा के प्रति रुचि पुनर्जीवित कर रही है।' रामचरितमानस की अवधी, कृष्ण-भक्ति गीतों की ब्रज भाषा और कबीर जैसे संतों की मिली-जुली बोलियाँ लोकभाषा 'नैटाली' हिंदी के रूप में विकसित हुई, जो उन लोगों के बीच एक धार्मिक और सांस्कृतिक सेतु बन गयी। दक्षिण अफ़्रीका में 'रामचरितमानस' पर उषा देवी शुक्ल की दो पुस्तकें मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स द्वारा 2002 में आ चुकीं, जिनके नाम हैं 'रामचरितमानस इन साउथ अफ़्रीका' जो स्टार पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशित हुई और दूसरी पुस्तक 'रामचरितमानस इन द डायस्पोरा : त्रिनिदाद, मॉरीशस एंड साउथ अफ़्रीका' है। डॉ. रामभजन सीताराम ने रामचरितमानस पर हिंदी और अंग्रेज़ी में कई शोध-पत्र लिखे, जो गगनांचल, प्रवासी संसार, पंकज, मदर इंडिया, चिल्ड्रेन अबरोड आदि में प्रकाशित हुए। उषा शुक्ल के शोध प्रबंध से पंडित रामनाथ शुक्ल की रचना का एक उदाहरण देखिए -

भज राम नाम शुभनाम प्रभु का नाम
वह है अति प्यारा दुनिया का है अधारा।

दक्षिण अफ़्रीका के अग्रज विद्वान सीताराम राम भजन का कहना है – "भगवत गीता, रामायण, हनुमान चालीसा और सुंदरकाण्ड लोग पढ़ेंगे, तो उन्हें वह शांति मिलेगी, जो किसी भी भौतिक सुख से कहीं ज्यादा है।" ऐसे में रामचरितमानस उपयोगी सिद्ध हुई। बीसवीं सदी की शुरुआत में ही स्वैच्छिक धार्मिक-सांस्कृतिक सभाओं की स्थापना होने लगीं, जहाँ रामचरितमानस की सहायता से हिंदी सिखायी जाने लगी। भवानी दयाल के प्रयासों से हिंदी को आधिकारिक भाषा का स्थान मिला। 1880 में प्रसिद्ध श्री गोपाल लाल मंदिर का निर्माण हो गया था, जहाँ पूजा के साथ-साथ हिंदी भी सिखाई जाती थी।

सूरीनाम

रामराज्य का झाँसा देकर ही अराकाटी भोले-भाले भारतीयों को फँसाकर सूरीनाम ले गए थे। जहाज़ की प्रतीक्षा में गार्डन रीच कलकत्ता के डिपो में रह रहे श्रमिक जहाज़ आने पर गाते 'श्रीनमवा से आए जहाज़ डिपुआ खाली करें'। सूरीनाम के प्रसिद्ध साहित्यकार मुंशी रहमान खान 1898 में भारत से ही रामायण से प्रेरित थे और रामलीला देखने मौध, हमीरपुर से कानपुर गए थे, जब अराकाटी उन्हें बहला-फुसलाकर सूरीनाम ले आया था तब वे सूरीनाम में इतवार के दिन बच्चों को हिंदी सिखाते थे और रामायण पर प्रवचन देते थे। माढ़े के अनुसार सूरीनाम की हिंदुस्तानी में अवधी भाषा की छटा खूब दर्शनीय है। यहाँ के हर हिंदू के घर में सफ़ेद, लाल, नारंगी और पीली पताकाएँ हैं जिन्हें यहाँ झंडियाँ पुकारते हैं, गड़ी रहती हैं। वर्ष में कम-से-कम एक बार किसी भी अवसर पर कथा-पूजन कर उन्हें बदला जाता है। नवरात्रि व अन्य त्योहारों व विशेष अवसरों पर मंदिर अवश्य खुलते हैं और पूर्ण श्रद्धाभाव से भक्तगण ईश्वर का गुणगान करते हैं। दशहरा से पहले कई स्थानों पर रामलीला का आयोजन होता है और रामायण के प्रसंग खेले जाते हैं। दिवाली के अवसर पर भव्य आयोजन होता है। सूरीनाम के मुख्य स्थान पर एक वृहदाकार दीया, जिसका आकार लगभग चार फुट गहरा हो और जिसमें आठ फुट घेरा हो, जलाया जाता है। यह दीया नरक चतुर्दशी की रात्रि से दिवाली की रात तक जलता रहता है।

फ़िजी

1880 के दशक तक फ़िजी में हिंदू धर्म के मूल ग्रंथ जो सब-के-सब हिंदी में थे, जैसे - तुलसीदास कृत रामचरितमानस, माखन लाल खत्री की 'सुखसागर', भागवत पुराण का हिंदी अनुवाद, सत्यनारायण की कथा, दान लीला आदि प्रचलन में थे। लेकिन सबसे अधिक प्रचलित 'रामचरितमानस' हुई। फ़िजी के घर-घर में आज भी 'रामचरितमानस' उतनी ही पूजनीय है, जितनी भारत के हर घर में। एक शोध में व्यक्त है कि 1880 में शर्तबंद मज़दूरों के पास रामायण के केवल दो गुटके थे। एक गोरे व्यापारी ने भारत से मानस के गुटके मँगवाकर महँगे दामों पर श्रमिकों को बेचा और श्रमिकों ने मुँहमाँगी कीमत दी। भूतपूर्व राजदूत भगवान सिंह के अनुसार उन्होंने पाँच हज़ार रामचरितमानस की प्रतियाँ भारत से मँगवाकर फ़िजी की रामायण मंडलियों, प्रत्येक स्कूल, अदालत, मंदिर और समाजसेवी संस्थाओं को भेंट कीं। भारतीय किसान साबुन से हाथ धोकर, रेशमी वस्त्र बिछाकर और घुटनों के बल बैठकर रामायण की प्रतियाँ स्वीकार कर रहे थे।" आश्विन मास में श्रमिक रामलीला का प्रदर्शन करते थे। कुछ सहृदय अंग्रेज़ों ने भी इन सब कार्यों में चन्दा दिया था। फ़िजी के सबसे बड़े द्वीप वनुआलेवू के बुनीबिलहरा लंबासा प्रांत की श्री रामलीला फ़िजी में प्रसिद्ध है। हिंदू के घर में किसी की मृत्यु होने पर तेरह दिन तक श्री रामायण का पाठ होता है, जिस प्रकार भारत में न्यायाधीश के सम्मुख प्रतिवादी भगवान की शपथ लेता है, उसी प्रकार फ़िजी में हिंदू श्री रामायण की शपथ खाता है।

राम के नाम में बहुत महिमा है। अभिवादन में भी 'राम-राम' बोलो, ऐसा श्रमिकों का मानना था। उनके गीतों में भी यही व्यक्त है कि परस्पर 'राम-राम' कहते रहो। एक उदाहरण देखिए -

राम राम कहो भाई सुजन राम राम कहो भाई

इसी संदर्भ में ब्रिज वी लाल की लघुकथा मारित का एक उदाहरण -

भोला और उसकी पत्नी सुखराजी एक दिन सांझा के कडा घाम से आए के आपण एक पालिया घर के पोच में सुस्तान रहीं जब उनके पड़ोसी नानका आए पहुँचा 'राम राम भाई', भोला से बोलिस और एक लकड़ी के बाक्स पर बैठ गए।

फ़िजी में रामायण पाठ की एक झलक दया प्रकाश सिन्हा दिखाते हुए लिखते हैं सूवा से उन्नीस किलोमीटर दूर एक गाँव में रामायण-पाठ का आयोजन हो रहा है, जिसमें पाँच दिन का रामायण अनुष्ठान है, धरती से लगभग 30 सेमी. ऊँचे प्लेटफ़ॉर्म पर रामायण महारानी छोटी चौकी पर विराजमान है। भारत से आयातित राम-सीता, हनुमान के कंधे पर बैठे राम लक्ष्मण, अपना सीना चीर कर राम दरबार दिखाते हनुमान आदि की धार्मिक तस्वीरें लगी हैं और न्यूज़ीलैंड के गुब्बारे और घोड़े पर माला लिए बैठा यूरोपियन नाइट भी है।

त्रिनिदाद

सैंट लुसिया में जन्मे नोबल पुरस्कार विजेता डेरेक वालकोट ने 1992 में त्रिनिदाद में खुले आसमान के नीचे होने वाली रामलीला को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाई। डेरेक वालकोट ने रामलीला देखकर कहा कि ऐसा नहीं लग रहा है कि जहाज़ी खोये हुए भारत को ढूँढ रहे हैं, बल्कि ऐसा लग रहा है भारत यहीं विद्यमान है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के रूपान्तरण की तुलना जापान की एक कला किंसुगी से की, जिसमें टूटे हुए बर्तन को सोने या अन्य धातु की मदद से जोड़कर सुंदर रूप दे दिया जाता है और भारतीयों ने ऐसे ही अपने-आपको पुनर्स्थापित किया और यही कैरिबियन संस्कृति है और रामलीला इसका प्रमाण है। उनके शब्दों में - "देवी देवता खेतों में आ रहे हैं। भारतीय संगीत खुले मंच पर बज रहा है, जहाँ से रामलीला का प्रदर्शन होना है। सजे-धजे अभिनेता पहुँच रहे हैं। मेरा ख्याल है, वे राजकुमार और देवता हैं। दुर्भाग्य का ये कैसा प्रायश्चित है। मेरा ख्याल है भगवान का रूप ही अफ़्रीकन और भारतीय प्रवासन में अवतरित हो उठा है..." त्रिनिदाद में रामलीला कैरिबियन में होने वाली प्राचीनतम लोक कला है। यहाँ पिछले 100 वर्ष से दर्जनों स्थानों पर खुले मंच पर रामलीला होना पश्चिमी गोलार्ध में होने वाली अपने आप में अकेली घटना है।

गिरमिटिया देशों में विवाह, अंतिम क्रिया आदि संस्कारों पर रामचरितमाना की भूमिका

रामकथा के माध्यम से गिरमिटिया देशों में त्योहार भी मनाए जाते हैं, जैसे दीपावली, रामनवमी आदि। रामनवमी पर घर-घर रामकथा का पाठ होता है। राम के 14 वर्ष वनवास की अवधि पूरी कर अयोध्या लौटने की खुशी में दीपावली का त्योहार खूब धूमधाम से मनाया जाता है।

मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ़्रीका, सूरीनाम, फ़िजी के सनातनी हिंदू घरों के सामने हनुमान के देवालय या चबूतरे के पास लाल झण्डा लहरा रहा होता है जो उनकी हनुमान के प्रति भक्ति का प्रतीक है।

महाराज दशरथ, कौशल्या, राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान और सुग्रीव आदि पात्रों का प्रभाव प्रवासियों पर बहुत गहरा पड़ा। रामायण से प्रभावित होकर विवाह संस्कार में कई भोजपुरी लोकगीत गाये जाते हैं - जैसे रामचरितमानस में लौकिक विधि, नहछू-विधि, परिछन-विधि, सिंदूर-दान विधि, कोहबर-विधि आदि का वर्णन है। रामचरितमानस की रामलला नहछू-विधि को प्रवासियों की भोजपुरी में देखें -

नोह काटू ए नउवा नोह काटू
दूल्हा सुकुमार हउवें हौ

इसी तरह मानस में राम और शिव के विवाह के अवसर पर परिछन विधि का बहुत सुंदर वर्णन है। प्रवासी देशों में भी हिंदू विवाह में दूल्हे-दुल्हिन को राम-सीता के समान मानते हैं। 'लाजा होम' विधि में यह गीत गाया जाता है

मेराव हो सुनर भैया
बहिनी टोहार हऊवें हो
पहिला भंवरिया राम में परतहें हो
राम सीता होखेला लउवा बिआह जी।

जैसे सीता का कन्यादान होता है वैसे ही माता-पिता अपनी पुत्री का कन्यादान करते हैं। इस संदर्भ में यह गीत गाया जाता है -

चौका चढ़ि बैठेलिन गौरा सिया देवी
गौरा सिया देवी बार जे करेला सविकारजी

राम विवाह के होम विधि का भी प्रवासी भारतीय सुंदर वर्णन करते हैं -

होम भइले जाप भइले
धुअवां अकासे गइले हो
दादा के सब देवान आनंद भइले
आज घरवा जग्य भइले हो

इसी प्रकार मानस की कोहबर विधि का रूपान्तरण देखिए -

हीरे मोती के एही नया कोहबर
माणिक रचेला दुयार
ओही कोहबर बहसी दादी जगावेला
उठू पोता भइले भिनुसार।

जन्म से लेकर अंतिम संस्कार तक रामायण के मूल्यों से लोक-जीवन का मार्ग प्रशस्त होता है। मृतक की अंतिम यात्रा में राम-नाम सत्य का वाचन होता है अंतिम संस्कार में एक लोकगीत -

राम चले वन में ,लखन चले वन के,
सीता चले वन के ...
दशरथ चले धाम हो ...
सर धुनी-धुनी रोवे ला, कोसिला हो माई ..."

संतान जन्म के छठे दिन को बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। सोहर गाते हुए बालक को राम की उपमा देती हैं

चईठि तिथिया नऊमिया, तो नौबत बाजठ हो ,
ओ बाजत दसरथ द्वारा कोसिल्ला रानी मंदिर हो

एक अन्य उदाहरण देखें -

अँगने में थाड़े पिता राजा दशरथ दाई दो तिलक मोरे राम को

प्रवासी साहित्य में रामचरितमानस का प्रभाव

रामकथा को प्रवासी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में बहुत बार वर्णित किया है। काव्य, कथा, गद्य, नाटक सभी विधाओं में राम उपस्थित हैं। विभिन्न देशों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

'पूर्वजों को प्रणाम'
रामायण की तलवार हाथ लिए
जिन पूर्वजों ने छेड़ा था स्वतन्त्रता का संग्राम
उन को मेरा सौ सौ बार प्रणाम।

जनार्दन कालीचरन (मॉरीशस) की यह कविता प्रवासी भारतीयों, उनकी दुख, पीड़ा, संघर्ष सब बयान कर देती है और रामायण रूपी तलवार की सहायता से कैसे इन प्रवासी भारतीयों ने अपनी रक्षा की, बताती है। अभिमन्यु अनत के उपन्यास 'लाल पसीना' में भी हनुमान को संकटमोचन बताया है -

"भगवान से बड़ा कौन हो सकता है ?...महावीर स्वामी (हनुमान) का नाम लेने से ही संकट दूर हो जाता है। आज हनुमानजी की ही हम गुहार करेंगे। हम लोग चालीसा का पाठ एक साथ शुरू करें। पुजारी ने ज़ोरों के साथ हनुमान चालीसा का पाठ शुरू किया। लोगों ने स्वर मिलाया। दाऊद मियाँ और हनीफ एक ही जगह पर बैठे दुआएँ करने लगे।"

मॉरीशस के राज हीरामन ने मानस से प्रभावित होकर समसामयिक विषयों पर मानस के चरित्रों को प्रतीकात्मक बनाकर कविताएँ लिखी हैं, जिनमें से राम राज्य, रामायण जो महाभारत बनी, कैकेयी की सोच, कैकेयी फिर बौराई, भयभीत दशरथ, लंका पार की पूजा, 14 वर्ष कितने, वचन राजा बनने का, निरपराध दशरथ, राम का वनवास निश्चित, मत दो कैकेयी को दोष आदि प्रसिद्ध है।

दक्षिण अफ़्रीका की मालती रामबली की 'हनुमानजी की पंचमूल्य छड़ी' कविता का एक उदाहरण देखिए -

सर्वप्रथम भक्त चिरंजीवी हनुमानजी
छड़ी लेकर कलयुग में पधारे
प्रेम भक्ति नम्रता
ताकत बुद्धि की
बनी यह पंचमूल्य छड़ी।

जब श्रमिक आरंभ में सूरीनाम आए तब का एक गीत का उदाहरण -

सुमिरन करके नारायण के, ले बजरंगबली के नाम
कथा बखानूँ सूरीनाम को, जिन पर हमको है अभिमान।

फ़िजी के हिंदी साहित्यकार राघवानंद शर्मा की 'रामायण' कविता की बानगी-

हर गाँव में रामायण की गूँज सुनाना
घर घर पर हनुमान के झंडे का फहराना।

रामनारायण की 'हाँ, मैं मंथरा हूँ' में रामचरितमानस के एक पात्र के द्वारा कथा सुनाई गई है। मंथरा कहती है -

मैं ना होती तो बतलाओ
कौन जानता राम को
दशरथ के पुत्र भारत को
रह गए होते इतिहास में
यह मैं ही हूँ जिसने बनाया
राम को जन जन का राम...

मॉरीशस में रामचरितमानस पर आधारित नाटक भी लिखे जाने और मंचित किए जाने लगे थे। डॉ. रामयाद लिखते हैं - रामचरितमानस के अंशों पर आधारित नाटक 19वीं शती में मंचित किए जाते थे। इनमें लोकप्रिय अंश थे - अरण्य-कांड के ये भाग राम-वनवास, संत-महात्माओं से मिलाप, सीता-हरण, रावण-वध और श्री राम की अयोध्या वापसी। फ़िजी में 'अक्षरा' थिएटर द्वारा प्रस्तुत 'रामायण' को खूब सराहा गया। रामचरितमानस प्रवासी भारतीयों के लिए संस्कृति और श्रम की डोर बनी। आज प्रवासी देशों में भारतीय अपना परचम लहरा रहे हैं और रामचरितमानस ही उनकी प्रगति का मुख्य आधार रही।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. रत्नाकर नराले (संपा). प्रवासी भारतीय विविध आयाम, पुस्तक भारती, टोरंटो, कनाडा, 2020
2. Kalpana, Kannabiran, Commemorating Indian Arrival in Trinidad : mapping migration, gender, culture and politics in the Indian Diaspora, Economic and Political Weekly, Vol.33 no. 44, October 31 November 6, 1998 pp. WS 53-WS57
3. Lal, Brij. V, 2006, The Encyclopedia of the Indian Diaspora, Didier Millet, Singapore
4. विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय समाज - भाषा, साहित्य और संस्कृति, हिंदी स्वदेश में और विदेश में, सूचना और प्रसारण मंत्रालाय, दिल्ली, 2018
5. जयप्रकाश, मॉरीशस में हिंदी : एक सर्वेक्षण, विश्व हिंदी पत्रिका, 2010, मॉरीशस
6. कृष्ण कुमार, इकीसवीं सदी में रामचरितमानस की प्रासंगिकता, प्रवासी संसार,जुलाई-सितंबर, 2008
7. Rampersad Indrani. Ram Lila and the Remaking of a New Caribean Civilization:Nobel Prize Winner Derek Walcott, (2016), Ayodhya, India.
8. सरिता बुधू, मॉरीशस में भोजपुरी व मुसलमानी रिवाज, प्रवासी संसार, जुलाई-सितंबर 2008
9. कल्पना पाण्डेय, रामकथा के माध्यम से सांस्कृतिक अस्मिता की जीवंतता, गगनाञ्चल, 8 अंक 4, दिल्ली
10. कमला रत्नम, मॉरीशस स्मृति, गगनांचल, वर्ष 8 अंक, दिल्ली
11. बहादुर धनदेव, मानव मंगल शिविरों में हिंदी, गगनांचल, वर्ष 8 अंक 4, दिल्ली
12. शकुंतला कालरा, लघु भारत मॉरीशस का संस्कृति प्रेम, 'भाषा' पत्रिका, जनवरी-फ़रवरी, 2018, दिल्ली
13. देवेन्द्र चौबे, यह वह इतिहास तो नहीं, 'भाषा' पत्रिका, जुलाई-अगस्त, 2018, दिल्ली
14. हरीश नवल, मॉरीशस : एक परिदृश्य हिंदीमय, अंजुरी, मई-जून 2016
15. विनोद बाला अरुण, मॉरीशस में हिंदी, साहित्य अमृत, जुलाई 2007, दिल्ली
16. Kapildeo, Surindernaath The Relevence and Reality of the Hindu and the Ramayan in 21st century Trinidad, 17 February 1995
17. Maharaj, Indeera,"Ancestral Legacy", cf Ravi ji, "Pichkaaree : Harvesting Images for a Popular Literature.Sunday Guardian", 12 March 1995.
18. Usha Shukla, Ramayan as the Gateway to Hindu Religious Expression among South African Hindi Speakers. J Sociology Soc Anth, 4 (1-2) 83-91(2o13).

19. सीताराम, रामभजन, दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति, भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ, विश्व हिंदी सम्मेलन ग्रंथ, 2012
20. उषा शुक्ल, दक्षिण अफ़्रीका गणराज्य में हिंदी-अतीत, वर्तमान, भविष्य
21. सीताराम, रामभजन, नैताली हिंदी, बहुवचन 46, वर्धा, महाराष्ट्र
22. सुनंदा वर्मा, रामभजन से साक्षात्कार से 'हिंदी सबके निकट ही है', आजकल जनवरी 2016, दिल्ली
23. मोहन कान्त, गौतम सूरीनाम में हिंदी भाषा का इतिहास वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाएँ
24. सुरेन्द्र गंभीर, (संपा) प्रवासी भारतीयों में हिंदी की कहानी भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली
25. सुरेन्द्र गंभीर /वाशिनी शर्मा, गिरमिटिया देशों में हिंदी की यात्रा, प्रवासी जगत, जुलाई -सितंबर, 2019
26. भावना सक्सेना, सूरीनाम का हिन्दस्तानी समाज
27. लाल ब्रिज वी-रिचर्ड बाज फ़िजी में हिंदी
28. मनीषा रामरक्खा फ़िजी और भारतीय संस्कृति का अंतर्संबंध, प्रवासी संसार, जुलाई-सितंबर, 2016, दिल्ली
29. विवेकानंद शर्मा, फ़िजी में हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति : उद्भव तथा विकास, साहित्य अमृत, दिल्ली, जुलाई 2007
30. शरद कुमार, फ़िजी की संस्कृति में रची बसी हिंदी, गगनांचल, 2012, दिल्ली
31. अभिमन्यु अनत, हिंदी की अंतर्राष्ट्रीयता : मॉरीशस की भूमिका, विश्व भाषा हिंदी, भाषा विशेषांक : विश्व परिदृश्य, द्वितीय खंड, मॉरीशस
32. Manuel, Peter The trajectories of transplants : Singing Aalha Birha, and the Ramayan in the Atlantic Caribean. *CUNY Academic Works*, 1. (2012).
33. Usha Shukla, Ramcharitmanas in the Diaspora Trinidad, Mauritius and South Africa, Star Publications pvt. Ltd, New Delhi, 2011.
34. दया प्रकाश सिन्हा, रामायण महारानी का देश : फ़िजी, प्रवासी जगत, अप्रैल-जून, 2019,आगरा
35. Rampersad Indrani. Ram Lila and the Remaking of a New Caribean Civilization:Nobel Prize Winner Derek Walcott. *12th International Conference of the World Association for Vedic Studies.* (2016). Ayodhya, India.
36. Mahabir, Kumar and Susan J Chand.The Phenomenon of Ramleela/Ramlila Theatre in Trinidad. (P. Pratap Kumar, सं.) *International Journal for the Study of Hinduism, 27*, 1. (2014).
37. अनुक्षा रुटिया, मॉरीशस में हिन्द धर्म, विश्व भाषा, हिंदी भाषा विशेषांक: विश्व परिदृश्य, द्वितीय खंड
38. उदय नारायण गंगू, मॉरीशसीय लोक जीवन में रामचरितमानस का प्रभाव, मॉरीशस की संस्कृति और साहित्य, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली 2017
39. नर्मदा खेदना, रामायण से नि: सृत लोकगीत, विश्व हिंदी पत्रिका, 2020
40. इन्द चंद्र, फ़िजी की लोकगीत परंपरा, प्रवासी संसार, जुलाई -सितंबर, आगरा, 2016
41. उषा शुक्ल,दक्षिण अफ़्रीका गणराज्य में हिंदी-अतीत, वर्तमान, भविष्य सुरेन्द्र गंभीर (संपा) प्रवासी भारतीयों में हिंदी की कहानी भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली
42. मुनीश्वर लाल चिंतामणी, मॉरीशसीय हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि, भाषा, मार्च -अप्रैल 2003, दिल्ली
43. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1977
44. विमलेश कांति वर्मा, भावना सक्सेना, सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय वर्धा 2015 राधाकृष्ण दिल्ली
45. फ़िजी को समझने के लिए ज़रूरी है वहाँ के कवियों को पढ़ना, प्रधान संपादक, प्रवासी जगत, जुलाई सितंबर 2019
46. विमलेश कांति वर्मा, (संपा), फ़िजी का सृजनात्मक साहित्य, साहित्य अकादमी दिल्ली 2012
47. अलका धनपत, मॉरीशस का प्रथम हिंदी नाटक- 'जीवन संगिनी', विश्व हिंदी पत्रिका, मॉरीशस, 2017
48. भगवान सिंह, फ़िजी में हिंदी, भाषा, दिल्ली, 1975

deeptiaggarwalmailgmail.com

मुहावरों और लोकोक्तियों का अनुवाद

डॉ. सुप्रिया प्रभाकर जोशी
महाराष्ट्र, भारत

मनुष्य के जीवन में भाषा का बड़ा महत्त्व है। मनुष्य अपने विचारों का आदान-प्रदान, भावों की अभिव्यक्ति आदि भाषा के द्वारा ही कर पाता है। भाषा मानवीय संबंध का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। एथनोलॉग के अनुसार आज संपूर्ण विश्व में 196 देश हैं और वर्तमान में विश्व में लगभग 7117 भाषाएँ बोली जाती हैं। भाषा समाज के विकास-निर्माण, अस्मिता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का महत्त्वपूर्ण साधन है। इन सभी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा गया है। अभिव्यक्ति का पहला सशक्त माध्यम है - भाषा और विचार-भावों को एक-दूसरे तक पहुँचने के लिए दूसरा माध्यम है - **अनुवाद।**

भारत में अनुवाद की परंपरा पुरानी है। किसी भाषा में कही या लिखी गई बात का किसी दूसरी भाषा में सार्थक परिवर्तन अनुवाद कहलाता है। संभवत: मानव जन्म के साथ ही अनुवाद का जन्म हुआ। मनुष्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति की अकुलाहट ने ही अनुवाद को जन्म दिया। अनुवाद अन्य भाषा और मानव समुदाय में संचित विकसित ज्ञान-विज्ञान के आयात का माध्यम बन गया है। अनुवाद राष्ट्रीयता ही नहीं मानवता तथा विश्वबंधुत्व की स्थापना करता है। भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए अनुवाद समस्या भी है और महत्त्वपूर्ण भी है।

अनुवाद एक भाषिक क्रिया है। आधुनिक युग में जैसे-जैसे स्थान और समय की दूरियाँ कम होती गईं, वैसे-वैसे द्विभाषिकता की स्थितियों में अधिक मात्रा में वृद्धि होती गई। इसके साथ ही अनुवाद का महत्त्व बढ़ता गया।

अनुवाद का अर्थ :

अनुवाद शब्द का संबंध 'वद्' धातु से है, जिसका अर्थ होता है 'बोलना' या 'कहना'। इसमें 'अनु' उपसर्ग जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द निष्पन्न होता है। 'अनु' उपसर्ग का अर्थ होता है 'पीछे' या 'अनुगमन करना'। अनुवाद का मूल अर्थ है, पुन: कथन या किसी के बाद कहना।

प्राचीन गुरु-शिष्य परंपरा के समय से 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में भारतीय साहित्य में होता आ रहा है। गुरुकुल शिक्षा-पद्धति में गुरु द्वारा उच्चरित मंत्रों को शिष्यों द्वारा दोहराया जाना 'अनुवचन' या 'अनुवाक' कहलाता था, जो 'अनुवाद' का ही पर्याय है। पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में अनुवाद शब्द का प्रयोग किसी ज्ञात बात को कहने के संदर्भ में किया है -"अनुवादे चरणाम्। " भर्तृहरि ने भी अनुवाद शब्द का प्रयोग दुहराने या पुनर्कथन के अर्थ में ही किया है - "आवृत्तिनुवादो वा।"

हिंदी में आज अनुवाद शब्द का अर्थ उपर्युक्त अर्थों से भिन्न होकर केवल मूल भाषा के अवतरण में निहित अर्थ या संदेश की रक्षा करते हुए दूसरी भाषा में प्रतिस्थापन तक सीमित हो गया है। अंग्रेज़ी विद्वान मोनियर विलियम्स ने सर्वप्रथम अंग्रेज़ी में Translation शब्द का प्रयोग किया था। अंग्रेज़ी का Translation शब्द लैटिन के trans तथा lations के संयोग से बना है, जिसका अर्थ है – 'पार ले जाना'।

परिभाषा :

1) ऑक्सफ़र्ड डिक्शनरी : " A written or spoken rendering of the meaning of word, speech, book, etc. in an another language."

2) वैबस्टर डिक्शनरी : "Translation is a rendering from one language or representational system into another. Translation is an art that involves the recreation of work in another language for readers with different background."

3) **नाइडा :** "अनुवाद का तात्पर्य है, स्रोत भाषा में व्यक्त संदेश के लिए लक्ष्य-भाषा में निकटतम सहज सुंदर समतुल्य संदेश को प्रस्तुत करना। यह समतुल्यता पहले तो अर्थ के स्तर पर होती है, फिर शैली के स्तर पर।"

4) **न्युमार्क :** "अनुवाद एक शिल्प है, जिसमें एक भाषा में व्यक्त संदेश के स्थान पर दूसरी भाषा के उसी संदेश को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।"

5) **देवेंद्रनाथ शर्मा : "** विचारों को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करना अनुवाद है।"

6) **भोलानाथ तिवारी :** " किसी भाषा में प्राप्त सामग्री को दूसरी भाषा में भाषांतरण करना अनुवाद है, दूसरे शब्दों में व्यक्त विचारों को यथासंभव और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास ही अनुवाद है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अनुवाद की परिकल्पना में स्रोत भाषा की सामग्री लक्ष्य भाषा में उसी रूप में संपूर्णता में प्रकट होती है। अनुवाद करते समय सामग्री के साथ प्रस्तुति के ढंग में भी समानता होनी चाहिए। मूल भाषा से लक्ष्य भाषा में रूपांतरित करने में स्वाभाविकता का निर्वाह अनिवार्यत: होना चाहिए।

आज विश्व की बदलती हुई परिस्थितियों में अनुवाद का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। अनुवाद अन्य भाषाओं के साहित्य-गद्य एवं पद्य से तो हम परिचित हो ही रहे हैं। साथ ही, अन्य देशों के विचार, अनुसंधान-कार्य और सामाजिक-सांस्कृतिक विचारधाराएँ भी प्राप्त होती हैं।

साहित्यिक पाठ का अनुवाद करते समय अनुवादक को विधानुगत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। साहित्यिक पाठ (गद्य और पद्य दोनों में) सांस्कृतिक प्रतीकों के अनुवाद की समस्या विकट होती है। स्रोत भाषा समुदाय की अनेक सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराएँ जब लक्ष्य भाषा में उपलब्ध न हो, तब उन सांस्कृतिक परंपरा-बोधक शब्दों, मुहावरों और कहावतों अथवा लोकोक्तियों के अनुवाद की समस्या जटिल हो जाती है।

हम सभी को ज्ञात है कि सामान्य, सपाट या अभिधामूलक अभिव्यक्ति में न तो गहराई होती है, न ही विशिष्ट प्रभाव को उत्पन्न करने की क्षमता होती है और न ही सौंदर्य होता है। 'मुहावरेदार' भाषा को अभिव्यक्ति का सशक्त एवं उत्तम माध्यम माना गया है। सामान्य बोलचाल में हम इनका अधिक मात्रा में प्रयोग करते हैं। जो बात सामान्य कथन में कम प्रभावी होती है, वही बात मुहावरे और लोकोक्ति के प्रयोग द्वारा अर्थवान ही नहीं बनती, बल्कि भावों को कई आयामों पर प्रस्तुत कर देती है। यह अनुभव जन्य होती है। इसमें अनेक वर्षों का या पीढ़ियों का अनुभव सम्मिलित होता है, जो मनुष्य के स्वभाव को और सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों को उद्‌घाटित करता है।

भारतीय सभी भाषाओं में पद्य और गद्य साहित्य के सभी प्रकारों में अपनी बात को अधिक प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए अलंकार और छंदों का प्रयोग होता है। उसी के समान साहित्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी होता है। मानव-जाति भाषा के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति बखूबी दे पाता है। साहित्य-लेखन के समय रचनाकार जनभाषा सौंदर्य और चमत्कारपूर्ण कला से अपने भाषा-कौशल को प्रदर्शित करते हैं। यह मुहावरों और लोकोक्तियों को अधिक व्यंग्यपूर्ण, चमत्कारिक और रोचक बनाते हैं। किंतु अनुवाद के समय यही चमत्कारिकता और रोचकता अनुवादक के लिए कभी समस्या बन जाती है, तो कभी मानव-जीवन की समानता अनुवादक के लिए सहायक बनती है। अधिकतर मुहावरे और लोकोक्तियाँ प्रादेशिकता तथा अंचल से अधिक प्रभावित होती हैं। जिन शब्द चिह्नों का प्रयोग एक भू-भाग में जिस भावना को व्यक्त करने में होता है, कभी-कभी दूसरे अंचल में वह भावना अस्तित्व में ही नहीं होती है। इसलिए यह मुहावरों और लोकोक्तियों के अनुवादक के समक्ष अजीब संकट खड़ा कर देता है। भाषा की तथा भाषाई प्रदेश की संस्कृति, सामाजिकता और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, कभी-कभी मददगार साबित होते हैं, तो कभी समस्या भी खड़ी कर देती हैं। इसकी चर्चा हम निम्नवत करेंगे।

मुहावरों का अनुवाद :

अनुवाद करना अपने-आप में एक कठिन कार्य है। भाषिक और वैश्विक दोनों ही स्तरों पर समस्याएँ होती हैं। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण समस्या मुहावरों के अनुवाद की है। मुहावरों का अनुवाद बहुत कठिन कार्य है, क्योंकि मुहावरे सामान्य अभिव्यक्ति नहीं होते। किंतु अनेक जगहों पर भावों की समानता अनुवाद के लिए सहायक भी साबित होती है।

सबसे पहले मुहावरे का अर्थ जान लेना ज़रूरी है। मुहावरा एक ऐसा वाक्यांश होता है, जिसका अर्थ लक्षणा या व्यंजना के द्वारा निकलता है। सामान्य शब्दों के सहारे अभिव्यक्त की गई बात की तुलना में मुहावरे द्वारा हुई अभिव्यक्ति अत्यंत प्रभावशाली और व्यंजक होती है। यह वाक्यांश अभिधार्थी नहीं होता, बल्कि लक्षणा या व्यंजना के माध्यम से प्रकट होता है। 'किसी विशिष्ट अनुभूति को अभिव्यक्त करने की विशिष्ट शैली ही मुहावरा है।' इसी विशिष्टता के कारण सीधे-साधे शब्दों में कही गई बात की तुलना में मुहावरे के माध्यम से कही गई बात अधिक प्रभावशाली होती है। मुहावरे भाषा की संपत्ति होते हैं। एक भाषा के मुहावरों को दूसरी भाषा में संपूर्ण अर्थवत्ता के साथ संप्रेषित करना अत्यंत कष्टसाध्य काम है।

कुछ भारतीय विद्वानों ने मुहावरे को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है -

1) **डॉ. उदय नारायण तिवारी** ने लिखा है -

"हिंदी-उर्दू में लक्षणा अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहा जाता है।"

2) **डॉ. ओमप्रकाश गुप्त** ने कहा है -

"प्राय: शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों और कहावतों अथवा भाषा के कतिपय विलक्षण प्रयोगों के अनुकरण या आधार पर निर्मित और अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ देने वाले किसी भाषा के गढ़े हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश या शब्द समूहों को मुहावरा कहते हैं।"

मुहावरों की परिभाषाओं में सबसे अधिक व्यापक तथा संतोषजनक परिभाषा डॉ. ओमप्रकाश गुप्त ने दी है।

मुहावरे आज भी शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण-शहरी आदि समाज के प्रत्येक हिस्सों में अपना स्थान बनाए हुए हैं। इनके प्रयोग से भाषा में चित्रमयता आती है, जैसे - अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारना, दाँतो तले उँगली दबाना। ऐसे मुहावरों से घटना हमारे सामने आभासी तौर पर प्रकट हो जाती है।

अनुवाद करते समय अनुवादक को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है और अधिकांश भाषाओं की जननी संस्कृत होने की वजह से अनेक भाषाओं के मुहावरों में समानता दिखाई देती है।

1) **स्रोत भाषा का एक होना :**

हिंदी तथा मराठी दोनों भाषाओं की स्रोत भाषा संस्कृत है। बंगाली, गुजराती, पंजाबी इसके लिए अपवाद नहीं है।

जैसे:- 1) आकाश पाताल एक करना - आकाश पाताळ एक करणे

2) राई का पहाड़ करना - राईचा पर्वत करणे

3) आँखों में धूल झोंकना - डोळ्यात धूळ फेकणे

4) कमर कसना - कंबर कसणे

5) अंगुलियों पर नचाना - बोटावर नाचवणे

6) चिराग तले अंधेरा - दिव्या खाली अंधार

7) जहाँ चाह, वहाँ राह - इच्छा तेथे मार्ग

8) ढाक के तीन पात - पळसाला पाने तीनच

9) गुस्सा पी जाना - गुस्सा पी जवो

10) नानी याद आना - नान्नी याद आना।

2) **भाव साम्य न होना :**

मुहावरों का अनुवाद करते समय अनुवादक को एक भयंकर समस्या का सामना करना पड़ता है। कई बार शब्द साम्य होते हुए भी अपेक्षित भावसाम्य नहीं होता। कई बार भाव की दृष्टि से विपरीत अर्थ होता है। जैसे -

आँखें चार होना - प्यार होना (चार डोळे होणे-चश्मा लगना)

चार हाथ होना - हाथापाई होना (दोनाचे चार हात होणे-विवाह होना)

'देव पाण्यात बुडविणे' इसका सीधा शब्दश: अनुवाद 'ईश्वर को पानी में डुबो देना।' यह भयंकर अनुवाद का उदाहरण हो सकता है।

इस तरह ऊपरी तौर पर समान लगने वाले, लेकिन भीतर-ही-भीतर व्यतिरेक लिए हुए मुहावरों से अनुवादक को बचकर रहना चाहिए।

3) **भारतीय संस्कृति की विविधता :**

विभिन्न जाति-धर्मों के तीज-त्यौहार भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। क्रिश्चन समाज के 'ईस्टर' जैसे त्यौहार का अनुवाद करना कठिन है। दिवाली, होली जैसे त्यौहारों का अनुवाद 'फ़ेस्टिवल ऑफ़ लाइट' या 'फ़ेस्टिवल ऑफ़ कलर' के रूप में करना काफ़ी नहीं है। भारतीय भाषाओं में भी 'मकर संक्रांति' के लिए 'पोंगल' शत-प्रतिशत सही विकल्प नहीं है। प्रत्येक धर्म की अपनी पौराणिक कथाएँ हैं, अधर्म पर धर्म की विजय के कारण ये त्यौहार मनाए जाते हैं। इनसे जुड़ी पवित्र भावनाओं का अनुवाद करना थोड़ा कठिन हो सकता है।

महाराष्ट्र में गुढीपाडवा से नया वर्ष प्रारंभ होता है। इसका इतना ही अनुवाद हो सकता है, क्योंकि भारत के हर एक राज्य का नया वर्ष भिन्न-भिन्न तिथियों तथा प्राकृतिक बदलावों पर निर्भर होता है। जैसे- दक्षिण की ओर पोंगल, तो पंजाब में बैसाखी मनाते हैं, जबकि महाराष्ट्र में इस समय होली का त्यौहार मनाया जाता है।

पोळा जैसा उत्सव भाद्रपद कृष्ण अमावस को महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं छत्तीसगढ़ में मनाया जाता है। इस दिन मुख्यतः बैलों की पूजा की जाती है। महाराष्ट्र का गणेशोत्सव तो पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। गणेश जी के साथ गौरी या महालक्ष्मी का भी 3 दिनों के लिए आगमन होता है। इसी के साथ महाराष्ट्र के आराध्य श्री विट्ठल दर्शन के लिए प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में भक्तगण हज़ारों किलोमीटर पैदल चलकर पंढरपुर जाते हैं, इसे 'वारी' कहा जाता है, यह वारी यानि सभी जाति-धर्मों का मिलाप होता है। यह लगभग 'सर्वधर्म

सम्भाव' का जन-उत्सव ही कहा जा सकता है, जो दूसरे राज्यों में अस्तित्व में नहीं है।

महाराष्ट्र की कुछ सांस्कृतिक पंरपराएँ जैसे : ओटी भरणे, तोरण बांधणे , घागरी फुंकणे, आदि इनका अनुवाद कैसे हो सकता है ?

भारत के अलग-अलग हिस्सों में अनेक प्राचीन संस्कृतियों का पालन आज भी बड़ी शिद्धत से किया जाता है, जिसमें संपूर्ण प्रकृति का समावेश होता है और इस प्रकृति के साथ हमारी अनगिनत पीढ़ियाँ एवं पुर्खे समझौता करती आ रही है। प्रकृति वह चाहे पेड़-पौधों की हो, मनुष्य के स्वभाव या शरीर की हो, जानवरों या स्वयं ईश्वर की लीला या नियति की हो, इन अनुभवों से मुहावरे और लोकोक्तियाँ हमारी भाषा के अस्तित्व में हैं।

व्रत और उपवास प्रत्येक समाज की धार्मिकता का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। शब्द अनूदित हो सकते हैं, लेकिन श्रद्धा को अनूदित नहीं किया जा सकता। अत: यह सामग्री अनुवाद की दृष्टि से कठिन सामग्री मानी जाती है।

4) **भाषा पर प्रभाव होना :**

आज आधुनिक युग में दुनिया एक 'ग्लोबल विलेज' मात्र बनकर रह गई है। इस स्थिति में भाषाओं पर एक-दूसरे का प्रभाव अवश्य ही पड़ जाता है, जिसके कारण शब्द तथा अर्थ की दृष्टि से पूर्णत: समान मुहावरा मिलना मुश्किल नहीं है। देश, प्रांत, भू-भाग, विभिन्न क्यों न हो? इन सभी देशों की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक ढाँचा अलग-अलग क्यों न हो, किंतु मनुष्य का स्वभाव तो निश्चित एक ही होता है। उनके जीवन से मिले अनुभव भी एक जैसे हो सकते हैं और इसी तरह कुछ मुहावरे भी हमें ऐसे मिलते हैं, जहाँ शब्द की जगह पर शब्द और कभी-कभी अर्थ एक समान हो।

जैसे:- 1) रंगे हाथों पकड़े जाना - To be caught red handed

2) जीवन के उतार-चढ़ाव - Ups and downs of life

3) बच्चों का खेल - Child's play

4) मगरमच्छ के आँसू - Crocodile's tears

5) सफ़ेद झूठ - White lie

6) शीत युद्ध - Cold war

7) काला बाज़ार - Black Market

8) आँखों में धूल झोंकना - To throw dust in eyes

9) चैन आना - To feel relieved

10) अपनी कब्र खोदना - To dig one's own grave

उपर्युक्त मुहावरे ऐसे उदाहरण हैं, जो प्रत्येक शब्द का सही अनुवाद करता है या स्रोत भाषा में जो संदेश या संकेत दिया गया है, वही संदेश लक्ष्य भाषा में मिलता है। अंग्रेज़ कई वर्षों तक भारत में रहे। अत: अंग्रेज़ी का प्रभाव भारत की भाषा पर होना लाज़मी है। पहले जो उदाहरण देखे हैं, बिल्कुल वैसे ही सभी जगह पर नहीं देखा जाता। जैसे - To rain cat and dogs का अनुवाद 'कुत्ते बिल्ली का बरसना' के रूप में करेंगे, तो हास्यास्पद ही होगा। अनुवादक को चाहिए कि वह शब्दों का ध्यान रखना छोड़कर केवल भावों पर अपना ध्यान केंद्रित करें। अनुवादक शब्द-शब्द का अनुवाद करना चाहेगा, तो उसका यह प्रयास हास्यास्पद बन सकता है।

शब्दों को छोड़कर भावों का अनुसरण करने के कुछ उदाहरण हमें मिल ही जाते हैं।

जैसे - 1) काला अक्षर भैंस बराबर - अक्षर शत्रु असणे

2) जैसे को तैसा देना - To pay back in his own coin

3) आँखें चार होना - To look into each other's eyes

4) पैंतरे बदलना - To change front

5) सारी कहानी कह डालना - To empty the bag

6) फूटी आँख न भाना - To have no liking

अनुवादक का पहला प्रयास यही होना चाहिए कि वह लक्ष्य भाषा में शब्द और अर्थ की दृष्टि से पूर्णत: समान मुहावरा खोज सके, लेकिन ऐसा न होने की स्थिति में समान भाव वाले मुहावरे को चुनना चाहिए। अनुवादक को चाहिए कि वह ध्यान दे कि स्रोत भाषा का संदेश ही लक्ष्य भाषा में पहुँचे। फिर चाहे लक्ष्य भाषा के शब्द चिह्न कोई भी क्यों न हो, क्योंकि प्रत्येक भाषा की संस्कृति अलग होती है। केवल अंग्रेज़ी में ही यह दुविधा नहीं, बल्कि संस्कृत एक ही जननी होने के बावजूद भी हिंदी और मराठी में यह समस्या हमें आती है।

जैसे : काला अक्षर भैंस बराबर अर्थात् अशिक्षित होना, जिसका मराठी में सही अनुवाद होगा - 'अक्षरशत्रु असणे'

1) सरड्याची धाव कुंपणापर्यंत - मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक (भाव-सीमाएँ)

2) वासरात लंगडी गाय शहाणी - अंधों में काना राजा (भाव-

अनुभाव होना)

3) पळसाला पाने तीनच - ढाक के तीन पात (भाव-कोई परिवर्तन न होना)

कई बार मुहावरों का अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने एक विचित्र समस्या आ जाती है। मुहावरों में ऐसा कोई संदर्भ नहीं होता है कि उसका अनुवाद तो छोड़िए नवनिर्माण भी नहीं हो सकता। ऐसे मुहावरों में स्थित संदर्भ से मिलता-जुलता कोई संदर्भ लक्ष्य भाषा में होता ही नहीं।

जैसे - Dead like dodo इस मुहावरे का केंद्र dodo शब्द में हैं। इस dodo शब्द का दूर-दूर तक कोई विकल्प हिंदी में विद्यमान नहीं है। इस स्थिति में अनुवाद 'पूरी तरह समाप्त हो जाना' के रूप में सरल अनुवाद कर दे।

भारतीय भाषाओं में मुहावरे का कोश अति विशाल और व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से युक्त है। भारतीय भाषाओं में अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा के मुहावरों के संबंध में ज्ञान अर्जित करना अनुवादक का प्रथम कर्तव्य होता है। मुहावरों का शाब्दिक अनुवाद भी सही रूप में काम आ जाता है, किंतु मुहावरों का भावानुवाद अधिकांश स्थितियों में उपयोगी सिद्ध होता है।

लोकोक्तियों का अनुवाद :

लोकोक्तियों का संबंध हमारे लोक जीवन और उसके प्रत्येक दिन के जीवन से है। लोकोक्तियों की भाषा भी मुहावरों की तरह ही विशिष्ट होती है। लोकोक्तियाँ पूरी तरह हमारे लोक जीवन, अनुभव, दृष्टांत, सांस्कृतिक विरासत, धार्मिक मान्यताओं और जीवन-मूल्यों से जुड़ी होती हैं।

कहावत लोकोक्ति का दूसरा नाम है। ये दोनों शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों में साम्य दृष्टिगत होता है, किंतु इनमें अंतर है। मुहावरा वाक्यांश होता है और वाक्य में उसका प्रयोग करने के लिए क्रिया की आवश्यकता होती है। लोकोक्ति अपने आप में एक पूरा वाक्य होती है। लोकोक्तियाँ मानव के अनुभवों का निचोड़ होती हैं तथा इनमें वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक मात्रा में निहित होती है। इनमें स्थित व्यंग्य वक्तव्य को चुटीला बनाता है, लेकिन अनुवाद में यही चुटीलापन उतार पाना बड़ा कठिन होता है।

लोकोक्ति की परिभाषा निम्नवत है -

1) **डॉ. भोलानाथ तिवारी** : "विभिन्न प्रकार के अनुभवों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं कथाओं, प्राकृतिक नियमों एवं लोक विश्वास आदि पर आधारित चुटीला, सारगर्भित, सजीव, संक्षिप्त लोक प्रचलित ऐसी उक्तियों को लोकोक्ति कहते हैं, जिनका प्रयोग बात की पुष्टि या विरोध, सीख तथा भविष्य कथन आदि के लिए किया जाता है।"

2) **धीरेंद्र शर्मा** : "लोकोक्तियाँ ग्रामीण जनता की नीति शास्त्र है। यह मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं।"

3) **डॉ. सत्येंद्र** : "लोकोक्तियों में लय और तान या ताल न होकर संतुलित स्पंदनशीलता ही होती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से हम यही कह सकते हैं कि लोकोक्तियाँ आम जनमानस द्वारा स्थानीय बोलियों में हर दिन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से उपजे वैसे पद एवं वाक्य होते हैं, जो किसी खास समूह, वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में प्रयोग किया जाता है।

लोकोक्तियों में अनुभूतिपरक अभिव्यंजना होने के कारण इसका प्रभाव पाठक या श्रोता में विनोदात्मक स्थिति पैदा करता है। कुछ लोकोक्तियाँ मनोरंजक भी होती हैं, जिनसे वातावरण की गंभीरता को कम किया जा सकता है। अभिव्यंजना की दृष्टि से लोकोक्तियाँ जितनी महत्त्वपूर्ण होती हैं, अनुवाद में इसका प्रयोग उतना ही कठिन और जटिल होता है। स्रोत भाषा की लोकोक्तियों का लक्ष्य भाषा में समान रूप से अनुवाद करते समय दोनों भाषाओं के रीति-रिवाज़ों, परंपराओं, हास्य-व्यंग्य की प्रयुक्तियों, अर्थ-बिंबो, अलंकारों आदि का ज्ञान अनुवादक के लिए अनिवार्य है। लोकोक्तियाँ सामान्यतः सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, भौगोलिक ऐतिहासिक, धार्मिक और पौराणिक तथ्यों से संपृक्त होती हैं। इन सभी संदर्भों से लोकोक्तियों का निर्माण होता है। इन्हें लक्ष्य भाषा में यथावत संप्रेषित करना अनुवाद का कठिन कार्य है।

1) **सांस्कृतिक भिन्नता :**

सांस्कृतिक भिन्नता को हम अनुवादक के लिए पहली समस्या मान सकते हैं। प्रत्येक समाज की अपनी आचरणगत परंपरा तथा सभ्यता होती है, जिसे हम संस्कृति कहते हैं। स्वाभाविक रूप से कुछ सांस्कृतिक शब्द या संस्कृति से जुड़े शब्द लोकोक्तियों में शामिल हो जाते हैं। ठीक इन्हीं संदर्भों से बनी लोकोक्ति लक्ष्य भाषा में मिलेगी ही, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

जैसै - 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' के लिए अंग्रेज़ी में विकल्प मिल ही नहीं सकता। 'गंगा' हमारी संस्कृति में अत्यधिक पवित्र मानी जाती है। वह संपूर्ण समाधान और संतुष्टि के प्रतीक

के रूप में इस लोकोक्ति में उतर आई है। पश्चिम में नदी संस्कृति का हिस्सा नहीं मानी जाती। 'गंगा' के लिए भारतीय समाज के मन में जो भावनाएँ हैं, वह पश्चिम समाज के मन में किसी नदी के लिए नहीं है। भारतीय संस्कृति में 'गोदान' किया जाता है, अब गोदान का अंग्रेज़ी अनुवाद सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में कठिन है। अतः ऐसी लोकोक्तियाँ तथा इनमें निहित सांस्कृतिक भिन्नता अनुवाद में समस्या के रूप में उभरकर आती है। किंतु कभी-कभी सांस्कृतिक भिन्नताएँ होते हुए भी, हमें स्रोत और लक्ष्य भाषा में अधिक निकट भाव मिल ही जाते हैं। जैसे -

1) घोड़े बेचकर सोना - Carefree sleep

2) चोर-चोर मौसेरे भाई - as thick as thieves

3) नाच न जाने आँगन टेढ़ा - A bad workman quarrels with his tools

4) इधर कुआँ उधर खाई - Between the devil and the deep sea

5) पाँचों अंगुलियाँ बराबर नहीं होतीं - Diversity is the rule of nature

6) कुत्ते की दुम टेढ़ी - A Leopard cannot change its spots

7) भगवान के यहाँ देर है, अंधेर नहीं - The mills of God grind slowly

2) **प्रतीकों में भिन्नता** :

प्रतीकों में भिन्नता लोकोक्तियों के अनुवाद में कठिनाई उपस्थित करती है। प्रतीक ऐसी चीज़ है, जो दो भिन्न समाजों तथा संस्कृतियों में समान रूप से नहीं मिलती। लोकोक्तियाँ तो प्रतीकों से भरपूर होती हैं। इन प्रतीकों द्वारा उनका अनुवाद संभव ही नहीं होता।

जैसे - 1) कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली

2) घरात नाही दाना, मला बाजीराव म्हणा

3) मला पाहा आणि पान फूल वाहा

4) अक्कल नाही काडीची नाव सहस्रबुद्धे

5) उतावळा नवरा गुडघ्याला बाशिंग

6) मागुन पुढुन बाप नवरा ल्योकाला ठिकाणाचा पत्ताच नाही

7) कावळ्याच्या शापाने गाय मरत नाही

8) नकटीच्या लग्नाला सतराशे विघ्न

9) हासळला हिसाळा शेजारी पिसाळला

उपर्युक्त उदाहरणों में अगर हम केवल 'कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली' का अंग्रेज़ी अनुवाद करने लगे, तो वास्तविक रूप में पाश्चात्य देशों में 'राजा भोज' नहीं होता और 'गंगू तेली' नहीं होता। महाराष्ट्र में 'बाजीराव' नाम से पेशवा और उनकी अमीरी हमें ज्ञात होती है, विदेशों में इसका कोई विकल्प ही नहीं है, यह अनुवाद की समस्या हो सकती है। भारत में या देश के अन्य राज्यों में कुछ प्रतीक ऐसे हैं, जो विदेशों में अस्तित्व में नहीं हैं, इन प्रतीकों का अनुवाद संभव नहीं है।

3) **लोकोक्तियों में समानता :**

हिंदी, मराठी, बंगला जैसी भाषाओं की स्रोत भाषा संस्कृत होने के कारण इनमें कई समान लोकोक्तियाँ पाई जाती हैं। जैसे -

1) जैसा बोएगा वैसा पाएगा - पेराल तसं उगवेल

2) नाम बड़े और दर्शन छोटे - नाव मोठं नि लक्षण खोटं

3) रस्सी जल गई पर ऐंठन न गई - सुंभ जळाले आणि पीळ कायम राहिले

4) नौ की लकड़ी नब्बे खर्च - खायला फुटाणे आणि टांग्याला आठ आणे

5) डूबते को तिनके का सहारा - बुडत्याला काडीचा आधार

6) दूध का जला मट्ठा भी फूँक-फूँककर पीता है - दुधाने तोंड पोळल्यावर माणुस ताक ही फुंकुन पितो

7) उलटा चोर कोतवाल को डाँटे - चोर चे चोर आणखी वर शिरजोर

8) छोटा मुँह बड़ी बात - लहान तोंडी मोठा घास.

9) अधजल गगरी छलकत जाय - आध गगरी जल करै छल-छल

इस प्रकार की कहावतें उपलब्ध हो जाएँ, तो वे ज्यों-की-त्यों लक्ष्य भाषा में अनुवादित हो जाती हैं। यह स्थिति अनुवादक के लिए मददगार साबित होती है।

4) **फ़ारसी और अंग्रेज़ी का प्रभाव** :

फ़ारसी जैसी भाषा मध्यकाल में हमारी राजभाषा रही है और

अंग्रेज़ी के प्रभाव से बचना संभव ही नहीं है। इन भाषाओं ने हिंदी पर अपना प्रभाव डाला है। इन भाषाओं की लोकोक्तियाँ भी हमारी भाषा में घुलमिल चुकी हैं। जैसे -

1) नीम हकीम खतर ए जान - नीम हकीम खतरा ए जान

2) अक्लमंदाना इशारा काफ़ी अस्त - अक्लमंद को इशारा काफ़ी होता है

3) An empty mind is devil's workshop - खाली दिमाग शैतान का घर

4) Necessity is the mother of invention - आवश्यकता आविष्कार की जननी है

ऐसी लोकोक्तियों को पढ़कर यही तर्क लगा सकते हैं कि एक ही स्थिति की अभिव्यक्ति अलग-अलग देशों के लोग समान रूप से कर सकते हैं।

5) **भाव और शब्दों में समानता :**

भाव और शब्द दोनों दृष्टियों से समानता रखने वाली लोकोक्ति का मिलना एक दुर्लभ संयोग होता है। जैसे -

All that glitters is not gold - हर चमकती चीज़ सोना नहीं होती ।

नाँच न जाने आँगन टेढ़ा - नाचता येईना अंगण वाकडे

जाके राखै साइयाँ मार सके ना कोय - देव तारी त्याला कोण मारी

इस प्रकार शब्द और भाव की समानता के साथ लोकोक्तियाँ बहुत कम मात्रा में दृष्टिगत होती हैं।

प्रस्तुत शोध आलेख में हिंदी, मराठी, भारतीय भाषा तथा अंग्रेज़ी भाषा के मुहावरों एवं लोकोक्तियों की मुख्यत: चर्चा की गई है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक भाषा में वहाँ की संस्कृति या रहन-सहन के अनुभवों से मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग होता है। ये मुहावरे और लोकोक्तियाँ समाज के गठन की ओर संकेत करती हैं। समाज का खान-पान, वेशभूषा, प्रकृति तथा पशु-पक्षियों से उनका संबंध, बाह्य जगत या घटित होने वाली घटना या प्रसंग को देखने का उनका एक अलग दृष्टिकोण बन जाता है, इसका अर्थबोध हमें इन मुहावरों और लोकोक्तियों से होता है। अत: व्याकरणिक तथा संरचनात्मक धरातल पर बहुत कम मुहावरों और लोकोक्तियों का अनुवाद किया जा सकता है। हिंदी-मराठी की तुलना में अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद करते समय कुछ अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, किंतु सकारात्मकता के साथ विचार करने से यही ध्यान में आता है कि भू-भाग एवं संस्कृतियाँ विभिन्न होने के बावजूद भी मनुष्य की स्वभावगत अनुभूतियाँ और मनोभाव समान होते हैं, इन्हीं भावनाओं का संचय वे करते ही हैं।

भाषा का प्रयोग भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए होता है। मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग से अभिव्यक्ति अधिक सशक्त तथा प्रभावशाली बन जाती है। अनुवाद में जिन अनेक समस्याओं से जूझना होता है, उनमें मुहावरों तथा लोकोक्तियों का अनुवाद एक विकट समस्या है। जो मुहावरे लक्ष्य भाषा में नहीं हैं, वे उन्हें उसी भाषा के समीप अर्थ रखने वाले मुहावरों या कहावतों में अनुवादित कर देना चाहिए। जब लक्ष्य भाषा में ऐसे मुहावरों का नितांत अभाव हो तभी ऐसा शब्दानुवाद करना चाहिए। अधिकतर मुहावरे और कहावतें पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित होती हैं। इनके प्रयोगों के पीछे जो कथाएँ हैं, उनको भी फुटनोट में स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

संदर्भ-सूची ग्रंथ :

1) भोलानाथ तिवारी - अनुवाद विज्ञान - शब्दकार, नई दिल्ली
2) हाडके सुमेंध - अनुवाद का सैध्दांतिक परिप्रेक्ष्य
3) विकीपीडिया
4) भोलानाथ तिवारी – अनुवाद-विज्ञान
5) गोस्वामी कृष्ण कुमार – अनुवाद-विज्ञान की भूमिका - राजकमल प्रकाशन
6) अनुवाद निरूपण
7) अनुवाद स्वरूप एवं व्याप्ति

supriyaj827@gmail.com

हिंदी का ई-संसार एवं जन-माध्यम

1. मीडिया का अनुवाद : समस्याएँ एवं समाधान - प्रोफेसर (डॉ.) अर्जुन चव्हाण
2. हिंदी को जन-जन तक पहुँचाता सोशल मीडिया - डॉ. संजय कुमार
3. डिजिटल विश्व में हिंदी के बढ़ते कदम - डॉ. कमलेश गोगिया
4. हिंदी का ई-संसार - डॉ. सविता डहेरिया
5. अपनी पहुँच से समृद्ध होती हिंदी - अभिनव अरुण
6. नीदरलैंड में हिंदी पत्रकारिता - डॉ. जवाहर कर्नावट

मीडिया का अनुवाद : समस्याएँ एवं समाधान

प्रोफ़ेसर (डॉ.) अर्जुन चव्हाण
महाराष्ट्र, भारत

1. जनसंचार माध्यम / मीडिया : संकल्पना या अवधारणा:

'जनसंचार' इन दिनों की अत्यंत संवेदनशील संकल्पना है और अवधान भी। यह साधारण और सामान्य है, लेकिन इसका कार्य तथा प्रभाव असाधारण और असामान्य। 'जनसंचार माध्यम' का इतिहास गवाह है कि इसका लोहा साधारण या सामान्य को ही नहीं, बल्कि असाधारण या असामान्य को भी मानना पड़ा। वस्तुतः इसके भाव, विभाव, अनुभाव एवं स्थायीभाव ने ही इसका प्रभाव बढ़ाया। 'जनसंचार माध्यम' शब्द की निर्मिति जन + संचार + माध्यम के योग से हुई है, जिसमें निहित 'जन' का अर्थ है - जनता, लोक, मानव-समूह, मानव-समाज। 'संचार' का अर्थ है - गमन, प्रवेश, फैलाव, पहुँचना और 'माध्यम' का अर्थ है - मध्य का, बीच का, मध्यवर्ती, साधन, ज़रिया। इस प्रकार 'जनसंचार माध्यम' का सामान्य अर्थ है - जनता या जनसमूह में प्रवेश करने वाला साधन, लेकिन यह प्रवेश करता है, सूचना के साथ, जानकारी के साथ इसलिए कहना होगा कि सूचना और जानकारी को जनसमूह तक संप्रेषित करने का कार्य करने वाला माध्यम या साधन 'जनसंचार माध्यम' है।

'जनसंचार' का अंग्रेज़ी में समानार्थी शब्द है - Mass Communication तथा 'जनसंचार माध्यम' का समानार्थी शब्द है - Media और आजकल यही शब्द हिंदी, अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में मीडिया के रूप में प्रचलित है। यहाँ से आगे 'जनसंचार माध्यम' के लिए हम 'मीडिया' शब्द का प्रयोग भी समान अर्थ में करते हैं। वैसे भी जानकारी के लिए इन पंक्तियों के लेखक की, 'मीडिया कालीन हिंदी स्वरूप एवं संभावनाएँ' पुस्तक सन् 2005 में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हो चुकी है और 'मीडिया' जनसंचार माध्यम का संक्षिप्त तथा उपयुक्त विकल्प के रूप में स्थापित हो चुका है।

2. जनसंचार माध्यम / मीडिया स्वरूप – विवेचन :

'जनसंचार माध्यम' अर्थात् 'मीडिया' नाम देखने को संक्षिप्त है, लेकिन इसका स्वरूप अत्यंत व्यापक है। इसके अंतर्गत लिखित रूप में जानकारी या सूचना देने वाले सभी साधन आते हैं, जिनमें दैनिक समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकाएँ, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, षण्मासिक, वार्षिक, नियतकालिक, अनियतकालिक, विशेषांक, गौरवांक, पोस्टर, स्टिकर, बैनर, होर्डिंग, पैम्प्लेट, विज्ञापन आदि सब आते हैं। दूसरी ओर लिखित के अलावा 'मीडिया' का मौखिक रूप भी मिलता है, जिसे केवल सुना जा सकता है। इसमें रेडियो, एफ.एम, स्थानीय रेडियो, ऑडिओ, कैसेट, टेप-रेकॉर्ड आदि आते हैं। इसके अलावा दृश्य और श्रव्य माध्यम भी हैं, जिन्हें हम एक साथ देख और सुन भी सकते हैं। इनमें दूरदर्शन (टीवी), विविध चैनल, वीडियो, फ़िल्म, विविध धारावाहिक, नाटक, एकांकी, इंटरनेट तथा ई-मेल आदि प्रमुख हैं। इन दिनों आई.टी. क्षेत्र के नए रूप भी 'जनसंचार माध्यम' अर्थात् 'मीडिया' की भूमिका को निभा रहे हैं। इनमें व्हाट्सएप, फ़ेसबुक, यूट्यूब, इन्स्टाग्राम आदि विशेष महत्त्व पा चुके हैं। इन पंक्तियों के लेखक की मान्यता है -

"मीडिया एक शक्ति है, जो मानव मुक्ति के सारे पर्याय प्रस्तुत करती है। 'मीडिया' एक ताकत है, जिसका लोहा राजनीति भी मानती है। यह वह अद्‌त आग है, जो जीवन देती है और लेती भी, हँसाती भी है और रुलाती भी, बनाती है और बिगाड़ती भी। चिंगारी को शोले बनाना और शोले को शबनम, इसके बाँये हाथ का खेल होता है।"

जनसंचार माध्यम मूलतः समाचार और संदेश-सम्प्रेषण का कार्य करते हैं। ये समाचार या संदेश विविध स्वरूप के होते हैं। अंतः मीडिया या जन-संचार माध्यमों का स्वरूप भी व्यापक एवं विविधांगी होता है। वस्तुतः समाचार के समानार्थी शब्द इस प्रकार मिलते हैं -

आबोहवा (Aabohavaa), इत्तला (Ittalaa), इत्तिला (Ittilaa), खबर (Khabar), वृत्त (Vrutt), वृत्तांत (Vruttaant), इतिवृत्तांत (Itivruttaant), संदेश (Sandesh), हाल (Haal), हालात (Haalaat) आदि इन सारे शब्दों का कमोबेश अभिप्रेत अर्थ है - समाचार। अंग्रेज़ी में 'न्यूज़' (NEWS) समानार्थी पर्याय प्रचलित है। इसमें जो चार वर्ण निहित हैं, उनमें से प्रत्येक का अभिप्रेत अर्थ इस प्रकार है - N = North, E = East, W = West और S = South आदि मिलाकर 'न्यूज़' बनती है। अर्थात् उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण जैसे चार दिशाओं की खबर जिसमें होती है वही 'न्यूज़' मानी जाती

है। वस्तुतः मुख्य चार और चार उपदिशाएँ तथा धरती (नीचे) और आसमान (ऊपर) ये दो, ऐसी कुल दस दिशाओं की खबर का मतलब ही समाचार कहलाता है।

वास्तव में, समाचार या 'न्यूज़' का स्वरूप हिंदी के निम्नांकित छह 'क' तत्त्व केंद्रित होता है और अंग्रेज़ी के पाँच 'डब्ल्यू' और एक 'एच' तत्त्व केंद्रित होता है। जैसे - 'क्या, कब, क्यों, कहाँ, कौन, कैसे, इन छहों तत्त्वों का समावेश समाचार के स्वरूप को दर्शाता है। जैसे -

1 क्या = क्या घटित हुआ (घटना), 1.W = What-Happened (Incidence)

2 कब = कब घटित हुआ (समय), 2.W = When-Happened (Time)

3 कहाँ = कहाँ घटित हुआ (स्थान), 3.W = Where-Happened (Place)

4 किससे = किसके साथ हुआ (नाम), 4.W = Whom-Happened (Person)

5 क्यों = क्यों घटित हुआ (कारण), 5.W = Why-Happened (Reason)

6 कैसे = किस तरह हुआ (वर्णन), 6.H = How - Happened (Description, in details)

इन सबका समावेश जनसंचार माध्यम के समाचार को समग्रता तथा संपूर्णता प्रदान करता है। इससे समाचार का और समाचार माध्यम का स्वरूप पूर्णत्व पाता है। वह अपने स्वरूप, सीमा और व्याप्ति को स्पष्ट द्योतित करता है।

3. जनसंचार माध्यम / मीडिया भेद / विभेद

अलबत्ता हमें इक्कीसवीं सदी के समाज एवं राष्ट्र के विकास में जनसंचार माध्यमों (Mass Media) का महत्त्व मानना होगा। संपूर्ण विश्व को एक देहात में बदल देने में मीडिया की भूमिका स्वीकारनी पड़ेगी। 'विश्वग्राम' अर्थात् 'ग्लोबल विलेज' (globale village) संकल्पना का अस्तित्व में आना भी मीडिया की बदौलत ही कहना होगा। पल भर की देरी में कोई व्यक्ति अपने समाज, प्रदेश, देश और विदेश के हालात और आबोहवा की जानकारी पाता है, वह मीडिया के बूते पर ही खुद को दुनिया के सामने प्रस्तुत करता है और दुनिया को खुद के सामने प्रस्तुत पाता है, वह मीडिया के कारण ही। कौन नहीं जानता कि आज जानकारी, संदेश, सामग्री पाना-पहुँचाना जनसंचार माध्यम से ही संभव हो सका। इससे सुविधा, समृद्धि, संज्ञान, विज्ञान और विकास की गति कई गुना बढ़ गई, इसे कौन नहीं मानता? मीडिया, कहीं लिखित, कहीं दृश्यात्मक, कहीं चित्रात्मक, कहीं अक्षरात्मक, तो कहीं विद्‌तीय रूप में मौजूद है, जिससे हम सब लाभान्वित हैं। यह सब जनसंचार माध्यम (मीडिया) की देन है। वस्तुतः जनसंचार के साधन उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं, लेकिन उन सबको निम्नांकित तीन प्रकारों / भागों में विभाजित कर सकते हैं, जैसे –

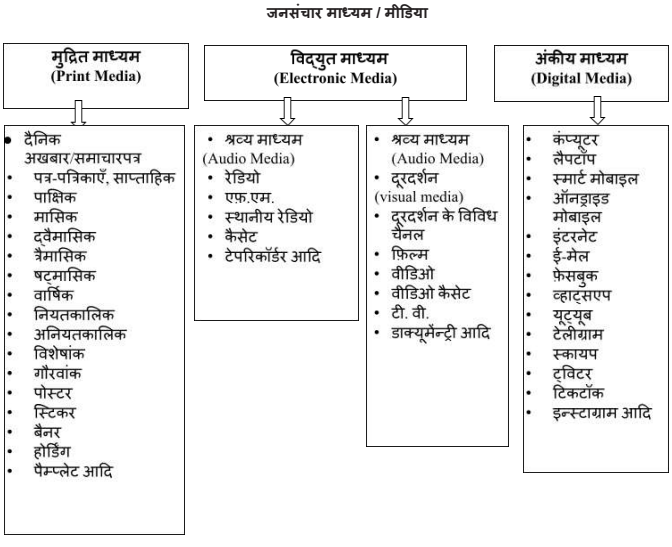

उपर्युक्त सारे माध्यम अपने प्रयोजन की पूर्ति के प्रयास में निश्चित ही सफल हैं। समाचार, जानकारी, संदेश और हर तरह की सामग्री प्रेषण एवं प्राप्ति में सारा मीडिया महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 'प्रिंट' और 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' के अलावा विगत कुछ दिनों में 'डिजिटल मीडिया' ने जनसंचार माध्यम के रूप में अपूर्व क्रांति की है।

कुछ साल पहले कंप्यूटर अधिक महत्त्वपूर्ण साधन बनकर आया (वैसे वह आज भी है) किंतु कुछ हद तक लैपटॉप ने उसकी छुट्टी कर दी। फिर लैपटॉप से होने वाला काम एंड्राइड स्मार्ट मोबाइल से होने लगा तब उसने लैपटॉप की भी छुट्टी कर दी। इंटरनेट तथा ई-मेल जैसे साधन मीडिया के बड़े-बड़े विकल्प बनकर आए। द्रुतगति से संदेश, समाचार, सामग्री, भेजना-पाना सुलभ हुआ। किंतु व्हाट्‌सएप, फ़ेसबुक जैसे विकल्प आ गए और अब लगता है उन्होंने इंटरनेट- ई-मेल की भी छुट्टी कर दी। अब आईटी बेस (Information Technology Based) अंकीय माध्यम (Digital Media) अपूर्व, अनुपम और अद्‌त क्रांति के साथ अवतीर्ण

हुआ है। जैसे - व्हाट्सएप (Whatsaap), यूट्यूब (YouTube), टेलीग्राम (Telegram), स्काइप (Skype), ट्विटर (Twitter), टिक टॉक (Tik Tok) और इन्स्टाग्राम (Instagram) आदि वे अंकीय माध्यम (डिजिटल मीडिया) बड़े पैमाने पर प्रयुक्त हो रहे हैं, जिनके अनुवाद की संभावनाएँ भी अनंत है। कहना सही होगा कि मीडिया के ये सारे नए-पुराने, स्थापित-नवस्थापित, मशहूर-अतिमशहूर, चर्चित-बहुचर्चित और अनोखे-अद्‌त माध्यम हैं, जिन्होंने वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय विकास कार्य में अपने अस्तित्व की दस्तक दी है। अब विकास का दरवाज़ा खुल गया है, रास्ता खुल गया है। उसे और अधिक गतिमान बनाया जा सकता है। मीडिया का अनुवाद इस कार्य में अपना योगदान निश्चित कर सकता है, इसे स्वीकारना होगा।

4. मीडिया के अनुवाद की आवश्यकता / उपयोगिता :

मीडिया मानव-समाज के जीवन का अभिन्न अंग है। उसके बिना वर्तमान जीवन की कल्पना संभव नहीं। जो आज मीडिया के संग है, वही 'अपडेट' है, किंतु जो उसके संग, उसके साथ नहीं है, तय है कि वही 'आउट ऑफ़ डेट' है। कहना होगा कि मीडिया भले हमसे जुड़े-न-जुड़े, हमें उससे जुड़े रहना होगा वर्ना पिछड़ना दूर नहीं। मीडिया हमारा ख्याल रखे-न-रखे, मगर हमें मीडिया का ख्याल रखना होगा। समय के साथ रहने के लिए, स्वयं को समकालीन रखने के लिए। मीडिया भले संजीवनी न सही, लेकिन हमारी जीवनी का हिस्सा ज़रूर बन जाता है, उसे संवारने में मदद कर देता है। इसीलिए मीडिया का अनुवाद हमारे विकास और उन्नयन के साधनों में से एक महत्त्वपूर्ण साधन बन जाता है। "डॉ. नगेंद्र जी की मान्यता स्वीकार्य है कि "यदि हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना है, तो इस प्रयास में अनुवाद की भूमिका निश्चय ही अत्यंत प्रभावी रहेगी।" यह सही है कि वर्तमान समय और समस्या से लड़ाई में वही जीत सकता है, जिसके पास समृद्ध एवं सशक्त साधन हो। मीडिया का अनुवाद भी आज हमारे समाज, देश और विदेश के लिए एक नया साधन सिद्ध हुआ है और संसाधन भी। उसके अनुवाद की आवश्यकता व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व-जीवन के विकास का रास्ता प्रशस्त करती है, इसे मानना पड़ेगा। मनोहर श्याम जोशी का यह कथन मीडिया के महत्त्व पर रोशनी डालता है। "कम्प्यूटर और कम्यूनिकेशन का गठजोड़ होने से कम्यूनिकेशंस का युग शुरू हुआ है। उसमें तमाम दूरियाँ सिमट गई हैं और राष्ट्रव्यापी क्या विश्वव्यापी स्तर पर काम करने की बात सहज हो गई है।" इन पंक्तियों में लेखक का मानना है कि "अनुवाद की उपयोगिता बहुआयामी है।" इसके साथ ही, इन पंक्तियों में लेखक का इस संदर्भ में 'अनुवाद चिंतन' में कहना है कि "अनुवाद की उपयोगिता न केवल वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर, अपितु राष्ट्रीय स्तर पर भी है।"

5. मीडिया के अनुवाद की स्रोत सामग्री :

मीडिया नाम एक लेकिन इसके साधन अनेक मिलने / होने के कारण इसके अनुवाद की सामग्री भी विशाल है। जितने विस्तृत रूप में इसके क्षेत्र, साधन और भेद-विभेद मिलते हैं, अनुवाद की सामग्री भी उतनी ही विस्तृत रूप में उपलब्ध होती है। इसके पूर्व हमने मीडिया के जिन प्रमुख भेदों-उपभेदों या प्रकारों की ओर दृष्टिपात किया है, प्रायः उन सबकी सामग्री अनुवाद के लिए प्रस्तुत है, उपलब्ध है। मुद्रित, विद्‌तीय और अंकीय माध्यमों की अधिकतर सामग्री अनूद्य है। भविष्य में देश में हज़ारों की तादाद में अनुवादकों की आवश्यकता हो सकती है। उपर्युक्त तीनों प्रकारों के माध्यमों के ज़रिए जो सामग्री प्रसारित हो रही है, उनमें प्रधानतः निम्नांकित सामग्री, स्रोत सामग्री के रूप में प्रतीक्षित है -

आज सभी प्रकार के समाचार, विज्ञापन, डाक्यूमेंट्री, साक्षात्कार, निवेदन, भाषण, संभाषण, मनोरंजन के कार्यक्रम, फ़िल्म, नाटक, संवाद, शीर्षक, पटकथा, प्रबोधन, उद्बोधन, सम्बोधन, शासकीय आदेश, संदेश, उपदेश, नीतियाँ, सूचना, बाज़ार-मंडी, शेयर मार्केट, चिकित्सा, ज्योतिष, शोधकार्य, साहित्य, समीक्षा, कला, उद्योग-व्यवसाय, विधि, विज्ञान, समाज विज्ञान, अनुप्रयुक्त, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानविकी, क्रीड़ा, खेलकूद, महिला-जगत, बाल-जगत, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पर्यावरण, यातायात, पर्यटन, यात्रा और आवागमन तथा मौसम आदि मीडिया के अंतर्गत प्रसारित होते ही रहते हैं।

ऊपर निर्देशित सारी सामग्री मीडिया से प्रसारित-प्रचारित होती है। जनसंचार के सभी माध्यम, यथा समाचार-पत्र, रेडियो, दूरदर्शन, फ़िल्म, वीडियो आदि अपने व्यवसाय तथा पेशेवर उद्योगों को वर्धित करने के लिए उपर्युक्त विविध प्रकार की सामग्री का प्रकाशन-प्रसारण करते हैं, जो अनुवाद की स्रोत-सामग्री के अंतर्गत आती है। वर्तमान काल में इनके अलावा अंकीय माध्यम (डिजिटल मीडिया) हैं, जैसे - फ़ेसबुक, व्हाट्सएप, यूट्यूब, टेलीग्राम, स्कायप, ट्विटर, टिकटॉक और इन्स्टाग्राम आदि। इन सबसे भी जो जनसंचार माध्यम का कार्य हो रहा है, उसमें फ़ोटो, चित्र आदि की बात छोड़ दें, लेकिन लघु अवधि वीडियो, लघुतम फ़िल्में, प्रबोधन एवं मनोरंजन के वीडियो और तत्सम सामग्री आदि अनुवाद की ही

स्रोत-सामग्री है, इसे मानना होगा। निकट भविष्य में इनके अनुवाद के लिए अनुवादकों की माँग बढ़ेगी, इसमें संदेह नहीं।

6. मीडिया के अनुवाद के तत्त्व / सिद्धांत :

अनुवाद के प्रकार निर्धारित करने के आधार विविध हैं। विषय क्षेत्र के आधार पर निर्धारित साहित्यिक और साहित्येतर अनुवाद जैसे दो भेदों में से मीडिया का अनुवाद दूसरी श्रेणी में अर्थात् साहित्येतर अनुवाद में आता है। ध्यान देने की बात यह कि यह स्रोत सामग्री पर निर्भर हुआ करता है कि उस सामग्री के अनुवाद हेतु अनुवाद के किन तत्त्वों या सिद्धांतों का अनुगमन करना है। मीडिया के अनुवाद के अपने तत्त्व या सिद्धांत हैं, जिनका पालन करना अनुवाद कार्य में नितांत ज़रूरी है। जनसंचार के सारे माध्यम मूलतः जन संपर्क हेतु अस्तित्व में आए हैं, जिनका प्रमुख उद्देश्य है जन (Mass) से संम्प्रेषण (Communication) अबाध रूप से, सुगमता से हो। अनुवाद में यह तभी संभव होता है, जब मीडिया का अनुवादक उसके तत्त्व या सिद्धांत से परिचित हो। अन्य क्षेत्रों के अनुवाद के अलावा मीडिया जैसे क्षेत्र का अनुवाद कार्य (कुछ मात्रा में) निश्चय ही अलग होता है। इसमें निम्नांकित प्रमुख सिद्धांतों या तत्त्वों का अनुपालन अवश्य करना पड़ता है, जैसे -

निश्चितता : (Exactness, Appropriateness, Specificity)
वास्तविकता : (Actuality, Truthness, Reality, fact)
विश्वसनीयता : (Reliabiility, Credibility)
वस्तुनिष्ठता : (Ojectivity)
तटस्थता : (Neutrality)
संतुलितता : (Balanced)
निष्पक्षता : (Impartiality)
पठनीयता : (Readability)
रोचकता : (Interesting)
सूचनात्मकता : (Suggestivity)
संप्रेषणीयता : (Communicativity)
सुबोधता : (Lucidity)

जनसंचार माध्यमों का सीधा संबंध एवं संपर्क जनता से होने के कारण जो मीडिया के सिद्धांत बनते हैं, प्रायः उसके अनुवाद में भी उनका अनुपालन होना अनिवार्य होता है। वर्ना बात बनते-बनते बिगड़ सकती है और बिगड़ते-बिगड़ते बन सकती है। निश्चित जानकारी या सूचना पहुँचाना, उसका वास्तविकता से युक्त होना, उसमें विश्वसनीयता, वस्तुनिष्ठता, तटस्थता, निष्पक्षता, संप्रेषणीयता और सूचनात्मकता का होना ज़रूरी होता है। वह रोचक, पठनीय और दर्शनीय तो है ही, लेकिन संतुलित भी। उसे संक्षिप्तता, सारगर्भितता एवं समग्रता से युक्त होना अपेक्षित होता है और आवश्यक भी। तब समझना चाहिए मीडिया अपना नैतिक दायित्व वहन कर रहा है और उसका अनुवादक भी। जिस समाज और राष्ट्र में मीडिया के मालिक तथा मीडिया के अनुवादक इन तत्त्वों / सिद्धांतों का पालन करेंगे, समझना चाहिए कि उस समाज तथा राष्ट्र का भविष्य भी उज्ज्वल रहेगा।

7. मीडिया के अनुवाद की समस्याएँ :

आज की तारीख में मीडिया सबसे तेज़ चलने वाला सिक्का है। जो उसके वैविध्यपूर्ण रूपों से कुछ ग्रहण करता है वह अपने उन्नयन एवं विकास के सारे उपाय पा सकता है। वर्तमान समय में हमें स्वीकारना होगा कि आज ऐसा कौन होगा जो मीडिया के भाव, विभाग, अनुभाव और प्रभाव को नहीं जानता? कहना ज़रूरी नहीं कि मीडिया की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता अब संदेह से परे है। फलतः उसका अनुवाद भी आज अधिक उपयोगी एवं आवश्यक हो बैठा है। लेकिन सच है कि उसका अनुवाद अपने आप में टेढ़ी खीर है। यह काम ऐरे-गैरे के बस की बात नहीं। इसके लिए सक्षम और ज़िम्मेदार अनुवादक की आवश्यकता है। इसलिए कि अन्य क्षेत्रों की सामग्री की तुलना में मीडिया के अनुवाद में समस्याएँ कुछ ज़्यादा आती हैं। इनमें से प्रमुख समस्याओं का विवेचन यहाँ प्रस्तुत है -

7.1 विषय वैविध्य जनित समस्याएँ :

मीडिया नाम भले ही एक हो, लेकिन इसके रूप अनेक हैं। समाचार-पत्रों में वह लिखित रूप में है, रेडियो में वह श्रव्य रूप में, दूरदर्शन और उसके अन्य चैनलों में दृश्य-श्रव्य रूप में, तो अंकीय माध्यमों (डिजिटल मीडिया) में वह इन सबके संयुक्त या समन्वित रूप में। इन सारे जनसंचार माध्यमों में मूल समस्या आती है, तो विषय की विविधता की ही। कभी राजनीतिक क्षेत्र के समाचार तो कभी सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं आंचलिक। कभी स्वास्थ्य संबंधी समाचार तो कभी क्रीड़ा, मनोरंजन, पर्यावरण, पर्यटन, विज्ञापन, भाषण, संभाषण, प्रदूषण, अन्वेषण, प्रबोधन, शिक्षण, प्रशिक्षण तथा प्रदर्शन आदि संबंधी। दूसरी बात यह कि उपर्युक्त सारी अनूद्य सामग्री मौलिक होती है, कभी चिंतनप्रधान, तो कभी सूचनाप्रधान, कभी रंजक तो कभी वैचारिक भी। बावजूद इसके अनुवाद कार्य में तरह-तरह की समस्याएँ खड़ी होती हैं, जिन्हें हल करना सहज संभव नहीं होता। जनसंचार माध्यमों का अनुवादक एक होता है, लेकिन उसे किस्म-

किस्म की सामग्री का अनुवाद करना पड़ता है। यह विषय की विविधता मीडिया के अनुवाद की कड़ी, बड़ी और टेढ़ी समस्या है।

7.2 अल्पावधि में अनुवाद का निपटना :

मीडिया के अनुवाद की दूसरी दुर्भर समस्या है, समय की। अत्यंत कम समय में तत्परता से अनुवाद करना पड़ता है। दैनिक समाचार-पत्र, रेडियो, दूरदर्शन, विविध चैनल और अन्य तत्सम माध्यमों के समाचार हो या डाक्यूमेंट्री, साक्षात्कार, निवेदन, विज्ञापन, भाषण, संभाषण, प्रबोधन या मनोरंजन - सबका अनुवाद कम समय में निपटाना पड़ता है। मीडिया का अनुवाद ताज़ा, तत्पर, यथास्थान और अत्यंत अल्प अवधि में सम्पन्न करना पड़ता है। इतने बड़े दायित्व का और ज़िम्मेदाराना काम अगर फ़ुर्सत के बिना करना पड़ता हो, तो अनुवादक को समस्याएँ मानो निगलने को तत्पर होती हैं। उसके पास उतना समय नहीं होता कि सोचे, चिंतन करे, संदर्भ, साधन और कोश आदि तक पहुँचे, विशेषज्ञों से सलाह-मशविरा करे। मीडिया का अनुवाद माने 'फ़ास्टफ़ूड' जैसे होने के कारण कभी-कभी अपच या बदहज़मी की स्थिति खड़ी होती है। पर्याप्त समय उपलब्ध न होना, अल्प अवधि में अधिक काम निपटाना और अनूदित सामग्री के पुनरीक्षण के लिए भी समय न मिलना; ये वे समस्याएँ हैं, जो मीडिया के अनुवाद को हमेशा बाधित और अवरोधित करती हैं। अन्य क्षेत्रों की सामग्री की तुलना में इसलिए मीडिया का अनुवाद करना अधिक कठिन बन जाता है। इससे कभी-कभी अनूद्य सामग्री के साथ अनुवाद में न्याय नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप कभी हानि, तो कभी अप्रिय प्रसंग भी खड़े हो जाते हैं।

7.3 समाचार बुलेटिनों का अनुवाद करना :

जनसंचार माध्यमों में, विशेषतः रेडियो, स्थानीय रेडियो, दूरदर्शन और उसके विविध समाचार के चैनल आदि में समाचार बुलेटिन को विशेष महत्त्व दिया जाता है। खास या विशेष अवसर, प्रसंग आदि के आने पर नियत समय से भी कम अवधि में, बार-बार समाचार बुलेटिन का प्रसारण होता है। कभी चुनाव, आपातकाल, मौसम, बड़ी घटना या दुर्घटना आदि होने पर समाचार बुलेटिन की बारंबारता बढ़ जाती है। लेकिन इससे अनुवाद बाधित होता है। इसलिए कि त्वरा, शीघ्रता तथा तत्परता से अनुवाद करना अपेक्षित होता है, किंतु ऐसे में विविध चैनल के श्रोता और दर्शक अनपढ़, अशिक्षित, अल्पशिक्षित या निरक्षर भी हो सकते हैं। अनुवादक को इसका ध्यान रखना पड़ता है। दर्शक या श्रोता के स्तर (लेवल) तक उतरना और उन्हें समझने के स्तर तक खुद को ले जाना पड़ता है। समाचार-पत्र के पाठक पढ़े-लिखे होते हैं, लेकिन रेडियो तथा दूरदर्शन के श्रोता और दर्शक के लिए यह बात लागू नहीं होती। इसलिए समाचार बुलेटिनों का अनुवाद अधिक मुश्किल हो जाता है। इसमें लिखित की अपेक्षा मौखिक भाषा क्षमता का अधिक ध्यान रखना पड़ता है। यह कार्य निश्चय ही असंभव तो नहीं, किंतु कठिन ज़रूर होता है।

7.4 क्षेत्र विस्तार जनित समस्याएँ :

हम में से हर कोई इस बात से सहमत ही होगा कि मीडिया का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। मानो यह समीकरण बन गया है कि 'जो मीडिया में है, वही दुनिया में है और जो दुनिया में है, वही मीडिया में।' हर चीज़ मीडिया के अंतर्गत आ सकती है, तो इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि मीडिया का क्षेत्र खूब विस्तृत है। यही विस्तार समस्या जनित है, जो अनुवाद कार्य में बाधा उत्पन्न कर देता है। इसमें ज्ञान से विज्ञान तक का क्षेत्र, धरती से आसमान तक का क्षेत्र, रंजकता से लेकर वैचारिकता का क्षेत्र, औद्योगिकी से प्रौद्योगिकी तक का क्षेत्र, शिक्षा से रक्षा तक का क्षेत्र, भोग से योग साधना तक का क्षेत्र, नागर से सागर तक का क्षेत्र, मौसम से शासन तक का क्षेत्र और शास्त्र से अस्त्र तक का क्षेत्र। सबके सब जनसंचार माध्यमों के अंतर्गत आते हैं। स्पष्ट है कि मीडिया की परिधि अति विस्तृत है। वह जितना विस्तार पूर्ण है, अनुवाद में समस्याएँ भी उतना ही दारुण। सूचना प्रौद्योगिकी और इंटरनेट तथा ई-मेल की दुनिया ने संसार के सारे क्षेत्र मीडिया के सामने लाकर छोड़ दिए हैं। धरती के ही नहीं, बल्कि आसमान के, चंद्रमा के और मंगल ग्रह के सारे शोध अब मीडिया को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। यह आकर्षण जितना अधिक, मीडिया के अनुवाद में समस्याओं की अभिवृद्धि भी उतनी ही अधिक। लेकिन इस तथ्य को भी स्वीकार करना होगा कि यह सिलसिला कभी खत्म होने वाला नहीं।

7.5 संक्षिप्तियों के अंतरण की समस्या :

मीडिया का कोई भी भेद अथवा रूप हो, इन दिनों में संक्षिप्तियों के प्रयोग की भरमार हो रही है। नई-नई संक्षिप्तियाँ अस्तित्व में आ रही हैं। इसके मूल में नए साधन, नई व्यवस्था, नए आविष्कार, नए यंत्र और नए तंत्र निहित हैं। इन सबकी बदौलत अब सैंकड़ों नहीं, अपितु हज़ारों की संख्या में संक्षिप्तियाँ अस्तित्व में आ रही हैं । कभी संक्षिप्ति एक मगर उसके पूर्ण रूप और अर्थ अनेक जैसी स्थिति भी मिलती है, जैसे -

CP = (1) कांग्रेस पार्टी (2) कम्यूनिस्ट पार्टी

DOT= (1) डिपार्टमेंट ऑफ़ टेक्नोलॉजी (2) डिपार्टमेंट

ऑफ़ टूरिज़्म (3) डिपार्टमेंट ऑफ़ ट्रॉन्स्पोर्टेशन

MD = (1) मैनेजिंग डायरेक्टर (2) डॉक्टर ऑफ़ मेडिसिन

CM = (1) सेंटी मीटर (2) चेयरमेन (3) चीफ़ मिनिस्टर आदि।

बहुत बार अंग्रेज़ी संक्षिप्ति के हिंदी संक्षिप्त रूप बने ही नहीं, अतः उन्हें उसी मूल रूप में ही मीडिया ने चलाया, जैसे - CAA (सिटीज़नशिप अमेंडमेंट ऐक्ट), BSNL (भारत संचार निगम लिमिटेड), MTNL (महानगर टेलीफ़ोन निगम लिमिटेड) आदि के भी जब हिंदी में संक्षिप्त रूप नहीं मिले, तब अंग्रेज़ी संक्षिप्त रूप ही चलाने की परम्परा रूढ़ हुई। वी. आर. एस. अर्थात् वालेंटरी रिटायरमेंट स्कीम, जिसका हिंदीकरण 'स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना' तो बन लिया, लेकिन उसका हिंदी संक्षिप्त रूप 'स्वैसेयो' न बना और न प्रयुक्त हुआ। उसी प्रकार अनेक विश्वविद्यालयों के नामों के अंग्रेज़ी संक्षिप्त रूप हिंदी मीडिया में प्रयुक्त तो हुए, लेकिन उनके हिंदी संक्षिप्त रूप चले नहीं, जैसे -

जे एन यू = जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, (हिंदी नाम जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय का जनेविवि) नहीं प्रचलित हुआ

बी एच यू = बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी (हिंदी नाम बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का 'बहिंविवि' भी नहीं चल पाया) और

एस एन डी टी = श्रीमती नाथिबाई दामोदर ठकारसी (हिंदी नाम श्रीमती नाथिबाई दामोदर ठाकरसी विश्वविद्यालय का 'श्रीनादाठाविवि' भी नहीं चल पाया)

जो भी हो सच यह है कि आजकल, तंत्रज्ञान, अनुसंधान, प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटर, शासन, प्रशासन व्यवस्था और उच्च शिक्षा आदि क्षेत्रों में ऐसे अनेक नए-नए संक्षिप्तीकरण आ रहे हैं, जो अनुवाद कार्य में अवरोध बनते हैं। खासकर मीडिया के अनुवाद में।

7.6 छह 'क' केंद्रित तत्त्वों के रक्षण की समस्या :

मीडिया में सबसे महत्त्वपूर्ण छह तत्त्वों की रक्षा अनिवार्य होती है और अनुवाद में भी। हिंदी में इन्हें 'क' वर्ग केंद्रित तत्त्व मानते हैं, जैसे - क्या' घटित हुआ, 'कब' हुआ, 'क्यों' हुआ, 'कहाँ' हुआ 'किस' के साथ हुआ और 'कैसे' हुआ। इन सबका महत्त्व जैसे समाचार-लेखन में होता है, वैसे समाचार के अनुवाद में भी। अंग्रेज़ी में पाँच 'डब्ल्यू' और एक 'एच' ऐसे कुल छह तत्त्वों से युक्त समाचार-लेखन का कार्य होता है, जैसे - 'What' Happened, 'When' Happened, 'Why' Happened, 'Where' Happened, 'Whom' Happened और 'How' Happened, जैसे मीडिया की अनूद्य सामग्री में इनका होगा अनिवार्य माना जाता है, वैसे अनुवाद में भी इनकी रक्षा होना ज़रूरी है। लेकिन अनुवाद में इनमें से कुछ चीज़ों का छूटना या गायब होना अनुवाद की समस्या बन जाती है। विशेषतः मीडिया के समाचार के अनुवाद में इन 'क' वर्गीय और 'W' वर्गीय तत्त्वों की सुरक्षा करना भी अनुवाद की स्थायी समस्या है। स्पष्ट है कि हिंदी के छह 'क' और अंग्रेज़ी के पाँच 'डब्ल्यू' तथा एक 'एच' वर्ग की सही जानकारी मीडिया के अनुवाद में बाधा बन जाती है।

7.7 सूचना / जानकारी की यथा तथ्यता का रक्षण :

मीडिया से सही-सही सूचना या जानकारी का संचरण अपना विशेष महत्त्व रखता है। मीडिया के सिद्धांत की रक्षा के लिए इसका अनुपालन अनिवार्य हो जाता है। ठीक यही बात मीडिया के अनुवाद में भी आवश्यक होती है। मीडिया के अनुवाद में मूल की सूचना या जानकारी जरा भी हटकर, बदलकर, अधूरी, अपूर्ण और असंगत रूप में अंतरित नहीं होनी चाहिए। इसमें मूल की सूचनात्मकता, तथ्यात्मकता और जानकारी का सही प्रतिस्थापन अनुवाद को विश्वसनीय बनाता है। लेकिन मीडिया के अनुवाद में यही कार्य कठिन होता है। क्योंकि मूल की जो और जितनी तथ्यात्मकता हो, अनुवाद में भी वह और उतनी आना ज़रूरी है। इसके अभाव में कभी अप्रिय घटना तो कभी बवाल खड़ा हो सकता है। संतुलन मीडिया के मूल सिद्धांतों में से एक है और वह तथ्यात्मकता केंद्रित होता है। उसकी रक्षा अनुवाद में भी होनी चाहिए, जो कि कष्ट साध्य होता है। तथ्यात्मकता को घटाकर, हटाकर या बढ़ा-चढ़ाकर अनुवाद होना न उचित है और न अनुवाद सिद्धांत के अनुरूप।

7.8 सरलता तथा बोधगम्यता बनाये रखना :

मीडिया का सीधा सरोकार जितना जनता से होता है उतना और किसी से नहीं। सीधे जन के बीच संचरण होने या करने के कारण ही तो इसे 'जनसंचार माध्यम' नाम पड़ा। अपने नाम को चरितार्थ करने वाले इस साधन से जो जनता जुड़ी होती है, उसमें सभी स्तर के लोग होते हैं - साक्षर-निरक्षर, अल्पज्ञ और अनपढ़ भी। इसलिए बाकी कोई हो न हो, किंतु मीडिया को सरल और बोधगम्य होना ही है। फलतः मीडिया के अनुवाद को भी सरल एवं बोधगम्य होना ज़रूरी होता है। लेकिन यही कार्य अंत्यत कठिन होता है। जैसे कठिन कहना कठिन नहीं होता वैसे आसान कहना आसान नहीं होता। खासकर मीडिया के ज़रिए आसान (और सरल) कहना कठिन होता है और सुबोध कहना अबोध या दुर्बोध। नई-

नई प्रयुक्तियाँ, अप्रचलित पारिभाषिक शब्दावली, नव निर्मित/गठित, तकनीकी ज्ञान एवं उसके हिस्सों-पुर्जों की नामावली आदि के कारण मीडिया के अनुवाद में बोधगम्यता या सरलता की रक्षा करना कठिन होता है। इसी बोधगम्यता से जुड़ना और उसके लिए लड़ना मीडिया के अनुवाद की प्रमुख समस्याओं में से एक है।

7.9 अवधारणात्मक / संकल्पनात्मक शब्दावली :

मीडिया के व्यापक क्षेत्र और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण नई-नई अवधारणाएँ अस्तित्व में आने लगीं, नई-नई संकल्पनाएँ प्रचलित होने लगीं। इससे संबंधित विषय या क्षेत्र की सही, सुनिश्चित तथा सुव्यवस्थित जानकारी देना तथा पाना भी सुलभ हुआ है। फलतः ऐसी अवधारणामूलक अथवा संकल्पनामूलक शब्दावली का प्रयोग मीडिया में दिनोंदिन बढ़ने लगा, लेकिन इससे मीडिया के अनुवाद की समस्या बढ़ गई, जैसे -

Share Holder	= शेयरधारक, शेयरधारी, शेयरहोल्डर
Fact-Finding	= तथ्यान्वेषण, सत्यान्वेषण
Director	= निदेशक, निर्देशक, संचालक, दिग्दर्शक
Chatting	= गप करना, गपशप, अनौपचारिक बातचीत
Technologist	= प्रौद्योगिकीविद्, प्रौद्योगिकीज्ञ
Representation	= प्रतिनिधित्व, अभिवेदन, अभ्यावेदन
Internet Ban	= इंटरनेट पर प्रतिबंध, रोक, पाबंदी
Metro Ban	= मेट्रो स्टेशन पर प्रतिबंध, रोक, पाबंदी

ऐसी अनेक संकल्पनाएँ अंग्रेज़ी से हिंदी मीडिया के लिए अनुवाद करते समय समस्या बन जाती हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी की मान्यता है - "एक ही अंग्रेज़ी शब्द के अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग हिंदी पर्याय प्रयुक्त होते हैं। अनुवादक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा अनुवाद हास्यास्पद तो हो ही जाएगा, बहुत सार्थक भी नहीं रह जाएगा।" इनके सही अंतरण के लिए अनुवादक को जूझना पड़ता है। लेकिन कभी हिंदी में अंग्रेज़ी की अवधारणाएँ अथवा संकल्पनाएँ अपने मूल से इतनी जुड़ जाती हैं कि उन्हें हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली में अंतरित करना अटपटा-सा लगता है, जैसे -

Corona Virus = कोरोना वायरस, Home Quarantine = होम क्वारंटीन, Social Distance = सोशल डिस्टन्स, Lock Down = लॉक डाउन, COVID-19 = कोविड-19, Make in India = मेक इन इंडिया इनके मूल रूप ही इतने प्रचलित रहे कि उन्हें अन्य भाषाओं में भी चलाया गया, पर्याय खोजे या रचे बिना। मीडिया के अनुवाद में यह स्थिति भी नई अवधारणा या संकल्पना के कारण समस्या बनी है। लेकिन हिंदी से अंग्रेज़ी मीडिया के लिए अनुवाद करते समय भी जो नई-नई संकल्पनाएँ या अवधारणाएँ अस्तित्व में आई हैं, वे भी बाधाएँ बन जाती हैं, जैसे -

'जन-धन योजना', 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', 'चाय पर चर्चा', 'मन की बात', 'एक कदम स्वच्छता की ओर', 'राष्ट्रीय एकता अभियान', 'सर्व शिक्षा अभियान', 'ज़िंदगी के साथ भी, ज़िंदगी के बाद भी' एल आई सी, 'महात्मा गांधी ग्राम सुधार योजना' आदि।

हिंदी मीडिया में ऐसी अनेक अवधारणाएँ अथवा नई-नई संकल्पनाएँ प्रयुक्त हैं, जिनका अंग्रेज़ी मीडिया में अनुवाद करना बहुत मुश्किल होता है। इस प्रकार अनुवादक को मीडिया के अनुवाद में इन समस्याओं से टकराना पड़ता है और कभी-कभी वह हथियार डाल देता है। लेकिन इतना सच है कि नई-नई व्यवस्था और निर्मिति के फलस्वरूप संकल्पना या अवधारणा मीडिया के अनुवाद में बाधा डालती है।

7.10 अन्य समस्याएँ

मीडिया के क्षेत्र की व्यापकता देखने से स्पष्ट होता है कि इसकी अनूद्य सामग्री भी अतिव्यापक होती है। कहना होगा कि जिस प्रकार की अनूद्य सामग्री होगी, उसके अनुवाद में समस्याएँ भी उसी प्रकार की आएँगी। ऊपर निर्देशित समस्याएँ मीडिया के अनुवाद में रोज़ाना व्यवहार में आती हैं, लेकिन ऐसा नहीं कि समस्याएँ इतनी ही हैं और इनके अलावा अन्य कोई समस्या है नहीं। मीडिया के अनुवाद में अन्य अनेक समस्याएँ समय, संदर्भ, सामग्री, घटना, प्रसंग और परिवेश के अनुसार आती हैं, जैसे - भाषाजन्य समस्याएँ, शीर्षक की समस्याएँ, सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ, साहित्यिक समस्याएँ, कार्यालयीन अनुवाद की समस्याएँ, व्यक्तिनाम और पदनाम के अनुवाद की समस्याएँ, विधि, वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद की समस्याएँ, वाणिज्य तथा बैंक के अनुवाद की समस्याएँ और पारिभाषिक शब्दावली आदि के अनुवाद की समस्याएँ। लेकिन इन सारी समस्याओं का विस्तृत विवेचन एक अलग शोध-प्रबंध का विषय है। सार यह कि मीडिया के अनुवाद में अलग-अलग किस्म की समस्याएँ आती हैं, जिनसे अनुवादक को जूझना पड़ता है।

8. समस्याओं का व्यावहारिक समाधान :

मीडिया के अनुवाद की समस्याओं के समाधान पर विचार करते समय हमें दो बातों को याद रखना होगा - (1) मीडिया का अनुवाद आज के समाज की ज़रूरत है और (2) मीडिया के लिए

मौलिक लेखन करना जितना आसान है, उतना अनुवाद करना आसान नहीं। इसका प्रमुख कारण है, मीडिया के अनुवाद में अनंत समस्याएँ आती हैं, जिन्हें हल करना ज़रूरी है। इस संदर्भ में दूसरा तथ्य यह कि वर्तमान समय में अनुवाद की समस्याएँ बढ़ रही हैं, किंतु उनके समाधान भी उपलब्ध हो रहे हैं। यहाँ मीडिया के अनुवाद की कुछ प्रमुख समस्याओं के निम्नांकित व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत हैं, जैसे -

1. 'मीडिया में विषय वैविध्य के कारण जो समस्याएँ बढ़ती हैं, उसके लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों, विद्वानों और अधिकारी जनों का सलाहकार मंडल बनाया जाए अथवा उनकी सूची बनवाई जाए। आवश्यकता पड़ने पर उनसे तुरंत संपर्क कर उस समस्या को हल किया जाए। अनुवाद समस्या एवं समाधान संबंधी, इन पंक्तियों के लेखक की मान्यता है कि "समस्याएँ अनुवाद में जितनी कठिनाइयाँ खड़ी करती हैं, समाधान इसे उतनी ही सरलता और सहजता से सम्पन्न कराते हैं।"

2. मीडिया का अनुवाद अल्प या कम समय में सम्पन्न करना पड़ता है, जिसके कारण समस्याएँ बढ़ती हैं। लेकिन इसके लिए आई.टी. (Information Technology = सूचना प्रौद्योगिकी) का सहयोग लेकर विविध प्रकार के शब्दकोश अपने मोबाइल में डाउनलोड करें। ज़रूरत के अनुसार उनका प्रयोग कर अनुवाद की समस्याओं को हल करें। वृषभप्रसाद जैन सही कहते हैं "मशीनी अनुवाद भी कोश के बिना संभव नहीं।"

3. समाचार-बुलेटिनों के अनुवाद की समस्याओं को हल करने के लिए मीडिया के कार्यालय में ही अनुवाद-साधन का एक कक्ष बनाया जाए। यहाँ वे सारे अद्यतन विविध कोश, सीडी, सॉफ़्टवेयर, संदर्भ-ग्रंथ आदि उपलब्ध हों। ज़रूरत पड़ने पर इनके प्रयोग से समस्याओं का हल कर सकें।

4. मीडिया का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण यहाँ समस्याएँ भी अनंत होती हैं, लेकिन संयोग से अब अनुवाद के साधन भी विस्तार पा चुके हैं। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावाली आयोग, नई दिल्ली द्वारा सैंकड़ों शब्दकोशों को अंग्रेज़ी-हिंदी के अलावा, देश-विदेश की अनेक भाषाओं में बनाया गया है। दुनिया के अनेक आई.टी. कम्पनियों ने सॉफ़्टवेयर बनाए हैं। आज हर क्षेत्र में विशेषज्ञों की उपलब्धता है। शीघ्र संपर्क के अद्यतन साधन मौजूद हैं। इन सबका प्रयोग कर मीडिया के अनुवाद की समस्याओं को सुलझाया जा सकता है।

5. अन्य कोशों की तरह आजकल संक्षिप्ति कोश भी उपलब्ध हैं। उनका प्रयोग कर संक्षिप्तियों के अनुवाद की समस्या का समाधान कर सकते हैं। जिन संक्षिप्तियों के विकल्प, पर्याय उपलब्ध नहीं या बनाए नहीं, उनके नए-विकल्प बनाकर उनके प्रयोग पर बल दें। जहाँ यह संभव नहीं, वहाँ मूल प्रचलित संक्षिप्ति का लिप्यंतरण कर लिया जाए।

6. मीडिया की छह 'क' वर्ग केंद्रित जानकारी का सही सम्प्रेषण अनुवाद में भी होने के लिए अनुवादक को चाहिए कि मूल समाचार या सामग्री को ध्यानपूर्वक समझ लें। लापरवाही को छोड़ ज़िम्मेदारीपूर्वक अनुवाद करें। वह 'क्या, कब, कहाँ, क्यों, किसे, कैसे' पर अपना ध्यान केन्द्रित कर अनुवाद कार्य करें। इससे मूल के भाव, अर्थ, आशय, विषय, कथ्य आदि की रक्षा होती है।

7. मीडिया की सामग्री में तथ्य अधिक महत्त्व रखता है। अतः उसके अनुवाद में भी अनुवादक को चाहिए कि 'क्या' हुआ की रक्षा प्रथमतः और 'कैसे' हुआ की रक्षा द्वितीयत हो। इसके लिए अनुवादक अपना ध्यान भाव एवं भाषा-शैली, दोनों पर केंद्रित करें। डॉ. एन. ई. विश्वनाथन अय्यर का कहना सही है कि "अनुवाद में पाठक, प्रसंग, मूल लेखक - तीनों का ध्यान रखना है।"

8. मीडिया का सरोकार समाज के सभी स्तरों के लोगों से, विशेषतः जन सामान्य से, अनपढ़, अशिक्षित, अल्पशिक्षित से होता है। इसका ध्यान अनुवादक को भी रखना चाहिए। इससे अनुवाद सरल एवं बोधगम्य बनाने का 'क्ल्यू' पाकर अनुवाद करें। क्योंकि बोधगम्यता ही अनुवाद की सफलता का प्रमाण है। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी 'हिंदी पत्रकारिता और अनुवाद' लेख में लिखते हैं - "ज्यों-का-त्यों अनुवाद उद्देश्य में बाधक होता है। हिंदी पत्रकारिता को भी अनुवाद करते समय ऐसी शब्दावली का प्रयोग करना पड़ेगा, जो इस देश के अधिक-से-अधिक लोगों को केवल समझ में न आए, बल्कि उनका लोकरंजन भी करे, मनोरंजन भी करे, पत्रकारिता द्वारा भाषा अधिक सम्पन्न होगी और स्वयं पत्रकारिता भी"

9. स्पष्ट है चतुर्वेदी जी अनुवाद के ज़रिए पत्रकारिता (मीडिया) की भाषा-समृद्धि की हिमायत करते हैं।

10. मीडिया मूलतः बहुआयामी साधन है। उसकी व्यापकता ही उसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता को दर्शाती है। ऐसे में अनुवादक का अपना दायित्व भी बढ़ता है। उसे बहुविद होना है, खुद को अधिक समृद्ध कर लेना है, ताकि मीडिया का अनुवाद देने में वह स्वयं सक्षम हो सके। अनुवादक का बहुविद होना अनुवाद की अनेक समस्याओं का सही समाधान है।

11. अनुवाद क्षेत्र से दीर्घ काल से जुड़े अनुभवी अनुवादकों

से, आवश्यकता हो तो समय-समय पर सम्पर्क बनाए रखना और उनसे परामर्श करना, मीडिया के ही नहीं, बल्कि हर तरह की अनूद्य सामग्री के सफल अनुवाद के लिए उपयुक्त सिद्ध होता है। क्योंकि अनुवाद प्रायः अनुभवजन्य व्यक्ति के हाथों में पड़ता है, तो वह निश्चय ही स्तरीय और विश्वसनीय होने का सौभाग्य पाता है, इसे मानना पड़ेगा।

निष्कर्ष :

'मीडिया' वर्तमान समय का वह विशाल क्षेत्र है, जो मशाल का काम करता है। वह क्रांति के अनुकूल माहौल बना सकता है और शांति के भी, वह आग लगाने का काम कर सकता है और बुझाने का भी, वह विकास का रास्ता दिखा देता है और विनाश का इशारा भी, वह चाहे तो मिशन का काम करता है और कमीशन का भी। मीडिया का सबसे बड़ा और तगड़ा सच यह कि इसने रोज़गार के अनंत अवसर प्रदान किए। लाखों-करोड़ों को रोज़ी देने का, मीडिया का अवदान अपूर्व, अनोखा, अनुपम और अद्‌त कहना होगा। रोज़गार के असीम स्वरूप तथा अनंत क्षितिज एवं संभावनाओं में से एक अनुवाद को मानना होगा। कभी प्रति पृष्ठ पारिश्रमिक पाया जाने वाला अनुवादक अब प्रतिशब्द एक रुपए से लेकर, विशिष्ट सामग्री के दो और तीन-तीन रुपए भी पाने लगा है। आज हर तरह के मीडिया में अनुवादक की माँग है, लेकिन सुयोग्य अनुवादकों के अभाव में जैसे-तैसे काम चलाऊ अनुवादकों से यह कार्य करवा लिया जा रहा है। मीडिया के अनुवाद में समस्याएँ ज़्यादा हैं, लेकिन ऐसा नहीं कि उनका कोई समाधान नहीं मिलता। साधनों का प्रयोग, विशेषज्ञों का मार्गदर्शन, अनुभवी अनुवादकों का सहयोग, अनुवाद सॉफ़्टवेयर का उपयोग एवं अनुवाद कार्य का अभ्यास आदि वे उपाय हैं, जिनसे अनुवाद की समस्याओं को हल कर अनुवाद मीडिया के अनुवादक को सफल बना सकता है और स्वयं अपने जीवन तथा उस राष्ट्र को भी जिसका वह निवासी है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. अर्जुन चव्हाण - मीडिया कालीन हिंदी : स्वरूप एवं संभावनाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005
2. सं. डॉ. नगेंद्र - अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत और अनुप्रयोग, पृष्ठ संपादकीय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1993
3. मनोहर श्याम जोशी - मास मीडिया और समाज, पृष्ठ 53, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2014
4. डॉ. अर्जुन चव्हाण - अनुवाद चिंतन, पृष्ठ 9, अमन प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 1998
5. डॉ. भोलानाथ तिवारी - अनुवाद-विज्ञान, पृष्ठ 150, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002 संस्करण
6. प्रो. डॉ. अर्जुन चव्हाण - अनुवाद: समस्याएँ एवं समाधान, पृष्ठ 60, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सं 1999, द्वितीय संस्करण - 2020
7. डॉ. वृषभप्रसाद जैन - अनुवाद और मशीनी अनुवाद, पृष्ठ 103, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995
8. डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - अनुवाद : भाषाएँ-समस्याएँ, पृष्ठ 263, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992
9. सं. डॉ. नगेंद्र - अनुवाद-विज्ञान : सिद्धांत और अनुप्रयोग, पृष्ठ 335 - 337, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1993

drarjunchavan@yahoo.com

हिंदी को जन-जन तक पहुँचाता सोशल मीडिया

डॉ. संजय कुमार
उत्तर प्रदेश, भारत

वैसे तो हिंदी की उत्पत्ति संस्कृत की कोख से लगभग 1000 ईसा पूर्व देवनागरी लिपि के उद्भव के साथ हो गई थी, किंतु इसके क्रमिक विकास के सूत्र दसवीं शताब्दी में अपभ्रंश के अंतिम चरण 'अवहट्ट' से मिलने लगते हैं। हिंदी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में पद्य के रूप में विकसित हुई और उसमें भी ब्रज, अवधी एवं मैथिली में लिखे गए काव्यों की प्रधानता रही। चूँकि काव्य श्रोताओं को आनंदित करता है, अतएव, हिंदी की इन बोलियों में लिखे गए काव्यों के प्रति लोगों का सहज अनुराग स्वाभाविक था। इस काल में आल्हखंड, साखी, शबद, रमैनी, रामचरितमानस, सूरसागर, पद्मावत जैसी प्रमुख रचनाओं के साथ-साथ संतों के प्रवचनों व उपदेशों ने हिंदी का परोक्षत: खूब प्रसार किया। हिंदी का औपचारिक प्रसार छापेखाने के आविष्कार तथा भारतेंदु सरीखे लेखकों के प्रयासों से शुरू हुआ, जिन्होंने खड़ी बोली की नींव रखकर हिंदी की गद्य विधा को आगे बढ़ाया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ जहाँ हिंदी के परिष्कार पर बल दिया, वहीं खड़ी बोली में काव्य लिखने की आधारशिला भी तैयार की। हिंदी के प्रसार में नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा जैसी संस्थाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इसके अलावा आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज जैसे संगठनों तथा महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, जॉन गिलक्राइस्ट सरीखी विभूतियों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु आधारभूत संरचना के निर्माण पर बल दिया। भारत के बाहर हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रसार में गिरमिटिया मज़दूरों के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता जो गए तो वृत्ति के लिए थे, किंतु विदेशी धरती पर अपनी उपस्थिति से हिंदी और भारतीय संस्कृति के वृक्ष को निरंतर पुष्पित और पल्लवित करते रहे।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रिंट मीडिया, खासकर हिंदी के अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं ने आज़ादी के पूर्व से लेकर अब तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज भी भारत के सबसे अधिक पढ़े जाने वाले अखबारों में शीर्ष चार स्थान पर हिंदी के अखबार हैं। भारत के स्वतंत्रता-आंदोलन में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम को एक सूत्र में पिरोने में हिंदी की भूमिका को हिंदीतर भाषियों ने भी बखूबी महसूस किया और इसी के चलते हिंदी को सर्वसम्मति से राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ। आज़ादी के पश्चात् सरकार के स्तर पर हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण, तकनीकी और प्रशासनिक शब्दावली निर्माण जैसे कई प्रयास किए गए, जिससे हिंदी प्रयोग को और अधिक बल मिला। समय के साथ संचार तकनीक का विकास हुआ, जिसके फलस्वरूप हिंदी रेडियो, दूरदर्शन और सिनेमा के ज़रिए न केवल देश के भीतर, बल्कि विदेशों में भी पसंद की जाने लगी। उदारीकरण ने मीडिया और मनोरंजन के द्वार निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए, जिसके फलस्वरूप हिंदी समाचार चैनलों, हिंदी धारावाहिक तथा लाइफ़स्टाइल व अध्यात्म से जुड़े चैनलों की बाढ़-सी आ गई। रेडियो और दूरदर्शन पर सुबह-शाम प्रसारित होने वाले समाचारों की अपेक्षा अब चौबीसों घंटे खबरें चलाने, हेडलाइन को स्क्रीन पर प्रदर्शित करने और हर ज्वलंत मुद्दे पर लाइव चर्चा दिखाने का दौर शुरू हो गया। इसके कारण हिंदी के प्रसार और लोकप्रियता दोनों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

21वीं सदी के प्रौद्योगिकी प्रधान युग में टेक्सेवी होती नई पीढ़ी, इंटरनेट की व्यापक पहुँच, सस्ता डेटा तथा स्मार्ट फ़ोन के बढ़ते चलन ने मनुष्य की परंपरागत जीवन-शैली को पूर्णत: बदलकर रख दिया। इसके कारण एक नए आभासी समुदाय का निर्माण हुआ, जिसे हम सोशल मीडिया के रूप में जानते हैं। वर्तमान में जीवित रहने के लिए अन्न, जल और हवा के साथ-साथ सोशल मीडिया भी महत्त्वपूर्ण हो गया है। आज मनुष्य की ज़रूरतें, अभिरुचियाँ, कार्यप्रणालियाँ और यहाँ तक कि सामाजिक मेल-मिलाप का ताना-बाना सोशल मीडिया के द्वारा निर्धारित हो रहा है। सोशल मीडिया ने विखंडित परिवार प्रथा के एकाकीपन की खाई को पाटने का काम किया है और लोगों को बोलने-बतलाने का एक मंच उपलब्ध कराकर उनकी अभिव्यक्ति की अविरल धारा को प्रवाहमान रखा है। अभिव्यक्ति का एक मुखर मंच होने के चलते सोशल मीडिया ने हिंदी के सम्मुख भी असीमित अवसर उत्पन्न किए हैं। आज सोशल मीडिया के ज़रिए हिंदी न केवल देश के कोने-कोने तक पहुँची है, अपितु सरहदों के पार भी जड़ें जमा रही है। सोशल मीडिया ने हिंदी के प्रसार को किस तरह से बढ़ावा दिया है, उस पर विस्तार से चर्चा करने के पूर्व सोशल मीडिया का आशय और उसके विविध घटकों

पर दृष्टि डाल लेना प्रासंगिक होगा।

सोशल मीडिया क्या है ?

सोशल मीडिया एक डिजिटल तकनीक है, जो उपयोगकर्ता को वर्चुअल नेटवर्क पर टेक्स्ट, ऑडियो और विजुअल संदेशों के ज़रिए विचारों एवं सूचनाओं को साझा करने का मंच उपलब्ध कराती है। किसी भी वर्चुअल नेटवर्क को सोशल मीडिया कहे जाने के लिए तीन बातों का होना अनिवार्य है :

(i) उपयोगकर्ता उस पर अपना प्रोफ़ाइल बना सकता हो

(ii) वह रीयल टाइम में सामग्री अपलोड कर सकता हो

(iii) वह अपलोड की गई सामग्री पर चर्चा करने के लिए अन्य उपयोगकर्ताओं से जुड़ सकता हो।

हालाँकि सोशल नेटवर्किंग विविध प्रारूपों में काफ़ी समय पूर्व से प्रचलित थी, किंतु उपर्युक्त मानदण्डों पर आधारित पहली सोशल मीडिया साइट होने का श्रेय वर्ष 1997 में लॉन्च हुई 'Six-Degrees.com' को जाता है। सोशल मीडिया का उद्भव मूलत: दोस्तों और परिवार के सदस्यों के साथ बातचीत करने के मंच के रूप में हुआ था, किंतु बाद में इसका उपयोग अन्य प्रयोजनों के लिए भी किया जाने लगा। आज यह वर्चुअल समुदाय बनाने, नैरेटिव चलाने, मार्केटिंग करने और यहाँ तक कि दुष्प्रचार करने के लिए भी इस्तेमाल किया जा रहा है। सोशल मीडिया आज अभिव्यक्ति का सर्वाधिक लोकतांत्रिक और लोकप्रिय माध्यम बनकर उभरा है। सूचनाओं को त्वरित प्रसारित करने के मामले में इसने प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को भी पीछे छोड़ दिया है। इसका उपयोगकर्ता हर जगह और हर समय रिपोर्टर की भूमिका में है। इस मीडिया की सबसे खास बात यह है कि यहाँ एकतरफ़ा संप्रेषण की बजाय बहुपक्षीय संवाद होता है और सहमति, असहमति, आलोचना, प्रतिक्रिया सब एक साथ उपलब्ध होती है। यहाँ हर लेखक पाठक है और हर पाठक लेखक है। इसने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर होने वाले विमर्श को और भी गहन, तार्किक तथा भागीदारीपूर्ण बनाया है। आज दुनियाभर में तक़रीबन 4.7 अरब लोग सोशल मीडिया के विविध माध्यमों का उपयोग करते हैं। इन माध्यमों में फ़ेसबुक, यूट्यूब, व्हाट्सएप्प, इंस्टाग्राम, एक्स, मैसेंजर, ब्लॉग और वीचैट प्रमुख हैं।

सोशल मीडिया और हिंदी : चूँकि सोशल मीडिया का गठन ही लोगों के बीच संपर्क व संवाद को बढ़ावा देने के उद्देश्य से हुआ है, अतएव, अभिव्यक्ति के इस मंच पर भाषा का केंद्र में रहना स्वाभाविक है। चाहे जो भी सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म हो, हम किसी-न-किसी भाषा के सहारे ही उस पर आरूढ़ होते हैं। शुरू-शुरू में सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर अंग्रेज़ी का बोलबाला था, क्योंकि इन प्लेटफ़ॉर्मों में से अधिकतर का स्वामित्व पश्चिमी देशों के हाथ में था। पर बड़े कारोबार के लिए बड़ा ग्राहक आधार भी ज़रूरी होता है, जो सिर्फ़ अंग्रेज़ी के बूते संभव नहीं था। अतएव, इन प्लेटफ़ॉर्मों के लिए विश्व की बहुसंख्यक आबादी द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं को तरजीह देना न केवल कारोबारी आवश्यकता थी, अपितु कारोबारी मज़बूरी भी थी। लिहाज़ा हरेक सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म हिंदी को भी सपोर्ट करने लगा। एक आम उपयोगकर्ता को भले ही लगता हो कि वह इस प्लेटफ़ॉर्म का मुफ़्त में उपयोग कर रहा है, पर आज के आर्थिक युग में मुफ़्त जैसा कुछ भी नहीं होता। जो चीजें हमें मुफ़्त मिल रही होती हैं, उनकी भी कीमत होती है और सोशल मीडिया के मामले में यह कीमत यूज़र चाहे डेटा उपभोग के रूप में चुका रहा हो, अथवा कंपनियाँ विज्ञापन और कंटेंट प्रमोशन के रूप में खर्च कर रही हों। अगर सोशल मीडिया पर सब कुछ मुफ़्त ही होता तो फ़ेसबुक जैसी कंपनियाँ हर घंटे 100 करोड़ रुपए से अधिक न कमा रही होतीं और मुनाफ़े के मामले में दुनिया की शीर्ष कंपनियों में शुमार न होतीं। आगे हम सोशल मीडिया के प्रमुख प्लेटफ़ॉर्मों पर हिंदी की स्थिति का जायज़ा लेंगे:

फ़ेसबुक और हिंदी : आज भारत में फ़ेसबुक यूज़र्स की संख्या 54.64 करोड़ है, जो इस सूची में दूसरे नंबर पर स्थित अमेरिका के 20 करोड़ यूज़र्स के मुकाबले ढाई गुना से भी अधिक है। यही नहीं, भारत में फ़ेसबुक पर ऑनबोर्ड होने की दर भी काफ़ी तेज़ है और इन नए लोगों में हिंदी भाषियों तथा ग्रामीण क्षेत्र से ताल्लुक रखने वाले लोगों का अनुपात सर्वाधिक है। लगभग 140 करोड़ की जनसंख्या के साथ भारत विश्व का सबसे अधिक आबादी वाला देश है और यहाँ आधी जनसंख्या हिंदी बोलती है। भारत के बाहर फ़िजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिडाड, मॉरीशस, नेटाल (दक्षिण अफ़्रीका) जैसे गिरमिटिया देशों तथा नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश, सिंगापुर और श्रीलंका में भी हिंदी भाषी अच्छी तादाद में हैं। इसके अतिरिक्त यूके, अमेरिका, कनाडा तथा अन्य पश्चिमी देशों व खाड़ी देशों में भी प्रवासी भारतीय बड़ी संख्या में हैं, जिनका हिंदी से गहरा नाता है। हालांकि विश्व में हिंदी भाषियों की संख्या के अनुपात में फ़ेसबुक पर हिंदी की उपस्थिति उतनी उत्साहजनक नहीं है, तथापि इस प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी की उपस्थिति दिनोंदिन बढ़ रही है। आज अमेरिका में बैठा भारतवंशी हिंदी में पोस्ट डाल रहा है, तो ऑस्ट्रेलिया में बैठा उसका साथी उसे लाइक और शेयर कर रहा है। सच पूछें तो दुनिया आज विश्वग्राम बनी है, तो उसमें बड़ी

भूमिका सोशल मीडिया की है। ज़रूरी नहीं है कि फ़ेसबुक पर सक्रिय व्यक्ति के फ़ॉलोवर्स उसी भाषा के हों। वर्तमान में फ़िल्म स्टार अक्षय कुमार के 9 करोड़ से अधिक फ़ेसबुक फ़ॉलोवर्स हैं, वहीं सदी के महानायक अमिताभ बच्चन के 6 करोड़ से अधिक फ़ॉलोवर्स हैं। ऐसे में जब इन हस्तियों द्वारा फ़ेसबुक पर कोई हिंदी पोस्ट डाली जाती है, तो उसे गैर-हिंदी भाषी भी देखते हैं और समझने की कोशिश करते हैं। फिर लाइक, कमेंट और शेयर का सिलसिला शुरू हो जाता है और हिंदी अनायास ही बढ़ने लगती है। आज फ़ेसबुक पर सुशिक्षित व्यक्तियों से ज्यादा अल्पशिक्षित लोग तथा किसी ज़माने में परदे के पीछे रहने वाली हिंदी पट्टी की महिलाएँ सक्रिय हैं। इन लोगों की सक्रियता से सोशल मीडिया के इस प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी कंटेंट भी प्रचुर मात्रा में अपलोड हो रहा है।

इंस्टाग्राम और हिंदी : इंस्टाग्राम के यूज़र्स में सबसे अधिक भारतीय हैं। भारत में लगभग 36 करोड़ लोग इंस्टाग्राम पर हैं और इस मामले में भारत विश्व में सबसे आगे है। भारत में इंस्टाग्राम पर डाली जाने वाली सबसे अधिक वीडिओज़, रील्स हिंदी की होती हैं और उसमें भी हास्य-व्यंग्य, कला, संगीत वाला कंटेन्ट सर्वाधिक होता है। इसलिए उसे पसंद भी खूब किया जाता है। उल्लेखनीय है कि इस प्लेटफ़ॉर्म पर जहाँ नरेंद्र मोदी, विराट कोहली जैसी सेलिब्रिटीज़ हैं, वहीं दूर-दराज़ के अति पिछड़े इलाके से ताल्लुक रखने वाला एक आम आदमी भी उतनी ही शिद्दत के साथ सक्रिय है। चूँकि भारत में इस प्लेटफ़ॉर्म पर सबसे अधिक व्यूज़ हिंदी कंटेन्ट को मिलते हैं, अतएव, हिंदीतर भाषी भी हिंदी में पोस्ट डाल रहे हैं। इससे परोक्ष रूप से ही सही, पर हिंदी का प्रसार तो हो ही रहा है।

यूट्यूब और हिंदी : हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़ाने में यूट्यूब का कोई सानी नहीं है। भारत में यूट्यूब यूज़र्स की संख्या लगभग 46 करोड़ है। आज यूट्यूब पर पुरानी-से-पुरानी हिंदी फ़िल्मों और पुराने-से-पुराने सुपरहिट गानों को हर समय और हर जगह से सुना जा सकता है। आज यदि भारत के बाहर हिंदी कंटेंट को सबसे अधिक देखा और सुना जाता है, तो वे हिंदी फ़िल्में और हिंदी गाने हैं। यूट्यूब पब्लिसिटी बढ़ाने के साथ-साथ लोगों के लिए कमाई का प्रत्यक्ष व परोक्ष ज़रिया भी उपलब्ध कराता है। आपके जितने अधिक सब्सक्राइबर होंगे तथा जितने अधिक व्यूज़ मिलेंगे, आपको उसी हिसाब से यूट्यूब से आमदनी होगी। आज चिकित्सा, स्वास्थ्य, खेलकूद, शिक्षा, मनोरंजन, फ़ैशन, कुकिंग, खेती, बागवानी से लेकर हर क्षेत्र से जुड़े अनगिनत वीडियो यूट्यूब पर हैं। चाहे राजनीतिक नैरेटिव चलाना हो अथवा किसी प्रोडक्ट की मार्केटिंग करनी हो, व्यापक जनमानस तक अपनी बात पहुँचाने के लिए यूट्यूब सबसे पसंदीदा माध्यम बनकर उभरा है और उसमें भी हिंदी कंटेंट की प्रभावशीलता एवं लोकप्रियता का कोई मुकाबला नहीं है। आज अध्यात्म के क्षेत्र में सदगुरु जग्गी वासुदेव और जयाकिशोरी, योग के मामले में बाबा रामदेव, सिविल सर्विसेज़ के मामले में डॉ. विकास दिव्यकीर्ति, हास्य-व्यंग्य कविताओं के मामले में कुमार विश्वास, संपत सरल, सुरेंदर शर्मा के वीडियो खूब देखे जा रहे हैं। मनोरंजन के अलावा यूट्यूब आज कौशल विकास में भी काफ़ी मददगार सिद्ध हो रहा है। वर्तमान में केवल टेक्सेवी ही नहीं, अपितु देहाती गृहणियाँ भी कताई, बुनाई, सिलाई, कुकिंग आदि के हुनर यूट्यूब से सीख रही हैं। एक आम आदमी तरह-तरह के मैकेनिकल/ इलेक्ट्रिकल/इलेक्ट्रॉनिक कार्य आज यूट्यूब से सीख रहा है। कहना न होगा कि आज हर किसी समस्या के समाधान के लिए लोग यूट्यूब का रुख कर रहे हैं। चूँकि देश और दुनिया में हिंदी जानने वालों की तादाद अच्छी-खासी है, अतएव, अब यूट्यूब पर भी हिंदी में प्रचुर सामग्री अपलोड की जा रही है। यूट्यूब पर हिंदी के साथ-साथ उसकी बोलियों का प्रभुत्व भी बढ़ रहा है। आज यूट्यूब पर हिंदी की बहुत-सी लोकप्रिय वेबसीरीज़ उपलब्ध हैं, जो न केवल लोगों को हँसने और ठहाका लगाने का अवसर दे रही हैं, अपितु उन्हें हिंदी व उसकी बोलियों तथा भारतीय सामाजिक परिवेश से भी रूबरू करा रही हैं। आज जहाँ हिंदी में 'लकड़ी की काठी' , 'एक मोटा हाथी', ' बंदर मामा पहन पाजामा', 'स्वर्ग से स्वागत', 'छोटू के गोलगप्पे' सीरीज़ को खूब देखा जा रहा है, तो अवधी की 'श्री हनुमान चालीसा', हरियाणवी का 'बावन गज का दामन' तथा भोजपुरी में खेसारी लाल यादव के 'ले ले आई कोका कोला', पवन सिंह के 'लाल घाघरा' और रितेश पांडे के 'हैलो कौन' को खूब पसंद किया जा रहा है। हिंदी के प्रखर वक्ता और दिग्गज राजनीतिज्ञ स्वर्गीय अटल बिहारी बाजपेयी के यूट्यूब पर पड़े कालजयी भाषणों के आज भी अनगिनत दीवाने हैं।

एक्स (पूर्व में ट्वीटर) और हिंदी : एक्स आज स्वतंत्र अभिव्यक्ति का एक ऐसा खुला चिट्ठा है, जिस पर आप किसी भी विषय पर किसी भी समय अपनी राय रख सकते हैं। इसने जनता और सरकार के बीच तात्कालिक संप्रेषण को बढ़ावा दिया है। इसके कारण आलोचना पहले से अधिक मुखर हुई है। इसने लेखन-शैली को गठीला बनाया है, जिसके कारण लोग कम शब्दों में अधिक पढ़ और समझ पाने में सक्षम हुए हैं। श्रीमद्भगवगीता में कहा गया है "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः, स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते" अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, उसके

संपर्क में आने वाले अन्य पुरुष भी वैसा आचरण करने लगते हैं। यह बात एक्स जैसे सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म के उपयोगकर्ताओं के मामले में भी लागू होती है। आज एक्स पर प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के 9.5 करोड़ से अधिक फ़ॉलोअर्स हैं और फ़ॉलोअर्स के मामले में वे भारत में नंबर एक पर हैं। सदी के महानायक अमिताभ बच्चन के भी एक्स पर लगभग 5 करोड़ फ़ॉलोवर्स हैं। जब इन महान् विभूतियों के द्वारा एक्स पर कोई पोस्ट डाली जाती है (जो प्राय: हिंदी में होती है) तो उसे भारतवासियों के साथ-साथ विदेशियों द्वारा भी पढ़ने और समझने की कोशिश की जाती है। तत्पश्चात् लाइक, कमेंट, री-ट्वीट के माध्यम से उसका व्यापक प्रचार हो जाता है और इस तारतम्य में हिंदी के प्रसार का दायरा भी बढ़ जाता है।

व्हाट्सएप और हिंदी : भारत में व्हाट्सएप यूज़र्स की संख्या लगभग 49 करोड़ है और यह सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म है। इस पर व्यक्तिगत अकाउंट के साथ-साथ बहुत से ग्रुप अकाउंट भी हैं। ऐसे में जब ग्रुप में (जो अधिकतम 1024 लोगों का हो सकता है) कोई सूचना हिंदी में डाली जाती है (खासकर स्वतंत्रता-दिवस, गणतंत्र-दिवस, होली, दिवाली आदि के संदेश) तो उसे ग्रुप से जुड़े हिंदीतर भाषियों द्वारा भी पढ़ा जाता है। इसके अलावा आज प्रात:कालीन शुभेच्छा संदेश तथा स्टेटस पर ईश आराधना, श्रेष्ठ विचार डालने की परंपरा भी ज़ोरों पर हैं। इन शुभेच्छा संदेशों और स्तुति-वंदन की भाषा ज्यादातर मामलों में हिंदी या संस्कृत होती है, जिसके कारण व्यापक जन-समूह तक संदेश के साथ-साथ हिंदी भी पहुँच जाती है। व्हाट्सएप हिंदी को लिखित के साथ मौखिक रूप से भी प्रसारित कर रहा है। आज व्हाट्सएप पर वीडियो कॉलिंग के ज़रिए जब भारत में बैठे हिंदी भाषी दादा-दादी विदेश स्थित अपने नाती-पोतों से बात करते हैं, तब बातचीत के इस क्रम में अंग्रेज़ी माहौल में पली-बढ़ी नई पीढ़ी भी हिंदी की ओर उन्मुख हो जाती है।

टेलीग्राम और हिंदी : व्हाट्सएप की तरह टेलीग्राम भी हिंदी भाषियों के बीच खूब लोकप्रिय हो रहा है। भारत में इसके यूज़र्स की संख्या लगभग 15.62 करोड़ है। इसकी खास बात यह है कि इसमें ग्रुप का आकार दो लाख सदस्यों का भी हो सकता है। ऐसे में जब किसी सुपर ग्रुप में कोई हिंदी पोस्ट डाली जाती है, तब उसे हिंदी और हिंदीतर भाषियों द्वारा देखा जाता है। इससे अनौपचारिक तरीके से ही सही, पर हिंदी का प्रसार अवश्य हो जाता है।

हिंदी ब्लॉग : ब्लॉग एक ऐसी डिजिटल डायरी है, जिस पर आप रोज़ कुछ-न-कुछ लिख सकते हैं और अपने अनुभव साझा कर सकते हैं। हिंदी में ब्लॉग लेखन की शुरुआत 21 अप्रैल 2003 को श्री आलोक कुमार के 'नौ दो ग्यारह' नामक ब्लॉग से मानी जाती है। इंडिक यूनिकोड तथा ब्लॉगर में ट्रांसलिटरेशन टूल्स के समर्थन के चलते वर्ष 2007 से हिंदी ब्लॉगों की संख्या में अभूतपूर्व तेज़ी आई है। एक अनुमान के मुताबिक वर्तमान में लगभग एक लाख से अधिक हिंदी ब्लॉग हैं, जिनमें दस हज़ार से अधिक अति सक्रिय और लगभग बीस हज़ार सक्रिय श्रेणी के हैं। ये ब्लॉग साहित्य, तकनीक, विज्ञान, सिनेमा, अर्थ-वित्त, स्वास्थ्य जैसे विविध विषयों से ताल्लुक रखते हैं। आज जहाँ हिंदी कुञ्ज, हिंदी साहित्य, गीत–कविता, कविता कोश, ज्ञानदर्पण जैसे श्रेष्ठ साहित्यिक ब्लॉग हैं, तो अच्छी खबर, ज्ञानी पंडित, आपकी सफलता जैसे मोटिवेशनल ब्लॉग हैं। आज जहाँ माय बिग गाइड, ट्यूटोरिअल पंडित, कंप्यूटर हिंदी नोट्स जैसे कंप्यूटर लर्निंग ब्लॉग हैं, तो ओनली माय हेल्थ, माय उपचार, द हेल्थ साइट, क्रेडीहेल्थ, गोमेडी जैसे स्वास्थ्य संबंधी ब्लॉग हैं। आज जहाँ इंडीटेल्स, मुसाफ़िर हूँ यारों, जाट देवता का सफ़र, मुसाफ़िर चलता जा सरीखे यात्रा श्रेणी के ब्लॉग हैं, तो सरकारी हेल्प, तैयारी हेल्प जैसे शिक्षा श्रेणी के ब्लॉग हैं। इसके अलावा प्रतिष्ठित संस्थानों तथा अमिताभ बच्चन जैसी प्रतिष्ठित शख्सियतों के भी ब्लॉग हैं, जिन पर पोस्ट की गई सामग्री को विश्व के कोने-कोने में न केवल पढ़ा जाता है, अपितु उस पर प्रतिक्रियाएँ भी दी जाती हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान में हिंदी को मौलिक रूप से आगे बढ़ाने में सोशल मीडिया का योगदान किसी से छिपा नहीं है। पहले लेखन का कार्य कुछ प्रबुद्ध जनों अथवा चुनिंदा लेखक वर्ग तक सीमित था, आज सोशल मीडिया की बदौलत हर व्यक्ति लेखक की कोटि में आ खड़ा हुआ है। विचार आना और लेखन का हाज़िर प्लेटफ़ॉर्म उपलब्ध हो जाना जहाँ अभिव्यक्ति को धार देता है, वहीं लेखन में मौलिकता को भी बढ़ावा देता है। हम उन चीज़ों को बेहतर ढंग से सीखते हैं, जो हमें कभी सिखाई नहीं जातीं। यह बात सोशल मीडिया के मामले में भी लागू होती है। आज जो बहुसंख्यक हिंदी भाषी वर्ग सोशल मीडिया पर सक्रिय है, उसमें से शायद ही किसी ने इसके लिए कोई औपचारिक प्रशिक्षण लिया हो। यही कारण है कि उनके द्वारा पोस्ट की गई सामग्री की हिंदी सरल, सहज और बोलचाल की हिंदी होती है, जो सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर सक्रिय हिंदीतर भाषियों को खूब रास आती है और वे अनायास तथा हास-परिहास में हिंदी सीख जाते हैं। आज सोशल मीडिया पर पोस्ट डालने और प्रतिक्रिया देने की जो लत लगी है, वह निश्चय

ही हिंदी के लिए एक सुखद संकेत है। किसी भी भाषा के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए दो बातों का होना बहुत आवश्यक है, एक तो उसके बोलने वालों की संख्या और दूसरा संवाद का मुकम्मल माध्यम। आज भारत और भारत के बाहर हिंदी बोलने और समझने वालों की तादाद अच्छी-खासी है। जबसे इस आबादी को सोशल मीडिया का प्लेटफ़ॉर्म उपलब्ध हुआ है, हिंदी और भी मुखर हुई है। पर एक विडम्बना यह भी है कि सोशल मीडिया पर हिंदी, भाषा के रूप में तो बढ़ रही है, लेकिन लिपि के रूप में इसका प्रदर्शन उत्साहजनक नहीं है। सोशल मीडिया ने रोमन लिपि में हिंदी लेखन को बढ़ावा दिया है, जबकि भाषा को अपनी लिपि के साथ आगे बढ़ना चाहिए। हालाँकि यह भी सच है कि रोमन लिपि में लिखे होने के कारण हिंदी की हिंदीतर भाषियों तक पैठ हुई है, क्योंकि उनके लिए रोमन में लिखित टेक्स्ट पढ़ना अपेक्षाकृत आसान रहता है। लेकिन मेरे विचार से भाषा यदि लिपि के साथ बढ़े तो उसमें विविध विषयों से संबंधित साहित्य लेखन को बढ़ावा मिलता है और हिंदी के दीर्घकालिक विकास मार्ग प्रशस्त होता है। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि सोशल मीडिया के कारण हिंदी के स्तर में गिरावट आई है और उसका स्वरूप बदला है। लेकिन इतिहास इस बात का भी गवाह है कि जिस भाषा के मामले में अति शुद्धतावादी रूख अपनाया गया है, उसका चलन धीरे-धीरे सीमित होता गया है। आज आवश्यकता है हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की, जिसके लिए हमें भाषा से जुड़े कतिपय आग्रहों से मुक्त होना होगा। यदि समग्र रूप से देखें तो सोशल मीडिया के उन्मुक्त गगन पर आरूढ़ होकर हिंदी न केवल विश्व क्षितिज तक पहुँची है, अपितु उसकी ग्राह्यता और लोकप्रियता में भी वृद्धि हुई। भाषा व्यवहार की चीज़ है और हिंदी को व्यवहार में लाने में सोशल मीडिया महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. सोशल मीडिया के विविध आयाम, डॉ. सेवा सिंह बाजवा
2. Tweets and the Streets- Social Media and Contemporary Activism, Paolo Gerbaudo
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल
4. हिंदी और भारतीय भाषाओं में तकनीक का योगदान, राहुल खटे
5. हिंदी- उद्भव, विकास और रूप - डॉ. हरदेव बाहरी
6. प्रौद्योगिकी, बैंकिंग और हिंदी, रमेश यादव
7. मेटावर्स से आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस तक - तकनीक तेरे कितने आयाम, बालेंदु शर्मा दाधीच
8. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, भाषिक संस्कार एवं संस्कृति, डॉ. साकेत सहाय
9. दि पॉवर ऑफ़ सोशल मीडिया, जिम स्टीफंस

sanjaikumarun@gmail.com

डिजिटल विश्व में हिंदी के बढ़ते कदम

डॉ. कमलेश गोगिया
रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

हिंदी भाषा की यह विशेषता सदैव गौरवान्वित करती है कि डिजिटल विश्व में हर नई तकनीक के साथ वह तादात्म्य स्थापित कर स्वयं को सँवारती चली है। विकास-पथ पर अग्रसर रहने की यह राह कठिन अवश्य रही है। खुद के घर में तमाम उपेक्षाओं के दंश सहन करते रहने के बाद भी हिंदी भाषा डिजिटल विश्व में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में सफल रही है। यह सर्वविदित है कि किसी भी क्षेत्र में हर नई तकनीक पुरानी तकनीक को प्रतिस्थापित करती है और धीरे-धीरे पुरानी तकनीक का स्वरूप बदलता चला जाता है। इस बदलते स्वरूप के साथ तादात्म्य स्थापित करने की आवश्यकता हमेशा से महसूस की जाती है, जिससे चिरस्थायी रहा जा सके। फिर वह भाषा का ही क्षेत्र क्यों न हो। हिंदी भाषा हर नई तकनीक के साथ कदमताल करती रही है। कंप्यूटर विज्ञान के लिए अनुकूल हिंदी अपनी वैज्ञानिक विशेषताओं की वजह से वर्तमान आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) के युग में भी अपनी श्रेष्ठता बनाई हुई है।

वर्ष 2023 की इंडिया टीवी की रिपोर्ट के अनुसार हिंदी बिज़नेस वर्ल्ड की सबसे ज्यादा पसंदीदा भाषा बन गई है, जिसका फ़ायदा कार्पोरेट जगत उठा रहा है। भारत के मीडिया और मनोरंजन उद्योग की ही बात करें, तो वर्ष 2024 में इसके 30 बिलियन डॉलर होने की उम्मीद है, जो वर्ष 2024 में 24 अरब डॉलर था और इसमें सबसे ज्यादा हिस्सेदारी हिंदी भाषा की थी। मीडिया रिपोर्ट के अनुसार इंटरनेट में हिंदी सबसे ज्यादा 94 फ़ीसदी की दर से बढ़ रही है।

याद कीजिए उस दौर को भी जब क्रिकेट की कमेंट्री एक निश्चित समय के लिए ही हिंदी में हुआ करती थी। आज सहज और सरल शब्दों के साथ हिंदी में पूरे खेल के दौरान कमेंट्री होती है और स्क्रीन पर हिंदी के शब्दों में स्कोर भी देखे जा सकते हैं। मार्च 2024 के भास्कर में मोहम्मद अली की रिपोर्ट बताती है कि अमेरिका में हिंदी का दबदबा बढ़ रहा है और बीते दो वर्ष में अंतर्राष्ट्रीय भाषा के तौर पर हिंदी विषय पढ़ाने वाले स्कूलों की संख्या दस गुना बढ़ गई है। अब वहाँ 90 स्कूलों में हिंदी के कोर्स चल रहे हैं, जिनमें 14 हज़ार छात्र अध्ययनरत हैं। हावर्ड, येल, प्रिंस्टन जैसे प्रतिष्ठित 12 विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग संचालित है। डॉ. आकांक्षा जैन अपने अध्ययन में बताती हैं कि डिजिटल दुनिया में हिंदी की माँग अंग्रेज़ी की तुलना में पाँच गुना ज्यादा तेज़ है। इंटरनेट में हिंदी भाषा की 94 फ़ीसदी की दर से खपत की तुलना में अंग्रेज़ी की सामग्री की खपत 19 गुना ही बढ़ी है।

हिंदी भाषा की देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का ही यह परिणाम है कि मोबाइल ऐप की दुनिया में भी विस्तार हो रहा है। ईटीवी भारत के अनुसार अमेरिका की लैंग्वेज़ लर्निंग ऐप कंपनी डुओलिंगो की वर्ष 2023 की लैंग्वेज़ रिपोर्ट बताती है कि ऐप पर 23 अरब से ज्यादा पाठ पूर्ण किए गए और 83 लाख से ज्यादा शिक्षार्थी ऐप पर सक्रिय रूप से 'हिंदी' सीख रहे हैं। ऐप पर सीखने में लगभग डेढ़ अरब घंटे व्यतीत हुए और दुनिया भर में 32 मिलियन से ज्यादा लोगों ने एक से ज्यादा भाषाएँ सीखीं।

हाल ही में सम्पन्न जी-20 शिखर सम्मेलन में अमेरिकी प्रवक्ता मार्गरिट मैक्लॉयड की प्रवाहपूर्ण हिंदी ने सभी को हैरत में डाल दिया था। यह विश्व में हिंदी भाषा के बढ़ते महत्त्व का उदाहरण है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के विश्व-नेतृत्व में भारत के बढ़ते प्रभाव को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, जिसका लाभ हिंदी भाषा के विकास को भी मिल रहा है। विदेश यात्रा से लेकर संयुक्त राष्ट्र के मंच तक प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी भारत रत्न अटल जी की परंपरा को बनाए रखते हुए हिंदी में ही भाषण देते रहे हैं, जिससे विदेशियों का ध्यान भी हिंदी भाषा की तरफ़ आकर्षित हुआ है। फिर वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत के योगदान से पूरा विश्व आज परिचित है और दुनिया का रुझान हिंदी भाषा की तरफ़ आना स्वाभाविक है। विश्व के 175 से भी ज्यादा देशों में हिंदी पढ़ी और पढ़ाई जाती है।

वास्तव में, हिंदी के विकास के नए आयाम खुल रहे हैं। जिन्हें पढ़ना और लिखना नहीं आता, अंग्रेज़ी की ज्यादा समझ नहीं है और सिर्फ़ बोलचाल की ही हिंदी आती है, तो भी वे विश्व के किसी भी कोने तक अपने विचारों को किसी भी भाषा में अभिव्यक्त करने में समर्थ हो रहे हैं। बस आवाज़ ही काफ़ी है। एआई की नई प्रौद्योगिकी ने भाषाओं की दीवारों को इस कदर तोड़ दिया है कि एक आम आदमी भी अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करने में सक्षम हो गया है। वह सेवा प्रदाता हो या उपभोक्ता, दोनों को इसका लाभ प्राप्त हो रहा है। किसी भाषा को दूसरी भाषा में

अनुवाद करना, हिंदी के वक्तव्य को अंग्रेज़ी में सुनना और इसके विपरीत अंग्रेज़ी के वक्तव्य को टेक्स्ट के साथ हिंदी में पढ़ना और सुनना सभी के लिए सहज और सरल हो गया है।

एक दौर वह भी था जब अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद का कार्य जटिल हुआ करता था। विद्वानों को भी शब्दकोश का ही सहारा लेना पड़ता था और समय भी लगता था। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में तो और भी ज्यादा चुनौतियाँ हुआ करती थीं। 'पत्रकारिता में अनुवाद' के संपादक श्री रामशरण जोशी के अनुसार - "भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता का बड़ा भाग अनुवाद पर आधारित रहा है। ब्रिटिश काल में शासकीय घटनाचक्र के सम्प्रेषण का मुख्य माध्यम अंग्रेज़ी भाषा थी। अंग्रेज़ी समाचार एजेंसियों और पत्र-पत्रिकाओं का वर्चस्व था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी लंबे समय तक यही स्थिति बनी रही। भारतीय भाषाई अखबारों में अंग्रेज़ी की समाचार-समितियों से प्राप्त खबरों को हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करना पड़ता था। छठे दशक के अंत तक न्यूज़ एजेंसी के टेलीप्रिंटर अंग्रेज़ी में हुआ करते थे। अतः उपसंपादकों को अंग्रेज़ी में प्रसारित खबरों से हिंदी में खबरें बनानी पड़ती थीं। लेकिन सातवें दशक के प्रारंभ में इस स्थिति में थोड़ा परिवर्तन अवश्य आया, हिंदी के टेलीप्रिंटर अखबारों के दफ़्तरों में लगाए गए।" हिंदी पत्रकारिता के समक्ष भी लंबे समय तक भाषा की तकनीकी चुनौतियाँ रहीं, लेकिन हिंदी ने सारी चुनौतियों का सामना पूरे साहस के साथ किया। इंटरनेट के आगमन के बाद भी कुछ वर्षों तक अनेक समस्याएँ रहीं, लेकिन यूनिकोड के आगमन ने हिंदी के विकास में क्रांति ला दी। नए सॉफ़्टवेयर, फ़ाउंट, की-बोर्ड, लिप्यंतरण से लिपि को बदलने की सुविधा सहित अनेक टूल्स विकसित होते गए। ये सभी आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस से ही संभव हो पाया।

एआई के नए स्वरूप में आज चैटजीपीटी (चैट जेनेरेटिव प्री-ट्रेंड ट्रांसफ़ार्मर) पूरी दुनिया के सामने है, जो पल भर में सारे सवालों का जवाब देने में सक्षम है। मानव की तरह विस्तृत-लेखन जैसे कार्य चुटकियों में करने में अग्रणी यह कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी भाषा के वैश्विक विकास में भी अहम् भूमिका निभा सकती है। प्रसिद्ध तकनीकीविद् बालेंदु शर्मा दधीच के अनुसार -

"अगले एकाध दशक में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की बदौलत हमारी दुनिया का कायाकल्प होने वाला है। हिंदी सहित हमारी भाषाएँ भी इस बदलाव से अछूती नहीं रहने वालीं और न ही इनसे अप्रभावित रहना चाहिए। जो भाषाएँ बदलते युग के साथ तालमेल बिठाकर नहीं चल पातीं, उनके स्थाई अस्तित्व की गारंटी नहीं ली जा सकती। वैसे ही, जैसे अपने दौर के विकास, बदलाव, नवाचार आदि से अछूते रह जाने वाले समाज न सिर्फ़ प्रगति की दौड़ में पिछड़ जाते हैं, बल्कि धीरे-धीरे अपनी प्रासंगिकता खो बैठते हैं।"

बदलते युग के साथ हिंदी का तालमेल सर्वविदित है और इस दिशा में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नित नई तकनीकी विकास किए जा रहे हैं।

भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा सी-डैक पुणे के सहयोग से कंठस्थ 2.0 संस्करण को विकसित किया गया है। इसका उद्देश्य भारत में विभागीय कार्यों को हिंदी में करना है। कंठस्थ के माध्यम से हिंदी में अनुवाद सहज और सुबोध है। अहिंदी भाषियों के लिए हिंदी में काम करने की समस्या का समाधान होगा। मीडिया रिपोर्ट के अनुसार, कंठस्थ के माध्यम से एक बार यदि किसी वाक्य या शब्द का अनुवाद कर इसे ग्लोबल कर दिया जाए, तो दुबारा उसके अनुवाद की ज़रूरत नहीं पड़ती। वह स्वतः उसे ले लेता है। इस तरह अहिंदी-भाषी लोग कंठस्थ के ज़रिए हिंदी का काफ़ी विकास कर सकते हैं और उसके ज़रिए काम कर सकते हैं। हिंदी-भाषी भी हिंदी भाषा के प्रसार में इसका प्रयोग कर सकते हैं। भाषाई बाधा को तोड़ने के लिए भारत सरकार का राष्ट्रीय भाषा अनुवाद मिशन (एनएलटीएम) भी उल्लेखनीय है। इसे 'भाषिणी' के रूप में भी जाना जाता है और यह मार्च 2022 में तीन वर्षीय मिशन के रूप में शुरू किया गया है। भाषिणी का उद्देश्य सभी भारतीयों को उनकी अपनी भाषाओं में इंटरनेट और डिजिटल सेवाओं तक आसान पहुँच प्रदान करना और भारतीय भाषाओं में सामग्री को बढ़ाना है। इसका उद्देश्य आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (एआई) और नेचुरल लैंग्वेज़ प्रोसेसिंग (एनएलपी) का उपयोग करते हुए विभिन्न भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी के बीच अनुवाद की सुविधा के लिए एक आसान और उत्तरदायी पारिस्थितिकी तंत्र को सक्षम बनाने के लिए एक सार्वजनिक डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म विकसित करना है। मशीन सहायता प्राप्त अनुवाद (एमएटी), आटोमेटिक स्पीच रिकग्निशन (एएसआर), टेक्स्ट टू स्पीच सिस्टम (टीटीएस), ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकॉग्निशन (ओसीआर), स्पीच टू स्पीच ट्रांसलेशन (एस 2 एस) और भारतीय भाषाओं में आईटी टूल्स और समाधानों को अपनाने जैसी प्रमुख भाषा प्रौद्योगिकियों के निर्माण के लिए मुख्य पहल की जा रही हैं। निश्चय ही इस पहल से हिंदी के विकास की दिशा में बाधाओं के बादल छटेंगे और नए आयाम खुलेंगे।

भाषाई चुनौतियों को पूरी तरह खत्म करने के प्रयास वैश्विक स्तर पर भी किए जा रहे हैं। वर्ष 2022 में फ़ेसबुक की स्वामित्व

वाली कंपनी मेटा ने सार्वभौमिक भाषा अनुवादक तैयार करने की घोषणा की। मेटा एक ही वक्त में एक भाषा के वक्तव्य का दूसरी भाषा में अनुवाद करने के लिए नए मॉडल का डिजाइन तैयार कर रही है, ताकि यह मानक लेखन प्रणाली के बिना भी लिखित और बोली जाने वाली भाषाओं का समर्थन कर सके। नवंबर 2022 में अल्फाबेट की कंपनी गूगल ने अपने नए महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट के तहत आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस की तकनीक का प्रयोग कर भाषा का एक पूरा सिंगल मॉडल तैयार करने की घोषणा की। इस मॉडल में दुनिया की 1,000 से अधिक बोली जाने वाली भाषाएँ मौजूद होंगी। निश्चय ही इसका लाभ हिंदी को भी मिलेगा। अगस्त 2023 में गूगल ने भारत के लिए अंग्रेज़ी और हिंदी में अपने सर्च टूल में जेनरेटिव आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस पेश किया है। पहले यह सुविधा सिर्फ़ संयुक्त राज्य अमेरिका में थी।

विश्व की दिग्गज कंपनियाँ हिंदी में कम्प्यूटिंग को गंभीरता से लेती रही हैं। वजह साफ़ है, देश-विदेश में हिंदी करोड़ों उपभोक्ताओं की ताकत समेटे हुई है। भारत की नीतियाँ अब ग्लोबल इकोनॉमी के अनुसार हैं और भारत विश्व की पाँचवी बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है। हिंदी भारतीय बाज़ार की सशक्त भाषा बन चुकी है। वर्ष 2019 में माइक्रोसॉफ़्ट ने विंडोज-10 में हिंदी सहित दस भारतीय भाषाओं के लिए स्मार्ट की-बोर्ड की सुविधा दी थी। बोलकर टाइप करने की सुविधाओं से अधिकांशतः अवगत हैं। गूगल ने इनपुट टूल्स, मशीन अनुवाद और वॉइस टू टेक्स्ट जैसे एप्लीकेशंस उपलब्ध कराए हैं, जिससे कंप्यूटर और मोबाइल पर हिंदी लिखना आसान हो गया है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि दुनिया की दिग्गज कंपनियों की इन अत्याधुनिक तकनीकी की सुविधाओं के पीछे भारत का वृहद हिंदी भाषी बाज़ार है। प्रसिद्ध बहुराष्ट्रीय शॉपिंग कंपनियाँ ऑनलाइन हिंदी में सेवाएँ दे रही हैं। मोबाइल निर्माता विदेशी कंपनियाँ हिंदी में टाइपिंग सुविधा मुहैया करा रही हैं।

डिजिटल वर्ल्ड में हिंदी कम्प्यूटिंग की लम्बी यात्रा रही है। हिंदी टाइप वर्डस्टार, डॉस आधारित हिंदी शब्द संसाधक अक्षर, शब्दरत्न, विंडोज़, पेजमेकर, वेंचुरा, यूनिकोड से लेकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता के आगमन तक के लगभग चालीस साल के इस सफ़र में हिंदी ने तमाम तकनीकी बाधाओं और अनेक तरह की चुनौतियों का साहस के साथ सामना किया। न झुकी और न रुकी, समृद्धि-पथ पर विश्व में गुँजायमान होती रही। लेकिन सवाल यह भी है कि क्या चुनौतियाँ शेष नहीं रह गई हैं? डिजिटल वर्ल्ड में हिंदी की तमाम तकनीकी सुविधाओं के बाद भी सबसे ज्यादा चुनौतियाँ अपने ही घर में हैं।

हिंदी कथाकार और टोरंटो यूनिवर्सिटी, कनाडा की प्राध्यापक हंसा दीप को इस बात का गर्व है कि आज की तकनीकी उन्नति के साथ हिंदी कदम-से-कदम मिलाकर चल रही है, लेकिन वे हिंदी के विकास की बाधाओं को लेकर चिंतित भी हैं। वागार्थ में प्रकाशित अपने आलेख, 'रोमनीकरण के दौर में हिंदी' में वे इस तथ्य को प्रकाश में लाती हैं -

"यह अपने दिल को बड़ा करके हर ग्लोबल शब्द को जगह दे रही है। इसके बावजूद, हकीकत यह है कि आम भारतीय हिंदी बोलना चाहता है, लिखना-पढ़ना नहीं चाहता। हिंदी वस्तुतः पत्रिकाओं और पुस्तकों में सिमटकर रह गई है। इसके अलावा हिंदी को रोमन में लिखने की परंपरा बढ़ रही है।"

कथाकार हंसा दीप हिंदी फ़िल्मों में करोड़ों की कमाई करने वाले अभिनेताओं के लिए पटकथा रोमन लिपि में तैयार करने का उदाहरण देती हैं।

डॉ. विनोद सेन के अनुसार, "सिनेमा ने हिंदी के समक्ष समस्याएँ उत्पन्न की हैं। सिनेमा में हिंदी के साथ अंग्रेज़ी के प्रयोग के कारण भाषा में अशुद्धता आई।" मीडिया रिपोर्ट से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि हिंदी फ़िल्मों के नाम भी अंग्रेज़ी में रखने का चलन बीते कई दशकों से है। सिर्फ़ वर्ष 2010 के डाटा को देखें, तो 59 हिंदी फ़िल्मों में से सर्वाधिक 34 फ़िल्मों के नाम अंग्रेज़ी शब्दों पर आधारित थे। यह परंपरा अब भी जारी है। विद्वानों की राय में इसका कारण अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी फ़िल्मों को रिलीज़ करना और लाभ कमाना भी है। ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म में फ़िल्में रिलीज़ करने और वेबसीरिज़ के दौर में अंग्रेज़ी का प्रयोग टाइटल से लेकर क्रेडिट, संवाद तक में किया जाता है। यह मनोरंजन के क्षेत्र में हिंदी की समस्या मानी जा सकती है, लेकिन इस तथ्य को भी नजरअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में हमारी फ़िल्मों ने अहम भूमिका निभाई है और आज भी निभाती आ रही हैं।

कुछ और भी चुनौतियाँ हैं, जैसे सभी विषयों की पुस्तकों का हिंदी में अभाव, शोध और अनुसंधान के लिए हिंदी में शोध अध्ययन सामग्री की कमी आदि। डिजिटल वर्ल्ड में हिंदी के समक्ष इस तरह की चुनौतियाँ इतनी जटिल नहीं हैं कि दूर न की जा सकती हों। एक सच तो यह भी है कि चुनौतियों से ही अनंत संभावनाओं का जन्म होता है। हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ न होती, तो डिजिटल वर्ल्ड

में सशक्त होकर कदम-से-कदम मिलाती नज़र न आती। सूचना क्रांति के इस युग में हिंदी की वर्तमान स्थिति स्वर्णिम भविष्य की झलक का आभास कराती प्रतीत होती है। वैश्विक बाज़ार में हिंदी के बढ़ते महत्त्व को पूरी दुनिया स्वीकार रही है। विश्व हिंदी सचिवालय से लेकर भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, राष्ट्रीय अनुवाद मिशन, राजभाषा आयोग, सी-डैक, आयुका, टाटा फंडामेंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, एलसीएल, भारतीय विज्ञान संस्थान सहित अनेक संस्थाओं और महान विभूतियों सहित विश्व के कोने-कोने में बसे भारतीयों के योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. patrika.com/udaipur-news/hindi-diwas-2023-artificial-intelligence-in-hindi-udaipur-8488021
2. indiatv.in/paisa/market/hindi-diwas-2023-hindi-market-a-source-of-revenue-worth-thousands-of-crores-of-rupees-check-details-2023-09-14-988187
3. मोहम्मद अली, अमेरिका में दो साल में हिंदी भाषा के विषय वाले स्कूल दस गुना बढ़े, 14 हज़ार हो गए छात्र, दैनिक भास्कर, रायपुर, छत्तीसगढ़, प्रथम पृष्ठ, 2 मार्च 2024
4. आकांक्षा जैन, जनसंचार में हिंदी भाषा, RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary 2021; 6(4):14-16 ISSN: 2455-3085 (Online), https://doi.org/10.31305/rrijm.2021.v06.i04.004
5. etvbharat.com/hindi/delhi/bharat/millions-of-people-learning-hindi-in-duolingo-app-most-learned-language-is-english/na20231205172518059059934
6. आशीष वशिष्ठ, युग-पुरुष अटल बिहारी वाजपेयी, के.के, पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2021
7. रविंद्र जाधव, मोरे, केशव, मीडिया और हिंदी : बदलती प्रवृत्तियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
8. आशुतोष कुमार सिंह, हिंदी में विज्ञान एवं तकनीकी की सम्भावनाएँ, हिंदी भाषा की परंपरा, प्रयोग और संभावनाएँ, मिश्र, दयानिधि, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020
9. https://hindi.webdunia.com/views-on-hindi/hindi-115022000056_1.html/ अभिगमन तिथि-1/9/2023
10. जीतेंद्र गुप्त, प्रियदर्शन, प्रकाश, अरुण, सं. जोशी रामशरण, पत्रकारिता में अनुवाद, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पुस्तक की संपादकीय से
11. बालेन्द शर्मा दाधीच, कृत्रिम बुद्धिमत्ता करेगी हिंदी का कायाकल्प/ भारत, विश्लेषण, विज्ञान और तकनीक/https://panchjanya.com/2023/02/22/267775/sci-tech/artificial-intelligence-will-rejuvenate-hindi/ Feb 22, 2023, 08:01 am ISTin/ अभिगमन तिथि-2/9/2023
12. https://www.jagran.com/jharkhand/dhanbad-translate-into-hindi-through-kanthast-21285783.html/ Published: Tue, 19 Jan 2021 01:15 AM (IST) Updated: Tue, 19 Jan 2021 01:15 AM (IST) /अभिगमन तिथि-2/9/2023
13. एआई से भाषाई बाधाएँ दूर कर रही मेटा/ https://hindi.business-standard.com/specials/meta-breaking-down-the-language-barrier-with-ai/ March 1, 2022 10:57 PM IST/ अभिगमन तिथि-2/9/2023
14. भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी विकास (टीडीआईएल) / इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार/ अंतिम अद्यतन तिथि: 01-12-2022 10:24:57
15. Sardana, Kritarth, गूगल ने इंडिया के लिए अंग्रेज़ी और हिंदी में AI सर्च टूल किया पेश, पहले सिर्फ़ अमेरिका में था उपलब्ध /Published: Fri, 04 Nov 2022 05:47 PM (IST) Updated: Fri, 04 Nov 2022 05:47 PM (IST)
16. हंसा दीप, रोमनीकरण के दौर में हिंदी, वागार्थ, सं. शंभूनाथ, वर्ष 28, अंक 322, सितंबर 2022
17. विनोद सेन, राजभाषा हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ
18. hindi.thecriticalmirror.com/analysis/Posted on September 19, 2018/अभिगमन तिथि- 3/9/2023
19. बॉलीवुड फ़िल्मों में 'इंगलिश टाइटल' का तड़का/ भाषा, नई दिल्ली, 23 मई 2010, (अपडेटेड 31 मई 2010, 8:34 AM/ aajtak.in/entertainment/story/bollywood-films-english-title-tadka-45455-2010-05-23/अभिगमन तिथि- 3/1/2024
20. गणेश नंदन तिवारी, अंग्रेज़ी पर लट् हैं हिंदी फ़िल्मों के निर्माता, जनसत्ता,
21. www.jansatta.com/entertainment/producers-of-hindi-films-are-hanging-on-english/1962558/ अभिगमन तिथि- 3/1/2024

kamleshgogia@gmail.com

हिंदी का ई-संसार

डॉ. सविता डहेरिया
भोपाल, भारत

कृत्रिम बुद्धिमत्ता यानी आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस की विभिन्न तकनीकों में मशीन लर्निंग का बड़ा महत्त्व है, जिसके माध्यम से डाटा एकत्रित करते हैं। इसके बाद सारे डेटा का विश्लेषण करते हैं और विभिन्न व्यक्तियों की अगली संभावित खरीद के बारे में यथासंभव सटीक अनुमान लगाने की कोशिश करते हैं। गूगल की मोबाइल पेमेंट सेवा गूगल पर, जो एक बैंक की तरह काम करता है, के पास एक बहुत बड़ा कस्टमर डेटाबेस है और वह इस डाटा को भुनाना भी चाहता है और इसके लिए वह अपने शुल्क को कम करने के लिए भी तैयार है। इस तरह के एकाधिकार को चुनौती देने वाले नियामक सरकार के पास इस पर नियंत्रण रखने के लिए 'भीम' नाम का पेमेंट गेटवे मौजूद है, जो आधार जैसे एक बहुत बड़े कस्टमर डेटाबेस पर आधारित है, जो संभावित रूप से नागरिक ई-आईडी (आधार) के माध्यम से बड़े ग्राहक और सरकारी बैंकों को, यदि सरकार चाहे, तो अपने इन टूल्स के साथ साझेदारी करने के लिए प्रेरित कर सकती है। एक अन्य उभरता हुआ प्रतिमान तथाकथित 'इंडस्ट्रियल इंटरनेट' या डाटा का औद्योगिकीकरण की अवधारणा है। इस प्रतिमान को समझने के लिए हमें उभरती हुई उन तकनीकों को समझना होगा, जो डाटा एकत्रित करने के लिए व्यक्तिगत उपभोग डाटा के कई डेटा स्रोतों के साथ-साथ अपने स्वयं के मशीन आधारित डाटा को भी उपयोग में लाते हैं, जिससे वे अपने ग्राहकों को एक पर्सनलाईज्ड उत्पाद या सेवा प्रदान कर सकें, जो डेटा संचालित समाधान विकसित करने के लिए व्यक्तिगत हैं या जो व्यक्तिगत ग्राहकों को प्रदान करने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं।

गूगल, एप्पल, अमाज़ोन, नेटफ़्लिक्स जैसी संशोधित, परिवर्तित संरचनाओं के साथ औद्योगिक संगठन आमतौर पर प्रौद्योगिकी कंपनियों के रूप में देखे जाते हैं। जनरल इलेक्ट्रिकल्स (जीई) जैसी पारंपरिक ईंट और मोर्टार कंपनियों, ग्लेनकोर जैसे कमोडिटी व्यापारियों और अन्य ने पिछले 5-6 वर्षों में खुद को प्रौद्योगिकी कंपनियों में पुनर्गठित किया है। टेक्नोलॉजी कंपनी के रूप में बहुप्रसिद्ध और विधिवत स्थापित कंपनियों के अलावा वास्तविक प्रोडक्ट बेचने वाली अन्य कंपनियों ने भी देशव्यापी डाटा कलेक्शन और सर्विलेंस को अपने व्यापार प्रसार के लिए अपनाया है। कोई भी प्राकृतिक (जैसे बारिश, नमी या हवाओं के पैटर्न), मानवी या मशीनी कार्य जब भी इंटरनेट या किसी प्राइवेट क्लाउड के साथ लिंक होता है, तब वह संभावित रूप से अपने 'डिजिटल फुटप्रिंट' पीछे छोड़ जाता है और इस जानकारी को उपयोग में लाया जा सकता है। इस फुटप्रिंट में बायोमेट्रिक विशिष्टियाँ भी शामिल हैं, जैसे - चाल, कार्य, नस्लीय विशेषताएँ या मानवीय क्रियाकलाप। आईओटी (IOT) या इंटरनेट ऑफ़ थिंग्स इन फुटप्रिंट्स द्वारा दी गई सूचनाओं का इस्तेमाल करता है और अब तरह-तरह की वस्तुएँ जैसे - घड़ियाँ, बैटरी, कार, स्पोर्ट्स-शूज और यहाँ तक कि जेट इंजन भी सब-के-सब क्लाउड के माध्यम से जुड़ (Connect) रहे हैं।

हम इंटरनेट में हिंदी के प्रयोग पर विचार करें, तो वर्तमान समय में यह कोई नई बात नहीं है कि लोग बहुतायत में इंटरनेट पर हिंदी में लिखने के साथ-साथ हिंदी में पढ़ भी रहे हैं। आज भारत में करोड़ों लोग इंटरनेट पर हिंदी में लिख व पढ़ रहे हैं। पिछले कुछ सालों में बहुत ही कम समय में इंटरनेट पर हिंदी ने अपनी एक अलग भूमि बना ली है, जो लगातार विस्तारित होती जा रही है। दुनिया के सबसे बड़े सर्च इंजन माने जाने वाले गूगल में ही आज कई हज़ार पेज हिंदी भाषा के हैं। अगर आँकड़ों के रूप में देखा जाए, तो करीबन 30 प्रतिशत से ज्यादा लोग इंटरनेट पर हिंदी की सामग्री ढूँढते हैं और करीबन 40 प्रतिशत लोग इंटरनेट पर हिंदी की सामग्री उपलब्ध कराते हैं। इन सबके साथ ही आज हिंदी में ई-मेल, ई-पत्र, सूचना आदि भेजने का प्रचलन भी तेज़ी से बढ़ा है। देश में कई हज़ार समाचार पत्र-पत्रिकाएँ हिंदी में इंटरनेट पर नित्य प्रकाशित हो रही हैं। हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं का भी इंटरनेट पर तेज़ी से विकास हो रहा है। वैसे तो इंटरनेट में हिंदी की शुरुआत हिंदी को रोमन लिपि में लिखने से प्रारंभ हुई है। शुरुआत में हिंदी के फ़ॉन्ट की समस्या तो हुई, लेकिन इन समस्याओं का समाधान तब हो गया जब यह देवनागरी लिपि वहाँ तक पहुँच गई। आज हिंदी में यूनीकोड, मंगल जैसे फ़ॉन्ट उपलब्ध हैं, जिन्होंने कंप्यूटर और इंटरनेट पर हिंदी को आसान बना दिया है। आज इंटरनेट पर हिंदी साहित्य से संबंधित लगभग सौ ई-पत्रिकाएँ देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं। हिंदी के बड़े-से-बड़े विद्वान चाहे वे साहित्य के क्षेत्र में हो या किसी अन्य क्षेत्र में, सभी इंटरनेट पर मातृभाषा को बढ़ावा दे रहे हैं।

लगभग 4.5 करोड़ भारतीय देशी भाषाओं में इंटरनेट का प्रयोग कर रहे हैं। भारत में कुल सक्रिय इंटरनेट प्रयोक्ताओं की अनुमानित संख्या लगभग 12.2 करोड़ है। यह बात भी गौर करने लायक है कि जहाँ 64 प्रतिशत ग्रामीण उपभोक्ता देशी भाषाओं में

इंटरनेट का इस्तेमाल कर रहे हैं, वहीं 25 प्रतिशत शहरी उपभोक्ता, यानी देशी भाषाओं की इंटरनेट सेवाओं का भविष्य भारत के गाँवों में है। इस तरह का कोई अध्ययन अभी तक सामने नहीं आया है, जो हिंदी में इंटरनेट की तमाम सेवाओं और सुविधाओं को इस्तेमाल करने का आँकड़ा प्रस्तुत करता हो। फिर भी जनसंख्या गणना को आधार मानकर यह बात तो कही ही जा सकती है कि 4.5 करोड़ देशी भाषी इंटरनेट प्रयोक्ताओं का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा यानी कि लगभग डेढ़ करोड़ से अधिक लोग हिंदी में इंटरनेट का प्रयोग कर रहे हैं। ज़रा अंदाज़ा लगाएँ कि क्या यह संख्या हिंदी के अन्य माध्यमों की पहुँच से किसी भी तरह कम है! बिलकुल नहीं! हिंदी इंटरनेट पर बहुत तेज़ी से पसर रही है और आने वाले समय में यह संख्या हमारे अनुमान से कई गुना तेज़ गति से बढ़ने वाली है।

कुल मिलाकर यह बात बिल्कुल सीधी है कि इंटरनेट जिस आयु-वर्ग के लोगों के रोज़मर्रा का हिस्सा है, उस आयु-वर्ग के लेखक-कवि और पाठक इंटरनेट पर पहुँच चुके हैं और शोध इसकी भी पुष्टि कर चुके हैं कि आने वाले दो-तीन सालों में इंटरनेट ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँचकर शहरी प्रयोक्ताओं को संख्याबल में पछाड़ देगा। यानी इंटरनेट पर हिंदी और हिंदी साहित्य का भविष्य चमकदार है। हालाँकि अभी भी ग्रामीण इलाकों के ज्यादातर लेखक-पाठक आभासी संसार के रोमांच से अछूते हैं। अंत में, यह कहना भी ज़रूरी है कि जिस प्रकार पारंपरिक माध्यमों की पहुँच मध्यवर्ग तक है, उसी प्रकार इंटरनेट भी एक नए तरह के मध्यवर्ग का ही खिलौना है। अध्ययन बताते हैं कि हाशिए के बाहर खड़े लोगों तक अभी इसका पहुँचना बाकी है।

दूरदर्शन के माध्यम से हम समाचार, कृषि संबंधी खबरें, परिवार-नियोजन की बातें, फ़िल्म, संगीत और खेल से जुड़ी खबरें पाते थे। वैश्वीकरण पर ज़ोर देने के तहत भारतीय मनोरंजन के साधनों में क्रांति दिखाई देती है, जिसकी बदौलत वर्ष 1992 में भारत में केबल टीवी की शुरुआत हुई। पहले बहुत ही कम चैनल आए, फिर साल 2010 तक भारत में 500 से ज्यादा सेटेलाइट चैनल आ गए, जिसके द्वारा भारतीय जनमानस के सामने मनोरंजन का पिटारा खुल गया। समय के बदलाव के साथ भारतीय मनोरंजन के क्षेत्र में भी इंटरनेट के आगाज़ के कारण, आसानी से समाचार, फ़िल्म, डॉक्यूमेंट्री आदि जनता तक मुहैया होने लगे। 'इंटरनेट के कारण नए डिजिटल डिवाइसों का आगाज़ हुआ', जिसके कारण आज का युवा ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म तक आकर रुका हुआ है। आगे का दौर क्या होगा यह तो समय ही बताएगा।

आज हम विज्ञान, तकनीकी एवं इंटरनेट के युग में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हम इंटरनेट एवं टैक्नोलॉजी का इतना विकास कर चुके हैं कि हम जीवन के अधिकांश कार्य, घर बैठकर करने में सक्षम हो चुके हैं। आज सभी लोग सूचना पाने से लेकर, खरीदारी तक करने के लिए इंटरनेट का प्रयोग करते हैं। इंटरनेट का हमारे दैनिक जीवन के अधिकांश पहलुओं पर प्रभाव पड़ा है। कल्पना कीजिए कि हम एक दिन इंटरनेट एवं डिजिटल गैजेट के बगैर जीवन व्यतीत करें। जवाब होगा असंभव क्योंकि हमारे दैनंदिन जीवन के अधिकांश कार्य इंटरनेट और डिजिटल गैजेट्स के कारण ही पूरे हो रहे हैं। आज हर व्यक्ति अपने डिजिटल गैजेट्स पर मनोरंजन के साधन खोजता रहता है। आज का समय इंटरनेट का है। आज ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म ने हमारे मनोरंजन के परंपरागत तरीकों को पूरी तरह से बदलकर रख दिया है। आज ओटीटी तेज़ रफ़्तार के साथ आगे बढ़ रहा है और वह बच्चे, युवा और कमोबेश बुज़ुर्गों की पहली पसंद बन चुका है।

ओटीटी एक ऐसा प्लेटफ़ॉर्म है, जो इंटरनेट के द्वारा वीडियो या अन्य मीडिया से संबंधित कंटेंट को ऑनलाइन दिखाता है। यह एक तरह का ऐप है, जिसमें टेलीविजन कंटेंट एवं फ़िल्म दिखाई जाती है। ग्राहकों को ओटीटी कंटेंट देखने के लिए उसका सब्सक्रिप्शन लेना होता है। उसके बाद आप जिस कंटेंट को देखना चाहते हैं, उसे आसानी से देख सकते हैं। ओटीटी का उपयोग मुख्य रूप से वीडियो ऑन डिमांड प्लेटफ़ॉर्म्स, ऑडियो स्ट्रीमिंग, ओटीटी डिवाइसेस, वॉइस आईपी कॉल, एवं कम्युनिकेशन चैनल मैसेजिंग आदि के लिए किया जाता है।

स्टार इंडिया ने 11 फ़रवरी 2015 को आधिकारिक तौर पर हॉटस्टार का प्रारंभ किया। हॉटस्टार ने भारतीय ओटीटी बाज़ार पर अपनी अच्छी पहचान बना ली है। आज हॉटस्टार के 50 हज़ार मिलियन से भी अधिक मासिक आधार पर सक्रिय यूज़र्स के साथ डिज़्नी के स्वामित्व वाला ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म है। यह प्रमुख रूप से लाइव स्पोर्ट्स और गेम ऑफ़ थ्रोन्स जैसे सुपरहिट शोज़ को प्रदर्शित करने के लिए लोकप्रिय हैं। इसके साथ ही प्रीमियम अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्मों और टेलीविजन श्रृंखला की विशेषता है। जुलाई 2021 तक, वीआई प्लान की कीमत एक साल के लिए 399 रुपए और प्रीमियम प्लान की कीमत 1499 रूपए प्रति वर्ष है, जो कि ऐड-फ्री लिमिटेड कंटेंट प्रदान करता है। यह हिंदी, अंग्रेज़ी, मलयालम, तेलुगु, कन्नड़ और मराठी भाषाओं में सामग्री प्रसारित करता है।'

नेटफ़्लिक्स दुनिया में सबसे अधिक प्रसारित होने वाला ओटीटी विश्वप्रसिद्ध प्लेटफ़ॉर्म है। सन् 2016 में इसे भारत में लॉन्च किया गया। नेटफ़्लिक्स पर फ़िल्म, वेबसीरीज़, ओरिजिनल शो, रियल्टी टीवी सीरीज़ प्रदर्शित किए जाते हैं और इसमें सब्सक्रिप्शन लेने की क्षमता में बढ़ोतरी होती गई।

सोनीलिव ने 2013 में अपनी स्वयं की ओटीटी सर्विस की

शुरुआत की। सोनीलिव मनोरंजन के लिए वीडियो ऑन-डिमांड सेवा है, जिसका स्वामित्व पिक्चर्स नेटवर्क भारतीय प्राइवेट लिमिटेड के पास है। सोनीलिव हॉलीवुड फ़ीचर फ़िल्म के लिए संगीत-सामग्री का निर्माण करने वाला पहला ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म है। आज के समय में इसके 100 मिलियन से ज्यादा ही सक्रिय यूज़र्स हैं।

ज़ी 5 ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म 14 फ़रवरी, 2018 में 12 भाषाओं में कंटेट के साथ लॉन्च हुआ, जो एस्सेल ग्रुप द्वारा अपनी सहायक जी एंटरटेनमेंट एंटरप्राइज़ेज़ के माध्यम से चलाया जाता है। ज़ी 5 में 8000 से अधिक भारतीय भाषाओं के साथ 500 से अधिक टीवी शोज़ के लिए एक लाख से अधिक घंटे हैं। भारतीय भाषाओं के साथ-साथ इसमें तुर्की, कोरियाई और स्पेनिश शोज़ भी शामिल हैं।

जियो सिनेमा 5 सितंबर, 2016 को रिलायंस समूह द्वारा लॉन्च किया गया, जिसके मालिक मुकेश अंबानी है। यह भारत का सबसे पसंदीदा ओटीटी के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। सम्प्रति 250 मिलियन से भी ज्यादा इसके उपयोगकर्ता हैं। जियो सिनेमा भारत के 8 प्रांतीय भाषाओं में अपना प्रसारण करता है। जियो सिनेमा देखने के लिए सदस्यता की बात करें, तो यह जियो नेटवर्क के ग्राहकों को मुफ़्त में सुविधा प्रदान करता है। उपरोक्त भारत के प्रमुख ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म हैं। इसके अलावा कई ओटीटी उपलब्ध हैं, जैसे - Bollix, Arre आदि।

कोविड-19 महामारी का दौर अगर किसी क्षेत्र के लिए सुनहरा अवसर लेकर आया है, तो वह है मनोरंजन के क्षेत्र में ऑनलाइन स्ट्रीमिंग करने वाला ओवर द टॉप (ओटीटी) मंच। इस समय सिनेमाघरों के बंद होने की वजह से महानगरों में ही नहीं, अपितु मध्यम एवं छोटे शहरों के दर्शकों ने भी ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म से जुड़कर अपने मनोरंजन के नए दौर का आरंभ कर दिया है। आज ओटीटी का बाज़ार बढ़ चुका है। देश-विदेश से लेकर ग्रामीण क्षेत्र में भी लोग आज ओटीटी मंचों पर निर्भर हैं। देश में ओटीटी वीडियो बाज़ार से जुड़ी रेडसीर कंसल्टिंग की रिपोर्ट के मुताबिक "मार्च और जुलाई 2020 के बीच ओटीटी क्षेत्र में सबस्क्राइबरों की तादाद 30 फ़ीसदी तक बढ़ी और यह 2.2 करोड़ से बढ़कर 2.9 करोड़ हो गई। इसके अलावा अप्रैल-जुलाई 2020 के दौरान कुल स्ट्रीमिंग में 50 फ़ीसदी से अधिक हिंदी भाषा का योगदान था।"

लेखिका अनु सिंह चौधरी लिखती हैं - "ओटीटी मंचों को अगर हिंदी भाषी क्षेत्रों और दर्शकों तक अपनी पहुँच बनानी है, तो हिंदी पट्टी की कहानियाँ उन्हें चाहिए। हिंदी पट्टी की कहानियाँ कहने और लिखने वाले ऐसे लोग मुंबई में नहीं हैं, जो हिंदी पट्टी की भाषा, परिवेश और किरदार समझते हों। हमने यह देखा कि महामारी के दौरान स्क्रिप्ट की माँग बढ़ी है। लेकिन हिंदी लेखकों के सामने इस नए माध्यम की चुनौतियाँ भी हैं।" 'हिंदी एक ऐसी भाषा है, जिसमें विदेशी भाषाओं में बनी वेब सीरिज़ एवं फ़िल्मों की डबिंग कर हम दर्शकों के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं। इसके लिए उन विदेशी भाषाओं को जानना भी ज़रूरी है।

ओटीटी मंच के कारण मनोरंजन की सामग्री का दायरा वैश्विक बन चुका है। ऐसे दौर में हिंदी वेबसीरीज़ एवं फ़िल्मों को लेकर दर्शकों की उम्मीदें एवं अपेक्षाएँ बढ़ रही हैं। हम देखते हैं कि आज का दर्शक मनोरंजन के पारंपरिक दायरे को छोड़कर वैश्विक बन गया है। अब भारतीय मनोरंजन केवल भारतीय दर्शकों को ही लुभा नहीं रहा है, वह तो विदेशी दर्शकों के मनोरंजन का भी साधन बन रहा है। परिणामस्वरूप, हिंदी को एक नया फलक मिला है और उसे अधिक विस्तार मिला है। कई प्रांतीय एवं विदेशी भाषाओं में बनी फ़िल्मों को वैश्विक दर्शकों के लिए हम हिंदी भाषा में प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसके कारण हिंदी का प्रचार-प्रसार होगा एवं रोज़गार के नए अवसर मिलेंगे।

नई पीढ़ी के दर्शक वेबसीरीज़ एवं फ़िल्मों में नएपन की माँग करते हैं। हिंदी वेबसीरीज़ और फ़िल्मों में दर्शकों की आशाएँ एवं अपेक्षाएँ ज्यादा हैं। एक फ़िल्म के लिए जितनी सामग्री लगती है, वहीं वेबसीरीज़ के लिए फ़िल्म से तीन गुना अधिक सामग्री की आवश्यकता होती है। मान लीजिए एक फ़िल्म के लिए लगभग सौ पन्ने लिखने होते हैं, वहीं वेबसीरीज़, जो लगभग दस एपिसोड में होती है, उसके लिए 300 से 400 पन्नों तक की स्क्रिप्ट लिखने की आवश्यकता पड़ती है, जो कई बदलावों से गुज़रती है। एक फ़िल्म की अपेक्षा वेबसीरीज़ के लिए विस्तृत फैलाव की संभावना है। दर्शकों की उम्मीदों एवं अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए गुणवत्तापूर्ण लेखन की आवश्यकता है। आज वेबसीरीज़ का दौर चल रहा है, जिसकी वजह से हिंदी लेखकों को रोज़गार के अनेक अवसर मिल रहे हैं, जो भविष्य में कई आशाएँ लेकर आ रहे हैं।

आज हम ऐसे दौर में जीवन-यापन कर रहे हैं, जहाँ पारंपरिक एवं घिसीपिटी एवं सतही सामग्री के लिए कोई जगह नहीं है। आज के दर्शक पारंपरिक एवं पुरानी शैली को पसंद नहीं कर रहे हैं, इसीलिए आज के हिंदी लेखकों के लिए नए विषयों पर विचार करने की आवश्यकता है। कहानी में एक ऐसा नया मोड़ होना चाहिए, जो दर्शकों को लुभा सके। तभी जाकर हिंदी लेखकों की पहचान बनेगी और रोज़गार के अनगिनत अवसर पैदा होंगे। नए और गंभीर विषयों पर लेखन की बात करते हुए मशहूर निर्देशक तिग्माशु धुलियाँ लिखते हैं - "लोग अब सतही सामग्री को बर्दाश्त नहीं करते हैं। ऐसे में लेखकों पर नए विषय पर, नए तरीके से

सोचने और बेहतर कहानी लिखने का बड़ा दबाव है और प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। अगर एक लेखक सामाजिक-आर्थिक मुद्दों से जुड़े विषयों को गहराई से कहने की क्षमता रखता है, तो वह वैश्विक स्तर के दर्शकों की निगाह में आ सकता है।" उनका कथन है कि इस वक्त लेखकों को जितनी आज़ादी है और वे जितने विषयों पर सोच पा रहे हैं, वैसा मौका सिनेमा या टीवी नहीं दे पाया था। वे कहते हैं - "जब तक सेंसरशिप की बाधाएँ नहीं हैं, तब तक तो लेखकों के लिए अपार मौके हैं।"

मनोरंजन के नए दर्शकों के लिए हमें नए हिंदी लेखकों की आवश्यकता है। जैसा कि आप जानते हैं कि फ़िल्मों के मुकाबले वेबसीरीज़ का फलक कम-से-कम तीन गुना ज्यादा होता है, इसीलिए उसे अधिक कंटेंट लेखन की ज़रूरत है। आज साहित्य, समाज, विज्ञान, ज्योतिष, क्राइम, नाटक, कविता, इतिहास आदि विषयों पर वेबसीरीज़ का निर्माण किया जा रहा है। आज के दर्शकों की माँगों को देखते हुए वेबसीरीज़ पटकथा का लेखन ज़रूरी है। इन सभी विषयों पर पटकथा लेखन के लिए हिंदी लेखकों की आवश्यकता है। ओटीटी मंच और इसकी कला को समझते हुए आज के युवा लेखकों को लेखन करना होगा। लेखक चंदन कुमार ने लिखा है - "नए लेखकों को ओटीटी मंच की ज़रूरतों और इस कला की समझ होनी चाहिए, क्योंकि यह फ़िल्मों से अलग है। वैसे जो हिंदी लेखक फ़्रीलांसर के तौर पर काम करते हैं, उन्हें हर स्तर पर अपना रास्ता बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।"

आज का दर्शक फ़िल्म या वेबसीरीज़ सिनेमाघरों में देखने पर उतना बल नहीं दे रहा है, क्योंकि जीवन की इस आपाधापी में उसके पास वक्त की कमी है। ओटीटी के माध्यम से वह अपने समय के अनुसार कहीं पर भी स्ट्रीमिंग के द्वारा देखना ज्यादा पसंद कर रहा है। उद्योग के अनुसार ओटीटी का बाज़ार कितना बढ़ गया है, इसे शिखा शालिनी के आँकड़ों द्वारा समझने की कोशिश करते हैं - "उद्योग के अनुमान के मुताबिक देश का ओटीटी बाज़ार 2018 के 4,464 करोड़ रुपए से बढ़कर 2023 तक 11,976 करोड़ रुपए के स्तर तक पहुँच सकता है, क्योंकि इसमें अब विज्ञापन साझेदारी के लिए भी संभावनाएँ तैयार हो रही हैं। टैम के आँकड़ों के मुताबिक लॉकडाउन की अवधि के दौरान ज्यादा दर्शक सबस्क्राइबर मिलने से ओटीटी विज्ञापन में भी तेज़ी देखी गई और यह मार्च के मुकाबले अप्रैल में दुगुनी हो गई। देश में ओटीटी वीडियो बाज़ार से जुड़ी रेडसियर कंसल्टिंग की रिपोर्ट के मुताबिक मार्च और जुलाई 2020 के बीच ओटीटी के सबस्क्राइबरों की तादाद 30 फ़ीसदी तक बढ़ी और यह 2.2 करोड़ से बढ़कर 2.9 करोड़ हो गई। इसके अलावा अप्रैल-जुलाई 2020 के दौरान कुल स्ट्रीमिंग में 50 फ़ीसदी से अधिक हिंदी भाषा का योगदान था।"

भारत में बीते दो-तीन वर्षों से ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म का जलवा दिख रहा है। हमारे यहाँ टीवी के देखने का अंदाज़ तेज़ी से बदल रहा है। अब दूरदर्शन, केबल, डीटीएच, सेटेलाइट टीवी और डिश टीवी से लोग ऊब चुके हैं। स्मार्ट टीवी के ज़माने में अब तय समय पर आने वाले सीरियल या रीयलिटी शो से लोगों का मन नहीं भर रहा। समय के बदलाव के साथ आज ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर प्रसारित कार्यक्रम देखना लोग पसंद कर रहे हैं। अब सबको यूट्यूब, अमाज़ोन, हॉटस्टार और नेटफ़्लिक्स जैसे ऑनलाइन कंटेट पसंद आ रहे हैं। आज के दौर में केबल या डीटीएच कनेक्शन को हटाकर टीवी के लिए इंटरनेट कनेक्शन लिए जा रहे हैं। भारत के ओटीटी यानी ओवर द टॉप कंटेंट प्रोवाइडर्स बाज़ार की बात करें, तो अभी भारत में 2019 करोड़ों रुपए का ओटीटी मार्केट है। ओटीटी मार्केट की सालाना ग्रोथ 23 फ़ीसदी है।

हिंदी की ताकत को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, लोकतांत्रिक, सांस्कृतिक सभी परिप्रेक्ष्यों में समझा जा चुका है। हिंदी की इस बदलती छवि के पीछे उसकी भाषाई आत्मिकता है। इसकी सामूहिकता है। कभी कविगुरु रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि हिंदी को लोकप्रिय बनाना चाहते हो, तो ऐसा साहित्य पैदा करो कि लोग खुद-ब-खुद हिंदी सीखने को तैयार हो जाएँ। कविगुरु की यह बात साहित्यिक व तकनीकी स्तर पर भले ही न पहुँची हो, पर समाज और राज के स्तर पर उनकी बात कहाँ तक पहुँच सकी, यह हम सबके सामने है। सच मायनों में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की इस सलाह को अगर किसी ने खोजा, ध्यान में रखा और माना है तो मनोरंजन व राजनीति के बाज़ार ने।

दरअसल, मनोरंजन का बाज़ार व राजनीतिक वर्ग भी यह जानता है कि हिंदी का दायरा कितना व्यापक है और किस प्रकार से यह भाषा लोगों के दिलों को छूती है। आज हिंदी फ़िल्मों और गानों का बाज़ार, इतना आगे बढ़ चुका है कि दूसरी भाषाओं को हिंदी की शक्ल में सामने आना पड़ रहा है, चाहे वह रीमेक हो या रीमिक्स। यह बहुत ही सहज रूप से आगे बढ़ रहा है। भारतीय समाचार टेलीविजन उद्योग में तो हिंदी की क्षमता जगजाहिर है। हिंदी की आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक शक्ति लाजवाब है। स्टार प्लस की मिसाल लीजिए, जो 90 के दशक में एक अंग्रेज़ी टेलीविजन चैनल हुआ करता था। जब उसने प्रयोग के तौर पर इक्का-दुक्का हिंदी कार्यक्रम शुरू किए तब वही हिट हो गए। टीआरपी और विज्ञापनों में अंग्रेज़ी के कार्यक्रम पिछड़ गए। चैनल को हिंदी की ताकत समझ में आ गई और थोड़ा-थोड़ा करते-करते उसने अपना रंगरूप पूरी तरह बदलकर हिंदुस्तानी कर लिया और भाषा सौ फ़ीसदी हिंदी। ब्रॉडकास्ट ऑडीयंस रिसर्च काउंसिल के अक्तूबर,

2016 में जारी आँकड़ों के मुताबिक, अंग्रेज़ी समाचार चैनलों की तुलना अधिक है।

अमेरिकी कंपनी गूगल ने सूचना माध्यम में हिंदी की भाषाई ताकत का इस्तेमाल बख़ूबी किया है। गूगल को हिंदी के मौजूदा दायरे और उसमें मौजूद उसके ग्राहकों का दायरा कितना बड़ा है, इसका अंदाज़ा है। उसे पता है कि वह इसमें जितनी पहुँच बना सकेगा, उसका बाज़ार उतना ही बढ़ेगा। गूगल ने हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं को भी तकनीक से जोड़ा। अपनी भाषाई रणनीति के कारण ही यह हाशिये पर बैठे उस व्यक्ति के हाथ में भी पहुँच गया, जहाँ तक हमारी सरकारें नहीं पहुँच पाती हैं। लेकिन अपने हाथ में मौजूद स्मार्ट फ़ोन के साथ हिंदी में व्हाट्सएप, सोशल मीडिया और मैसेज के साथ जीने-खेलने वाले लोगों को लगता है कि हिंदी में रोज़गार कहाँ है?

अमेरिका तथा ब्रिटेन के हिंदी रेडियो कार्यक्रमों में भारतीय रेडियो कार्यक्रमों से ज्यादा गुणवत्ता नज़र आती है। यहाँ तक कि हॉलीवुड की फ़िल्मों में भी हिंदी के शब्दों का प्रयोग हो रहा है। ऑस्कर से सम्मानित फ़िल्म 'अवतार' हिंदी का ही शब्द है। कुछ वर्ष पूर्व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर धूम मचाने वाली फ़िल्म स्लमडॉग मिलिनेयर का 'जय हो' गाना इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। मीडिया चैनलों पर आई खबरों के मुताबिक, इस गाने का प्रयोग स्पेन, आदि देशों में जेल के कैदियों को सुधारने के लिए किया जा रहा है।

हिंदी भाषा के बदलते स्वरूप को हम मीडिया के बहाने भी देख सकते हैं। मीडिया ने हिंदी के इस नए रूप को गढ़ने में पर्याप्त सहयोग किया है। कारण कि भाषाएँ संस्कृति की वाहक होती हैं और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर प्रसारित कई कार्यक्रमों से समाज के बदलते सच को हिंदी के बहाने ही उजागर किया गया। ऐसे कार्यक्रमों में कौन बनेगा करोड़पति, बिग बॉस, छोटे उस्ताद, इंडियन आइडल, राखी का स्वयंवर, बालिका वधू, इस जंगल से मुझे बचाओ, सच का सामना, तारक मेहता का उल्टा चश्मा, डांस इंडिया डांस, भाभी जी घर पर हैं, कॉमेडी नाइट्स आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इन कार्यक्रमों की बढ़ती लोकप्रियता द्वारा हिंदी भाषा की बढ़ती स्वीकार्यता का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। इन कार्यक्रमों के दौरान पूरे देश के लोगों के द्वारा एस.एम.एस. आदि भी भेजे जाते हैं। जिससे हम इन हिंदी कार्यक्रमों के प्रति लोगों के रुझान का सही पता लगा सकते हैं।

इसी का असर है कि विज्ञापनों की भाषा भी अंग्रेज़ी से क्रमिक ढंग से बदलते हुए हिंदी तक आ पहुँची है। 'ठंडा मतलब कोका कोला', 'यही है राइट चॉइस बेबी' (पेप्सी), 'दाग अच्छे हैं' (सर्फ), 'टेस्ट भी, हेल्थ भी (मैगी) और थोड़ी सी पेट पूजा' (पर्क चॉकलेट)...। मैकडोनाल्ड्स और केएफ़सी को अपने भोजन का भारतीयकरण करना पड़ा है, क्योंकि वे हमारे अनुरूप बदलने पर मजबूर हैं। यही बात भाषा पर लागू होती है। बाज़ार में खरीदार की चलती है।

अत: कह सकते हैं कि हिंदी का ई-संसार समृद्ध है। हिंदी में संचालित अनेक वेबसाइटों ने हिंदी का इंटरनेट पर साम्राज्य बढ़ाने में योगदान दिया है। हिंदी के अनेक वेब पोर्टल इंटरनेट में तेज़ी से प्रगति कर रहे है। इंटरनेट में वेबपेज रैंकिंग देने वाले साइट एलेक्सा की एक रिपोर्ट के अनुसार कई हिंदी वेबसाइटों ने टॉप 500 वेबसाइटों में जगह बनाई है, जिससे यह पता चलता है कि हिंदी वेबसाइटों के पाठकों की संख्या में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। पाठकों की लगातार वृद्धि के साथ उसी रफ़्तार से हिंदी वेबसाइट की संख्या भी बढ़ रही है। इंटरनेट पर जिस तरह से हिंदी की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है वह हिंदी के विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. राजभाषा भारती, अंक-163, जनवरी 2023
2. शैलेश भारतवासी, संपादक-हिंद युग्म, जागरण, 06 मई 2013
3. विश्व हिंदी पत्रिका 2021
4. https://www.allhindime.net/ott-platform-kya-hai-hindi/
5. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
6. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
7. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
8. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=172054
9. राजभाषा भारती, जनवरी-मार्च 2017

savitadehariya449@gmail.com

अपनी पहुँच से समृद्ध होती हिंदी

अभिनव अरुण
उत्तर प्रदेश, भारत

सृजन का उत्स है संधान भी है,
तरक्की का यही उन्वान भी है।
ज़ुबाँ कहते हैं हिंदी आप जिसको,
फ़कत भाषा नहीं पहचान भी है

निःसंदेह आज हिंदी विश्व फलक पर अपनी मज़बूत उपस्थिति दर्ज करा चुकी है। खड़ी बोली के उद्भव और विकास की इस यात्रा में तकनीकी प्रगति के साथ चलते रहने की प्रवृत्ति ने हिंदी के वर्तमान मुकाम में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ''निज भाषा उन्नति'' से आगे बढ़कर आज हिंदी ने भारत ही नहीं विश्व की अन्यान्य भाषाओं और बोलियों के साथ समन्वय स्थापित करते हुए सृजन और संपर्क की भाषा का सर्वमान्य स्थान प्राप्त किया है। श्रुतियों, भोजपत्रों और पुस्तक प्रकाशन के उपरांत आज का युग इंटरनेट अथवा अंतरजाल का है। हर हाथ में मोबाइल और उस पर सहज सुलभ सामग्री बौद्धिक विकास का आत्मनिर्भर स्वरूप है, जहाँ पाठक और सर्जक दोनों की चेतना स्वतंत्र रूप में है। इसने भाषा को कल्पनातीत उड़ान मुहैया कराई है। आज हिंदी पढ़ने-लिखने और बोलने वाले वैश्विक स्तर पर मौजूद हैं। साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, वरन् कामकाज, विकास और बाज़ार की दृष्टि से भी हिंदी की सार्वभौमिकता आज सिद्ध है।

भाषा अपने साहित्य और उसकी पहुँच से समृद्ध होती है। हाल के वर्षों में प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य के पन्ने या तो सिमटे हैं या पूरी तरह से समाप्त हो गए हैं। कई पत्रिकाएँ जिन्होंने हिंदी साहित्य के प्रसार में महती भूमिका निभाई, वे कालकवलित हो गई हैं। जो किंचित निकल रही हैं, वे भी आम पाठकों और घर-घर तक नहीं पहुँच रही हैं। ऐसे में इंटरनेट अथवा ई-संसार पर उपलब्ध प्रचुर सामग्री न सिर्फ़ अपने पुराने पाठकों के लिए उम्मीद की नई किरण है, बल्कि इसने नए पाठक और फिर पाठक से लेखक भी बनाए हैं।

भारत की कंप्यूटर और इंटरनेट के क्षेत्र में प्रवीणता जग जाहिर है। इसने सही अर्थों में विश्वग्राम की रचना की है। आज दुनिया के तमाम विकसित देशों में हमारे देश के पेशेवर कंप्यूटर-इंटरनेट विशेषज्ञ अपना जौहर दिखा रहे हैं। ज्ञान, विज्ञान, अंतरिक्ष, चिकित्सा, अनुसंधान आदि मानवोपयोगी क्षेत्रों में तकनीकी विकास में भारत के विशेषज्ञ उल्लेखनीय भूमिका निभा रहे हैं। विश्वग्राम की इस अवधारणा में हमारी भाषा और संस्कृति भी आज दुनिया के कोने-कोने में अपने रंग जमा रही हैं। हमारा गीत-संगीत, खानपान, पहनावा और हमारे तीज-त्योहारों में दुनिया की अभिरुचि बढ़ी है। इस दृष्टि से भी ई-संसार में हिंदी का परचम चतुर्दिक लहरा रहा है। ज्ञान आज शिक्षालयों और पुस्तकालयों तक सीमित नहीं। अनेक शैक्षिक संस्थाओं और पुस्तकालयों की बहुपयोगी सामग्री आज अंतर्जाल पर एक क्लिक पर उपलब्ध है। मसि-कागद की अनिवार्यता से इतर आज इंटरनेट पर हिंदी में लिखना, अनुवाद करना, वर्तनी शुद्ध करना सहज हो गया है। लेखक और पाठक दोनों ही नज़दीक आए हैं। ई-संसार आज मात्र आभासी नहीं वरन् भौतिक रूप से हमारी सोच और चर्या का एक महत्त्वपूर्ण अवयव हो गया है।

एक समय था जब हिंदी टंकण के लिए महीनों प्रशिक्षण लेना होता था। आज ऑनलाइन अनेक माध्यम हैं, जहाँ व्यक्ति अपने लैपटॉप या मोबाइल के की-बोर्ड के उपयोग मात्र से हिंदी सरलता से लिख सकता है। इनमें प्रमुख हैं - गूगल इनपुट टूल, गूगल ट्रांसलेट या अनुवाद, क्विल पैड, माइक्रोसॉफ़्ट इंडिक इनपुट आदि। आज अनेक अंतर्जाल मंच जहाँ लेखन अथवा ब्लॉगिंग होतें हैं, वहाँ भी सीधे हिंदी में लिखा जा सकता है। कॉपी पेस्ट की सुविधा ने भी इसमें सहयोगी भूमिका निभाई है। आप इन सभी स्थानों पर अंग्रेज़ी अक्षरों के कीबोर्ड के ज़रिए अच्छी मानक हिंदी लिख सकते हैं।

आज सरकार के विभिन्न विभागों की वेबसाइट, बैंक, बीमा, रेल, सूचना-प्रसारण मंत्रालय हिंदी में हैं। आय, जाति, निवास, प्रमाण-पत्र, रेल-हवाई टिकट जैसी अनेक नागरिक उपयोग की सेवाएँ हिंदी पोर्टल पर उपलब्ध हैं। अनेक निजी और व्यापारिक ई-कॉमर्स साइटों पर आज आप हिंदी में खोज और खरीद कर सकते हैं। इसमें अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी हैं, जिनके उपभोक्ता बाज़ार की भाषा हिंदी है। तमाम समाचार चैनल, पत्र-पत्रिकाओं के इंटरनेट साइट हैं, जहाँ वांछित सूचना सामग्री त्वरित उपलब्ध है।

आज हिंदी का दायरा पाठक और लेखक दोनों ही दृष्टियों से वैश्विक है। पाठकों और शोधार्थियों को मानक सामग्री और जानकारी उपलब्ध कराने में विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, राजभाषा विभाग और अनेक राज्यों के हिंदी संस्थान-अकादमी की

वेबसाइट भी स्तुत्य कार्य कर रहे हैं। यहाँ हिंदी भाषा साहित्य के मूर्धन्य रचनाकारों की कृतियाँ ही नहीं, बल्कि शब्दकोश, व्याकरण और शोध आदि भी प्रचुरता में उपलब्ध हैं। इसके अलावा कविता कोश, गद्यकोश, प्रतिलिपि, हिंदी समय, विकिपीडिया, रिसर्च जर्नी, हिंदी कुञ्ज [डॉट]कॉम आदि लोकप्रिय अंतर्जाल मंचों पर गद्य, पद्य, आलेख, भाषा, व्याकरण, ज्ञान-विज्ञान, पत्रकारिता आदि सामग्री तक पहुँचा जा सकता है।

इंटरनेट आ जाने के बाद हिंदी का वृहद पाठक वर्ग तैयार हुआ है। हिंदी एक सौ पचास से अधिक देशों में पहुँच चुकी है। हमारे देश में तीस फ़ीसद से ज्यादा लोग हिंदी में इंटरनेट पर सर्च करते हैं। आज पढ़ने का आशय मात्र छपी हुई किताब पढ़ने से आगे ऑनलाइन पढ़ना भी हो गया है। आज चैट रूम, ब्लॉग, मल्टीमीडिया लेख के साथ-साथ हिंदी के ई-संसार को समृद्ध बनाने में ट्विटर (एक्स), फ़ेसबुक, व्हाट्सएप और यूट्यूब जैसे सोशल मीडिया माध्यमों ने भी महती कार्य किया है। आज प्रत्येक व्यक्ति प्रसारण कर्मी, लेखक और पत्रकार है। कविता, कहानी, सुविचार, हास्य-व्यंग्य, सूचना-समाचार आदि पढ़ना-सुनना ही नहीं, अपितु औरों तक अगर आप पहुँचाना चाहते हैं, तो ये माध्यम मोबाइल और इंटरनेट के द्वारा सरलता से उपलब्ध हैं। निःसंदेह इससे लेखक और पाठक दोनों की तादाद व्यापक रूप से बढ़ी है।

बिना किसी शुल्क के अनेक ई-बुक्स भारत सरकार के ई-बुक्स पोर्टल, ई-लाइब्रेरी पोर्टल, हिंदवी [डॉट] ऑर्ग, कविताकोश आदि अंतर्जाल स्थानों पर हैं, जिनमें साहित्य के अलावा अनेक रुचिकर और उपयोगी विषयों की पुस्तकें पढ़ी जा सकती हैं। आज बहुधा किताबें सिर्फ़ पढ़ी ही नहीं जा रहीं, बल्कि सुनी भी जा रहीं। यदि आप यात्रा पर हैं या किसी काम में लगे हैं, तो समय का बेहतर उपयोग कर साहित्य सुन भी सकते हैं। जी हाँ, ई-बुक्स से आगे हिंदी ऑडियो बुक्स की दुनिया में भी प्रभावी रूप में है। यूट्यूब के अलावा ऑडियो बुक्स, पॉडबीन, कुकू एफ. एम, एंकर एफ. एम, हिंदी ऑडियो बुक[डॉट]कॉम, गूगल और एप्पल पॉडकास्ट पर बहुतायत मौजूद हैं।

वस्तुतः कंप्यूटर, मोबाइल और इंटरनेट की जन-जन तक उपलब्धता ने हिंदी संसार का न सिर्फ़ असीमित विस्तार किया है, बल्कि उसके व्यवहार में भी आमूलचूल परिवर्तन उत्पन्न किया है। विदेशों में हिंदी के प्रति ललक बढ़ी है। आज विश्व साहित्य, कला, राजनीति, विज्ञान, कारोबार की प्रमुख भाषा हिंदी बनी है, तो इसमें द्रुत, सहज और सस्ते इंटरनेट का योगदान प्रमुख है। हिंदी बोलने-समझने वाला एक बड़ा वर्ग आज हिंदी में लिख रहा, अनेक हिंदी सर्च इंजनों का प्रयोग कर रहा है। साथ ही, यूनिकोड रचित ब्लॉग्स-सामग्री सृजित कर रहा है। सुखद है कि इस ई-संसार में हिंदी को इंटरनेट पर पढ़कर हिंदी में रचने वाली नई पीढ़ी मिली है, जिसकी भाषा नई है शिल्प नया है और कहने का अंदाज़ भी अपना अलग है। इंटरनेट और कंप्यूटर क्रांति ने भाषा को मज़बूती दी है, लेकिन साथ ही कुछ चुनौतियाँ भी हैं। विषय चयन, सकारात्मकता, शिल्प और सम्प्रेषण में सतर्कता के साथ ही भाषा और व्याकरण में सरलता हो, यह अच्छा है, परंतु इसकी शुद्धता पर आँच न आए इसका ख्याल भी ज़रूरी है। देश ही नहीं विश्व के अनेक विश्विद्यालयों में हिंदी पठन-पाठन से जुड़ने वाले गंभीर अध्यवसाई उम्मीद जगाते हैं। एन. सी. ई. आर. टी. की आरम्भिक पाठ्य-सामग्री के साथ-साथ आज उच्चतर अध्ययन तक की ई-बुक्स हिंदी के वृहद ई-संसार का हिस्सा हैं। इसका लाभ सिर्फ़ विद्यार्थी ही नहीं उठा रहे, बल्कि प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले भी इससे लाभान्वित हो रहे हैं। हिंदी दिनोंदिन उन्नति पथ पर है। इसका ई-संसार आदिकालीन साहित्य से लेकर समकालीन सृजन की विविध रुचिकर सामग्री से निरंतर समृद्ध हो रहा है। भाषाई दूरियाँ मिट रही हैं। परस्पर समन्वय और अनुवाद ने कथ्य और शिल्प की नई खिड़कियाँ खोली हैं और इनसे आती बयार ने "वसुधैव कुटुंबकम्" की भावना को पुष्ट किया है।

हिंदी के विकसित ई-संसार और वैश्विक विकास एवं ग्राह्यता के बावजूद कुछ बिंदुओं पर विमर्श आवश्यक है। निःसंदेह आज हम आधुनिकता एवं विकास के चमत्कारिक युग में जी रहे हैं। परिवार और समाज का पारंपरिक ढाँचा भले ही संक्रमण काल से गुज़र रहा है, लेकिन हमने तेज़ रफ़्तार सूचना एवं संचार क्रांति के ज़रिए अपने लिए एक अलग आभासी दुनिया की रचना कर डाली है। एक बंद कमरे में होते हुए भी हम विश्वग्राम से इन्टरनेट और मीडिया के माध्यम से सक्रियता से जुड़े हुए हैं। मानव विकास का यह वर्तमान सुख और संतोष का कारक तो है, लेकिन एक प्रकार से इस अनियंत्रित पहुँच और विस्तार ने पहले से ही छीजते मानवीय-मूल्यों के ह्रास की गति में और वृद्धि की है। आवश्यकता इस बात की है कि समय रहते इस खतरे को स्वीकार करते हुए हम सत्य, सद्भाव और परोपकार के मूलभूत मानवीय मूल्यों के प्रसार और उनकी प्रतिस्थापना के लिए वैश्विक स्तर पर एक साझा मंच तैयार कर इस दिशा में शीघ्र एवं प्रभावी उपायों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करें।

21वीं सदी ने अपने ढाई दशक के जीवन में सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार के अद्‌त और अकल्पित आविष्कार देखे हैं। कभी रोज़ी-रोटी के लिए खतरा समझा जाने वाला कंप्यूटर आज दैनंदिन आवश्यकता एवं करोड़ों जन की रोज़ी रोटी का साधन बन गया है। महत्त्वपूर्ण बात यह कि विश्वव्यापार के प्रतिस्पर्धात्मक युग में टेलीविजन, कंप्यूटर, मोबाइल एवं इन्टरनेट आम जन की पहुँच में हैं। यह सब जहाँ एक एलिट बुर्जुआ की ज़रूरत हैं, वहाँ एक आम विद्यार्थी, किसान, व्यापारी एवं कामगार के मददगार भी। ज्ञान की उपलब्धता सहज और सुगम हुई है, तो अभिव्यक्ति के विविध मंच भी निर्मित एवं स्थापित होकर व्यक्ति में आत्मविश्वास का संचरण कर रहे हैं। फ़ेसबुक, ट्वीटर जैसे मंच पर हम अपनी बात सेकेंडों में दुनिया के कोने-कोने तक पहुँचा सकते हैं। इस प्रकार भले ही हमारा परस्पर संवाद अपने पड़ोसी, मोहल्ले और परिजनों से संकुचित हुआ है, लेकिन अंतरजाल ने हमें एक बड़े फलक पर लाखों लोगों द्वारा पढ़े-सुने जाने का अवसर तो दे ही दिया है।

हमारे शास्त्र शब्द को ब्रह्म मानते हैं। वेदों, पुराणों एवं उपनिषदों की हमारी समृद्ध थाती "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय", "सर्वे भवन्तु सुखिनः" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा पर आधारित है और समूचे विश्व का मार्गदर्शन करती रही है। हमारे देश में साहित्य, कला, संस्कृति एवं पत्रकारिता ने समाज में सकारात्मक बदलाव लाने में उल्लेखनीय योगदान किया है। स्वाधीनता आंदोलन के दौर में पत्रकारिता ने जहाँ जन-जन में जागरण का संदेश संचारित किया, वहीं देश-प्रेम की कविताओं ने मंत्र सरीखा असर किया। हमारी शिक्षा-व्यवस्था में संस्कृति एवं संस्कारों के समावेश ने ही हमें परिवार, समाज और राष्ट्र के साथ-साथ प्रकृति से भी जोड़े रखा। हमारे यहाँ नाशवान धन-सम्पदा से अधिक शाश्वत और सनातन विद्वता को पूज्य समझा जाता रहा है। परंतु अब परिदृश्य बहुत बदला हुआ है। मानवीय मूल्यों के संदर्भ में बात करें, तो आज सब कुछ वैयक्तिक, भौतिक एवं व्यापारिकता के निकष पर कसा जा रहा है। कभी सब कुछ न्योछावर कर जाने वाली पत्रकारिता एक मुहिम थी, आज सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ और मीडिया चैनल मात्र व्यावसायिक प्रतिष्ठान बनकर रह गए हैं। इनमें सबसे पहले, सबसे तेज़ की प्रतिस्पर्धा ने समाचार को एक उत्पाद बना दिया है। यह उत्पाद भी आज आकर्षक नाम, नारे और पैकेजिंग के साथ बेचा-परोसा जा रहा है। समाचार आज बनाए जा रहे हैं स्टोरी प्लांट की जा रही है। प्रकाशन और प्रसारण के क्षेत्र में आज बड़े-बड़े कार्पोरेट घराने संलग्न हैं। यह उनके लिए एक ढाल सरीखा भी है। उनके अपने व्यापारिक और राजनीतिक हित होते हैं और यह हित समाचार और उसके स्वरूप को प्रभावित करते हुए दिखते भी हैं। एक ही समाचार, एक ही विमर्श आप तक दस बड़े चैनलों द्वारा दस अलग-अलग कोणों से, दस अलग-अलग निष्कर्षों के साथ आपके ड्राइंग रूम ही नहीं मन मानस तक भी पहुँचाया जा रहा है। ऐसे में पत्रकारिता के स्वाभाविक मूल्यों के संरक्षण और मानव मात्र की भलाई संबंधी निष्ठा की चिंता किसे है?

दुःखद है कि आज साहित्य एवं कला की कई प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ बंद हो गई हैं। जो पत्र-पत्रिकाएँ हैं भी, उनमें साहित्य-समीक्षा का स्थान फ़िल्मी गॉसिप और चित्रों ने ले लिया है। पढ़ना हमारी दिनचर्या से दूर हो गया है। हम देखने-सुनने के युग में जी रहे हैं। चैनलों की भीड़ में जो देखा वही सत्य और सही लगता है। इस विधा में चिंतन की गुंजाइश कहाँ है। पहले बचपन दादी-नानी द्वारा रामायण-महाभारत की संस्कारशील कथाओं के बीच साँसें लेता था। सिकुड़ते परिवारों में बुज़ुर्गों के लिए जगह नहीं और बचपन कार्टून चैनलों की सरपरस्ती में साँसें ले रहा है। अंग्रेज़ी की मूल प्रस्तुतियों को हिंदी में रूपांतरित कर दिखाया जा रहा है। लड़ाई-झगड़े, मार-धाड़ के दृश्यों से भरपूर सामग्री से आज का बचपन क्या सीख रहा है - हिंसा और अश्लीलता। माता-पिता की सेवा, बड़ों की इज्ज़त अपने देश-धर्म-संस्कृति का सम्मान और इन मूल्यों का अनुपालन। यह सब पहले स्वस्थ पारिवारिक-सामाजिक परिवेश में स्वतः हमारे भीतर आ जाता था। परंतु आज अपने वैयक्तिक लक्ष्यों को लेकर हमारी सोच इतनी संकीर्ण हो गई है कि हमने सामाजिक संबंधों को तिलांजलि दे दी है। माता-पिता रोज़ी-रोटी, भौतिक संसाधनों को जुटाने में व्यस्त हैं, तो बच्चे कंप्यूटर, वीडियो गेम और मोबाइल में ही दुनिया बसाए हुए हैं।

मीडिया एवं तकनीक के विस्फ़ोट ने विश्वग्राम की दूरियाँ मिटा दी हैं। खबरें चौबीसों घंटे आपके रिमोट के इशारे पर उपलब्ध हैं। इसके कई सकारात्मक पहलू हैं। हम आज ज्ञान के लिए किसी के मोहताज नहीं।

आज आंदोलन के लिए गाँव-गाँव, गली-गली माहौल बनाने के लिए पदयात्रा में वर्षों गँवाने की आवश्यकता नहीं मीडिया केन्द्रित और मीडिया सृजित आंदोलन हमारे देश में ही नहीं, विश्व स्तर पर देखे-सुने जा रहे हैं। लेकिन सचमुच इस तेज़ रफ़्तार और भागम-भाग के आलम में कहीं-न-कहीं चिंतन-मनन का अवसर तलाशने की ज़रूरत है। इन सबके बीच कबीर, रहीम, नानक, बुद्ध, गांधी, विवेकानंद के विचारों वाले समाज एवं राष्ट्र के निर्माण

एवं अस्तित्व की चिंता भी परिलक्षित हो; यह देखना भी हमारा और हमारी शासन-व्यवस्था का दायित्व है। वरना यह खोखला विकास ही किस काम का जब समय पर हम अपने पड़ोसी के काम न आ सकें और एक बेटा अपने बुज़ुर्ग माँ-बाप का ध्यान न रख सके।

इस तकनीकी विकास का एक पहलू आज का तथाकथित सोशल मीडिया भी है। धरातल पर सोसाइटी से वास्तविक रूप से कटकर हमने एक नया समाज गढ़ लिया है, जिसे हम सोशल मीडिया कह रहे हैं। फ़ेसबुक पर पाँच हज़ार मित्रों वाले व्यक्ति के पाँच सच्चे मित्र हों, यह आवश्यक नहीं। ट्वीटर पर लाखों-करोड़ों के फ़ॉलोवर के साथ भी आज विश्व का कोई आदमी क्यों गांधी, मंडेला या मार्टिन लूथर किंग जैसा अनुकरणीय, बेदाग और आदर्श व्यक्तित्व नहीं रखता। यह भी इस व्यवस्था को ही सोचना है। शीत युद्ध से उबर चुके अधिनायकों के आई. एस. सरीखे दुश्मन भी इसी सोशल मीडिया की उपज हैं। हमारी इसी दुनिया में एक ओर करोड़ों जन आज भी भूखमरी एवं बीमारी से लाचार आदिम युग में जी रहे हैं, वहीं दूसरी ओर मज़बूत अर्थव्यवस्थाओं वाले देश हज़ारों अरब रुपए युद्ध के संचालन और तत्संबंधी उपस्कर के निर्माण पर खर्च कर रहे हैं। सोशल मीडिया ने किसी को भी किसी विषय अथवा व्यक्ति के बारे में कुछ भी कहने और उसे लाखों जन तक पहुँचाने का हथियार थमा दिया है। इसका सकारात्मक प्रयोग हो, तो अच्छा, वरना यह सामाजिक-व्यक्तिगत विद्वेष के सृजन और प्रसार का भी माध्यम बन रहा है। एक ओर जहाँ इस सोशल मीडिया से कुछ परिवार बन और बस रहे हैं, तो कई उजड़ भी रहे हैं। विकृत मानसिकता और छद्म उद्देश्यों वाले तत्त्वों के लिए सोशल साइटें एक आसान एवं निःशुल्क माध्यम बनकर रह गई हैं। इसके ज़रिए होनहार-अबोध जनमानस का ब्रेनवाश कर उनका अपने निहित स्वार्थों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है।

वस्तुतः जन-संचार के माध्यम एवं इंटरनेट के ज़रिए संचालित इन सोशल-मीडिया पर नियंत्रण इतना आसान नहीं, पर इनके फैलाव को आसान बनाने वालों के ही कंधे पर यह ज़िम्मेदारी है कि वे इनमें सत्यनिष्ठा एवं नैतिकता के मूलभूत मानवीय-मूल्यों का अनुपालन सुनिश्चित करें, क्योंकि इस समूची व्यवस्था में उनका व्यावसायिक हित तो सध रहा है, लेकिन मानवता का अहित भी हो रहा है। निःसंदेह यह एक चुनौती है, लेकिन इस चुनौती से पार पाना चाँद और मंगल पर मानव भेजने जितना कठिन भी नहीं। आवश्यकता महज इस बात की है कि मानवीय-मूल्यों के संदर्भ में विश्व गुरु रहे भारत सरीखे राष्ट्र विकसित देशों के साथ इस दिशा में सामंजस्य स्थापित करने की पहल करें। बड़े-बड़े मीडिया हाउस, फ़ेसबुक, गूगल, ट्वीटर जैसे कार्पोरेट को भी यह समझना होगा कि लाभ अर्जन ही नहीं, सामाजिक दायित्व भी उनका नैसर्गिक एवं अनिवार्य कर्तव्य है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. हिंदी वेब साहित्य - डॉ. सुनील कुमार लवटे
2. जनसंचार कल, आज और कल - सी के सरदाना, के एस मेहता
3. मीडिया और हिंदी साहित्य - सुखवर्ष कंवर
4. सामाजिक मीडिया और हम - रविंद्र प्रभात।
5. भाषा-शिल्प विविध आयाम - डॉ. कुसुम अग्रवाल
6. मीडिया के वर्तमान संदर्भ - सं. चक्रधर कंडवाल

arunkrpnd@gmail.com

नीदरलैंड में हिंदी पत्रकारिता

डॉ. जवाहर कर्नावट
भोपाल, भारत

नीदरलैंड यूरोप महाद्वीप का प्रमुख देश है। सत्रहवीं शताब्दी में यह देश अपनी व्यापारिक और सागरीय शक्ति के लिए पूरी दुनिया में जाना जाता था। ईस्ट इंडीज़, दक्षिण अफ़्रीका, इंडोनेशिया आदि इसके उपनिवेश थे। डच लोग प्राय: उदार थे, इसलिए उन्होंने स्पेनी, पुर्तगाली, यहूदी, ब्रिटिश और फ्रांसीसी यात्रियों को शरण दी। इन सभी के परस्पर मेलजोल से इस देश ने कला, साहित्य, विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति की। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ में नीदरलैंड तटस्थ राष्ट्र था, किंतु 1940 में जर्मनी से आक्रांत होने पर इसे तटस्थता की नीति छोड़नी पड़ी। वर्ष 1945 में मित्र राष्ट्रों ने इसे जर्मनी के संकट से मुक्त कराया। युद्ध की विभीषिकाओं से मुक्त होने के बाद नीदरलैंड ने सर्वांगीण प्रगति की है।

वर्तमान में यूरोपीय संघ के अन्य देशों की तुलना में नीदरलैंड में भारतीय प्रवासी अधिक संख्या में मौजूद हैं। नीदरलैंड में भारतीय छात्रों और पेशेवर समुदायों की बढ़ती संख्या के चलते दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों में मज़बूती देखी जा रही है। साथ ही, इससे तकनीकी साझेदारी को भी बढ़ावा मिल रहा है। वर्तमान में नीदरलैंड में लगभग 40,000 भारतीय बसे हुए हैं। साथ ही, सूरीनाम के हिंदुस्तानी समुदाय के भी लगभग 2 लाख लोग यहाँ निवास कर रहे हैं। इसके अलावा युगांडा, केन्या, श्रीलंका, बांग्लादेश, मॉरीशस, दक्षिण अफ़्रीका और नेपाल के प्रवासी भारतीय भी नीदरलैंड में हैं। सूरीनाम से भारतवंशियों के नीदरलैंड आने का मुख्य कारण था - सूरीनाम की स्वतंत्रता के बाद भारतीयों के साथ न्याय न होना और गयाना जैसे अत्याचार की आशंका होना। दिनांक 25 नवम्बर 1975 को सूरीनाम की स्वतंत्रता घोषित होने तक लगभग 34 हज़ार सूरीनामी आप्रवासी नीदरलैंड आ गए थे, जिनमें लगभग 70% हिंदुस्तानी थे। हिंदुस्तानियों के आगमन का यह सिलसिला लगातार चलता रहा। तत्कालीन नीदरलैंड सरकार ने इन आप्रवासियों के आवास, भोजन और शिक्षा का प्रबंध किया, किंतु प्रवासी भारतीय इससे संतुष्ट नहीं थे। सूरीनाम के प्रथम हिंदी लेखक और कवि मुंशी रहमान खान (1874-1972), जो स्वयं उत्तर प्रदेश के हमीरपुर ज़िले से आए थे और छठे तथा सातवें दशक में हॉलैंड में भी रहे थे, ने प्रवासी भारतीयों को सांत्वना देने के लिए दोहे लिखे थे -

रहियो तुम जिस देश में पलियो नृप की नीति,
चलियो अपने धर्म पर सबसे करियो प्रीति।

वस्तुतः नीदरलैंड में हिंदी भाषी प्रवासी भारतीयों की संख्या बहुत कम है। यहाँ का हिंदुस्तानी बनाम भारतीय समाज सूरीनामी भारतवंशियों से रचा-बसा और बना है। इनकी हिंदी भाषा मूलतः सरनामी है। सरनामी की संरचना का आधार हिंदी की बोलियाँ ही हैं। यह अवधी, भोजपुरी, मैथिली और मराठी की बोलियों तथा रामचरितमानस और कबीर के लोक साहित्य के भाषा संस्कार से निर्मित है।

सरनामी बोलने वालों के बड़ी संख्या में बस जाने से नीदरलैंड में भी 'सरनामी' में साहित्य-रचना करने वालों का अपना एक समूह बन गया है। इस भाषा में कई प्रतिष्ठित लेखक हुए हैं, जिनकी कविताओं और उपन्यासों में अपने पुरखों के संघर्ष की करुण झलक देखने को मिलती है। डच भाषा में लिखित कुछ साहित्य का भी सरनामी भाषा में अनुवाद हुआ है। बाइबिल का भी सरनामी भाषा में अनुवाद हो चुका है। नीदरलैंड के लाइडन विश्वविद्यालय के केरन इंस्टीट्यूट के अंतर्गत हिंदी और संस्कृत के साथ-साथ सरनामी भाषा का भी अलग से विभाग है, जहाँ सरनामी भाषा का विधिवत शिक्षण होता है।

'सरनामी' पत्रिका

नीदरलैंड में अस्सी के दशक में 'सरनामी' नाम से 20 पृष्ठों की पत्रिका प्रकाशित होती थी, जो एक ओर तो सरनामी साहित्य और भाषा-ज्ञान की प्रस्तोता थी, तो दूसरी ओर आवरण पृष्ठ पर देवनागरी अक्षरों का भी भाषिक ज्ञान प्रदान करते हुए हिंदी को सरनामी की 'महतारी भाषा'(सरनामी की माँ) होने की घोषणा करती थी। इस पत्रिका के प्रकाशन में डॉ. बी.एस. मिश्र, सूर्यप्रसाद बीरे, संपत राही, शाबित एस., बलदेव सिंह, डॉ. लाल गुरदयाल, जुंपा गुरु आदि का प्रमुख सहयोग रहता था।

'भाषा' पत्रिका

वर्ष 1983 से 1992 के बीच 'भाषा' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसमें सरनामी हिंदी पर लेख छपे। इस पत्रिका

में सरनामी के साथ ही डच भाषा में अनुवाद भी प्रकाशित होता था। इसी दौरान 1986 में सूरीनाम की मंत्री परिषद् ने यह निर्णय लिया कि सरनामी के लिए रोमन लिपि का प्रयोग किया जाएगा। यह निर्णय सूरीनाम के सरकारी राजपत्र में संकल्प संख्या 4562 में पारित हुआ। इसलिए 'भाषा' पत्रिका भी सरनामी हिंदी के लिए स्वीकार की गई लिपि यानी रोमन लिपि में ही प्रकाशित हुई। सरनामी की रोमन वर्तनी अंतर्राष्ट्रीय फ़ोनेटिक संघ (IPA) के नियमों से काफ़ी अलग है। 'भाषा' पत्रिका के माध्यम से कई वर्षों तक सरनामी हिंदी और भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ।

'आसन् संदेश' पत्रिका

नीदरलैंड का आर्य समाज भी अपनी भाषा और संस्कृति के लिए निरंतर कार्य करता रहा। इस समाज ने सन् 1985 से 'आसन् संदेश'(Arya Samaj) Nederland (ASAN) नाम से पत्रिका का प्रकाशन भी आरंभ किया। इस पत्रिका का जून-सितम्बर 1988 का अंक मुझे पढ़ने को मिला। डच-हिंदी में प्रकाशित 28 पृष्ठीय लघु पत्रिका में 10 पृष्ठों में हिंदी में कुछ हस्तलिखित लेख हैं, तो कुछ पुनर्मुद्रित सामग्री, जिनके शीर्षक निम्नानुसार हैं - "सत्य का पालन महान है", "उपासना", "महात्मा हंसराज के चरणों में।" इस पत्रिका में वेदों और भारतीय संस्कृति पर सामग्री डच भाषा में दी गई है। पत्रिका के अंत में स्वामी अग्निवेश की नीदरलैंड यात्रा का विवरण प्रकाशित हुआ है।

'हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन

नीदरलैंड में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक संस्थाओं का गठन हुआ। ये संस्थाएँ पत्रिकाओं का प्रकाशन कर तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के पाठ्यक्रम की प्रतिवर्ष परीक्षाएँ आयोजित कर हिंदी भाषा को प्राथमिक स्तर पर जीवित रखने का प्रयास करती रहीं। सन् 1983 में श्री नारायण माथुर की अध्यक्षता और निर्देशन में 'हिंदी परिषद्, नीदरलैंड' की स्थापना हुई। इस संस्था की ओर से वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा आदि परीक्षाएँ आयोजित की जाती रहीं, जिसमें औसतन पाँच सौ विद्यार्थी प्रतिवर्ष सम्मिलित होते थे। इस संस्था द्वारा 'हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन भी किया गया। इस पत्रिका का अप्रैल 1991 अंक भारतीय विद्याशास्त्र के विद्वान श्री मोहन गौतम, नीदरलैंड से प्राप्त हुआ, जो पत्रिका के संपादन-मंडल के सदस्य रहे थे। पत्रिका के प्रथम पृष्ठ पर ही पत्रिका का लक्ष्य हिंदी और डच दोनों ही भाषाओं में इस प्रकार बताया गया है - "हिंदी का प्रचार नीदरलैंड में करना, जिससे हम धार्मिक, सांस्कृतिक, हिंदी साहित्य, कला आदि क्षेत्रों पर विशेष रूप से उन्नति कर सकें।"

इस 24 पृष्ठीय पत्रिका का संपादन श्री बी. रामावतार सिंह ने किया। पत्रिका की सामग्री हिंदी और डच दोनों भाषाओं में है। प्रारंभ में पत्रिका का संपादकीय भी डच भाषा में रहा। हिंदी में सामग्री का प्रकाशन निम्नलिखित शीर्षकों से हुआ है -

1. मुहावरे और कहावतें (हिंदी में डच अनुवाद के साथ)
2. चटपटा मसालेदार (हास्य-व्यंग्य)
3. राष्ट्रीय पुनर्निमाण में संचार-माध्यमों की भूमिका
4. कुत्ते के सूँघने की क्षमता मनुष्य से अधिक क्यों होती है?
5. बच्चों के लिए
6. आपका पत्र मिला
7. मैं कौन हूँ (कविता)

हिंदी परिषद्, नीदरलैंड को इस पत्रिका के माध्यम से हिंदीमय वातावरण तैयार करने में अद्त सफलता मिली।

'विश्व ज्योति' पत्रिका

'विश्व ज्योति' नाम से हिंदी और डच भाषा में पत्रिका का प्रकाशन हिंदी परिषद्, देनहाग और हिंदी संस्था नीदरलैंड द्वारा सन् 1993 में किया गया। पत्रिका का संपादन आचार्य शंकर तथा बी. रामावतार सिंह द्वारा किया जाता था। पत्रिका के अक्तूबर 1993 अंक के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसकी सामग्री भारतीय संस्कृति और बहुसंस्कृति के बीच जीवनयापन सहित हिंदी शिक्षण पर केंद्रित होती थी। 'विश्व ज्योति' पत्रिका के मुख पृष्ठ पर ही पत्रिका के स्वरूप का संकेत करते हुए लिखा होता था -'हिंदी की सांस्कृतिक तथा सामाजिक पत्रिका'। पत्रिका में हिंदी गतिविधियों पर सामग्री डच भाषा में अधिक है। इस अंक में श्री मोहन गौतम का लेख 'कितनी पुरानी है हमारी हिंदी' में हिंदी के इतिहास से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का वर्णन है। इसके अलावा कुछ कविताएँ भी हिंदी में प्रस्तुत की गई हैं। 'विश्व ज्योति' पत्रिका भी कई वर्षों तक हिंदी के प्रचार-प्रसार और शिक्षण में उपयोगी बनी रही।

'हिंदी प्रचार पत्रिका'

नीदरलैंड से डॉ. उर्षदेव वी. रामदास के संपादन में 'हिंदी

प्रचार पत्रिका' की शुरुआत जुलाई 1997 में हुई। यह 32 पृष्ठीय पत्रिका हिंदी और डच में यानी द्विभाषी रूप में प्रकाशित होती थी। पत्रिका के प्रकाशन की नियतावधि मासिक थी, किन्तु सामग्री के अभाव में इसका प्रकाशन नियमित रूप से नहीं हो पाता था। डॉ. रामदास ने वर्धा से आचार्य की उपाधि प्राप्त की थी। वे जीविका से स्त्री रोग विशेषज्ञ थे, लेकिन आजीवन हिंदी की सेवा भी करते रहे। आपने 'हिंदी प्रचार संस्था, नीदरलैंड' का गठन किया और इसके अध्यक्ष तथा निदेशक के रूप में भी सेवा दी। 'हिंदी प्रचार पत्रिका' का प्रकाशन हिंदी प्रचार संस्था द्वारा ही किया जाता था। डॉ. रामदास शुद्ध हिंदी के पक्षधर थे। हिंदी प्रचार पत्रिका के सलाहकार मंडल में श्री रमेश रामावतार सिंह, श्री रूप लालबहादुर सिंह, आर. रामनाथ, हिमांशु जोशी (भारत), जानकी प्रसाद सिंह (सूरीनाम) और पी.सी. सूद (यू.के.) को स्थान दिया गया था। प्रथम पृष्ठ पर पत्रिका का लक्ष्य प्रकाशित होता था - "हिंदी के प्रचार-प्रसार और परीक्षा का राष्ट्रीय स्तर पर नीदरलैंड में प्रबंध करना।"

इस 32 पृष्ठीय पत्रिका में सामग्री हिंदी और डच दोनों भाषाओं में होती थी। पत्रिका के जून 2000 अंक में लगभग 50% सामग्री हिंदी भाषा में प्रस्तुत की गई है, जिसमें 'हमारी प्रतिज्ञा', 'हिंदी और संस्कृत का संबंध', 'जीता जागता राष्ट्रपुरुष', 'हॉलैंड में सूरीनाम के भारतवंशी' तथा 'मॉरीशस में हिंदी की यात्रा' शीर्षक से लेख आदि प्रकाशित हुए हैं। पत्रिका के मुख पृष्ठ पर द हेग स्थित हिंदी पाठशाला और पुस्तकालय का चित्र प्रकाशित किया गया है। डच भाषा में प्रकाशित सामग्री भी हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं परीक्षाओं से संबंधित ही है। इस अंक के संपादकीय में पाठकों को संबोधित करते हुए डॉ. रामदास ने अपनी पीड़ा इस प्रकार व्यक्त की है -

प्रिय हिंदी प्रेमियो,

नीदरलैंड में हिंदी सुरक्षित रखने के लिए हमें एकता के सूत्र में बँध जाना चाहिए। लेखों के अभाव के कारण हम इस पत्रिका को नियमित रूप से नहीं प्रकाशित कर सकते हैं। इस वर्ष का पहिला अंक आपको भेजा जा रहा है। गत वर्ष जिन लोगों ने हिंदी प्रचार संस्था की सहायता की है, उनके लिए मैं अपना आभार प्रकट कर रहा हूँ। हिंदी पत्रिका का प्रकाशन तभी हो सकेगा, जब बहुत से भारतीय इस प्रकाशन में सहयोग करेंगे। जो भी व्यक्ति हिंदी संबंधी लेख, कहानी या कविता भेजना चाहे, उसका सहर्ष स्वागत है। इस प्रकार भी हिंदी का कार्य आगे बढ़ाया जा सकता है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में योगदान देना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

जो यह नहीं करते उनको पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अपने धर्म और संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए अपनी भाषा को जीवित रखना परम आवश्यक है।

डॉ. रामदास और उनके सहयोगियों ने हिंदी प्रचार पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही संस्था के माध्यम से हिंदी को प्रतिष्ठित करने हेतु अनेक गतिविधियों का संचालन किया।

'हिंदी भाषा समिति पत्रिका'

नीदरलैंड की हिंदी भाषा समिति द्वारा 2019 में 'हिंदी भाषा समिति पत्रिका' का प्रकाशन प्रारंभ किया गया है। इस पत्रिका को प्रारंभ करने में मुख्य भूमिका समिति के सभापति श्री चंद्रदेव सूरजन की रही। इसका वर्ष 2019 का द्वितीय अंक पत्रिका के सलाहकार श्री मोहन के. गौतम के माध्यम से मुझे प्राप्त हुआ। इस 40 पृष्ठीय पत्रिका के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित सूत्रवाक्य - 'संस्कृति और हिंदी की दृष्टि से हमारी पहचान' से ही इस पत्रिका का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। पत्रिका की विषयसूची के अनुसार इस अंक में नीदरलैंड और सूरीनाम में हिंदी के परिदृश्य के साथ ही 'हिंदी के ऐतिहासिक महत्व', 'भारतीय संस्कृति और वर्तमान परिप्रेक्ष्य', 'हमारा प्यारा भारत - कल, आज और कल', 'शर्म नहीं, शक्ति है हिंदी' 'हिंदी भाषा से संबंधित रोचक तथ्य' आदि विषयों पर आलेख प्रकाशित हुए हैं। नीदरलैंड से 20वीं सदी के अंत में प्रारंभ हुई हिंदी पत्रिकाओं के बंद हो जाने के बाद इस नई पत्रिका की शुरुआत से हिंदी लेखन और पठन-पाठन का नया वातावरण निर्मित हुआ है।

'सरनामी समाचार'

नीदरलैंड में प्रकाशन संस्था, 'सरनामी नीदरलैंड' द्वारा 'सरनामी समाचार' भी प्रकाशित किया जाता है। सरनामी हिंदी के लिए रोमन लिपि स्वीकार कर लेने पर भी यह पत्रिका रोमन और देवनागरी दोनों लिपियों में एक साथ प्रकाशित होती है। मुझे 'सरनामी समाचार' का 15 सितम्बर 2018 का अंक नीदरलैंड निवासी श्री रामा तक्षक जी से प्राप्त हुआ। इस अंक में प्रकाशित चित्रों के साथ समाचारों का एक नमूना देखिए-

"छापा में देन हाख के महापौर श्रीमती पौलनड क्रीक्कड कवि जीत नाराइन के संस्कृति पुरस्कार भेंट करील"

"कारनाकि कवि 1977 से लेकर 2017 तलक अपन कविता के पुस्तक लिखिल बाँ। एकर नाम से जीत नाराइन भाषण और जीत नाराइन संस्कृति पुरस्कार एगो संस्था बनल जोउन हर बरीस ऐसन्

पुरस्कार मनई लोग के भेंट करल जाय जोउन संस्कृति के क्षेत्र में बहुत कुछ करील है। साथ-साथ पाँच हज़ार यूरो भी इनाम के रूप में देइल। पहिलक्वा भइल होलान्द देनहाख में। 3 बारीस (2019) में इ समारोह सूरीनाम में होई।"

'सरनामी समाचार' के इस अंक में सरनामी हिंदी के प्रख्यात कवि श्री जीत नारायण को दिए गए संस्कृति पुरस्कार के समारोह का विवरण चित्र सहित प्रकाशित किया गया है।

'सरनामी समाचार' के वर्ष 2018 में केवल चार अंक ही प्रकाशित हुए।

ओम् वाणी (OHM VANI) रेडियो एवं सूचना पत्रिका

ओ.एच.एम. (Organisdte Hindosa Media) हिंदू मीडिया फ़ाउंडेशन की स्थापना फ़रवरी 1993 में पाँच डच हिंदू संगठनों द्वारा की गई थी। नीदरलैंड सरकार की यह नीति रही है कि वह हर धर्म को विशेष स्थान प्रदान करने के साथ ही जनसंचार माध्यमों पर प्रचार के अवसर भी प्रदान करती है। उनका विश्वास है कि किसी राष्ट्र की नींव को सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि लोग अपने धर्म को न भूलें, बल्कि उसके माध्यम से सामाजिक मूल्यों को जीवंत रखें। इस मीडिया को स्थापित करने में संस्थाओं के प्रतिनिधि के रूप में श्री रामनाथ, श्री रामभरन मिश्र, श्री रामलाला, श्री अमरीश तिवारी, श्री धर्म मिसिर और श्रीमोहनकांत गौतम का भी योगदान रहा। इसका प्रमुख उद्देश्य हिंदुत्व का ज्ञान फैलाना, हिंदू संस्कृति का प्रचार-प्रसार और हिंदू त्यौहारों पर कार्यक्रम प्रसारित करना था। इस मीडिया के प्रतीक चिह्न में "ॐ" भी अंकित था, इसलिए यह ओम रेडियो के नाम से भी जाना जाता था। इस मीडिया को प्रत्येक सप्ताह आधा घंटा प्रोटाटेलीविजन पर तथा दो घंटे रेडियो पर प्रदान किए जाते थे। इस संस्था द्वारा ही 'ओम् वाणी सूचना पत्रिका' का प्रकाशन भी 1994 से किया गया। इस पत्रिका में टेलीविजन और रेडियो पर हिंदी में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का विस्तार से वर्णन होता था। ओम् वाणी का जनवरी-मार्च 2005 अंक 48 पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। इसके मुख पृष्ठ पर नीदरलैंड की यात्रा पर आए सुप्रसिद्ध अभिनेता अमिताभ बच्चन का चित्र ओम् वाणी के चित्र के साथ ही प्रकाशित हुआ। इस अंक में प्रकाशित सामग्री की विषयसूची डच भाषा में ही प्रकाशित हुई। सूचना-पत्रिका में अधिकांश लेख भारतीय दर्शन, आयुर्वेद आदि पर डच भाषा में प्रकाशित हुए हैं। पृष्ठ सं. 18 एवं 19 पर टेलीविजन एवं रेडियो के कार्यक्रमों का विवरण हिंदी में ही प्रकाशित किया गया है। हिंदू मीडिया फ़ाउंडेशन की गतिविधियों के समाप्त होने के कारण ओम् वाणी का प्रकाशन भी स्थगित हो गया।

ओम् दूरदर्शन एवं आकाशवाणी कार्यक्रम को नीदरलैंड पब्लिक ब्राडकॉस्टिंग सिस्टम के अंतर्गत दो मिलियन यू.एस. डॉलर का अनुदान प्राप्त होता था। इस मीडिया के रेडियो एवं टी.वी. कार्यक्रम पड़ोसी देशों में भी बहुत प्रसिद्ध हुए। इस मीडिया ने फ़िजी, मॉरीशस, साउथ अफ़्रीका, त्रिनिदाद, सूरीनाम, गयाना, जमैका के प्रवासी भारतीयों पर और साथ ही वेद, महाभारत, गीता, रामायण, उपनिषद् आदि धर्म-ग्रंथों पर अनेक फ़िल्में बनाईं। प्रवासी भारतीयों की समस्याओं पर भी इसमें कार्यक्रम प्रसारित होते रहे। ओम का स्तर अन्य यूरोपीय टी.वी. स्टेशन और रेडियो से कम नहीं रहा। ओम् दूरदर्शन पर प्रतिदिन अपराह्न 1.00 से 1.30 बजे तक एवं रविवार को पूर्वाह्न 8.00 बजे से 10.00 बजे तक भारतीय धर्म, अध्यात्म आदि विषयों पर कार्यक्रम प्रसारित होते थे।

सन् 2015 के प्रारंभ में हिंदू मीडिया फ़ाउंडेशन में आंतरिक विवादों, वित्तीय गड़बड़ियों तथा विधिक उलझनों के कारण सरकार के मीडिया कमीशन ने निदेशक श्री जगदीश रामबलि को हटा दिया और इसके परिचालन के लिए दिया जाने वाला अनुदान भी बंद कर दिया। इस तरह यह मीडिया संस्थान बंद हो गया।

अम्स्टेल गंगा वेब पत्रिका

इस पत्रिका का प्रथम अंक अक्तूबर 2012 में जारी हुआ। इसे नीदरलैंड और भारत की हिंदी का संगम कहा जाता है। अमित कुमार सिंह इस पत्रिका के संरक्षक एवं अखिलेश कुमार प्रधान संपादक हैं। संपादन का दायित्व डॉ. किरन सिंह पर है। प्रत्येक तिमाही में प्रकाशित इस पत्रिका के अब तक 29 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। कहानी, व्यंग्य, कविताएँ, आलेख, लघुकथा, उपन्यास, चित्रकथा, बच्चों का कोना तथा अन्य अनेक स्तंभ पत्रिका को रोचक बना देते हैं। अधिकांश लेखक भारत से ही होते हैं। इस पत्रिका की वेबसाइट info@amstelganga.org पर पत्रिका के पुराने अंकों को भी पढ़ा जा सकता है। वेबसाइट पर मार्च 2020 तक के अंक पढ़ने को मिल जाते हैं।

उजाला रेडियो

उजाला रेडियो नीदरलैंड के बड़े हिस्सों में सुना जाता है। लगभग 95 प्रतिशत से अधिक बाज़ार की हिस्सेदारी के साथ यह इंडो-सूरीनामी समूह के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चैनल है। नूर

हॉलैंड और फ्लेवोलैंड में उजाला रेडियो हर दिन चौबीसों घंटे हिंदुस्तानी रेडियो का एकमात्र प्रदाता भी है। यह बॉलीवुड प्रेमी श्रोताओं को समर्पित रेडियो स्टेशन है, जिसमें चौबीसों घंटे हिंदी गीत, समाचार और भारतीय संगीत प्रसारित होते हैं। इसे विविध स्थानीय फ्रिक्वेंसिज पर एम्सटर्डम साउथ ट्रस्ट, Hilversum, flebaland Houses, Diemen, Amstelveen, Almeria Lolystad पर 90% एफ.एम. फ्रिक्वेंसी पर सुना जा सकता है।

रेडियो संगम

रेडियो संगम, द हेग एक बॉलीवुड रेडियो स्टेशन है। इस रेडियो पर भी हिंदी में गीत-संगीत के कार्यक्रम निरंतर प्रसारित होते रहते हैं। इसका प्रसारण समय पूर्वाह्न 10.00 से अपराह्न 2.00 बजे तक और अपराह्न 6.00 बजे से रात्रि 9.00 बजे तक है। इसकी वेबसाइट http:/www.radio sargam.fm है।

सन्राइज एफ.एम.

सन्राइज एफ.एम. अपने हिंदुस्तानी श्रोताओं के लिए नीदरलैंड के रोटरडम शहर से 24 घंटे निरंतर संगीत के कार्यक्रम प्रसारित करता है। प्रसारित होने वाले संगीत की शैली मुख्य रूप से भारतीय होती है। इस रेडियो पर सरनामी हिंदी में भी कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। इसका कार्यालय कोर्तें बोजोनेट स्ट्रेट 26, रॉटरडैम 3014 जेडीएम, नीदरलैंड में स्थित है। इसकी वेबसाइटwww.radio. Sunrisefm.eu है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. हॉलैंड में बसे प्रवासी भारतीय - डॉ. मोहनकांत गौतम, हॉलैंड का लेख (प्रवासी संसार-जनवरी मार्च 2007 अंक)
2. विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस की विश्व हिंदी पत्रिका 2010 (लेख-नीदरलैंड देश में हिंदी की स्थिति और विकास - श्रीमती पुष्पिता अवस्थी)
3. पुस्तक - सूरीनाम में हिंदी - लेखिका, भावना सक्सेना
4. पुस्तक- नीदरलैंड डायरी - श्रीमती पुष्पिता अवस्थी
5. पत्रिकाएँ - आसन् संदेश - अंक - जून-सितम्बर 1988
6. भाषा, अंक - मार्च 1984
7. सरनामी - अंक - जनवरी 1983
8. हिंदी पत्रिका, हिंदी परिषद्, नीदरलैंड - अंक - अप्रैल 1991
9. विश्व ज्योति पत्रिका, अंक - अक्तूबर 1993
10. हिंदी प्रचार पत्रिका, नीदरलैंड, अंक - जून 2000
11. ओहम् वाणी, नीदरलैंड, अंक - 15 सितम्बर 2005
12. सरनामी समाचार, नीदरलैंड, अंक - 15 सितम्बर 2018
13. हिंदी भाषा समिति पत्रिका, नीदरलैंड - अंक - 2, 2019

jkarnavat@gmail.com

विश्व में हिंदी

1. विश्व फलक पर बढ़ते हिंदी के कदम - डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव

2. विश्व में हिंदी : विकास एवं विस्तार - प्रो. खेमसिंह डहेरिया

3. हिंदी के वैश्विक भाषा बनने की चुनौतियाँ - सपना चमड़िया

4. विश्व शांति की भाषा है - हिंदी - प्रो. कन्हैया त्रिपाठी

विश्व फलक पर बढ़ते हिंदी के कदम

डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव
लखनऊ, भारत

हिंदी विश्व की विशालतम जनभाषा है। यह विराट जनसमूह की आशा, आकांक्षा, यथार्थ, स्वप्न और संपर्क की भाषा है। हिंदी का साहित्य इतना विशाल, वैविध्यपूर्ण और समृद्ध है कि इसे विश्व की किसी भी भाषा और साहित्य के समक्ष स्वाभिमान के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। हिंदी में केवल भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व का प्रतिबिंब दिखाई देता है। हिंदी में 'अनेकता में एकता' परिलक्षित होती है। प्राचीनतम परंपरा अर्थात् भारतीय परंपरा और उसके मूल्यवादी चिंतनशैली का उत्तराधिकार वहन करने वाली यह भाषा अपनी नैतिक चेतना के लिए दुनिया भर की भाषाओं के बीच रेखांकनीय है। हिंदी भाषा की संप्रेषणीयता, व्यापक प्रयोग क्षेत्र, वैज्ञानिक लिपि, व्यावहारिक और व्यावसायिक प्रयोग आदि के ही कारण आज विश्वभर के पास हिंदी सीखने का पृथक और विशिष्ट प्रयोजन है। बाज़ार, व्यापार, रोज़गार, दैनन्दिनीय आचार, विचार और व्यवहार आदि अनेक कारणों से हिंदी को अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर स्वीकार्यता और ग्राह्यता प्रदान हो रही है। संपर्क भाषा के रूप में मात्रात्मक और गुणात्मक वैशिष्ट्य के कारण हिंदी भाषा वैश्विक पटल पर विशिष्ट महत्त्व और स्थान रखती है। भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक विस्तार के सापेक्ष विश्व भर में प्रवासी भारतीयों की उपस्थिति के कारण विश्व भाषा के रूप में हिंदी भाषा वैश्विक संदर्भ में अपने स्वरूपगत विस्तार और महत्त्व को सुनिश्चित करती है। वर्तमान में हिंदी न केवल हिंदुस्तानियों की भाषा है, अपितु हिंदुस्तान से बाहर रह रहे आप्रवासी भारतीयों ने भी स्थानीय भाषाओं के समानांतर हिंदी भाषा के प्रयोग और महत्ता को सहज ही ग्रहण किया है। डॉ. सुधीश पचौरी हिंदी की ग्राह्यता और सामासिकता के संबंध में लिखते है -

"हिंदी समकालीन भूमंडलीकरण के दौर में तेज़ी से सशक्त, सर्वत्र, उपस्थित विश्वभाषा बन चली है। उसके अनेक स्तर, अनेक रूप, अनेक बोलियाँ हैं और एक नई अंतरंग किस्म की बहुलता है। मुक्त बाज़ार, ग्लोबल जनसंचार, तकनीकी क्रान्ति और हिंदी क्षेत्रों के विराट उपभोक्ता बाज़ार ने हिंदी को एक नई ताकत दी है। संस्कृतवाद का दामन छोड़ बोलियों को अपने में संजोकर उर्दू से दोस्ती स्थापित कर अंग्रेज़ी से सहवर्ती भाव में विकास पाती हिंदी अपना 'ग्लोबल ग्लोकुल' बना रही है।"

ध्यातव्य है कि किसी भी भाषा, जिसके प्रयोक्ता एकाधिक देशों में बसे हो, को विश्व भाषा कहा जा सकता है, किंतु विश्वभाषा की वास्तविक अधिकारिणी वे भाषाएँ ही हैं, जो विश्व के अधिकांश देशों में बोली, सुनी और समझी जाती है। कहना न होगा, प्रयोक्ताओं के आधार पर हिंदी विश्व की गणना प्रथम दो भाषाओं में होती है, किंतु डॉ. जयन्ती प्रसाद नैटियाल अपने सर्वेक्षण के आधार पर हिंदी को विश्वभाषा के रूप में उपर्युक्त आधार पर प्रथम स्थान प्रदान करते हैं। विश्वभाषा के रूप में हिंदी की वर्तमान स्थिति के संदर्भ में डॉ. जयन्ती प्रसाद नैटियाल अपने भाषा शोध अध्ययन में लिखते हैं कि 'विश्व में हिंदी बोलने व समझने वालों की संख्या एक अरब, दो करोड़ पच्चीस लाख, दस हज़ार तीन सौ बावन (1, 02, 25, 10, 352) है, जबकि चीनी भाषा मंदारिन बोलने वालों की संख्या नब्बे करोड़ चार लाख, छह हज़ार छह सौ चौदह (90, 04, 06, 614) है। डॉ. नौटियाल के सर्वेक्षण के आधार पर स्पष्ट है कि विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या 1560 मिलियन है। वही हिंदी के जानकारों की संख्या 1574 मिलियन है तथा अंग्रेज़ी बोलने वालों की संख्या 1452 मिलियन और चीनी मंदारिन भाषी लोगों की संख्या 1325 मिलियन है। अतः प्रयोगकर्ताओं की संख्या के आधार पर निश्चित ही हिंदी का विश्व की भाषाओं में प्रथम स्थान है।

हिंदी भाषा को विश्वमंच पर पहुँचाने का श्रेय भारत गणराज्य के तत्कालीन विदेश मंत्री अटल बिहारी बाजपेयी को जाता है, जिन्होंने 4 अक्टूबर 1977 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में पहली बार हिंदी भाषा में भारत के विचार प्रस्तुत किए। भारत गणराज्य की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री नरसिंह राव, पूर्व केन्द्रीय मंत्री, स्वास्थ्य मंत्री डॉ. कर्णसिंह, प्रोफ़ेसर महावीर प्रसाद जैन आदि के महत्त्वपूर्ण प्रयासों से संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी का मार्ग सुगम हुआ है। तथ्य स्वयंसिद्ध है कि उपर्युक्त कालावधि से लेकर वर्तमान समय और परिवेश में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। परिणामस्वरूप विश्व में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की स्वीकार्यता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। **"आज जन भाषा, सम्पर्क भाषा, वैश्वीकरण और बाज़ारवाद के दौर में हिंदी विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। समूचे विश्व में हिंदी को नई दृष्टि मिल रही है।"** विश्व में हिंदी के विकास एवं उसके प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से विश्व हिंदी

सम्मेलन के विशिष्ट उपक्रम का प्रारंभ 10 जनवरी 1975 से हुआ। वर्तमान में विदेशों में हिंदी के प्रति विशिष्ट रुझान और जिज्ञासा गोचर होती है। विदेश में हिंदी के प्रति रुझान, जिज्ञासा और रुचि के संदर्भ में भारत गणराज्य के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा अपने विदेशी राजकीय दौरों पर संभाषणों के क्रम में हिंदी भाषा के आधिकारिक प्रयोग तथा विशेषतः भारतवंशियों को संबोधित करने की प्रक्रिया में हिंदी का आधिकारिक प्रयोग भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारण है।

वर्तमान में लगभग 140 देशों में हिंदी भाषा का प्रचलन किसी-न-किसी रूप में है। हिंदी भाषियों की कुल संख्या अनुमानतः 72 करोड़ है। उपर्युक्त देशों के संदर्भ में राष्ट्र की तीन विशिष्ट कोटियाँ प्राप्त होती हैं। प्रथम कोटि के अंतर्गत भारत के प्रतिवेशी राष्ट्र नेपाल, चीन, हांगकांग, सिंगापुर, मालदीव, इंडोनेशिया, वर्मा, श्रीलंका, थाईलैण्ड, मलेशिया, तिब्बत, भूटान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, उज्बेकिस्तान आदि गण्य हैं। यहाँ हिंदी भाषी परिवारों का पीढ़ीगत विकास और अस्तित्व प्राप्त होता है। उपर्युक्त प्रथम कोटि के राष्ट्र-राज्यों के संदर्भ में नेपाल अत्यंत महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट राष्ट्र है। मूलतः हिन्द राष्ट्र होने के कारण नेपाल की सर्वप्रमुख भाषा नेपाली, गोरखी आदि मुख्यतः हिंदी से निःसृत हिंदी की ही विभाषाएँ हैं। हिंदी भाषा के संदर्भ में इन भाषाओं के रचनाकारों में श्री देवकोटा, मोतीराम, लखाराम, गिरीश बल्लभ, रघुनाथ 'व्यथित' आदि का महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय स्थान है। नेपाल, वर्मा और भूटान में प्रकाशित कई साहित्यिक पत्रिकाएँ वर्तमान में भी यथावत प्रकाशित हो रही हैं। पाकिस्तान की मुख्य भाषा उर्दू और बांग्लादेश में प्रचलित मुख्य भाषा बांग्ला भी कतिपय हिंदीं की निकट संबंधी प्रतीत होती हैं। उपर्युक्त भाषाएँ यदि देवनागरी लिपि में लिख दी जाए, तो हिंदी से बहुत अधिक भिन्न प्रतीत नहीं होगी। यही स्थिति जावा, सुमात्रा और इण्डोनेशिया की भी है। द्वितीय कोटि के राष्ट्र राज्यों में भारतीय मूल के आप्रवासी भारतवंशी बाहुल्य राष्ट्र मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना और दक्षिण अफ़्रीका बहुत महत्त्वपूर्ण और प्रमुख हैं। इन देशों में हिंदी के प्रयोग के क्रम में हिंदी को स्थानीयता के साथ जोड़कर देखा जाता है। यहाँ हिंदी की विशिष्ट और स्थानीय पहचान प्राप्त है यथा - "मॉरीशस की मॉरिशियन हिंदी, फ़िजी की फ़िजियन हिंदी, सूरीनाम और ब्रिटिश गयाना की सरनामी हिंदी, त्रिनिदाद की त्रिनी हिंदी और दक्षिण अफ़्रीका नेटाल की नेटाली हिंदी।" इन राष्ट्रों में लगभग एक सौ साठ वर्षों से हिंदी एक भाषा के रूप में विद्यमान है।

मॉरीशस की 70% आबादी भारतीय है। इसे लघु भारत भी कहते हैं। मॉरीशस की हिंदी भोजपुरी आधारित है। यथा - बड़ा खुसी की बात बा कि मॉरीशस में भोजपुरियन भाई लोग अबै तक आपन संस्कृति, धरम, बरत, त्यौहार के जिंदा रखले हवना। मॉरीशस में प्रयुक्त कुछ भोजपुरी शब्द इस प्रकार हैं - बिफे-गुरुवार, ओकाई-उल्टी, कँवारी-किवाड़ी, बइल-बैल, बारी-खेत आदि। यहाँ हिंदी भाषा और साहित्य से संबंधित अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हैं। ध्यातव्य है, हिंदी के विशिष्ट महत्त्व, स्वीकार्यता और प्रभाव के क्रम में 1976 और 1993 एवं 2018 में मॉरीशस में आयोजित विश्व हिंदी सम्मलेन विश्वभाषा के रूप में हिंदी की वर्तमान और भविष्योन्मुखी दशा और दिशा के निर्धारण के संदर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वैश्विक हिंदी सम्मेलन है। हिंदी साहित्य की रचना के संदर्भ में मॉरीशस एक अत्यंत समृद्ध देश है। इसी क्रम में, बासुदेव विष्णुदयाल, सोमदत्त बखौरी, अभिमन्यु अनत, ब्रजेन्द्र कुमार भगत मधुकर, दीपचंद बिहारी, बृजलाल रामदीन आदि हिंदी के प्रसिद्ध आप्रवासी लेखक हैं।

हिंदी भाषा के संबंध में समान स्थिति फ़िजी की भी है। फ़िजी में 52 प्रतिशत आप्रवासी भारतीय हैं। 9 मई 1879 से इन भारतीयों का गिरमिटिया मज़दूर के रूप में फ़िजी आना प्रारंभ हुआ। इसी क्रम में लगभग 63 हज़ार मज़दूर फ़िजी में आकर बस गए, जो अपने साथ तुलसी कृत रामचरितमानस, कबीर भजनावली, आल्हा आदि लेकर आए थे। इन्होंने अपने दैनिक जीवन में हिंदी को विविध उपक्रमों के माध्यम से शामिल किया। फ़िजी में हिंदी के लिए प्रसिद्ध नारा है- उठो, उठो हो फ़िजी वालो! अब अपनी आँखें खोलो। हिंदी ही अपनी भाषा है, हिंदी पढ़ो, लिखो, बोलो। फ़िजी के आप्रवासी भारतीयों के मध्य हिंदी भाषा के प्रयोग के संदर्भ में अवधी, भोजपुरी आदि भाषा का आधिकारिक प्रयोग स्वयंसिद्ध है। फ़िजियन हिंदी के शब्द अवधी और भोजपुरी से संबंधित हैं - केला-कोकरा, भाडा-भारा, परिवार- पलवार, गला- गटई, चावल-चाउर, अतिथि-पहुना, वर्षा-बरखा, संध्या-संझा आदि फ़िजियन हिंदी की शब्दावली के महत्त्वपूर्ण उदहारण हैं। ध्यातव्य है, बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 2023 फ़िजी में ही हुआ। फ़िजी के महत्त्वपूर्ण हिंदी रचनाकारों में पं० कमला प्रसाद मिश्र, विवेकानन्द शर्मा, अमरजीत कंवल, जोगिंदर सिंह, बलराम, महेंद्र, विनीता आदि बहुचर्चित और सक्रिय रचनाकार हैं। रामायण गायन, निरगुन, पद, भजन, कीर्तन, रामलीला, रासलीला आदि कार्यक्रमों का आयोजन समूचे देश में होता रहता है। फ़िजी की ही भाँति सूरीनाम, त्रिनिदाद और गयाना

भी हिंदी भाषा और भारतवंशी आप्रवासी भारतीयों के महत्त्व और उसकी पुष्टि, उपादेयता के क्रम में अत्यंत महत्त्वपूर्ण राष्ट्र हैं।

सूरीनाम को श्रीराम देश भी कहा जाता है और सूर्य देश भी। सूरीनाम की भाषा सरनामी या सरनामी हिंदुस्तानी कहलाती है। सरनामी हिंदी अवधी, भोजपुरी, मगही और उर्दू बोलियों का मिश्रण है। इस पर डच, जावानीज, अंग्रेज़ी का अल्पाधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है। सूरीनाम की राष्ट्रीय राजनीति में समय-समय पर भारतीय मूल के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, मंत्री आदि चुने जाते हैं, जिनके माध्यम से हिंदी और हिंदी के प्रभाव क्षेत्र में अपेक्षित विस्तार सिद्ध हुआ है। यथा- "उ बेटवा जब तक हमार पकावल न खात रहा, ओकर पेट न भरत रहा", वाक्य सरनामी हिंदी की भाषिक-संरचना का पुष्ट उदाहरण है। सूरीनामी हिंदी के प्रमुख रचनाकारों में महादेव खुनखुन, मुंशी रहमान, जीत नारायन, सुरजन परोही आदि की रचनाएँ द्रष्टव्य हैं- "नरक-सरग कोई जात नहिं, कोई हंसत के जाई, कोई रोवत के"। समनानंतर, पास-नेर, चुनरी-उढनिया आदि सरनामी हिंदी की शब्दावली के अन्य उदाहरण हैं। सरनामी हिंदी के अन्य कवियों में चंद्रमोहन और रणजीत सिंह ने हिंदी साहित्य की कविता, नाटक आदि विधाओं में महत्त्वपूर्ण लेखन-कार्य किया है। संगीत प्रभाकर और चंद्र मुक्तावली सूरीनामी हिंदी की ख्यातिलब्ध रचना है।

ब्रिटिश गयाना भी गिरमिटिया संस्कृति वाला देश रहा है। यहाँ भी सरनामी हिंदी ही प्रचलित है। गयाना की हिंदी सूरीनाम में प्रचलित हिंदी से संरचनात्मक स्तर पर मिलती-जुलती हिंदी है। त्रिणी अर्थात् त्रिनिदाद की हिंदी भोजपुरी, अवधी, स्पेनिश के मिश्रण से बनी हिंदी है। यहाँ 44% आबादी भारतीय है, जो यहाँ डेढ़ सौ वर्षो से रह रहे हैं। इनमें कुछ की मातृभाषा ही हिंदी है। यहाँ की बोलचाल की हिंदी को क्रियोल कहते हैं। क्रियोलीकृत शब्द हिंदी से कुछ अलग हो जाते हैं। महाराजिन- मराजिन, खाट-कटिया, खिचड़ी- किचरी, नमक- नीमक, मूर्ति- मूरठी, भाई- भिया, दामाद-जवाइन, बहनोई- भिनोई, बाबा- पोइया, चादर-चदर आदि क्रियोलीकृत शब्द के उदाहरण हैं। दक्षिण अफ़्रीका की हिंदी को नेटाली हिंदी कहा जाता है। भारत से गिरमिटिया मज़दूर दक्षिण अफ़्रीका के नेटाल में डेढ़ सौ वर्ष पूर्व ही आ गए थे। नेटाली हिंदी पर भोजपुरी का प्रभाव गोचर होता है। इन देशों में लाखों हिंदी भाषी जन आप्रवासी भारतीय के रूप में निवास कर रहे हैं, जो हिंदी एवं हिन्द की संस्कृति अर्थात् भारतीय संस्कृति को प्रचारित-प्रसारित कर रहे हैं।

तीसरी कोटि, उन्न समुन्नत राष्ट्रों की है, जहाँ रोज़गार या ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारत से गए जन मौजूद हैं। ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, फ़्रांस, इटली, रूस, नार्वे, हालैंड, जर्मनी आदि ऐसे ही राष्ट्र हैं। ध्यातव्य है, फ़्रांस के विद्वान 'गार्सा द तासी ने प्रथमतः हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा था, तो वहीं इटली निवासी तेस्सीतोरी और आयरलैंड निवासी डॉ. ग्रियर्सन ने हिंदी विषयक शोध समीक्षाओं के माध्यम से विश्व स्तर पर इस भाषा की पहचान गढ़ी थी। इन देशों के प्रमुख विद्वानों में जैसे-रूस में बरानिन्कोव, चेलीशेव, प्रो. लिउडमिला खोख्लोवा, डॉ. इंदिरा गजियेवा, प्रो. अलेक्सांद्र सिगोर्कसी, अनन्त सीथागूहिया, इटली की मारियो ला और तुर्बीयानी, बेल्जियम के फॉदर कामिल बुल्के, जापान के प्रो. तोजिय तनाका, प्रो. तोमियो मिजोकामी, प्रो. अकीर ताकाशाही प्रो. फुजिई, प्रो. दोई, फ्रांस में निकोलस बलबीर, ऑस्ट्रेलिया में प्रो. जार्ज, डेनमार्क में प्रो. थीसन, चेक में डॉ. ओदोनेल स्मेकल, अमेरिका में डॉ. करीम शोमर, पोलैंड में बृस्की, हालैंड में पेशोकर, जर्मनी में लोठार लुत्से, चीन में प्रो. ची श्योन, प्रो. चिलहान, बुल्गारिया में प्रो. एमिल बोएव, श्रीमती तान्या गोचेवा, डॉ. बाल्या मारीनोना, डॉ. मिलेना ब्रातोएवा, डॉ. विमलेश कांति वर्मा, डॉ. रामकृष्ण कौशिक, डॉ. महेंद्र, डॉ. कर्ण सिंह चौहान आदि ने हिंदी के विकास और विस्तार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। समानांतर, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', नरेंद्र शर्मा, हरिशंकर परसाई, भीष्म साहनी, प्रेमचंद, मोहन राकेश, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा आदि हिंदी के ख्यातिलब्ध लेखकों, कवियों और साहित्यकारों पर अनेक जापानी विद्वान अध्ययन, अध्यापन और शोध-कार्य कर रहे हैं। नार्वे में पूर्णिमा चावला, हरचरण चावला, अमित जोशी, मीना ग्रोवर, शिखा चंद्रा, रश्मि क्षत्री आदि, पोलैंड में प्रो. एम.के. ब्रिस्की, प्रो. शोयेर, डॉ. रुकोव्सका, प्रो. दानूता स्ताविक, कनाडा में श्री हरिशंकर आदेश, श्याम त्रिपाठी, सुरेंद्र पाल, संदीप त्यागी, रत्नाकर नराले, भारतेंदु श्रीवास्तव, शैलजा सक्सेना आदि। अमेरिका में डॉ. करीम शोमर, गुलाब खंडेलवाल, वेद प्रकाश बटुक, सुषमा बेदी, उषा प्रियंवदा, रामेश्वर अशांत, अंजना संधीर, मधु माहेश्वरी, कुसुम सिंह, मंजू तिवारी आदि न जाने कितने हिंदी सेवी विद्वान हैं, जो हिंदी के उत्तरोत्तर विकास, साहित्य-सृजन, शिक्षण और शोध-कार्य आदि में अतुलनीय योगदान दे रहे हैं। इन्होंने हिंदी से संबंधित अनेक संस्थाएँ तथा पत्रिकाएँ भी प्रारंभ की हैं। भारतीय दूतावास, सांस्कृतिक संबंध परिषद् और भारतीय उच्चायोग के माध्यम से इन देशों में हिंदी को प्रश्रय दिया गया है। प्रत्येक वर्ष भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् विदेशों में हिंदी शिक्षण के लिए दो दर्जन से अधिक

शिक्षकों को भेजती है। तात्पर्य यह है कि संख्या बल के आधार पर हिंदी में विश्वभाषा का स्थान पाने की महत्त्वपूर्ण क्षमता है। डॉ. अबादास देशमुख का कथन है कि "आज हिंदी भाषा का व्यवहार केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व के अनेक राष्ट्रों में हो रहा है। आज़ादी के बाद हिंदी का महत्त्व देश तथा विदेश में काफ़ी बढ़ गया है। विदेशी राष्ट्रों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन तथा प्रचार-प्रसार का कार्य ज़ोर पकड़ रहा है। विदेशों में हिंदी उल्लिखित दो धाराओं में विभाजित है। एक, तो वह धारा है, जिसके अन्तर्गत विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। दूसरी, वह धारा उन देशों में है जहाँ भारतीय लोग अपनी जीविका की तलाश में मज़दूर और व्यापारी बनकर बाहर गए हैं।"

वर्तमान वैश्विक संदर्भों में हिंदी अनेक कारणों से अपनी पहचान और महत्त्व कायम कर रही है। आज विश्व के लगभग 200 से अधिक विश्वविद्यालय एवं शोध संस्थानों में हिंदी के अध्ययन, अध्यापन, अनुसंधान संबंधी कार्य प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक किया जा रहा है। हिंदी की वैश्विक स्वीकार्यता और पहचान के संदर्भ में यह स्थिति बहुत ही सुखद है। अमेरिका में दो करोड़ से अधिक भारतीय हैं। हार्वर्ड, पेन, मिशीगन, येल आदि 75 विश्वविद्यालय में विश्वभाषा के रूप में हिंदी पढ़ाई जा रही है। अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, विश्व हिंदी समिति, हिंदी न्यास जैसी हिंदी संस्थाएँ अमेरिका के संदर्भ में निरंतर हिंदी की प्रगति और विस्तार को सुनिश्चित कर रही हैं। इंग्लैंड में कैंब्रिज, ऑक्सफ़ोर्ड, यॉर्क आदि विश्वविद्यालयों में भी हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। भारतीय भाषा संगम, गीतांजलि, बहुभाषिक समुदाय, यू.के. हिंदी समिति, हिंदी भाषा समिति, चौपाल कृति यू. के., कथा यू. के. आदि प्रमुख संस्थाएँ इंग्लैंड में हिंदी के विकास के लिए निरन्तर कार्य कर रही हैं और हिंदी के वैश्विक विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। जापान में लगभग 850 कॉलिजों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। ओसाका, टोक्यो, ताइको, ओतान, ओचेमन, माईकून, कानन विदेशी विश्वविद्यालय आदि हिंदी और हिंदी संबंधी शैक्षिक उपक्रमों की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्थान हैं। मॉरीशस में हिंदी के प्रति विशेष प्रेम दिखाई देता है। यहाँ 254 प्राथमिक पाठशालाओं और 64 माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। महात्मा गांधी संस्थान में हिंदी की उच्च शिक्षा का समुचित प्रबंध किया गया है। 1988 से हिंदी का डिप्लोमा कोर्स, 1990 से बी. ए. ऑनर्स हिंदी, 2001 से एम. ए. हिंदी का प्रावधान विद्यमान है। समनानंतर, 585 से अधिक अध्यापक हिंदी सेवा में लगे हुए हैं। हिंदी प्रचारिणी सभा, महात्मा गांधी संस्थान, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा आदि अनेक हिंदी सेवी संस्थाएँ तथा विश्व हिंदी सचिवालय भी हिंदी को वैश्विकता प्रदान करने के लिए मॉरीशस में ही स्थित और कार्यरत है। फ़िजी में सनातन धर्म, आर्यसभा, गुरुद्वारा कमेटी, आंध्र संगम आदि अनेक संस्थाएँ कार्यरत हैं। यहाँ 1916 से हिंदी अध्ययन-अध्यापन हेतु हिंदी पाठशालाएँ स्थापित की गई हैं, जो निरंतर हिंदी के विकास और विस्तार में लगी हुई हैं। नीदरलैंड में 2.25 लाख भारतवंशी हैं। यहाँ चार विश्वविद्यालयों लायडन, एम्सटर्डम, यूटरेक्ट खोनिगन एवं हिंदी परिषद्, हिंदी प्रचार संस्था समिति, हिंदू स्कूल संस्थाएँ, हिंदू ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन, उच्च हिंदी समिति आदि संस्थाएँ निरंतर हिंदी को बढ़ावा देने के लिए कार्यरत हैं। रूस में प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का पठन-पाठन होता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंध संस्थान, प्राच्य अध्ययन संस्थान, मॉस्को विश्वविद्यालय, रूसी मानविकी विश्वविद्यालय, सेंट पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय सहित दो दर्जन संस्थानों में 3500 से अधिक रूसी छात्र हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। रूस के कजान, करोलिया, तारुस, बोशकोतोरस्तान, चुवाशिया, जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र आदि में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। पोलैंड में हिंदी भाषा और साहित्य वारसा, क्राकब, पोजनान विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है। इटली में वेनिस, टूरिन, रोम, ओरिएंटल, मिलान विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा पढ़ाई जा रही है। इसी तरह फिनलैंड के हेलसिंकी, स्वीडन के स्टॉकहोम, डेनमार्क के कोपेनहेगन, नार्वे के ओस्लो, चीन के पेइचिंग, नानचिड़, नेपाल के त्रिभुवन, श्रीलंका के कोलंबो विश्वविद्यालय में हिंदी के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था प्राप्त होती है, जो हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय फलक पर स्थापित और विस्तारित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। स्वयं भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने लगभग दो दर्जन देशों में हिंदी पीठ की स्थापना की है। तात्पर्य है कि हिंदी शिक्षण के केंद्र हिंदी के विकास और विस्तार को बल प्रदान कर रहे हैं तथा विश्वभाषा के रूप में हिंदी भाषा को पुष्पित, पल्लवित और विकसित होने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण सहयोग कर रहे हैं।

मीडिया तकनीकी और वैश्वीकरण के प्रभाव से हिंदी देश-विदेश की सीमाओं को पार करके वैश्विक पटल पर पहुँची है। हिंदी की सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ जो विदेश से प्रकाशित हो रही हैं, हिंदी को विश्व फलक पर स्थापित करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। इन पत्रिकाओं में अमेरिका की विश्वा, अनहद कृति, भारत, विश्व-विवेक, विश्व सौरभ, अन्यथा, सेतु हिंदी जगत, क्षितिज, बाल

भारती, कनाडा से प्रकाशित पत्रिका हिंदी चेतना, विश्व भारती, नमस्ते कनाडा, सरस्वती, वसुधा साप्ताहिक पत्रिका हिंदी टाइम्स, हिंदी एब्रॉड आदि अत्यंत महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ हैं। वैश्विक संदर्भ में इंग्लैंड पहला राष्ट्र है, जहाँ सर्वप्रथम 1883 में कालाकांकर नरेश के संपादन में हिंदोस्थान पत्र का प्रकाशन हुआ। पुरवाई, अमरदीप, कथा प्रवासिनी आदि इंग्लैंड से प्रकाशित अन्य महत्त्वपूर्ण हिंदी पत्रिकाएँ हैं। नार्वे से प्रकाशित पत्रिकाओं में शांतिदूत, स्पाइल दर्पण, चीन से प्रकाशित पत्रिका इंदु संचेतना, नेपाल से प्रकाशित पत्रिका तरंग, जय नेपाल संगम, आदर्शवाणी, किसान, बुलेटिन कोकिला, नवजागरण, अनुराधा आदि जापान से प्रकाशित पत्रिका ज्वालामुखी, रूस से प्रकाशित पत्रिका भारत दर्पण और भारत भूमि तथा मॉरीशस से लगभग 50 महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ वर्तमान में प्रकाशित हो रही हैं। इनमें इंद्रधनुष, बसंत, आर्यवीर, मॉरीशस मित्र, आर्योदय, ज़माना, अनुराग, हिंदुस्तानी, आभा दर्पण, रणभेरी, फ़िजी से प्रकाशित पत्रिकाओं में भारत पुत्र, बुद्धि वाणी, वैदिक संदेश, सनातन धर्म, शांति दूत, मज़दूर, जागृति, झंकार जयफ़िजी, सूरीनाम से प्रकाशित पत्रिकाओं में आर्य दिवाकर, सरस्वती भारतोदय, प्रेम संदेश, गयाना से प्रकाशित पत्रिकाओं में आर्य ज्योति, ज्ञानदा, त्रिनिदाद और टोबैगो से प्रकाशित पत्रिकाओं में ज्योति, दक्षिण अफ़्रीका से प्रकाशित पत्रिका हिंदी, वर्मा से प्रकाशित पत्रिका प्रवासी, ब्रह्मभूमि, आर्य युवक, जागृति, न्यूज़ीलैंड से प्रकाशित पत्रिका भारत-दर्शन, शारजाह से अभिव्यक्ति, अनुभूति, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सेवा समीति सेलम से प्रकाशित पत्रिका हिंदी परिचय, गर्भनाल, प्रवासी भारतीय, इसी प्रकार प्रवासी टुडे, सार-संसार आदि पत्र-पत्रिकाएँ विश्व स्तर पर हिंदी की आभा में वृद्धि कर रही हैं।

पत्र-पत्रिकाओं की ही भाँति रेडियो प्रसारण ने भी हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को विश्व पटल पर पहुँचने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। रेडियो आकाशवाणी, एफ. एम., विविध भारती, बी. बी. सी. हिंदी, वॉइस ऑफ़ अमेरिका, जापान का एन. एच. के., जर्मनी का डॉयचे वेले, रूस का आर. यू. एन. आर., ईरान का आई. वी. दक्षिण अफ़्रीका का हिंदी वाणी आदि प्रमुख कार्यक्रम आकाशवाणी केंद्र पर नियमित रूप से प्रसारित होते हैं। एम. बी. सी. यानी मोरिशियन ब्रॉडकास्टिंग कोर्पोरेशन से पूरे दिन मॉरीशस में हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं। फ़िजी से रेडियो फ़िजी के माध्यम से प्रति सप्ताह 75 घंटे के कार्यक्रम हिंदी भाषा में प्रसारित होते हैं। सूरीनाम में 6 आकाशवाणी केंद्र हैं, इनसे भी निरन्तर हिंदी भाषा में कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं। रूस में वॉइस ऑफ़ रसिया रेडियो से प्रतिदिन 2 घंटे हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होता हैं।

वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रसार में टेलीविजन की भूमिका भी विशिष्ट है। वैश्विक बाज़ार के विकास और प्रसार के कारण टेलीविजन ने भी हिंदी को वैश्विक पहचान दिलाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। ज़ी न्यूज़, स्टार न्यूज़, आज तक, इंडिया न्यूज़, एन. डी. टी. वी, ए. बी. पी न्यूज़, भारत समाचार, ज़ी हिंदुस्तान, रिपब्लिक भारत आदि न्यूज़ चैनल 24 घंटे पूरे विश्व में हिंदी में समाचारों का प्रसारण करते हैं। वहीं स्टार प्लस, सोनी, सब, कलर्स, स्टार भारत, एन्ड टी. वी., ज़ी टी. वी. जैसे धारावाहिक चैनल, संस्कार, आस्था, साधना, जिवाजी, ईश्वर, सत्संग जैसे धार्मिक चैनलों द्वारा हिंदी भाषा में पूरे विश्व में कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। हिंदी की लोकप्रियता को देखते हुए तमाम विदेशी चैनलों ने भी अपने कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित करना प्रारंभ कर दिया है। डिस्कवरी, नेशनल, जियोग्राफ़ी, डिज़्नी चैनल, डोरेमोन आदि वर्तमान में हिंदी भाषा अथवा अनूदित हिंदी भाषा में प्रसारित हो रहे हैं। रामायण और महाभारत धारावाहिक भी विदेश में चर्चा और उत्सुकता का विषय रहे हैं। मॉरीशस वासी दूरदर्शन के माध्यम से भारतीय गीत-संगीत को देखना, सुनना पसंद करते हैं। भारत का धारावाहिक 'कौन बनेगा करोड़पति' वैश्विक स्तर पर काफ़ी लोकप्रिय कार्यक्रम है। सूरीनाम के चार दूरदर्शन केंद्रों से संगीत, धार्मिक प्रचार, साक्षात्कार, सूचनाएँ, विज्ञापन और समाचार हिंदी में प्रसारित होते हैं। नार्वे में भारतीय हिंदी चैनल ज़ी टीवी, सोनी टीवी, ज़ी सिनेमा वी फ़ॉर यू, मूवी एम. टी. वी. अधिक लोकप्रिय हैं। 10 अप्रैल 2007 से स्कैंडिनेवियन भारत साहित्य एवं संस्कृति मंच से दूरदर्शन इंडिया का प्रसारण यूरोपीय देशों के साथ-साथ विश्व के 146 देश के लिए प्रारंभ हुआ।

पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो और टीवी की भाँति विश्व पटल पर हिंदी सिनेमा के अविस्मरणीय गीतों के प्रचार-प्रसार ने हिंदी के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हिंदी बोलने और सीखने में इन सिनेमाई एवं फ़िल्मी गीतों की भूमिका को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष 800 हिंदी फ़िल्में रिलीज़ होती हैं। विश्व में सिनेमा का बजट 25 लाख डॉलर से अधिक है। विश्व के लगभग 110 देशों में भारतीय सिनेमा देखा जाता है, जो बाज़ार का बहुत बड़ा केंद्र है। फ़िल्म निर्माता करण जौहर कहते हैं - "हिंदी की बदौलत हमें प्रसिद्धि मिली है। हम हिंदी को कम करके कैसे आँकें? हम हिंदी में फ़िल्में बनाते हैं, उसे देखने के लिए लोग आते हैं, चाहे अमेरिका

हो या लंदन वहाँ भी दर्शक मिल जाते हैं और फ़िल्मों की सराहना करते हैं।" इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया के रूप में हिंदी विकिपीडिया, ब्लॉगिंग, पॉडकास्ट, ट्विटर, फ़ेसबुक, व्हाट्सएप मैसेंजर, टेलीग्राम, गूगल सर्च इंजन, इंस्टाग्राम आदि अनेक नवीन तकनीकों के माध्यम से हिंदी ने वैश्विक पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर विश्व भाषा की परिधि में अपना विशिष्ट स्थान निर्मित किया है। कहना न होगा, आज कृत्रिम बौद्धिकता (आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस) लोकव्यापी तकनीकी है। इसका विशिष्ट प्रभाव यद्यपि भावी दशक में अपनी छाप पूरे संसार पर डालेगा तथापि वर्तमान में भी हिंदी भाषा में आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस से संबंधित गतिविधियाँ घटित हो रही हैं, जैसे स्पीच टू टेक्स्ट, कंप्यूटर विजन से स्कैनिंग के माध्यम से दस्तावेज़ों को सहेजना, सिरी, कोरटाना, अलेक्सा, गूगल असिस्टेंट हमारे सभी प्रश्नों का हिंदी में भी उत्तर देने में सक्षम है। भविष्य में हिंदी भाषा तकनीकी के माध्यम से अन्यानेक नवीन आयामों को हासिल करने में सक्षम होगी। यही कारण है कि फ़रवरी 2023 में संपन्न हुए बारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का मुख्य विषय 'पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक' था।

विदित है कि हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है। अपनी आत्मसात करने की प्रवृत्ति एवं उपसर्ग-प्रत्ययों की सहायता से नए शब्द गढ़ने में विशेष क्षमता के कारण हिंदी ने अपनी शब्द-संपदा में अतुलीनय वृद्धि की है। इतना ही नहीं मानविकी, कम्प्यूटर, वाणिज्य, पशु-चिकित्सा, लोक प्रशासन, यांत्रिकी, खेलकूद, भौतिकी, कृषि-विज्ञान आदि विभिन्न नवीन ज्ञान शास्त्रों की शब्दावलियाँ प्रकाशित हुई हैं। जिससे हिंदी के विकास और विस्तार को बल मिलता है। इस दृष्टि से हिंदी भाषा का साहित्य समृद्ध है। प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित का मानना है कि "विश्व भाषा बनने की एक आवश्यक शर्त यह है कि हमारे लेखन में वैश्विक चेतना का समावेश हो।" कहना न होगा, विश्व के लगभग 140 देशों में सर्जनात्मक लेखन हिंदी में किया जा रहा है, जिसमें प्रवासियों के सुख-दुख के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय वैचारिकता भी स्थान पा रही है। वर्तमान वैश्विक स्थिति में हिंदी अनेक कारणों से अपनी पहचान और महत्त्व कायम कर रही है।

हिंदी को विश्व भाषा के रूप में पहचान देने में जनसंचार की महती भूमिका है। वर्ल्ड प्रेस ट्रेन्ड की रिपोर्ट के अनुसार 'अखबार बेचे जाने वाले बड़े बाज़ारों में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। भारत में हिंदी समाचार-पत्रों का वितरण अधिक है। रेडियो प्रसारण ने हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को विश्व पटल पर पहुँचाया है। प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी के अनुसार "अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी सामाजिक-सांस्कृतिक अन्तः शक्ति के साथ-साथ अपनी प्रयोजन परक भूमिका भी ली हुई है। वस्तुतः हिंदी की यह अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका एक स्वप्न नहीं, वरन् वह विश्व मानव की वास्तविकता है।" आज हिंदी की वैश्विक स्थिति अत्यंत सुदृढ़ है, फिर भी आज के बाज़ारीकरण के युग में हिंदी की स्थिति को सशक्त और विस्तृत करने हेतु अन्य अनेक कार्यक्रमों, उपायों और उपक्रमों की आवश्यकता वांछित है। विचारणीय है कि विदेशों में हिंदी के सम्पूर्ण अभ्युत्थान के लिए योजनाबद्ध तरीके से कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय किए जा सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि –

1. हिंदी भाषा साहित्य के इतिहास में विदेशी हिंदी सेवियों को सम्मिलित किया जाए।

2. विशिष्ट विदेशी हिंदी लेखन को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए।

3. विदेशों में हिंदी मुद्रण-टंकण, आशुलेखन, कम्प्यूटिंग आदि की सुविधा का विस्तार हो।

4. विश्व भाषा के रूप में हिंदी को अधिकाधिक सूचना प्रौद्योगिकी से ओत-प्रोत किया जाए।

5. संचार भाषा के रूप में हिंदी जनमाध्यमों का विस्तार किया जाए।

6. हिंदी फ़िल्मों, गीतों और मध्यकालीन भक्ति-काव्य का विदेशों में अधिकाधिक प्रचार-प्रसार किया जाए।

7. विदेशों में हिंदी शोध केन्द्रों की स्थापना होनी चाहिए।

8. विदेशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों का प्रकाशन तथा बिक्री हो।

9. विश्व भाषाओं से संबंधित द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी शब्दकोशों का संपादन एवं प्रकाशन किया जाए।

10. विश्व के प्रमुख नगरों में हिंदी पुस्तकालयों, संग्रहालयों और सूचना केन्द्रों की स्थापना होनी चाहिए।

11. हिंदी कम्प्यूटर, प्रोग्रामिंग की रूप रचना, हिंदी कूट पदों तथा संकेताक्षरों का प्रचलन हो।

12. विदेशों में प्रतिवर्ष विश्व हिंदी सम्मेलनों, रामायण सम्मेलनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन होना चाहिए।

13. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को यथाशीघ्र प्रवेश दिलाया जाए।

14. हिंदी विश्व कल्याण की भावना से अनुप्राणित हो।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि भारत विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों की आँख का तारा है। जी-20 सम्मेलन इसका जीवंत प्रमाण है। अपने विशिष्ट स्वरूप, प्रभावोत्पादकता और उपादेयता के संदर्भ में भाषा के रूप में हिंदी के मिटने की प्रत्येक आशंका निर्मूल ही है। वर्तमान कालावधि के अंतर्गत भाषा के रूप में हिंदी की सबसे बड़ी पूँजी न केवल भारतीय हैं, अपितु समानांतर विदेशी नागरिकों में हिंदी के प्रति बढ़ती जिज्ञासा और रुचि, आप्रवासी और अन्य वैश्विक नागरिकों को भी हिंदी की विशेष और नवीन पूँजी के रूप में मान्यता प्रदान कर रही है। यही कारण है कि हिंदी विश्व फलक पर अपनी अमिट छाप छोड़ रही है। आज हिंदी अपने आप में समृद्ध, परिमार्जित और विश्वसनीय भाषा के रूप में वैश्विक पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। भारत के प्रधानमंत्री का नारा "सबका साथ, सबका विश्वास और सबका प्रयास" विश्व के विभिन्न देशों में चुनाव के समय प्रयोग हो रहा है। ब्रिटेन के आम चुनाव प्रचार में डेविड कैमरन ने चुनाव जीतने के लिए विशुद्ध हिंदी नारों- "सबका साथ सबका विकास और अबकी बार कैमरन सरकार" का प्रयोग किया। तो वहीं अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा अपने भारत दौरे पर भाषण का संबोधन 'नमस्ते' और समापन 'जय हिन्द' से करते हैं। आज़ादी के अमृत काल और विकसित भारत की संकल्पना के प्रदेय में हिंदी शीघ्रातिशीघ्र संयुक्त राष्ट्र संघ में वैधानिक भाषा का दर्जा प्राप्त कर लेगी, क्योंकि विश्व के अधिकांश देश हिंदी के पक्षधर हो रहे हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. डॉ. सुधीश पचौरी, हिंदी का नया जनक्षेत्र : वाणी प्रकाशन, 2012
2. डॉ. कृपाशंकर उपाध्याय, हिंदी का वैश्विक परिदृश्य : सं. रमेश दवे, हिंदी राष्ट्र की अस्मिता
3. राजभाषा भारती-अंक-120, जनवरी-मार्च 2008
4. प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, गगनांचल, जनवरी अप्रैल 2023
5. उद्त, डॉ. राम बाबू शर्मा : ऐतिहासिक संदर्भ में राजभाषा हिंदी, इस्पात भारतीय स्टील ऑथोरिटी ऑफ़ इंडिया, अप्रैल-जून 1992
6. चयनिका दुबे, 'राजभाषा भारती' विशेषांक (14-15 सितम्ब (2023)
7. प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित, हिंदी का वैश्विक परिदृश्य
8. गवेषणा, शोध पत्रिका, संपादक प्रो. महेन्द्र सिंह राणा, अंक-105, जुलाई-दिसम्बर 2015, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
9. एस. शेषरत्नम्, वैश्वीकरण की दिशा में हिंदी
10. अनूदित-भाषा अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ, संपादक डॉ. रविन्द्र कालिया

drbaljieetsrivastava@gmail.com

विश्व में हिंदी : विकास एवं विस्तार

प्रो. खेमसिंह डहेरिया
भोपाल, भारत

हिंदी के विकास में जितना योगदान हिंदी के विद्वानों का रहा है, उतना ही योगदान अहिंदी भाषियों का भी रहा है। ऐसे बहुत-से विद्वान हैं, जिन्होंने हिंदी को अपनाया और उसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करना चाहा तथा सभी जगह घूम-घूमकर हिंदी का बिगुल बजाया व विदेश में भी हिंदी भाषा का समर्थन कर अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी का परचम लहराया। इस परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का योगदान महत्त्वपूर्ण है, जिन्होंने एक गुजराती भाषी होते हुए भी कहा था कि "हिंदी ही देश को एक सूत्र में बाँध सकती है। मुझे अंग्रेज़ी बोलने में शर्म आती है और मेरी दिली इच्छा है कि देश का हर नागरिक हिंदी सीख ले व देश की हर भाषा देवनागरी में लिखी जाए।" मराठी भाषी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि- "हिंदी ही भारत की राजभाषा होगी।"

हिंदी विश्व के देशों में भारतीय संस्कृति को ज़िंदा रखने के लिए मातृभाषा या मूल भाषा ही नहीं प्राण-भाषा भी है। यह हिंदी भाषा की शक्ति है, जिसके कारण यह भाषा कई बोलियों के रूप में विश्व में विकसित हो रही है। हिंदी ही वह शक्ति है, जो विश्व भर के भारतीयों को संस्कृति के आधार पर जोड़ सकती है। विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजनों की ही सार्थकता है कि विश्व भर में हिंदी की जड़ें फैल रही हैं। विश्व के अन्य देशों में भारतीय संस्कृति को जीवित रखने के लिए हिंदी मातृभाषा या मूल भाषा ही नहीं, बल्कि प्राण-भाषा है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' काव्य, भारतीय समाज के स्वाभिमान को जगाने का प्रयास है। यह व्यापक रूप में सभी भारतीय भाषाओं के लिए कहा गया था। धीरे-धीरे हिंदी भारतीय राष्ट्रीय चेतना का वाहक बनी। इसे हिंदीतर क्षेत्र के विद्वान और राजनेताओं का समर्थन मिला। बांग्ला के केशवचंद्र सेन और गुजरात के नवलराम ने हिंदी का समर्थन किया था। संस्कृत के विद्वान स्वामी दयानंद ने केशवचंद्र सेन के सुझाव से 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी में लिखवाई। बीसवीं सदी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिंदी, हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया और तर्क दिया कि 'राष्ट्र सेवा तब तक संभव नहीं, जब तक कोई राष्ट्रभाषा न हो।' उन्होंने स्पष्ट कहा और लिखा भी कि सारे राष्ट्र के लिए जो भाषा होगी, वह हिंदुस्तानी ही हो सकती है: "हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सोचती है और उसे धारण करती है। देश का कोई सच्चा प्रेमी हिंदी का तिरस्कार नहीं कर सकता। दुनिया से कह दो, गांधी अंग्रेज़ी नहीं जानता।" गांधी जी के आग्रह के कारण हिंदी राष्ट्रीय चेतना की वाहक बनी और हिंदीतर प्रदेश के विद्वानों का भी समर्थन मिला। सुभाषचंद्र बोस ने कहा, 'हिंदी प्रचार का उद्देश्य केवल यही है कि आजकल जो काम अंग्रेज़ी से लिया जाता है, वह आगे चलकर हिंदी से लिया जाए। अपनी माता से अधिक प्यारी मातृभाषा को तो हम कदापि नहीं छोड़ सकते। लेकिन भारत में भिन्न-भिन्न प्रांतों के भाइयों से बातचीत करने के लिए हिंदी या हिंदुस्तानी को तो हमको सीखना ही चाहिए।''

मॉरीशस में हिंदी -

18वीं शताब्दी के चौथे दशक (1730-1740) से ही कैदियों, कारीगरों, कुली, मज़दूरों के रूप में भारतीयों का मॉरीशस पहुँचना आरंभ हो जाता है, जिनमें हिंदी-उर्दू, बांग्ला, तेलुगु, तमिल तथा मराठी भाषियों का समावेश था। क्योंकि इनमें बहुतायत संख्या हिंदी बोलने वालों की थी, इसलिए संप्रेषण की अनिवार्यता ने हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में इनके बीच स्थान दिया। फलत: मॉरीशस विश्व का ऐसा पहला देश बना जहाँ समस्त भारतवासी हिंदी जानते, समझते और बोलते हैं। यहाँ के भारतवंशियों की हृदय तंत्री से यदि भारतीय संस्कृति की लय गूंजती है तो उनकी वाणी से हिंदी भाषा अपने प्रयोग वैविध्य के साथ मुखर होती है।

मॉरीशस की अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से पर्यटन और गन्ने पर आश्रित है। यहाँ पर अधिकांश सामान भारत समेत दुनिया के दूसरे हिस्सों से ही आता है, जिसके कारण वह महँगा होता है।

भारतवंशियों की सांस्कृतिक निष्ठा के चलते मॉरीशस में भोजपुरी और हिंदी के भविष्य के प्रति आशान्वित हुआ जा सकता है। समूचे मॉरीशस में प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर तक का हिंदी का अध्ययन-अध्यापन चल रहा है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर यहाँ हिंदी की निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान है।

भारत के बाद मॉरीशस विश्व का ऐसा दूसरा देश है, जहाँ हिंदी की पुस्तकें अच्छे परिमाण में उपलब्ध हैं। एक ओर वहाँ हिंदी

एवं भोजपुरी में प्रचुर लोक साहित्य लिखा गया, जो मॉरीशस के जन-जन में विद्यमान आत्मीयता, जिजीविषा और साहचर्य दर्शाता है। दूसरी ओर लोकमंगल से अनुप्रमाणित ऐसा साहित्य है, जो मॉरीशस के भारतवंशी तथा साहित्य के संबंध को समायोजित करने का सशक्त माध्यम है। आज मॉरीशस के विद्यालयों और सरकारी तथा निजी माध्यमिक शिक्षण-संस्थानों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन चल रहा है।

सांस्कृतिक जागरण में भी हिंदी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मॉरीशस में धार्मिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिंदी का प्रयोग प्रमुखता से होता है। यहाँ 24 घंटे रेडियो और टेलीविजन पर हिंदी में प्रसारण होता है। इससे जनसाधारण को भाषा के जीवंत संपर्क में आने का अवसर प्राप्त होता है। प्रतिदिन हिंदी फ़िल्मों और 24 घंटे धारावाहिकों के प्रसारण से भी यहाँ लोग हिंदी से सहज निकटता प्राप्त करते हैं।

प्रथम हिंदी कहानी पं. जय प्रकाश शर्मा द्वारा लिखित 'तारा' कहानी है, जो 23 फ़रवरी, 1934 के 'सनातन धर्मार्क' में छपी है। सन् 1930 से 1950 के बीच अधिकांश कहानियाँ सामाजिक-आर्थिक उत्पीड़न की कहानियाँ हैं। लेखकों ने गोरों के अत्याचार का मार्मिक अंकन किया है। लेकिन दुर्भाग्यवश अधिकांश कहानियाँ छद्म नाम से लिखी गई हैं। इस युग की हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' में गिरमिटिया मजदूरों के अपमान का हृदय-विदारक अंकन किया गया है।

'जागृति' और 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' में भी कहानियाँ छपीं। इन कहानियों में तत्कालीन समाज का सुख-दुख रूपायित हुआ है। उस समय गोरों का अत्याचार, समाज की कुरीतियाँ, भाषा-संस्कृति के प्रति गौरव की अनुभूति तथा कठिनाई से संघर्ष का चित्रण इन कहानियों में हुआ है। सन् 1947 में भारत की स्वाधीनता के बाद मॉरीशस का भारतीय समाज और अधिक जाग्रत एवं चैतन्य हुआ।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी -

ऑस्ट्रेलिया भी भारत की ही तरह एक बहु-सांस्कृतिक देश है, जहाँ अनेक देशों के लोग आकर बस गए हैं। यहाँ के खान-पान, रंग, रूप, भाषा और वेशभूषा में विभिन्न संस्कृतियों का समावेश है। ऑस्ट्रेलिया में बोली जाने वाली करीब तीन सौ भाषाओं में विविध भारतीय भाषाएँ भी हैं। हिंदी के अतिरिक्त पंजाबी, तमिल, गुजराती आदि हैं। ऑस्ट्रेलिया में भी हिंदी अन्य देशों की भाँति पुष्पित, पल्लवित हुई है।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण : ऑस्ट्रेलिया में उन्नीस सौ सत्तर के दौरान हिंदी-शिक्षण मंदिरों में शुरू हुआ, जब लोगों ने साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन मंदिरों में शुरू किया। 2011 में ऑस्ट्रेलिया की केंद्रीय सरकार के आदेश पर अकारा (ACARA) यानी ऑस्ट्रेलियन कैरीकुलम एसेसमेंट एंड सर्टिफ़िकेशन ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के लिए हिंदी का चयन किया। 2012 में, तत्कालीन ऑस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री जूलिया गिलार्ड ने "ऑस्ट्रेलिया इन द एशियन सेंचुरी" सरकार का श्वेत पत्र जारी किया। उन्होंने घोषणा की, कि हिंदी को प्राथमिकता वाली भाषा के रूप में माना जाएगा और हर स्कूली बच्चा हिंदी सीखने में सक्षम होगा। आजकल यहाँ हिंदी, विद्यालयी पाठ्यक्रम का हिस्सा है और हिंदी का कक्षा 1 से 12 तक राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यक्रम भी तैयार किया गया है।

ऑस्ट्रेलिया में विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षण : तृतीय स्तर पर, हिंदी पहली बार ऑस्ट्रेलिया में 1965 में क्वींसलैंड विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा संस्थान के प्रौढ़ शिक्षा संस्थान द्वारा पेश की गई थी। 1997 में ऑस्ट्रेलिया में छह विश्वविद्यालय थे, जिनमें हिंदी पढ़ाई जाती थी। जब कि आज केवल दो विश्वविद्यालयों ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, कैनबरा और लॉ ट्रोब यूनिवर्सिटी, मेलबर्न में ही हिंदी पढ़ाई जा रही है। हालाँकि दोनों विश्वविद्यालय संसाधन की कमी से जूझ रहे हैं। ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी के सीनियर लेक्चरर डॉ. पीटर फ्रीडलैंडर ने हिंदी-शिक्षण की दो कार्यशालाएँ भी आयोजित कीं। जबकि लॉ ट्रोब यूनिवर्सिटी में डॉ. इयन वुलफई हिंदी के प्राध्यापक हैं। पहले जिन विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती थी, उनमें से सिडनी विश्वविद्यालय और मोनाश, रॉयल मेलबर्न इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी में हिंदी की शिक्षा बंद कर दी गई। सिडनी यूनिवर्सिटी में भी हिंदी शिक्षण होता था पर करीब दस साल पहले बंद हो गया और उसके बाद यूनिवर्सिटी के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में हिंदी उपलब्ध थी, जो पिछले पाँच साल से बंद हो गई क्योंकि भारतीय अंग्रेज़ी बोल लेते हैं तो ऑस्ट्रेलिया के लोगों को हिंदी सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

न्यूज़ीलैंड में हिंदी -

भारतीय विश्व भर में बसे हुए हैं। विश्व के हर कोने में पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, टी.वी. और अनेक संस्थाएँ हिंदी के लिए काम कर रही हैं। न्यूज़ीलैंड में भी स्वाभाविक रूप से भारतीय अपनी भाषा एवं संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। एक तथ्य न्यूज़ीलैंड

को हिंदी जगत में विशेष स्थान देता है, इस 50 लाख की जनसंख्या वाले छोटे से देश ने इंटरनेट पर विश्व का पहला हिंदी प्रकाशन दिया।

वेब दुनिया एक पत्र-पत्रिका न होकर एक पोर्टल था, जिसमें अन्य साइट के लिंक्स इत्यादि भी थे, यथा उसे भारत का पहला हिंदी पोर्टल कहा गया। तकनीकी तौर पर यदि कहा जाए कि भारत-दर्शन (1997) इंटरनेट पर पहला हिंदी प्रकाशन था, दैनिक जागरण (1997) पहला पत्र था और वेब दुनिया (1999) पहला पोर्टल था, तो उचित होगा।

कुछ वर्षों के बाद बी.बी.सी. हिंदी जैसे मीडिया दिग्गजों ने भी वेब मीडिया की महत्ता को समझते हुए 2001 में अपना वेब संस्करण आरंभ किया।

न्यूज़ीलैंड से पहला हिंदी आलेख 1930 में 'विशाल भारत' के माध्यम से भारत में प्रकाशित हुआ था। उस समय न्यूज़ीलैंड में न तो हिंदी प्रकाशन की सुविधा थी और न ही पाठक वर्ग था। न्यूज़ीलैंड में नियमित हिंदी लेखन 90 के दशक से आरंभ होता है। यह 'द इंडियन टाइम्स' में 1992 में हस्तलिखित हिंदी रिपोर्टों के प्रकाशन से आरंभ होता है। यह समाचार-पत्र मूलतः अंग्रेज़ी में था, लेकिन कुछ समय तक इसमें आंशिक रूप में हिंदी का प्रकाशन होता रहा। इस समाचार-पत्र में रोहित कुमार 'हैप्पी' और स्व. महेंद्र सी. विनोद (जो फ़िजी के समाचार-पत्र शांति दूत के संपादक भी रह चुके थे) की हस्तलिपि में रिपोर्ट और रचनाएँ प्रकाशित हैं। इसके पश्चात् 1996 में भारत-दर्शन के रूप में पूर्णकालीन हिंदी प्रकाशन आरंभ हुआ।

अमेरिका में हिंदी -

अमेरिका में बोली जाने वाली अनेकों भाषाओं में 2016 के कम्यूनिटी सर्वे के अनुसार हिंदी 11वें स्थान पर आती है। परंतु अमेरिका में बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं में हिंदी प्रथम स्थान पर आती है। यहाँ के न्यायालयों, स्वास्थ्य विभाग और सुरक्षा विभाग में ही नहीं, बल्कि प्रत्येक विभाग में हिंदी के अनुवादक की भी नियुक्ति की जाती है, क्योंकि यहाँ रहने वाले हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है कि वह अपनी मातृभाषा बोलने वाले अनुवादक की माँग कर सकता है। यहाँ भारतीय बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं। इस कारण हिंदी बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक होनी चाहिए। परंतु भारतीयों के अंग्रेज़ी में पारंगत होने के कारण तथा भारत बहुभाषी देश होने के कारण, हिंदी को बहुत बढ़ावा नहीं मिल पाता है। 2017 के सर्वे के अनुसार 810,000 लोग हिंदी बोलते हैं। 3.6 मिलियन लोग अमेरिका में साउथ एशियन भाषाएँ बोलते हैं, जिनमें हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, गुजराती, बंगाली, मराठी, तमिल, तेलुगु इत्यादि भाषाएँ आती हैं। किंतु फिर भी हिंदी अपनी बढ़त बनाए हुए अमेरिका में प्रथम सोपान पर है। समस्त सरकारी सूचनाएँ, वोटिंग इत्यादि से संबंधित सूचनाएँ भी हिंदी में उपलब्ध होती हैं। काउन्टी की रिसोर्स गाइड का भी अन्य विदेशी भाषाओं के साथ-साथ हिंदी में भी अनुवाद होता है। कहना न होगा कि विविध भारतीय भाषाओं में हिंदी भाषा को ही अमेरिका में मान्यता मिली।

कुछ प्रांतों के शहरों में, बहुत-सी जगहों पर प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चस्तरीय हिंदी पठन-पाठन संबंधी व्यवस्था है, जहाँ प्राइवेट रूप से शनिवार-रविवार को हिंदी पढ़ाई जाती है। न्यूयॉर्क में 'यू.एस हिंदी' के नाम से आसपास के क्षेत्रों में विभिन्न स्थानों पर 4000 के लगभग विद्यार्थी हिंदी पढ़ते हैं और भारतीय संस्कृति से रूबरू होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी -

अंतर्राष्ट्रीय मंच पर हिंदी को लोकप्रिय बनाने और संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के दावे को मज़बूत करने के लिए इस परंपरा को जारी रखते हुए पूर्व विदेश मंत्री स्वर्गीय श्रीमती सुषमा स्वराज जी और वर्तमान प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी सहित कई नेताओं ने संयुक्त राष्ट्र संघ को हिंदी में संबोधित किया है। इनमें सितंबर 2014 में 69वें संयुक्त राष्ट्र संघ आमसभा में मा. प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी का हिंदी में संबोधन, सितंबर 2015 में संयुक्त राष्ट्र सतत विकास शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री जी का हिंदी में संबोधन, 2015, 2016 और 2017 में क्रमशः 70वें, 71वें और 72वें सत्र के दौरान हमारे विदेश मंत्रियों का हिंदी में संबोधन और सितंबर 2021 के दौरान 76वीं संयुक्त राष्ट्र महासभा में श्री नरेंद्र मोदी जी का हालिया संबोधन शामिल है। न्यूयॉर्क में भारत के स्थायी मिशन द्वारा इन संबोधनों को अंग्रेज़ी में संकलन करने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। संयुक्त राष्ट्र में हिंदी की मान्यता प्राप्त करने के प्रयासों को मज़बूत करने के लिए और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार और मॉरीशस सरकार ने मिलकर फ़रवरी 2008 में मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की थी। इसके अलावा विदेशों में भारतीय राजनयिकों द्वारा हिंदी को प्रचारित करने के प्रयास लगातार जारी हैं। भारत सरकार संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को उचित मान्यता दिलाने की दिशा में ऐसे अनेक प्रयास कर रही है।

बल्गारिया में हिंदी -

बल्गारिया में साठ के दशक में हिंदी का अध्यापन शुरू हुआ। आरंभिक तौर पर यहाँ सन् 1966 से हिंदी पढ़ाई जाने लगी और अनेक अतिथि प्राध्यापक सन् 1966 से लेकर वर्तमान तक यहाँ हिंदी अध्यापन के लिए आए। बल्गारिया में सोफ़िया विश्वविद्यालय के शास्त्रीय और आधुनिक भाषाशास्त्र संकाय के अंतर्गत पूर्वी भाषाओं और संस्कृतियों के केंद्र में भारत विद्या विभाग में हिंदी विषय का अध्यापन भारत अध्ययन के अंतर्गत किया जाता है।

अनेक विदेशी विद्वानों ने यहाँ भारत विद्या के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया। सन् 1982 में श्रीमती बोयानोवा ने हिंदी का अध्यापन सोफ़िया विश्वविद्यालय में आरंभ किया। सन् 1984 में पूर्वी भाषाओं और संस्कृतियों के केंद्र में सोफ़िया विश्वविद्यालय में भारत विद्या विभाग की विधिवत स्थापना हुई और बल्गारिया में उच्च शैक्षणिक स्तर पर हिंदी और भारतीय संस्कृति का अध्यापन आरंभ हुआ। तब से निरंतर यह विभाग हिंदी भाषा और साहित्य के अध्यापन व प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्रोफ़ेसर एमिल बोएव, जो पूर्वी भाषा और संस्कृतियों के अध्ययन केंद्र के संस्थापक थे, ने व्यावहारिक हिंदी के विभिन्न पाठ्यक्रमों को योजनाबद्ध तरीके से लागू करने में बहुत सहायता की थी।

बल्गारिया में हिंदी की फ़िल्में भी लोकप्रिय हैं, जो हिंदी भाषा को विस्तार देने का काम कर रही हैं। अनेक नायक, नायिकाएँ, जो हिंदी सिनेमा के पर्दे पर सक्रिय हैं, उनसे यहाँ के लोग भली-भाँति परिचित हैं। इसी प्रकार भारतीय खानपान, भारतीय योग-परंपरा और आयुर्वेद के प्रसार ने भी प्रकारांतर से हिंदी के विस्तार में योगदान दिया है। पूर्व-पश्चिम भारत विद्या प्रतिष्ठान द्वारा यहाँ 40 से अधिक हिंदी फ़िल्मों का बुल्गारियाई भाषा में अनुवाद भी कराया जा चुका है और इन हिंदी फ़िल्मों का प्रदर्शन भी होता है। हिंदी के अनेक टी.वी. सीरियल यहाँ लोकप्रिय रहे हैं, जैसे बालिका वधू, उतरन आदि। वर्तमान में भी हिंदी के सीरियल नियमित रूप से प्रसारित किए जाते हैं, जिन्हें बल्गारिया की बुज़ुर्ग महिलाएँ बड़ी रुचि से देखती हैं।

चीन में हिंदी -

चीन में स्नातक चार वर्षों का होता है, स्नातकोत्तर तीन वर्षों का होता है। हिंदी में स्नातक करने वाले विद्यार्थी पहले दो वर्ष बुनियादी हिंदी सीखते हैं, हिंदी व्याकरण, हिंदी श्रवण, मौखिक हिंदी आदि पढ़ते हैं, तृतीय वर्ष में वे भारत जाते हैं, जहाँ एक वर्ष वे हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के साथ साक्षात्कार करते हैं, जो उनके लिए बहुत ही अलग प्रकार का अनुभव होता है। भारत जाने से पहले वे मीडिया के माध्यम से ही भारत से परिचित हुए होते हैं, जिससे उनके मन में भारत के प्रति थोड़ी नकारात्मक छवि बैठ जाती है कि भारत महिलाओं के लिए सुरक्षित नहीं है, लेकिन भारत में एक साल रहने के दौरान उन्हें भारतीय समाज को नज़दीक से देखने का अवसर प्राप्त होता है, जिससे उनके मन में भारत के बारे में बैठी भ्रान्ति समाप्त हो जाती है। उन्हें भारत से अनकहा लगाव हो जाता है, जो उनके चीन वापस जाने के बाद भी अपनी ओर आकर्षित करता है, फलस्वरूप कई चीनी विद्यार्थी स्नातकोत्तर करने तथा नौकरी करने भारत चले जाते हैं। तृतीय वर्ष भारत जाने के लिए चीनी विद्यार्थियों को चीनी सरकार तथा भारतीय सरकार से छात्रवृति मिलती है, यदि किसी कारणवश किसी विद्यार्थी को छात्रवृत्ति नहीं मिलती है, तो वे स्वयं के खर्च से भारत चले जाते हैं। चतुर्थ वर्ष में चीनी विद्यार्थी भारत से वापस आने के बाद भारत-चीन सांस्कृतिक संबंध का इतिहास, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, व्यावसायिक हिंदी, हिंदी-चीनी अनुवाद, हिंदी साहित्य आदि विषय पढ़ते हैं। साथ ही, पहले सत्र में हिंदी में एक लघु शोध निबंध लिखते हैं। शोध निबंध का विषय भारतीय साहित्य, समाज, भारत-चीन संबंध आदि से संबंधित होता है। दूसरे सत्र में विद्यार्थी बाहर किसी कंपनी में कार्यानुभव लेते हैं। इस प्रकार चतुर्थ वर्ष में विद्यार्थी हिंदी में शोध अनुभव भी ले लेते हैं तथा कार्यानुभव भी, जो उनके स्नातक होने के बाद उनके भविष्य-निर्धारण में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है।

थाईलैंड में हिंदी -

वर्तमान में विश्व फलक पर हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार बहुत तेज़ी से होने लगा है। यह मधुर भाषा विश्व भाषा के रूप में अग्रसर होती जा रही है। अत्यंत प्रसन्नता की बात है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के सुंदर देश थाईलैंड में हिंदी भाषा का सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर विकास हो रहा है। थाईलैंड में रहने वाले भारतीय और थाई लोग देश की सभ्यता और संस्कृति के साथ-साथ हिंदी भाषा के प्रति भी सजग हो रहे हैं। इस संदर्भ में हिंदी चलचित्र एवं सीरियलों की महती भूमिका है। यहाँ के लोगों में खासतौर से युवा पीढ़ी में हिंदी चलचित्रों के प्रभाव से हिंदी के प्रति लगाव और श्रद्धा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बॉलीवुड सिनेमा में, उसके गाने में नृत्य के प्रति दीवानगी चरम सीमा पर है। घर-घर में थाई लोग हिंदी चलचित्र

बड़े शौक से देखते हैं, जैसे अशोक, चंद्रगुप्त, नागिन, महाभारत और रामायण सीरियल बड़े प्रसिद्ध हैं। इसी तरह भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं, रीति- रिवाज़ों, देवी-देवताओं, मेहँदी, कुमकुम, आरती और प्रसाद आदि के बारे में उनके जिज्ञासापूर्ण प्रश्न बड़ी खुशी और आत्मीयता से पूछे जाते हैं, जिसका उत्तर पाकर उसमें निहित सुंदर भावों को सुनकर हिंदी भाषा के अध्ययन के प्रति उनका रुझान बढ़ जाता है।

इसी का परिणाम है कि थाईलैंड में कई विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है, जैसे सिलपाकॉर्न विश्वविद्यालय, महाचुलालोंगकोर्न राज विद्यालय, बौद्ध भिक्षु विश्वविद्यालय, प्रिदीपानो मान्ग धमासास्त्र विश्वविद्यालय, चुलालोंगकोर्न विश्वविद्यालय, कसासास्त्र विश्वविद्यालय और चिंयागमाई विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि लेने के बाद वे स्नातकोत्तर और पी-एच.डी. करने के लिए भारत जाते हैं।

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी -

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के बीज उन भारतीयों ने बोए, जो नेटाल क्षेत्र के गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाए गए थे। सन् 1860 में नेटाल में गन्ने के खेतों में काम करने वालों की कमी हो गई थी। स्थानीय जूलू लोगों को काम पर रखा तो गया, लेकिन बात बनी नहीं। जूलू अपने आदिवासी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर थे और इस तरह की कड़ी मेहनत वाले काम करने की उन्हें न इच्छा थी, न आवश्यकता। केप कॉलोनी के गवर्नर, सर जॉर्जग्रे ने देखा था कि मॉरीशस के गन्ने के खेतों में भारतीय अनुबंधित श्रमिकों का काम अच्छा था। उन्होंने नेटाल के खेतों में भी भारतीय अनुबंधित श्रमिकों को लाने का सुझाव दिया। नेटाल खेतों के मालिक तैयार हो गए। 'टूटो' नाम का जहाज़ 12 अक्तूबर, 1860 को मद्रास के बंदरगाह से चलकर 16 नवंबर, 1860 को दक्षिण अफ़्रीका के उस समय पोर्ट-नेटाल कहलाने वाले और आज के डरबन शहर पहुँचा। जहाज़ में 342 भारतीय थे। दस दिन बाद भारतीयों का दूसरा जहाज़ दक्षिण अफ़्रीका पहुँचा। 'एस.एस. बेलवडेयर' कलकत्ता से 4 अक्तूबर, 1860 को चलकर 26 नवंबर को डरबन पहुँचा। उसमें 310 यात्री थे। सन् 1911 तक भारतीय गिरमिटिया मज़दूर मद्रास, बॉम्बे और कलकत्ता से एक सुनहरे भविष्य के सपने के साथ दक्षिण अफ़्रीका इसी तरह आते रहे। दक्षिण भारत के गिरमिटिया मज़दूर तमिल और तेलुगू बोलते थे और उत्तर भारत से गए अवधी और भोजपुरी बोलते थे। आने वालों में अधिकांश एजेंटों के बहलाने-फुसलाने और उनकी मनगढ़ंत बातों को सच मानकर आने वाले थे। पचास वर्षों में इन भारतीयों की संख्या लगभग दो लाख हो गई (बाद में कोयले की खदानों में और रेल की पटरियाँ बिछाने का काम भी इन्होंने ही किया)। अब तमिल, तेलुगू, अवधी और भोजपुरी के साथ इनमें अन्य भारतीय भाषाएँ, जैसे गुजराती, कन्नड, मलयालम बोलनेवाले भी दक्षिण अफ़्रीका में जुड़ गए।

श्रीलंका में हिंदी -

श्रीलंका में सरकारी संस्थाओं के रूप में नौ प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिंदी को प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम, स्नातक व स्नातकोत्तर के स्तर (बी.ए., एम. फिल., पी-एच.डी.) पर पढ़ाया जाता है तथा लगभग 50 से अधिक स्कूलों में हिंदी भाषा को एक मुख्य विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। साथ-साथ, श्रीलंका में राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित एवं राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त एक ही संस्था 'राष्ट्र भाषा शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान' जिसके द्वारा श्रीलंका की राजभाषा नीति को कार्यान्वित किया जाता है, में भी हिंदी को एक विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है। इस संस्था द्वारा श्रीलंका के सभी हिंदी प्रेमियों को हिंदी का अध्ययन करने का अवसर दिया गया है। इसके अतिरिक्त देश भर में स्थापित स्वैच्छिक व निजी संस्थाओं में भी हिंदी से संबंधित अध्ययन व अध्यापन-कार्य हो रहे हैं, जिनमें से कुछ 20 सालों से भी अधिक पुराने हैं।

फ़िजी में हिंदी -

फ़िजी, प्रशांत महासागर का स्वर्ग कहलाता है। 'मेरी शान मेरी हिंदी महान' यह था, उन फ़िजी भारतीय वंशजों का नारा, जिन्हें अपनी जन्मभूमि भारत से लगभग बारह हज़ार किलोमीटर दूर एक ऐसे द्वीप में, बंधुआ मज़दूर बनाकर छोड़ दिया था, जिसके विषय में उन्होंने कभी स्वप्न में भी कोई कल्पना न की थी। आज भी फ़िजी भारतीयों के लिए मई का महीना बहुत ही यादगार महीना है, क्योंकि 14 मई, 1879 को प्रथम जहाज़ भारतीय पूर्वजों को लेकर फ़िजी के समुद्री-तट पर आया था और यहीं से शुरू हुई फ़िजी में भारतीयों के नए जीवन की नई कहानी, हिंदी के संघर्ष की कहानी तथा फ़िजी में हिंदी साहित्य और संस्कृति की नींव डालने की विचारधारा। आज 143 वर्षों के उपरांत भी भारतीय वंशजों की यादें तरोताज़ा हैं।

भारत के और भी अन्य प्रांतों के लोगों को फ़िजी लाया गया था, जिनकी भाषा-बोलियाँ अलग-अलग थीं। इन आने वालों में

अधिकतर ग्रामीण इलाके के लोग थे, सीधे-साधे जो एक-दूसरे की भाषा को समझते न थे। कहावत है 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' अतः जब अपने दुख-सुख में दूसरों को शामिल करने की आवश्यकता हुई, तब एक मिश्रित भाषा 'फ़िजी बात' का आविष्कार हुआ और कालांतर में यही बोली 'फ़िजी हिंदी' कहलाई। 37 वर्षों तक 87 जहाज़ भारतीय मज़दूरों को फ़िजी के समुद्री-तट पर उतारते रहे। उस समय उनको पहला सुझाव यही दिया जाता था कि 'फ़िजी बात' सीखो! आज फ़िजी हिंदी का अपना पाठ्यक्रम भी है, जो रोमन लिपि में तैयार किया गया है और इसके माध्यम से गैर-भारतीय बच्चों को हिंदी में बात करना और हिंदू संस्कृति के सरल विषयों को समझना और प्रयोग में लाना सिखाया जाता है। फ़िजी हिंदी में व्याकरण के नियमों का प्रावधान न के बराबर है। जैसे-कौनची करता, का जाता और कौनची मँगता आदि बात-चीत का सरल माध्यम है।

फ़िजी में हिंदी भाषा, समाज और साहित्य के संघर्ष को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

पहला चरण : संघर्ष काल-1879-1920

दूसरा चरण : जागृति काल-1920-1950

तीसरा चरण : प्रगति काल-1950-अब तक

फ़िजियन हिंदी का शब्द-भंडार मानक हिंदी, (अवधी), अंग्रेज़ी और देशज शब्दों के मेल से बना है। कुछ प्रयोग भिन्न हैं, जैसे- कौन ची (कौन चीज), वस्तिन (वास्ते), संधे (संगे), पतरा (पतला) आदि। कुछ क्रियाएँ भी अलग दिखाई देती हैं, जैसे-जाये सकेगा (जा सकेगा), आये सको (आ सको)। 'रहा' की जगह 'था' का प्रयोग। जैसे- ऊ गया रहा (वह गया था), ऊ खरीदिस (उसने खरीदा), इत्यादि। यह ज्ञातव्य है कि अंग्रेज़ी के शब्द फ़िजी में दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं। वस्तुतः फ़िजियन हिंदी बोलचाल की भाषा के रूप में तो काफ़ी लोकप्रिय है, किन्तु कामकाजी भाषा, राजभाषा और संचार भाषा के रूप में उसे संघर्ष करना है। इस भाषा में एक मिठास है, जैसे- इस कहरवा लोकगीत की पंक्तियों में देखिए-

'पुरबा चली रे बयरिया गेंदवा गम-गम गमके ना।
हमके माथे की टिकुलिया रतिया चम-चम चमके ना।
हमरे हाथे के कँगनवा रतिया खन खन खनके ना।
हमरे गोड़े की पयलिया रतिया छम-छम छमके ना।'

ऐसी मिठास न अंग्रेज़ी में मिल सकती है, न क्रियोली में। इसीलिए वहाँ हिंदी अपरिहार्य बनी हुई है और इसीलिए उसका भविष्य उज्ज्वल है।

जर्मनी में हिंदी -

जर्मनी में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन का इतिहास लगभग 1887 से मिलता है, मार्टिन हौग (1827-1876) और एर्नस्ट ट्रम्प (1828-1885) जैसे विद्वान भारत में रह रहे थे और जॉर्ज ग्रियर्सन (1851-1941), ऑगस्टुस रूडोल्फ होर्नेले (1841-1918), सैम्यूअल हेनरी कैलॉग (1830-1840), फ्रेडेरिक पिंकोट्ट (1836-1892) जैसे यूरोपियन विद्वान हिंदी का सर्वेक्षण और दस्तावेज़ीकरण कर रहे थे।

जर्मनी में उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक में भारतीय एवं पूर्व की अन्य भाषाओं के अध्ययन पर राजनीतिक एवं आर्थिक विचार किया जा रहा था। परिणामस्वरूप 1887 में हिंदुस्तानी और गुजराती भारतीय भाषाओं के साथ ही चीनी, जापानी, फ़ारसी और अरबी भाषाओं का शिक्षण ऑरिएंटल इंस्टिट्यूट में विधिवत शुरू किया गया। हिंदुस्तानी एवं गुजराती के शिक्षण की शुरुआत बर्लिन ऑरिएंटल इंस्टिट्यूट में 1888 में हुई। आमतौर पर यह माना जाता है कि चूँकि जर्मनी का भारतीय उपमहाद्वीप में प्रत्यक्ष रूप से इंग्लैंड, फ़्रांस, नीदरलैंड और पुर्तगाल के जैसे कोई उपनिवेशवादी इरादा नहीं था, अतः जर्मन विद्वानों ने विशेषकर ईसाई मिशनरियों ने अपनी ऊर्जा भारतीय भाषाओं, साहित्य, दर्शनशास्त्र और धर्म संबंधी अध्ययन एवं शोध कार्यों में लगाई और परिणामस्वरूप जर्मनी भारत-विद्या पर कार्य करनेवाले देशों की अग्रगण्य श्रेणी में आ गया।

जर्मन विश्वविद्यालयों में प्रथम भारत-विद्यापीठ की स्थापना बॉन विश्वविद्यालय में 1818 में की गई, जिसके पहले प्रोफ़ेसर औगुस्ट विल्हेल्म फॉन श्लेगल थे। प्रोफ़ेसर श्लेगल ने भगवद्गीता का जर्मन अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी पुस्तक 'भारतीयों की भाषा एवं उनकी विद्वत्ता' सभी भारतविदों के लिए मुख्य संदर्भ ग्रंथों में से एक है। उन्नीसवीं सदी की प्रथम अर्ध-शताब्दी में फ्रांत्स बॉप्प ने संस्कृत, जर्मेनिक एवं ईरानी के भाषा वैज्ञानिक संबंध को स्थापित करके भारतीय भाषाओं एवं साहित्य में यूरोपीय विद्वानों की रुचि को और भी प्रगाढ़ किया, जिसके फलस्वरूप इस दिशा में तुलनात्मक अध्ययन को दिशा मिल पाई। आधुनिक भारतीय साहित्य की ओर यूरोपीय विद्वानों का ध्यान मुख्यतः गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर को 1913 में नोबेल पुरस्कार मिलने के पश्चात् ही गया। इसी के

माध्यम से शास्त्रीय भारतीय साहित्य के समानांतर आधुनिक भारतीय साहित्य की जीवंतता, स्पष्टता, निरंतरता एवं परंपरागत साहित्य की सृजनात्मकता के स्वरूप की ओर यूरोपीय विद्वानों का ध्यान गया। हिंदी (हिंदुस्तानी) का व्यवस्थित एवं अनुशासनात्मक अध्यापन लगभग बीसवीं सदी के दूसरे दशक से शुरू हो पाया और 1980 तक आते-आते हिंदी के शिक्षण का विस्तार जर्मनी के सोलह विश्वविद्यालयों में हो गया था।

सूरीनाम में हिंदी -

सूरीनाम की भाषा को सरनामी या सरनामी हिंदुस्तानी कहा जाता है। इसमें कई बोलियों का मिश्रण है, मुख्यतः अवधी, भोजपुरी, मगही और उर्दू, का। डच, जावानीज, अंग्रेज़ी आदि का भी प्रभाव है। सूरीनाम में कुछ जन-जातियाँ पहले से रह रही थीं, जैसे बुश, नीग्रो, क्रियोल, जावानीज आदि। 1876 से 1916 ई. के बीच वहाँ भारतीय गिरमिटिया मज़दूर पहुँचे। तब वहाँ डच-शासन था। धीरे-धीरे भारतीयों का बाहुल्य हो गया। इनकी भाषा को 'कुली भाषा' नाम दिया गया। कालक्रम में इनकी सरनामी को सरकारी मान्यता प्राप्त हो गई। यों, सूरीनाम में सोलह मातृभाषाएँ हैं। डच वहाँ की राष्ट्रभाषा है। सम्प्रति इस देश में अफ़्रीकी, चीनी, इण्डोनेशियन तथा भारतीय मूल के नागरिक रह रहे हैं। हाँ, बहुमत भारतीयों का है। ये भारतीय हॉलैण्ड- इंग्लैण्ड समझौते के अंतर्गत आकाठी (एजेन्टों) के माध्यम से 130 वर्षों में भारत से लाए गए थे। कुछ सूर्यवंशी रेमेटिक रेड इण्डियन पहले से रह रहे थे। सूरीनाम की आबादी लगभग साढ़े चार लाख है। वहाँ की भाषा में 40 प्रतिशत डच के शब्द हैं। समय-समय पर वहाँ भारतीय मूल के लोग राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और मंत्री चुने गए। इन भारतवंशियों ने बहुत बड़ी संख्या में साहित्य की रचना की है। वहाँ से हिंदी में समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकली हैं और निकल रही हैं। इनकी अपनी कई साहित्यिक संस्थाएँ हैं। आर्य समाज, सनातन धर्म सभा आदि के माध्यम से वहाँ हिंदी की काफ़ी प्रगति हुई है। गाँवों में भी हिंदी-पाठशालाएँ चल रही हैं।

नेटाली हिंदी -

भारत के 'गिरमिटिया' मज़दूर एक करारनामे के तहत डेढ़ सौ वर्ष पूर्व दक्षिण अफ़्रीका गए। वहाँ नेटाल, केप, फ़्री स्टेट, डरबन प्रिटोरिया आदि में उन्हें बसाया गया। नेटाल में वे जो भाषा बोलते थे, उस पर कालक्रम में नेटाली का प्रभाव पड़ा। इन दिनों उसे 'नेटाली हिंदी' कहा जाता है। नेटाल में आर्य समाज ने हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनमें सर्वाधिक योगदान रहा- स्वामी भवानी दयाल सन्यासी का। पं. नरदेव वेदालंकार ने वहाँ 1949 में 'हिंदी संघ' की स्थापना की।

इस बीच भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप, नेटाली के स्थान पर मानक हिंदी को अपनाया गया। इस समय भी वहाँ राजकीय विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर हिंदी की पढ़ाई होती है। दक्षिण अफ़्रीका में इस बीच भोजपुरी गीतों का प्रचलन बढ़ा है। इन्हें 'भोजपुरी चटनी' कहा जाता है। विवाह के अवसर पर इन गायकों की बहुत माँग होती है। वे पश्चिमी डिस्को की सुर ताल पर भोजपुरी लोकगीत गाते हैं।

त्रिनिदाद में हिंदी -

त्रिनिदाद और टोबैगो में हिंदी को एक और बहुत ही रोचक ढंग से जीवित रखा जा रहा है। एक बार यहाँ के एक स्थानीय कलाकार श्री शाम रामलाल जी ने भारतीय उच्चायोग के लिए एक "बैठक गाना" गाया। हो सकता है कि कुछ लोगों को बैठक गाना के बारे में जानकारी न हो, यह कैरिबियाई देशों में काफ़ी प्रचलित गायन पद्धति है, जिसकी उत्पत्ति भारत की भोजपुरी भक्ति गायन परंपरा से हुई है। रामलाल जी ने हिंदी भाषा में यह बताया कि वे तीसरी पीढ़ी के इंडो-ट्रिनिडाडियन हैं, जिन्होंने अनोखे तरीके से इस भारतीय गायन परंपरा और हिंदी भाषा को जीवित रखा है। इतना ही नहीं वे यहाँ की अगली पीढ़ी को भी इस गायन परंपरा को आगे बढ़ाने की प्रेरणा दे रहे हैं। इसी प्रकार यहाँ प्रचलित "चटनी" संगीत भी भारतीय गायन पद्धति का ही कोई मिश्रित रूप है, जो सभी समुदायों और वर्गों के बीच काफ़ी लोकप्रिय है।

हिंदी-शिक्षण के लिए सबसे सुविधाजनक चैनल स्कूल ही होते हैं, परंतु दुर्भाग्यवश हिंदी यहाँ के स्कूली पाठ्यक्रम का अब तक हिस्सा नहीं बन पाई है। इसके लिए एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली का विकास होना आवश्यक है, जो अधिकतम समावेशी और मानव संसाधन विकास के अनुकूल हो। इस प्रणाली के तहत एक सुसंगत, सहिष्णु, संवेदनशील और सूचित समाज के निर्माण के लिए भाषा को महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

कनाडा में हिंदी -

कनाडा का नाम भारत में और विशेष रूप से पंजाब प्रांत में बहुत आत्मीयता से लिया जाता है। ऐसा लगता है कि पंजाब के हर

तीसरे घर से कोई-न-कोई कनाडा में रहता है या जाने का इंतज़ार कर रहा है। इस तरह कनाडा अपने में 'छोटा पंजाब और छोटा भारत' बसाए रखने के लिए प्रसिद्ध है। सन् 1900 से भारतीयों का कनाडा आना प्रारंभ हुआ था, पर 1966 तक बहुत ही कम भारतीय यहाँ रहते थे, जो मूलतः पंजाबी थे। इस हिसाब से पंजाबी भाषा यहाँ की प्रमुख आप्रवासी भाषाओं में नेतृत्व करती दिखाई देती है। 1966 के बाद अन्य प्रांतों के लोगों की संख्या भी बढ़नी शुरू हुई। पिछले वर्षों के आँकड़ों की तुलना करने पर दिखाई देता है कि 2011 से 2016 के बीच हिंदी बोलने वालों की संख्या में 26.0 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है, जबकि पंजाबी बोलने वालों की 18.2%, उर्दू बोलने वालों की 25% और गुजराती बोलने वालों की संख्या में 20.9% की बढ़ोतरी हुई है। (आँकड़े-साभार-statcan.gc.ca)

नीदरलैंड में हिंदी -

यहाँ भारी संख्या में भारतवंशी है- सूरीनामी। लगभग 180,000 से ज्यादा भारतवंशी सूरीनामी नीदरलैंड में रहते हैं और जो अपने घर में डच के अलावा भोजपुरी/अवधी भाषा भी बोलते हैं। भारतीय संस्कृति, धर्म और भाषा सूरीनामी संस्कृति में समाहित है। भारतवंशियों ने अपनी एकजुटता के लिए हिंदुस्तानी पठन-पाठन की परंपरा आरंभ की। सनातन धर्म की कई संस्थाएँ गठित की गई, जो भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं (हिंदी सहित) के इर्द-गिर्द केन्द्रित थी। प्रवासी भारतीयों से भी बहुत पहले इन भारतवंशियों द्वारा हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ हो गया था। उनकी हिंदी में विशेष रुचि रही। इन सूरीनामियों ने अपने पूर्वजों से हिंदी के गीत और कहानी सुने हैं, इनके त्योहारों पर हिंदी (भोजपुरी) गीत संगीत बजते हैं। इस तरह भारतवंशियों के प्रभाव में हिंदी के प्रचार-प्रसार की नींव रखी गई। 14 सितम्बर को यहाँ हिंदी दिवस मनाया जाता है, इस अवसर पर सूरीनामी संस्थाओं में वाद-विवाद, भाषण, निबंध लेखन आदि कार्यक्रम होते हैं।

यहाँ के उजाला रेडियो और आमोर रेडियो पर हिंदी गाने बजते हैं। कुछ प्रभावशाली सरनामी राजनीतिज्ञों ने भोजपुरी भाषा में काव्य-संग्रह भी लिखे हैं। नींदरलैंड में कई मंदिर हैं, जहाँ हिंदी का बोलबाला है, इन मंदिरों में भारत से आए पंडितों ने संस्कृति के साथ हिंदी की अलख जगा रखी है।

एक भाषा का सर्वमान्य गुण उसके बोलने-समझने वालों के विचारों-भावों को व्यक्त करना होता है। उसकी अभिव्यंजना-शक्ति एवं शब्द-संपदा उसकी क्षमता के मापदंड होते हैं। इस दृष्टि से कोई भी भाषा अविकसित नहीं मानी जा सकती। जहाँ तक हिंदी भाषा का संबंध है, उसके बारे में प्रसिद्ध भाषाशास्त्री जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने स्पष्ट रूप से लिखा था कि 'देशज शब्दों का एक विशाल भंडार उसके पास है और सूक्ष्म विचारों (एब्स्ट्रेक्ट टर्म्स) को व्यक्त करने के लिए पूर्ण सूक्ष्म तंत्र है।' ग्रियर्सन का उदाहरण इसलिए दिया है जिससे पूर्वाग्रह न लगे; वैसे डॉ. धीरेंद्र वर्मा और पं. किशोरीदास वाजपेयी जैसे भाषाशास्त्रियों के कथन प्रमाणित करते हैं कि हिंदी की क्षमता किसी भी विकसित भाषा से कम नहीं है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. स्मारिका, 10वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, भोपाल, 2015
2. राजभाषा भारती, अंक-163, जनवरी 2023
3. स्मारिका, 12 वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, फिज़ी
4. गगनांचल, अंक 46, जनवरी- अप्रैल 2023
5. स्मारिका, 12 वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, फिज़ी, 2023

khemsingh.daheriya@gmail.com

हिंदी के वैश्विक भाषा बनने की चुनौतियाँ

सपना चमड़िया
दिल्ली, भारत

दुनिया भर में भाषाओं का विकास किस प्रक्रिया के तहत हुआ है, यह अध्ययन दिलचस्प होने के साथ प्रेरणादायक होता है। यह किसी भी भाषा को समृद्ध करने के विमर्शों में सहायक होता है। उदाहरण के तौर पर हम फ्रेंच भाषा को ले सकते हैं।"बारहवीं शताब्दी में फ्रेंच साहित्य का प्रादुर्भाव स्वयं एक विस्मय की बात है, क्योंकि फ्रेंच कोई प्राचीन भाषा नहीं है। मूल केल्टिक निवासियों ने रोमन सैनिकों तथा फ्रांस में बसे हुए रोमन निवासियों की बोलचाल की लैटिन भाषा को रूपान्तरित किया और इस प्रकार बोलचाल का एक स्थानीय माध्यम बनकर प्रस्तुत हो गया। परंतु कई सदियों तक इस माध्यम का जो रूप था, उसे भाषा का नाम नहीं दिया जा सकता। स्थान भेद के अनुसार बोलचाल में विभिन्नता स्वाभाविक ही थी, परंतु धीरे-धीरे दो मुख्य जनपद-भाषाएँ संगठित हो उठीं- एक दक्षिणी और एक उत्तरी। इन जनपद-भाषाओं को सामूहिक रूप से 'रोमांस' का नाम दिया जाता है। विशेषकर राजनीतिक कारणों से ही रोमांस की उत्तर शाखा लांगदुई का प्राधान्य और प्रभाव बढ़ता गया और कालक्रम में वही फ्रांस की राष्ट्रीय भाषा बन गई। फ्रेंच साहित्य की यही भाषा है"।

फ्रेंच का विकास जिस गति से हुआ है, उसके आधारों की जानकारी इस तथ्य से मिलती है।"बाहरवीं सदी में उस साहित्य की कली निकली और बीसवीं शताब्दी में एक प्रस्फुटित पुष्प बनकर अपने सौरभ से सारे विश्व को उसने आमोदित कर दिया। आज भी उसकी प्रतिभा उज्ज्वल ही दिखाई देती है। फ्रेंच साहित्य केवल फ्रांस का ही नहीं, बल्कि पूरे यूरोप का साहित्य है और यूरोप का कोई भी ऐसा विचार या भाव नहीं है, जिसे फ्रेंच साहित्य में किसी-न-किसी समय, कहीं-न-कहीं स्थान न मिला हो।"

यहाँ फ्रेंच व दुनिया की कई भाषाओं की तरह हिंदी के बनने और उसके विकास की यात्रा को भी देखा जाना दिलचस्प है। मूल रूप से उर्दू में लिखने वाले बालमुकुंद गुप्त स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी के लिए उस समय सक्रिय हुए, जब हिंदी काव्य विधा की सीमाओं को लाँघ रही थी और गद्य विधा को विकसित करने की प्रक्रिया से जूझ रही थी। उल्लेखनीय है कि गद्य की पहली पोथी सन् 1799 ई. में लिखी गई थी। सन् 1802 ई. में जब दिल्ली में 'बागोबहार', नाम की पोथी तैयार हुई, तब गद्य की चर्चा कुछ बढ़ी। इसका महत्त्व 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के लेखक रामचंद्र शुक्ल की इन पंक्तियों से जाना जा सकता है। "भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी काव्य को केवल नए-नए विषयों की ओर ही उन्मुख किया, उसके भीतर किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया।"

किसी भाषा के भीतर विधाओं का विस्तार और विकास में वही नियम व प्रक्रियाएँ गतिशील रहती हैं, जिस तरह से भाषा के बनने और उसके विकसित होने की प्रक्रियाएँ सक्रिय रहती हैं। स्वतंत्रता-आंदोलन के बीच उभरे हिंदी के मुखर नेतृत्व बालमुकुंद गुप्त ने 'हिंदी भाषा' नामक पुस्तिका लिखी है। वे हिंदी भाषा का इतिहास लिख रहे थे और इसका एक प्रारूप भी तैयार कर लिया था, लेकिन वे उसे पूरा नहीं कर सके। लेकिन हिंदी भाषा को लेकर दो लेख लिखे। वह इस पुस्तिका में शामिल है। बालमुकुंद गुप्त लिखते हैं कि "वर्तमान हिंदी भाषा की जन्मभूमि दिल्ली है। वहीं ब्रज-भाषा से वह उत्पन्न हुई और वहीं उसका नाम हिंदी रखा गया। आरंभ में, उसका नाम रेख़्ता पड़ा था। बहुत दिनों तक यही नाम रहा, पीछे हिंदी कहलाई। कुछ और पीछे इसका नाम उर्दू हुआ। अब फ़ारसी वेष में अपना उर्दू नाम ज्यों-का-त्यों बना हुआ रखकर देवनागरी वस्त्रों में हिंदी भाषा कहलाती है।"

इसके साथ उन्होंने यह लिखते हुए उत्साह महसूस किया कि "हिंदी के जन्म के समय उसकी माता ब्रजभाषा खाली भाषा कहलाती थी, क्योंकि वही उस समय उत्तर भारत की भाषा थी, पर बेटी (हिंदी) का प्रताप शीघ्र ही इतना बढ़ा कि माता के नाम के साथ ब्रज शब्द जोड़ने की आवश्यकता पड़ी, क्योंकि कुछ बड़ी होकर बेटी भारतवर्ष की प्रधान भाषा बन गई और माता केवल एक प्रांत की भाषा रह गई। अब माता ब्रजभाषा और पुत्री हिंदी भाषा कहलाती है।"

हिंदी के बनने के इतिहास में जो प्रक्रिया थी, उसके बारे में गुप्त जी के इस लेख में यह उल्लेख मिलता है कि यद्यपि हिंदी की नींव बहुत दिनों से पड़ गई थी, तथापि इसका जन्मकाल शाहजहाँ के समय से माना जाता है। मुगल सम्राट शाहजहाँ के बसाए शाहजहानाबाद के बाज़ार में इसका जन्म हुआ, कुछ दिनों तक वह निरी बाज़ारी भाषा बनी रही। बाज़ार में जन्म ग्रहण करने से ही इसका नाम उर्दू हुआ। उर्दू तुर्की भाषा का शब्द है। तुर्की में उर्दू

लश्कर या छावनी के बाज़ार को कहते हैं। शाहजहानी लश्कर के बाज़ार में उत्पन्न होने के कारण जन्म-स्थान के नाम पर उसका नाम उर्दू हुआ।

बालमुकुंद गुप्त के अनुसार उसका नाम हिंदी भी मुसलमानों ने रखा हुआ है। हिंदी फ़ारसी भाषा का शब्द है। उसका अर्थ है हिन्द से संबंध रखने वाली, अर्थात् हिंदुस्तान की भाषा। ब्रजभाषा में फ़ारसी, अरबी, तुर्की आदि भाषाओं के मिलने से हिंदी की सृष्टि हुई। उक्त तीनों भाषाओं को विजेता मुसलमान अपने देशों से अपने साथ भारतवर्ष लाए थे। सैकड़ों साल तक मुसलमान इस देश में फ़ारसी बोलते रहे। फ़ारिस के विजेताओं का ही इस देश में अधिक बल रहा है। अरबी, तुर्की बोलने वाले बहुत कम थे। जब इन लोगों की कई पीढ़ियाँ इस देश में बस गईं, तब इस देश की भाषा का भी उन पर प्रभाव पड़ा। भारत की भाषा उनकी भाषा में मिलने लगी और उनकी भाषा भारत की भाषा में युक्त होने लगी। जिस समय यह मेल होने लगा था, उसे अब छः सौ वर्ष से अधिक हो गए। आरंभ में, उक्त मेलजोल सामान्य-सा था। धीरे-धीरे इतना बढ़ा कि फ़ारसी और ब्रजभाषा दोनों के संयोग से एक तीसरी भाषा उत्पन्न हो गई।

फ़्रेंच और हिंदी के बनने और विकसित होने में एक समानता यह दिखती है कि भिन्न पृष्ठभूमि के सामाजिक वर्गों के संसर्ग और भिन्न संस्कृतियों के बीच मेलमोल का बढ़ना और एक-दूसरे में गुँथना इनका आधार है। इसे भाषा की सृजन-संस्कृति कहा जा सकता है। सामाजिक वर्गों की संस्कृतियों के मेलजोल में एक नई भाषा का सृजन समानांतर स्तर पर सक्रिय रहता है। लेकिन संस्कृतियों के मेलजोल को बेहद संवेदनशील होकर देखना होता है। मेलजोल भाषा के ज़रिए सामाजिक वर्गों और उसकी संस्कृतियों के वर्चस्व को लेकर भी दिख सकता है, लेकिन दूसरी तरफ़ यह मेलजोल एक भाषा को विकसित करता है।

जैसे भारत में सबसे बड़ी और प्रभावशाली मानी जाने वाली सरकारी नौकरियों के लिए परीक्षार्थियों की तैयारी 'हिंगलिश' में कराई जाती है और इसके लिए बाकायदा समाचार-पत्रों में पहले पूरे पृष्ठ के विज्ञापन धड़ल्ले से प्रकाशित होते हैं। विज्ञापनों में हिंदी और इंग्लिश के अलावा हिंगलिश एक तीसरी भाषा के रूप में परीक्षा की तैयारी के लिए इस्तेमाल में लाई जाती है। समाज में भाषा जिस रूप में बनती है, उसका प्रभाव सरकार और सरकारी ढाँचों पर भी पड़ता है। भारतीय लोकतंत्र की सर्वोच्च संस्था संसद की कार्यवाहियों में हिंदी में लिखी जाने वाली कार्यवाहियों में 'हिंगलिश' का इस्तेमाल धड़ल्ले से होने लगा है। 2004 में केन्द्र में मनमोहन सिंह की सरकार थी। उस दौरान गृहमंत्री, जोकि राजभाषा विभाग के भी मंत्री होते हैं, पी चिदंबरम ने बाकायदा इसके लिए एक पत्र भी जारी किया था। यह हिंगलिश की सरकारी तौर पर स्वीकृति कही जा सकती है, लेकिन क्या हिंगलिश कोई भाषा हो सकती है? पहला सवाल तो यह है। एक भाषा में दूसरे शब्दों का पैंबद क्या भाषा के बनने की सामाजिक प्रक्रिया की शर्तों को पूरा करती है? हिंदी और फ़्रेंच के निर्माण में हम यह पाते हैं कि शब्दों की घुसपैठ से वे नहीं बनी हैं। दूसरा सवाल यह हो सकता है कि क्या हिंदी के वैश्विक भाषा बनने की सामाजिक प्रक्रिया में कोई गतिरोध या कहें कि एक जड़ता की स्थिति लंबे समय से बनी हुई है, इसीलिए हिंगलिश से उसका स्थानापन्न करने की कोशिश की जा रही है? क्या यह संभव है? मेरा जवाब तो नहीं में है। इस परिप्रेक्ष्य में हमें कुछ मूलभूत बातें समझने की कोशिश करनी होगी।

यह स्थापित तथ्य है कि जिस तरह से भूगोल, धर्म, जाति हम अर्जित नहीं करते, हमें जन्म से ही अनायास यह सब कुछ हासिल हो जाता है, उसी तरह जन्म से ही एक या दो भाषाओं का समाज हम पा लेते हैं। एक भाषाई परिवेश हमारे आस-पास होता है और हमारा रचाव-बसाव उसी भाषाई-परिवेश में आकार पाता है। इसी के साथ भाषा के दो मूलभूत तत्त्व संप्रेषण और संस्कृति के द्वंद्वात्मक संबंधों से व्यक्ति के भाषा-संसार का निर्माण होता है। कहें कि व्यक्ति एक भाषा-प्राणी के रूप में विकसित होता है।

भाषा की परिभाषा देते हुए (ग़ैर समझदारी से) जिस चीज़ पर सबसे ज्यादा ज़ोर दिया जाता है- वह तत्त्व है - संप्रेषण। खासतौर पर भाषा पढ़ने-पढ़ाने के वर्चस्वशाली अकादमिक संस्थानों में। इसकी वजह से भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा 'संस्कृति-निर्माण' पीछे छूट जाता है और यह बात तब समझ आती है, जब लगातार संवाद में बने रहने के बावजूद सांस्कृतिक दिवालियेपन की वजह से भाषा अपना मूलभूत माना जाने वाला गुण संप्रेषण भी खो देती है। इसका आभास मुझे तब हुआ, जब कक्षा में लगातार कई सालों तक पढ़ाने के बाद और सायास इस बात पर ज़ोर देने के बावजूद कि मेरे विद्यार्थी किताबें पढ़ें, मैंने पाया कि मेरे विद्यार्थियों तक यह बात पहुँच ही नहीं रही है, वे सिर्फ़ अपनी पाठ्य-पुस्तकों से चिपके रहना चाहते हैं- और ये सब साहित्य के विद्यार्थी हैं। तब यह बात समझने की है कि मेरी बात अपनी भाषा हिंदी में संप्रेषित होते हुए भी अपने अर्थ तक क्यूँ नहीं पहुँच रही है? आखिर इस बात के कारण और निहितार्थ क्या हैं? इंटरनेट, विश्वविद्यालयों में

पढ़ने की संस्कृति की गिरावट, प्राध्यापकों का कई सालों से कुछ ना पढ़ना, महानगर की जीवन-शैली, नंबरों की मारामारी आदि। इन सारे कारणों को जब हम इकट्ठा करके विश्लेषित करने की कोशिश करेंगे, तब हमें उसका जवाब उस सांस्कृतिक परिदृश्य में मिलेगा, जिसमें हमारा निर्माण हो चुका है या हम निर्मित हो रहे हैं। इस सांस्कृतिक फिसलन का असर ना सिर्फ़ हमारी पढ़ने-लिखने की संस्कृति पर पड़ता है, बल्कि यह असर भाषा की संप्रेषण की ताकत को आघात पहुँचाता है और एक वक्त फिर ऐसा आता है कि भाषा अपनी अर्थवत्ता ही खो देती है और सिर्फ़ ध्वनि मात्र रह जाती है, जैसे नगाड़े की ढमढम, हथौड़े की चोट आदि। जबकि भाषा को परिभाषित करते समय प्राथमिक तौर पर यही समझा जाता है कि नगाड़े की ढमढम, हथौड़े की चोट भाषा नहीं है, बल्कि सिर्फ़ ध्वनियाँ हैं।

यह खोने का सिलसिला यहाँ भी नहीं रुकता - यह यात्रा फिर अर्थ तक लौटती है और कविता में पक्षियों की आवाज़, पत्तियों की सरसराहट, पानी की कलकल से हम कोई अर्थ ग्रहण नहीं कर पाते और धीरे-धीरे समझने की कवायद और संस्कृति से दूर होते जाते हैं। अगर कविता समझ में न आती है, तो इसे आप बारीक बात कहकर ख़ारिज भी कर दें। जिसे ख़ारिज करना आसान नहीं होगा, जैसे - लाइन में लगना, बेवजह हॉर्न बजाना, स्त्रियों, बच्चों को धक्का देना। इस तरह की चीज़ें हम लगातार पढ़ते-सुनते गुज़र जाने के आदी हो जाते हैं। धीरे-धीरे कई शब्द, फिर वाक्य और फिर अर्थ हमारे जीवन से निकलते चले जाते हैं। मेरी एक सहकर्मी इतिहास पढ़ाती हैं, वह अपनी क्लास में कुछ शब्द समझाते-समझाते परेशान हो गईं जैसे - करघा, मूसल, ढकोसला, छलावा आदि।

दूसरा सवाल भाषा को अर्जित करने का है - क्या भाषा सिर्फ़ संप्रेषण के लिए अर्जित की जाती है या इसके कुछ ठोस सांस्कृतिक निहितार्थ होते हैं। भाषा या भाषाओं का बहुत गहरा संबंध वर्चस्व से है। जगह-जगह से विस्थापित व्यक्ति जब दिल्ली जैसे महानगर में आता है और अपनी स्थानीय भाषा की वजह से लगातार अपमानित होता है, तब उससे बचने के लिए वह महाशहरीय हिंदी सीखता है और जब छुट्टियों में बाल-बच्चों के साथ गाँव लौटता है, तब उसी अर्जित भाषा से खुद को उन सब से अलग और निस्संदेह ऊँचा भी महसूस करता है और दूसरों को इसका अहसास भी करवाता है। ठीक इसी तरह यह भी सवाल उठता है कि विभिन्न भाषा-भाषी भारत देश के लोग अंग्रेज़ी को क्या सिर्फ़ संप्रेषण के लिए अर्जित करते हैं या वर्चस्वशाली तबके में दूसरों से अलग दिखने के लिए उस भाषा का व्यवहार करते हैं और धीरे-धीरे वर्चस्व और अलगाव का वर्ग तैयार करते हैं। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। एक महाविद्यालय में इतिहास पढ़ाने वाले दो प्राध्यापकों में एक हिंदी भाषी प्रदेश से हैं और दूसरे की मातृ-भाषा कन्नड़ है। उनकी पढ़ाई का माध्यम भी अंग्रेज़ी भाषा रही है। लेकिन जब उन्हें पढ़ाना पड़ा और उनके ज्यादातर विद्यार्थी हिंदी-भाषी थे, तब उन्होंने श्रम करके हिंदी में पढ़ाना सीखा। जबकि दूसरे प्राध्यापक ने बिना मेहनत के यह व्यवस्था दी कि दोनों भाषाओं की पढ़ाई अलग कर देनी चाहिए, क्योंकि उन्हें हिंदी माध्यम से पढ़ाने में बहुत तकलीफ़ होती है। एक ने भाषा अर्जित की, क्योंकि उसने दूसरी भाषा के सांस्कृतिक महत्त्व और ज़रूरत को समझा और दूसरे ने सिर्फ़ वर्चस्व के सांस्कृतिक खाते में अपना नाम लिखवाने के लिए अपनी भाषा छोड़ दी।

इस उदाहरण से भाषा के मूल तत्त्व संप्रेषण पर फिर चोट पहुँचती है, क्योंकि बहुसंख्यक की भाषा को हम यहाँ छोड़ रहे हैं, जो ज्यादा संप्रेषणीय है उसकी जगह हम दूसरी भाषा को चुनते हैं - और उसका कारण वह जेहनी सांस्कृतिक गुलामी है, जो भाषा के माध्यम से समाज में उच्च वर्ग के निर्माण में विश्वास रखती है। जबकि भाषा के संप्रेषण से अर्थ और अर्थ के संप्रेषण से संस्कृति का निर्माण होता है। लेकिन इस पूरे सिलसिले को उलटकर देखे जाने की ज़रूरत है कि संप्रेषण की सांस्कृतिक समझ को विकसित किए बिना ना ही 'सही संप्रेषण' संभव है ना ही उसके अर्थ की अदायगी।

संप्रेषण एक सांस्कृतिक उपक्रम है, क्योंकि सांस्कृतिक उत्थान, पतन, वर्चस्व, अवमूल्यन, दमन इन सबसे संप्रेषण का तरीका प्रभावित होता है, बदल जाता है। यह देखना दिलचस्प होगा कि कोई भाषा एक दौर में क्यूँ चाटुकार हो जाती है, बदल जाती है या फिर चालाक अभिव्यक्तियों में ढल जाती है? इस तरह धीरे-धीरे भाषा सांस्कृतिक ढाँचे को नष्ट करती हुई सिर्फ़ संप्रेषण में ही ढलती है, जिसमें से क्रमशः श्रोता गायब होते चले जाते हैं और जहाँ भाषा का काम संवाद करना होता है, वहाँ वह चूक जाती है। इसी चूक की पड़ताल के लिए इस आलेख की ज़रूरत समझी गई।

यहाँ इस सिलसिले में, मैं एक उदाहरण देना चाहूँगी। "स्कैंडेनेवियाई देशों के लोग अंग्रेज़ी जानते हैं, लेकिन वे इसलिए अंग्रेज़ी नहीं सीखते, ताकि अपने देश के अंदर इसे आपसी सम्प्रेषण का साधन बना सकें। वे इसलिए भी अंग्रेज़ी नहीं सीखते, जिससे अंग्रेज़ी उनकी खुद की राष्ट्रीय संस्कृतियों का वाहक बने अथवा एक ऐसा साधन बने, जिसके ज़रिए विदेशी संस्कृति उन पर थोप

दी जाए।"

दुनिया भर में भाषाविद् के रूप में लोकप्रिय केन्या के न्गुगी वा थ्योंगो अपने देश के संदर्भ में यह भी उल्लेख करते हैं कि "वे (लोग) अंग्रेज़ी सीखते हैं, ताकि अंग्रेज़ों के साथ या अंग्रेज़ी भाषी लोगों के साथ पारस्परिक क्रिया में उन्हें मदद मिल सके। व्यापार, वाणिज्य, पर्यटन तथा विदेशों के साथ संबंधों को विकसित करने में सहूलियत हो। उनके लिए अंग्रेज़ी बाहर की दुनिया के साथ सम्प्रेषण का साधन मात्र है। यही हाल जापानियों, पश्चिम जर्मनी के लोगों और अनेक देशों के लोगों का है। इन देशों में अंग्रेज़ी ने कभी उनकी खुद की भाषा का स्थान नहीं लिया।

जब विभिन्न राष्ट्र स्वतंत्रता और समानता की शर्त पर एक-दूसरे से मिलते हैं, तब वे एक-दूसरे की भाषा में सम्प्रेषण की ज़रूरत पर ज़ोर देते हैं। वे दूसरे की भाषा महज इसलिए स्वीकार करते हैं, ताकि एक-दूसरे के साथ संबंध विकसित करने में मदद मिले। लेकिन जब यही राष्ट्र उत्पीड़क और उत्पीड़ित के रूप में मिलते हैं, मिसाल के तौर पर साम्राज्यवाद के अधीन, तब उनकी भाषाएँ कभी भी वास्तविक जनतांत्रिक मिलन का अनुभव नहीं कर सकतीं। उत्पीड़क राष्ट्र अपनी भाषा का इस्तेमाल उत्पीड़ित राष्ट्र में अपनी घेराबंदी और मज़बूत बनाने के लिए करता है।" न्गुगी वा थ्योंगो की यह बात सभी भाषाओं के साथ लागू होती है। न्गुगी एक-दूसरे पर भाषा थोपने की प्रक्रिया को यहाँ बखूबी समझा रहे हैं। यानी अपनी भाषा के निर्मित होने की सामाजिक प्रक्रिया पीछे चली जाती है। न्गूगी ने फ्रेंच भाषा के संबंध में भी यह लिखा है कि फ्रेंच भाषा ने, जो अपनी संस्कृति की दार्शनिक और सौंदर्यबोधी परंपराओं के प्रति निष्ठावान थी, इस समूची प्रक्रिया को एक नाम दिया-'एसीमिलेशन' यानी स्वांगीकरण।

यह विचार करना है कि क्या हम हिंदी को वैश्विक भाषा बनाने के लिए "स्वांगीकरण" को स्वीकार करते हैं या इसके विपरीत 'शुद्धता' के मानक तैयार करने में अपनी निष्ठा का प्रदर्शन करते हैं? एक उदाहरण के ज़रिए इसे बारीकी से समझा जा सकता है। 1918 में 'ब्राहम्ण सर्वस्व' सनातन धर्म के सर्वोपयोगी पत्र के रूप में लोकप्रिय था। इसमें हिंदी का जिस तरह से निर्माण किया जा रहा है, उसके संकेत मिलते हैं। ब्राह्मण सर्वस्व (भाग 15) जून 1918 के अंक में साहित्य चर्चा स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित तीन पुस्तकों की समीक्षाएँ व परिचय हैं, जिसका शीर्षक है - ठेठ हिंदी का ठाट। यहाँ केवल एक उदाहरण ही प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय, प्रकाशक-खड़गविलास प्रेस बाँकीपुर पुस्तक देववाला के बारे में भी लिखा गया है। पुस्तक के बारे में यह लिखा है कि "इसमें एक कल्पित कहानी है, जिसका कथा भाग सुंदर है। पुस्तक की विशेषता यह है कि यह ठेठ हिंदी में लिखी गई है। इसमें विदेशी भाषाओं के शब्द नहीं आने पाए हैं और संस्कृत के भी अप्रचलित शब्दों का व्यवहार इसमें नहीं किया गया है। यदि किन्हीं संस्कृत शब्दों का व्यवहार किया भी गया है, तो उन्हीं का जो सर्वसाधारण में सामान्यतया प्रचलित हैं। पुस्तक के पढ़ने से भाषा का एक नया रूप दिखलाई पड़ता है, जो सर्वांग सुंदर है फिर भी इसमें कोई-कोई शब्द ऐसे पाए जाते हैं, जिनका प्रसङ्गानुसार तो अर्थ विदित हो जाता है पर यदि ऐसे शब्द का कहीं एकाकी प्रयोग हो, तो बहुतों को अर्थ जानने में ही कठिनता पड़े। उदाहरणार्थ "मैं बहुत देर से यहाँ खड़ी तुमको अगोर रही हूँ"। चिह्नित शब्द का इन प्रांतों में सामान्यतया प्रचार नहीं। हर्ष की बात है कि यह पुस्तक विलायत की इंडियन सिविल सर्विस परीक्षा में कुछ दिनों से नियत है।"

शब्द या शब्दों के चयन को भाषा के निर्माण के लिए सबसे ज्यादा ज़ोर दिया जाता रहा है। 1972 में दिल्ली स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में लोकप्रिय कलाकार बलराज साहनी ने भाषाओं के बीच एक ठहराव की स्थिति की तरफ़ इस तरह से प्रकाश डाला है।

"रेडियो पाकिस्तान फ़ारसी के शब्द घुसेड़-घुसेड़कर और ऑल इंडिया रेडियो संस्कृत के शब्दों की भरमार से एक सुंदर भाषा को बिगाड़ने और उस पर अपनी मोहर लगाने की कोशिश कर रहे हैं। इस हास्यास्पद रवैये पर नुक्ताचीनी करते हुए मेरे फ़िल्मी अदाकार दोस्त जॉनी वॉकर ने एक बार कहा था' खबरें पढ़ते वक्त अनाउंसर को यह नहीं कहना चाहिए कि अब हिंदी में समाचार सुनिए, बल्कि यह कहना चाहिए कि अब समाचार में हिंदी सुनिए।"

यहाँ यह पड़ताल की जानी चाहिए कि हिंदी के विकसित होने की प्रक्रिया में वह कौन-सा दौर है जब शब्दों को जोड़ने व हटाने पर ज्यादा ज़ोर दिया गया। शब्दों का बहिर्गमन या शब्द का पैंबद ही भाषा-निर्माण का केन्द्रीय विषय बन गया। गौरतलब है कि उपरोक्त ठेठ हिंदी के ठाट शीर्षक की सामग्री में विदेशी शब्दों के नहीं होने पर हर्ष व्यक्त किया गया है। लेकिन यह विदेशी शब्दों के निषेध का ही द्योतक है, बल्कि यह भाषा के निर्माण में शब्दों के स्वाभाविक मिलने-जुलने की प्रक्रिया का ही निषेध करता है। जैसे ठेठ हिंदी की वकालत करने वाले लेखक यह तो स्वीकार कर

रहे हैं कि अगोर शब्द का अर्थ स्पष्ट हो रहा है। लेकिन फिर भी उसके उपयोग पर आपत्ति का स्वर सुनाई देता है। यही नहीं पंडित अयोध्या प्रसाद उपाध्याय की दूसरी पुस्तक 'अधखिला फूल' के बारे में लिखते हुए समीक्षक यह स्पष्ट करता है कि "वर्तमान समय में तो अधिकांश हिंदी लेखकों का यही मत है कि हिंदी भाषा को क्रमश: संस्कृतोन्मुख किया जाए।"(ब्राह्मण सर्वस्व पृष्ठ संख्या 202) इसीलिए अगोर शब्द पर आपत्ति दिखती है। जबकि अगोर देशज भाषा का हिस्सा है और सांस्कृतिक प्रक्रिया के साथ निर्मित हुआ है और यहाँ सांस्कृतिक मेलजोल की प्रक्रिया का हिस्सा बन रहा है। जबकि हिंदी का निर्माण स्वांगीकरण की विचारधारा के साथ निर्मित करने पर ज़ोर देने से संभव हो सकता है। वैश्वीकरण के मौजूदा दौर में तो यह चुनौती और बढ़ी है। इस समय वैश्विक भाषा बनने की पहली शर्त यही हो सकती है कि कैसे हिंदी स्वांगीकरण को एक विचार के रूप में स्वीकार करें। हिंदी के हिंगलिश बनने या हिंदी के केवल अनुवाद की भाषा बनने की प्रक्रिया को रोकना एक बड़ी चुनौती के रूप में हमारे सामने खड़ी है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. फ्रेंच साहित्य का इतिहास, भूपेन्द्र सान्याल, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान
2. बालमुकुंद गुप्त, सृजन और मूल्यांकन, संपादक प्रो. सुभाष सैनी, प्रकाशक मीडिया स्टडीज़ ग्रुप
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल
4. द हिन्द, (1878 से निरंतर प्रकाशित अंग्रेज़ी का दैनिक समाचार-पत्र का 23 मार्च 2024 के मुख्य पृष्ठ एवं माह फ़रवरी मार्च 2024 के दौरान अन्य तिथियों के अंक
5. भाषा का सच, संपादन, सपना चमड़िया/अवनीश, प्रकाशक-मीडिया स्टडीज ग्रुप, दिल्ली, न्गुगी बा थ्योंगो का लेख ,भाषा का साम्राज्यवाद
6. ब्राह्मण सर्वस्व (भाग 15) जून 1918 के अंक, पत्रिका के संपादक पण्डित ब्रह्मदेव मिश्र काव्यतीर्थ, प्रकाशन ,ब्रह्म प्रेस, इटावा (उत्तर प्रदेश)
7. दिल्ली स्थित जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्याल के दीक्षांत समारोह (1972) में लोकप्रिय कलाकर बलराज साहनी का भाषण

chamadia.sapna@gmail.com

विश्व शांति की भाषा है - हिंदी

प्रो. कन्हैया त्रिपाठी
पंजाब, भारत

भारत में तुलसीदास कृत 'श्रीरामचरित मानस' एक ऐसी लोकमंगल कालजयी कृति है, जिसका सबसे अधिक पाठ विश्व में हो रहा है। इसमें जीवन के सूत्र हैं, आदर्श है, स्थापनाएँ हैं, जीवन-पद्धति है, लोक है, कुछ अभिव्यक्त ऐसी कहानियाँ हैं, जो हमारे परिष्कार के लिए आवश्यक और सक्षम हैं। इसमें न्याय है। असीम शांति की संकल्पना है, शिष्टाचार है, भक्ति है, एकीकरण है, निश्चय है, संकल्प है, सिद्धि है, त्याग है, स्वीकारोक्ति है, युद्ध भी स्थाई शांति के लिए है, सर्वमंगल की कामना है, रामराज्य की संकल्पना है। इन सबके साथ भगवान श्रीराम द्वारा अभिव्यक्त मर्यादा की दुर्लभ छवि है। निःसंदेह तुलसीदास जी ने इस एक कालजयी कृति के माध्यम से हिंदी को वैश्विक स्तर पर स्थापित किया है। मध्यकाल के बहुत- से कवि व कवयित्रियाँ हैं, जिन्होंने भारत में हिंदी भाषा में जो साहित्य सृजित किया है, वह अप्रतिम है। हिंदी, वास्तव में, मध्यकाल के इन्हीं साहित्यकारों से आज भी विश्व में सम्मान पा रही है। कबीर, सूर, तुलसी, रविदास, रसखान, दादू, मीरा...ये सब ऐसे साहित्यिक सितारे हैं, जिन्होंने हिंदी को अपने-अपने हिस्से की संजीवनी प्रदान की। हिंदी को फलने-फूलने का आधार दिया।

हिंदी ने औपनिवेशिक सभ्यता कायम होने पर अपने अस्तित्व को बचाया और वह अपने गिरमिटिया समुदाय के साथ विदेशों तक पहुँची, भले ही वह बोलियों के माध्यम से पहुँची हो। उपनिवेश का एक लाभ यह हुआ कि हिंदी यायावर भाषा बनी। हिंदी को इस तरह से गतिशील होने में कहीं-न-कहीं हमारे मध्यकाल के साहित्यकारों का सहयोग रहा है और हमारे श्रमिक गिरमिटिया समुदाय का भी सहयोग रहा है।

हिंदी लोक से यायावर हुई थी। इसलिए कह सकते हैं कि लोक का स्वत्व लेकर हिंदी श्रेष्ठ बनी। लोक ने हिंदी को सींचा। भले ही लोक ने हिंदी को लोकहित में सींचा हो, लेकिन इससे लाभ हिंदी को हुआ। जब-जब औपनिवेशिक सभ्यताओं ने हमारी क्षेत्रीय भाषाओं को सीमाओं में बाँधने का प्रयास किया, तब लोक ने हिंदी के माध्यम से पहल करके भारत को एकीकृत किया। इस प्रकार हिंदी के ऐसे अनेक सर्जक हुए, जिनकी रचनाओं से भारत को सांस्कृतिक समृद्धि मिली।

अब समय बदल चुका है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में भी पूर्णतया तो नहीं, किन्तु कुछ अंश तक सम्मान मिला है। हिंदी में संयुक्त राष्ट्र के न्यूज़ पोर्टल चल रहे हैं। अनूदित सामग्री भी तैयार की जा रही है। हिंदी का यह प्रभाव इसलिए बन पाया है, क्योंकि हमारी सरकारें निरंतर कोशिश करके इसे प्रभावी बना रही हैं। संयुक्त राष्ट्र में हिंदी में संबोधन का भी अपना प्रभाव है। हिंदी के प्रति रुझान अब विदेशों में बढ़ चुका है, सब इसे समझना चाहते हैं। हिंदी में वे कुछ अभिव्यक्त करना चाहते हैं। जो हिंदी नहीं जानते वे सीखना चाहते हैं। हिंदी जगत में बाज़ार आकर्षण का केंद्र है। इसलिए बाज़ार की भाषा के उधेड़-बुन में कॉरपोरेट भी हिंदी से पीछा छुड़ा नहीं सकते। यद्यपि कॉरपोरेट घराने अपने हिसाब से हिंदी गढ़ने की पुरज़ोर कोशिश कर रहे हैं, इसके खतरे भी हैं। लेकिन हिंदी की आत्मा, हिंदी के प्रतिबद्ध लेखकों से ही निर्मित हुई है। उसकी अपनी विशेषता तो लेखकों की सर्जना-शक्ति में है, उनके द्वारा गढ़े गए शिल्प व बिम्ब में है। हिंदी के प्रचार-प्रसार का एक और रास्ता मिल गया है, वह है भारत का अध्यात्म। विश्व में आध्यात्मिक बनने की भी होड़ है। हिंदू सनातन परंपरा में प्रवचन हिंदी में हो रहे हैं। हिंदी सिनेमा के बाद हिंदी भारत के प्रवचन-पथ से जन-मन तक पहुँच रही है। इस प्रकार हिंदी के अपने गलियारे बनते जा रहे हैं, जो हिंदी के अपने सामर्थ्य से ही संभव हो पा रहा है। कदाचित अन्य भाषाओं में वह मिठास भी नहीं है, जो हिंदी में है। इसलिए भी हिंदी ने अपने मीठे स्वाद को घोल रखा है और इसमें अभिव्यक्त हुई अभिव्यंजना को रुचि लेकर जानने-समझने को उत्सुक है। यह इसलिए हो सका है, क्योंकि हिंदी लेखन में सार्वभौमिक सोच के लेखन की प्रचुरता है। अपने एक साक्षात्कार में अनुराग शर्मा ने कहा था - 'लेखक द्रष्टा है, उसकी दृष्टि में विस्तार है। वह सब देखता है, जो सामान्य दृष्टि से ओझल रहता है। लेकिन असली बात एक अच्छा व्यक्ति और आदर्श नागरिक होने की है। वैविध्य की स्वीकार्यता, भेद का आदर, साम्य की खोज, जीवन का सम्मान, परपीड़ा की अनुभूति जैसी सामान्य मानवीयता न हो, तो कोई अच्छा लेखक कैसे बनेगा? लेखन में कोरी भावुकता नहीं, खरी संवेदना होनी चाहिए। अच्छा लेखक अंतर्मन से 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का साधक होता है। मलिन मन के साथ कोई कितना भी ढोंग करे, उसका लेखन प्रचारात्मक हो सकता है, प्रभावशाली नहीं; न वह सार्वभौमिक होगा न कालजयी।' हिंदी

सर्जकों की रचनाओं का कालजयी होने व उनको प्रतिष्ठित होने में इसलिए कठिनाइयाँ नहीं हुईं, क्योंकि जो चोटी के लेखक हिंदी में हुए उन्होंने अपनी रचना-प्रक्रिया में सार्वभौमिक मूल्यों को ज्यादा महत्त्व दिया। वैविध्यता को उन्होंने स्वीकारा और मानवता के लिए साहित्य रचा।

निर्मल वर्मा ने महत्त्वपूर्ण बात की थी कि मानव संस्कृति का विकास एक तरह से उत्तरोत्तर अधिक अर्थपूर्ण सामंजस्य हासिल करने का इतिहास रहा है। संगीत, साहित्य, कला और कुछ नहीं, मनुष्य की उस निराकार आकांक्षा को साकार करने का प्रयत्न है, जहाँ वह अपने और विश्व के बीच एक लय, एक संगीत, एक संवाद स्थापित करने में सक्षम हो। अब उसी खोज में सन्नद्ध विश्व हिंदी के माध्यम से सभ्यता के बीच संवाद स्थापित करने की कोशिश कर रहा है। सब जानते हैं कि सभ्यताओं के विकास के साथ भाषाओं ने भी अपना अस्तित्व पाया। अब सभ्यतागत विमर्श में युद्ध और शांति के लिए भी भाषा ही सशक्त माध्यम मानी जा रही है, जो हमारे उत्कृष्ट जीवन व पतन का कारक बनेगी। इसी से तो व्यक्ति या राज्य अपने- आपको अभिव्यक्त करते हैं। हाल ही में, युद्ध रोकने के लिए भाषा का सहारा लिया गया और यह आह्वान किया गया कि "सभी भाषाओं में 'शांति' कहें! दुनिया के लोग युद्ध की अपेक्षा शांति पसंद करते हैं और वे इसके हकदार हैं। अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए बमों की आवश्यकता नहीं है।"

अब भाषाएँ ही सहारा बन रही हैं, तो हिंदी, जिसको चीनी भाषा के बाद सबसे अधिक संख्या में बोलने वाले लोग हैं, विश्व में शांति स्थापित करने की सशक्त भाषा मानी जा रही है। सर्वाधिक शांति के आग्रह करने वाले, जिस भाषा में अधिक होंगे, उसे सम्पूर्ण पृथ्वी मान्यता देगी और उसमें अभिव्यक्त प्रेरणादायक सूत्र सबके जीवन के आधार बनने वाले हैं। निर्मल वर्मा जिस भाषा में लय, प्रवाह व संवाद की अधिकतम पहुँच व उद्दात्तता देखते हैं, वह हिंदी है, कदाचित ही विश्व में कोई ऐसी शक्ति होगी, जो शांति के प्रचार व प्रसार में हिंदी को माध्यम न मानने का दुस्साहस करे। पूरा विश्व हिंदी से सहयोग प्राप्त करना चाहेगा, भले ही एक वैश्विक स्तर पर शांति के लिए रायशुमारी ही क्यों न बनानी हो।

विश्व के विभिन्न भू-भागों पर युद्ध व संघर्ष हो रहे हैं। युद्ध-संघर्ष और शांति मानव-जाति के इतिहास के अभिन्न अंग हैं। इसके नुकसान बहुत अधिक होते हैं। प्रदीप त्रिपाठी की एक कविता है - 'युद्ध'। जो इस प्रकार है –

"युद्ध महज युद्ध नहीं होते
युद्ध में सूख जाती है
नदियों की आत्मा
पहाड़ों का जिस्म
रती भर
सपनों का समुद्र भी...
युद्ध में सिर्फ़ वे ही नहीं मरते
मरती हैं, भाषा की देह
और इस तरह
मर जाती है
पूरी की पूरी सभ्यता।"

व्यापक पैमाने पर अस्थिरता से युद्ध तक की दौड़ ने आज सम्पूर्ण मानव-जाति को सोचने पर विवश कर दिया है।

युद्धों का भाषा पर बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। लॉरी बार्न्स का मानना है कि भाषा ऐसी स्थितियाँ लाती हैं, जो किसी क्षेत्र की भाषा पारिस्थितिकी को परेशान और बदल सकती है। इससे या तो भाषाओं की मृत्यु हो सकती है या नई भाषाओं का निर्माण हो सकता है। युद्ध विभिन्न तरीकों से भाषा-परिवर्तन को प्रभावित करते हैं और नए शब्दों और अभिव्यक्तियों के निर्माण के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। युद्धोन्मादी भाषा में हेराफेरी करते हैं और उसे अपने हथियारों में से एक के रूप में उपयोग करते हैं। शांतिदूतों ने शांति को बढ़ावा देने के लिए भाषा की क्षमता को भी देखा है। भाषा के अधिकार को लेकर अक्सर राजनीतिक लड़ाइयाँ लड़ी जाती हैं। भाषा के मुद्दे अक्सर अन्य संघर्षों से अविभाज्य होते हैं। भाषा की महत्ता इसलिए मनोवैज्ञानिक स्तर से समझी जा सकती है और इसके सामाजिक सरोकार में प्रभाव के मायने भी इससे पता चलते हैं। शांति की भाषा हिंदी इसलिए बन सकती है, क्योंकि इसमें सृजित रचनाओं की भाषा - शांति व सौहार्द पर केंद्रित है। लोकमंगल है इस भाषा में। अनुभूति के स्तर पर प्रभाव जमाने की क्षमता है। जनसंख्या की दृष्टि से भी यह एक प्रभावशील समृद्धता रखती है, इसलिए इसके सामर्थ्य में शांति की अभिव्यंजना व अनुगूँज उत्कृष्ट परिणाम दे सकती है।

अभिमन्यु अनत की एक कविता है - 'विश्व शांति'। जो इस प्रकार है -

हर सीमा पर गोलियाँ चल रहीं
धमाके हो रहे, जब-शहर-शहर में
उपज रहीं परमाणु शक्तियाँ बड़े देशों में
खून के प्यासे, जब हो रहे हम मजहबी

तब महाशक्तियाँ हाथों में सुई धागा लिए
भाईचारे के फट चुके चीथड़ों को जोड़ने
शांति स्थापना के नाम खालीपन में
हवा के टुकड़ों को सीने में लगी हुई हैं।

अभिमन्यु अनत ने अपनी रचना के माध्यम से आशा के जिस प्रज्वलित दीप को देखने की कोशिश की है, वह आज का वर्तमान है। आज भी विश्व में भाईचारे के फट चुके चीथड़ों को जोड़ने की कोशिश हो रही है, लेकिन नाकाम कोशिशें हमारी सभ्यता को प्रश्नांकित कर रही हैं। 'शांति के लिए कविताएँ : एक ऐसा संग्रह कैसे बनाया जाए' जो युद्ध-विरोधी कविता से आगे बढ़ने की बात करता हो, ऐसा प्रयास फिलिप मीटर्स द्वारा किया गया। भारत के सृजनात्मक संवेदनाओं में कुछ ऐसे ही कोशिश होती है। हुसैन रवि गांधी की एक कविता स्मरण हो आती है - 'शांति'। कविता कुछ इस प्रकार है –

मनुष्य बनना यद्यपि अभिशाप है
मैं मनुष्य बनूँगा।
शांति का प्रत्युत्तर यदि आग्नेयास्त्र है, तो
मैं शांति का श्वेत कबूतर बनूँगा।

भारत में शांति के लिए जो भी लिखा-पढ़ा जा रहा है, वह महत्त्वपूर्ण है, लेकिन फिलिप मीटर्स ने अपने एक आलेख में लिखा है - "कैसे हमारी कविता में संघर्ष, उत्पीड़न और अन्याय से निपटने के अन्य तरीकों के बीज भी शामिल हैं और यह हमारी सोच को कैसे आगे बढ़ा सकती है कि युद्ध के बिना भविष्य कैसा दिख सकता है। शांति की कल्पना कैसे करें, शांति कैसे बनाएँ? हमारी बातचीत में, तीन सामान्य उप श्रेणियाँ उभरीं, हालाँकि ये लीपापोती और विरोधाभास से भरी थीं, दुख, प्रतिरोध और वैकल्पिक दृष्टिकोण।" हमें युद्ध की भयावहता को देखने और उसका वर्णन करने की ज़रूरत है। हमें प्रतिरोध करने और प्रतिरोध के नमूने खोजने की ज़रूरत है और हमें एक और दुनिया की कल्पना करने और निर्माण करने की ज़रूरत है। आवश्यकतानुसार बौद्धिक परिचर्चाओं के बीच भी सम्पूर्ण विश्व में 'शांति' महत्त्वपूर्ण है। समझने की बात यह है कि सभी शांति का आश्रय चाहते हैं। युद्ध और संघर्ष से मुक्ति की छटपटाहट विश्वव्यापी है, जिसे भाषा ही दिला सकती है। कहते हैं, जिसकी जितनी संख्या भारी, वही अपना प्रभाव बना सकता है। जन-मन भी अपना महत्त्व रखता है। विश्व का हर छठा व्यक्ति यदि हिंदी बोलता है, तो हिंदी की अपनी आवाज़ की आत्मशक्ति है। हिंदी उत्तरोत्तर अपना प्रभाव जमाएगी भी तो ऐसे में हिंदी विश्व की सबसे ज्यादा सशक्त शांति की भाषा बनने जा रही है, यदि ऐसा कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्तिपूर्ण बात नहीं होगी।

एक बार रवीन्द्रनाथ टैगोर, विश्व साहित्य पर अपना राष्ट्रीय विचार परिषद् में प्रकट कर रहे थे। उनका यह विचार 'बंग दर्शन' में जनवरी, 1907 में प्रकाशित भी हुआ है। उनका कहना था –

"इस विश्व-साहित्य में, मैं आपका पथ-प्रदर्शक बनूँगा, ऐसी बात सोचिएगा भी मत। अपने-अपने साध्य के अनुसार यह रास्ता हम सबको खुद ही तय करना होगा। मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि जिस प्रकार पृथ्वी मेरा खेत और तुम्हारा खेत और उनका खेत नहीं है, पृथ्वी को इस तरह से जानना अत्यंत ग्राम्य रूप में जानना है - उसी प्रकार साहित्य मेरी रचना, तुम्हारी रचना और उनकी रचना नहीं होती। हम लोग साधारणतः साहित्य को इस ग्राम्य ढंग से देखा करते हैं। उसी ग्राम्य संकीर्णता से अपने को मुक्ति देकर विश्व-साहित्य में विश्व-मानव को देखने का लक्ष्य हम स्थिर करेंगे, प्रत्येक लेखक की रचना में उसकी समग्रता को ग्रहण करेंगे और उसी संगतर के सारे मनुष्यों की अभिव्यक्ति-चेष्टा का संबंध दिखेंगे, यह संकल्प स्थिर करने का समय आ गया है।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर का अपना साहित्येतिहास है। उन्होंने साहित्य के भीतर जो कहा-सुनी चलती है, उस पर विराम लगाया है। उन्होंने उस संकीर्ण सोच से बचने का आग्रह किया है, जिससे बहुतेरे लेखक जीवन भर निकल नहीं पाते। उन्होंने अपने चिन्तन को विस्तारित करने का आग्रह किया है। वे साहित्य के लेखकों से इसीलिए यह आग्रह करते हैं, क्योंकि वे स्वयं सार्वभौमिक साहित्य के सूत्र को समझते हैं।

हिंदी भाषा हो या कोई भाषा, उसके सर्जनारत साहित्यसेवियों को सृजन करते समय यह अवसर होता है कि वह खुलकर अपना विस्तार करे। तुलसीदासकृत 'श्रीरामचरित मानस' को इसीलिए लोग आज पढ़ते हैं और उसमें सन्निहित जीवन-मूल्यों को अपने जीवन का आधार बनाते हैं। हिंदी साहित्य आकाश में ऐसे कई प्रतिमान हैं, जिन्हें हिंदी ने स्थापित किया है। उसको व्यवस्थित करने वाले साहित्यकार इसलिए हिंदी में आदर के साथ स्मरण किए जाते हैं।

अब केवल युद्ध और संघर्ष तक नहीं सोचना है। हिंदी में प्रकृति की शांति पर भी पर्याप्त रचनाओं की अपेक्षा है। हमारे सनातन धर्म में पृथ्वी, आकाश, वनस्पति आदि में शांति की कामना है। हिंदी-भाषा में काम करने वाले लोगों को कदाचित यह नहीं भूलना चाहिए कि वे जिस धरती से अपनी सर्जना कर रहे हैं, वहाँ

शांति की हमारी सनातन-चिरंतन विरासत को आत्मसात कर नई पीढ़ी के लिए उपयुक्त वातावरण भी प्रदान करना हमारा ही काम है। हिंदी वैश्विक शांति की भाषा तभी तो बनेगी, जब हम इस भाषा में सुदृढ़ सृजन करेंगे। हिंदी साहित्य-जगत में जो साहित्यसेवी हैं, उनके लिए भी आत्मालोचन की आवश्यकता है और उनकी दृष्टि के विस्तार की आवश्यकता है। कालजयी कृति ही सबसे सृजित होगी, यह ज़रूरी नहीं है, लेकिन यदि हमारे सृजन का उद्देश्य सार्वभौमिक होगा, उद्दात्त होगा, त्याग व करुणा-प्रेम-समरसता की भावनाओं से परिपूर्ण होगा, तो हिंदी का मान अधिक बढ़ेगा। अच्छी रचनाएँ अपना स्थान स्वतः बना लेती हैं। इसके लिए उस स्तर का चिंतन हमसे हो, हिंदी यह माँग कर रही है।

हिंदी यदि वैश्विक जगत को लुभाया है। हिंदी लेखकों को अतीव विनम्र और गंभीर होकर विश्व-कल्याण के लिए कार्य करने की भावना से हिंदी की सेवा करने की आवश्यकता है। व्यापक संभावनाओं को लेकर हिंदी का जयघोष सम्पूर्ण विश्व में हो, इसके लिए हमें हिंदी के समर्पित विभूतियों को सम्मान देना होगा। यह सम्मान केवल आमजन से ही नहीं हो, यह सम्मान सरकार से भी अपेक्षित है। प्रतिभा उपाध्याय ने क्लेमेंस ब्रेतानो की रूसी कविता का अनुवाद किया है, जिसका हिंदी शीर्षक बन पड़ा है-'कम और अधिक'। रचना कुछ इस प्रकार है –

"सोचो कम, सुनो अधिक; बोलो कम, देखो अधिक
सिखाओ कम, सीखो अधिक
लिखो कम, पढ़ो अधिक
कम पर रखो भरोसा, प्रयास करो अधिक
झगड़ो कम, सहन करो अधिक
ललचाओ कम, अनुभव करो अधिक
आशा करो कम, पाओ अधिक
घृणा करो कम, प्यार करो अधिक
चिढ़ो कम, प्रसन्न हो अधिक
उपहास करो कम, शांत रहो अधिक
दुख दो कम, सांत्वना दो अधिक
निष्कर्ष निकालो कम, विचार करो अधिक
आदेश दो कम, काम करो अधिक।"

हिंदी जगत के सृजनरत लोगों को इस कविता को सीखना चाहिए। इसमें बहुत बड़ी बात नहीं कही गई है, लेकिन बहुत मामूली बात भी नहीं है। हिंदी में अभी बहुत कुछ करना शेष है। हिंदी में हमें पूरी सभ्यता को अपने शांतिप्रिय संदेश से अपना बना लेना है, यह भी शेष है। साधक का कार्य है हिंदी की सेवा करना, इसलिए हिंदी के लिए हिंदी में सृजन करने वाले साधकों से ही हिंदी पहचानी जाएगी। सर्वमंगल के लिए हिंदी विश्व भर में आदर प्राप्त करेगी।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. निर्मल वर्मा : मेरे लिए भारतीय होने का अर्थ (निबंध)
2. https://www.hindisamay.com/content/6766/1
3. https://www.setumag.com/2020/04/Anurag-Sharma-Interview-Hindi.html
4. निर्मल वर्मा, आदि और अंत, https://www.hindisamay.com/content/6767/1/निर्मल-वर्मा-निबंध-आदि-और-अंत।सीएसपीएक्स
5. http://www.columbia.edu/~fdc/pace/
6. https://www.hindisamay.com/content/11883/1/प्रदीप-त्रिपाठी-कविताएँ.सीएसपीएक्स
7. लॉरी बार्न्स, भाषा, युद्ध और शांति : एक सिंहावलोकन, अफ़्रीका की भाषाओं में अध्ययन, खंड 34, 2003 - अंक 1, पृष्ठ 3-12, ऑनलाइन प्रकाशित : 31 मई 2008
8. https://www.hindisamay.com/content/4892/1/अभिमन्यु-अनत-कविताएँ-विश्व-शांति.cspx
9. https://www.poetryfoundation.org/articles/69592/poems-for-peace
10. https://www.hindwi.org/kavita/peace/shanti-husain-ravi-gandhi-kavita?sort=
11. https://www.poetryfoundation.org/articles/69592/poems-for-peace
12. असित कुमार बन्द्योपाध्याय, रवीन्द्र रचना संचयन, संकलन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1987
13. https://www.hindisamay.com/content/7048/1/क्लेमेंस-बेतानो-कविताएँ-कमौर-अधिक, सीएसपीएक्स

hindswaraj2009@gmail.com

हिंदी सेवी : व्यक्ति एवं संस्था

1. हिंदी साहित्य सेवी संपादकाचार्य पंडित देवीदत्त शुक्ल - दीपक कुमार पाण्डेय

2. आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल और हिंदी - राजीव रंजन

3. डॉक्टर धनीराम प्रेम - एक बेजोड़ प्रवासी - रोहित कुमार हैप्पी

4. अमीराती मरु-कुंज के हिंदी सेवी - डॉ. आरती 'लोकेश'

5. दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के ध्वज वाहक- प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम - डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा

संपादकाचार्य पंडित देवीदत्त शुक्ल

दीपक कुमार पाण्डेय
उत्तर प्रदेश, भारत

पंडित देवीदत्त शुक्ल के नाम और काम से यद्यपि हिंदी की वर्तमान पीढ़ी अनभिज्ञ हैं, तथापि समकालीन हिंदी साहित्यकारों और पुरोधाओं ने जिस श्रद्धा से उनका स्मरण-वंदन किया है, उससे हिंदी के प्रति उनके समर्पित अनुराग का भली-भाँति परिचय मिल जाता है। देवीदत्त शुक्ल ऐसे निःस्पृह तथा एकनिष्ठ हिंदी सेवी रहे हैं, जिन्होंने लोकचक्षु एवं आत्ममुग्धता से दूर रहकर जीवन भर हिंदी के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु बहुविध कार्य किए। वस्तुतः 'महाजनो येन गतः स पन्था' की उक्ति उनके व्यक्तित्व-कृतित्व के परिप्रेक्ष्य में सर्वथा चरितार्थ होती है। उन्हें साहित्य के साथ अध्यात्म विरासत में प्राप्त हुआ था। यही कारण रहा कि उन्होंने इन दोनों विधाओं में अपनी विशिष्टता का परिचय दिया। उस समय पुराना कटरा क्षेत्र में अवस्थित उनका आवास साहित्य-अध्यात्म के रचनाकारों और साधकों हेतु प्रेरणा का विशिष्ट केन्द्र बन गया था।

शुक्ल जी सौभाग्यशाली थे कि उन्हें एक और सिद्धहस्त प्रख्यात् पूर्वजों से अध्यात्म, विशेष रूप से तन्त्र-मन्त्र, शास्त्र एवं आयुर्वेद का अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त हुआ, वहीं दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में उन्हें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे युग-प्रवर्त्तक मनीषी, गुरु और पथ-प्रदर्शक के रूप में मिले। इस संदर्भ में शुक्ल जी ने अपनी आत्मकथा 'संपादक के पचीस वर्ष' में स्वयं उल्लेख किया है, "....**ठोंक-पीटकर मैं सचमुच ही एक साहित्यिक व्यक्ति अवश्य बना दिया गया और इसका एकमात्र श्रेय आचार्य द्विवेदी को है**।"

'सरस्वती' पत्रिका के सहायक के रूप में पंडित देवीदत्त शुक्ल ने प्रकाशन के लिए उपलब्ध रचनाओं को पढ़ने, अंग्रेज़ी लेखों का अनुवाद करने और आवश्यक लेखन करने का कार्य समयानुसार किया। उदाहरणतया बख्शी जी द्वारा संचालित 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशन हेतु कोई कहानी नहीं मिली, तो शुक्लजी ने 'एलिस' और 'रमा' शीर्षक से कहानियाँ लिखीं। वे 'सरस्वती' के लिए लेखन-कार्य करते रहे। इसी दौरान सहायक संपादक के रूप में शुक्ल जी ने लगभग 164 लेख 'सरस्वती' में लिखे।

शुक्ल जी उन्नाव जनपद के अपने गाँव बक्सर से साहित्य-गुरु आचार्य द्विवेदी का आशीर्वाद प्राप्त कर 1919 के अक्टूबर मास में प्रयाग आए, तो यहीं रच-बस गए। उस समय उन्हें 'इण्डियन प्रेस' से प्रकाशित होने वाली लोकप्रिय बालकोपयोगी मासिक पत्रिका 'बालसखा' के संपादन का दायित्व मिला। यह संयोग था कि इण्डियन प्रेस से ही प्रकाशित होने वाली 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक उनके स्वनामधन्य गुरु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी स्वयं थे, यद्यपि उस समय वे अस्वस्थ होने के कारण अपने गाँव में रह रहे थे। आचार्य द्विवेदी के अवकाश पर रहने के कारण 'सरस्वती' का संपादन-कार्य आचार्य द्विवेदी की अनुशंसा पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग के तत्कालीन प्राध्यापक पंडित देवीप्रसाद शुक्ल जी की देख-रेख में हो रहा था। अस्वस्थता के कारण आचार्य द्विवेदी जी अन्ततः दिसंबर, 1920 में 'सरस्वती' से सेवा-निवृत्त हो गए और उनकी तथा इण्डियन प्रेस के स्वामी बाबू चिन्तामणि घोष की इच्छा-अनुशंसा पर जनवरी, 1921 से 'सरस्वती' के संपादन का दायित्व बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० एवं पंडित देवीदत्त शुक्ल जी को सौंपा गया।

पंडित देवीदत्त शुक्ल आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की परंपरा का अनुसरण करने वाले 'सरस्वती' के संपादक थे। उन्होंने आचार्य द्विवेदी द्वारा अर्जित 'सरस्वती' की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखा और अपने युग के विविध आयामों को लेकर दो दशकों तक 'सरस्वती' के संपादन का गौरवपूर्ण दायित्व और आदर्श का निर्वहन किया।

इस प्रकार शुक्ल जी के संपादन में 'सरस्वती' पत्रिका जनवरी 1921 से दिसम्बर 1946 तक प्रकाशित होती रही। दो दशकों तक शुक्लजी ने बदलते हुए परिवेश में 'सरस्वती' को लोकप्रिय बनाए रखा। इस लंबे अंतराल के मध्य शुक्ल जी ने 'सरस्वती' में युगानुकूल रचनाएँ प्रकाशित कीं। वे अत्यंत परिश्रमी संपादक थे। बतौर संपादक अंत तक उन्होंने सरस्वती में नये प्रतिमानों का सूत्रपात किया।

'सरस्वती' के संपादक बनने से पूर्व, सन् 1913 से 1920 के मध्य शुक्ल जी की अनेक रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हो गई थीं। इनमें तैमूरलंग के बारह नियम, गृह-शासन, औरंगज़ेब के नाम महाराज यशवंत सिंह का पत्र, कनक-प्रकाश (मार्च 1914, पृ० 161- 65), पुरातत्त्व विभाग का वार्षिक विवरण (मार्च 1917, पृ० 141-43), हिंदी प्रचार के कुछ बाधक कारण (जुलाई 1917,

पृ० 42-45) तथा भारतीय पुरातत्त्व विभाग सत्रह की वार्षिक रिपोर्ट (सितम्बर 1917, पृ० 126 -27) आदि रचनाएँ सम्मिलित हैं।

इन्हीं रचनाओं के आलोचनात्मक वैविध्य से शुक्ल जी को साहित्य के क्षेत्र में विशेष पहचान मिली। इसी लेखन-शैली के आधार पर शुक्ल जी ने 'सरस्वती' में आने की अपनी पृष्ठभूमि भी निर्मित की। इसके अतिरिक्त संपादकीय कार्यों में शुक्ल जी की रुचि शुरू से ही रही थी, जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है – '**जब मैं एम. ए. नहीं कर सका**, **तब मैंने नौकरी करने का विचार किया। लेखक और कवि होने का दम तो मुझमें भर ही गया था**, **अतएव मैंने किसी पत्र का सहायक** संपादक **बनने की ठानी...।'**

शुक्ल जी के आकाशधर्मी व्यक्तित्व के कारण उनका निवास-स्थान साहित्य एवं अध्यात्म का केन्द्र-सा बन गया था, जहाँ आए दिन साहित्य की नामचीन हस्तियाँ आकर चर्चा-परिचर्चा किया करती थीं। इस आवास पर उनके साहित्य-गुरु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भी यदा-कदा आते रहे। यहीं उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेमचन्द का भी आगमन हुआ था, जिसका वर्णन शुक्ल जी ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार किया है - 'एक दिन मुंशी प्रेमचन्द जी मेरे मित्र पंडित लाडिलेलाल जी मिश्र के साथ मेरे घर पधारे। .... मैं अपने घर में उस समय भोजन बना रहा था। मिश्र जी के साथ प्रेमचन्द जी आकर पास ही पड़ी हुई चटाई पर बैठ गए। मिश्र जी ने मुंशी जी का परिचय दिया। इसके पहले मुंशी जी के दर्शन कभी नहीं हुए थे। मैंने उठकर मुंशी जी का सादर अभिनन्दन किया।"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के ख्यातिलब्ध प्रोफ़ेसर डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी जी, शुक्ल जी के सहपाठी और परम मित्र थे। वे और महाकवि निराला जब शुक्लजी से मिलने के लिए आते, तब घंटों काव्य-पाठ एवं चर्चाओं का दौर चलता। उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अध्ययनरत रहे प्रोफ़ेसर कल्याणमल लोढ़ा हिंदू बोर्डिंग हाउस से शुक्ल जी के दर्शन करने प्रायः अवकाश-दिवस पर आते। बाद में, प्रोफ़ेसर लोढ़ा कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष बने। श्री लोढ़ा ने शुक्लजी से हुई पहली भेंट का वर्णन इस प्रकार किया है – "**प्रसंग उन दिनों का है**, **जब मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय का स्नातक था। मेरे गुरु पंडित देवीप्रसाद शुक्ल ने प्रसंगवश (तत्कालीन 'सरस्वती'-**संपादक**) प्रातःस्मरणीय पंडित देवीदत्त शुक्ल जी से मिलने को कहा। दूसरे ही दिन मैं पंडित जी के आवास पर गया।....मैंने देखा एक विराट व्यक्तित्व**, **जिसके सारल्य के भीतर अमित गाम्भीर्य छिपा पड़ा है**; **जिसकी सहजता और शालीनता आयु-भेद को तोड़ कर साम्य-बोध से एक सम-वयस्क का आचरण कर रही है - चर्चा हुई थी शक्ति-तत्व और भक्ति-तत्व पर। मैंने नोट लेना चाहा। उनका उत्तर था - 'मन पर उतारो**, **विचार करो**, **स्वतः स्मरण रहे। प्रथम साक्षात्कार के बाद अभिभूत होकर लौटा।"**[4]

उन दिनों सुविख्यात् गीतकार पंडित नरेन्द्र शर्मा जी भी इलाहाबाद में ही अध्ययन-सर्जनारत थे और शुक्ल जी के विशेष कृपा-पात्र भी थे। वे शुक्ल जी के निरंतर संपर्क में रहते थे और उनसे साहित्य के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त करते थे। उस समय 'सरस्वती' में प्रमुखता के साथ प्रकाशित होने वाली अपनी कविताओं के कारण पंडित शर्मा अत्यधिक चर्चित हुए। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री राहुल सांकृत्यायन ने अपने संस्मरण में उनके कटरे वाले घर पर जाकर शुक्ल जी से मिलने का उल्लेख आदर के साथ किया है, यद्यपि तब शुक्लजी नेत्रहीन हो गए थे और उन्हें उस अवस्था में देखकर राहुल जी बहुत दुखी हुए थे। 'सरस्वती' के संपादन में उनके वरिष्ठ सहयोगी संपादक रहे बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने अपने संस्मरण में लिखा है- '**जब-जब मैं इलाहाबाद जाता था**, **तब-तब देवीदत्त जी से अवश्य भेंट करता और उनसे बड़ा स्नेह पाता**।....1951 **में मुझे फिर 'सरस्वती' में कार्य करने का अवसर मिला**।....**मैं इलाहाबाद आया। मैं देवीदत्त जी से मिला (कटरा स्थित आवास पर)। उस समय उनकी दृष्टि-शक्ति लुप्त हो गई थी। बड़ी देर तक उनसे बातें होती रहीं**।'

पंडित देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', पंडित ठाकुरदत्त मिश्र, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, पंडित उमेशचन्द्र मिश्र, श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' जैसे 'इण्डियन प्रेस' के सहकर्मी साहित्यकारों से शुक्लजी का निरंतर मिलना होता रहता था। पंडित अमृतलाल नागर लिखते हैं - '**सन्** 1936 **या** 1937 **में इलाहाबाद जाने पर मैं पहली बार शुक्लजी के दर्शनार्थ इण्डियन प्रेस गया**।...1942 **के अन्त या** 1943 **के आरम्भ में मैंने उन्हें शायद कटरे (इलाहबाद) में राह चलते देखा। आगे बढ़कर चरण छुए और अपना नाम बतलाया**।....**शुक्ल जी महाराज मुझसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। मुझे उन्नति करते देखकर वे बहुत ही प्रसन्न थे**। हिंदी **में नए सुलेखकों की बढ़ोत्तरी देखकर वे प्रसन्न होते थे**।'

जोधपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध साहित्यकार कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी शुक्लजी से हुई अपनी एक भेंट के संबंध में लिखते हैं - '...मैं उन दिनों काशी

विश्वविद्यालय में एम० ए० का छात्र था। वहाँ से छुट्टी में प्रयाग आया था। महाकवि निराला भी उन दिनों प्रयाग आए हुए थे...मिलने पर निराला जी ने स्वयं प्रस्ताव किया - 'चलिए, आपको 'सरस्वती' – के संपादक शुक्ल जी से मिला लाएँ।' मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। निराला जी के साथ शुक्ल जी के दर्शन करने मैं 'इण्डियन प्रेस' गया। शुक्ल जी अपने सम्पादकीय आसन पर विराजमान थे।...वे बड़े प्रसन्न हुए और प्रथम दर्शन में ही उन्होंने मुझ पर अत्यन्त आत्मीयता और प्रेम उड़ेल-सा दिया।'

जनवरी सन् 1926 से शुक्ल जी के ऊपर 'सरस्वती' का पूरा भार आ गया। बख्शी जी के जाने के बाद शुक्लजी ने 'सरस्वती' की नीतियों में थोड़ा परिवर्तन किया। शुक्लजी ने फ़रवरी सन् 1927 तक 'सरस्वती' के प्रधान संपादक के रूप में कार्य किया। आचार्य द्विवेदी के समय 'सरस्वती' शुद्ध साहित्यिक मापदण्डों के अनुरूप प्रकाशित होती थी। संपादक के रूप में बख्शी जी के समय तो उसका रूप और भी सरल हो गया था, लेकिन शुक्लजी ने 'सरस्वती' को लोकप्रिय बनाने के प्रयास से इसका रूप 'इण्डियन प्रेस' की नीति के अनुरूप किया, जिसके कारण पाठकों की रुचि परिवर्तित होती रही। इसलिए पाठकों ने इसकी सराहना की। 'सरस्वती' की नीतियाँ लगभग पहले जैसी ही बनी रहीं, लेकिन युगानुकूल प्रवृत्तियों के अनुकूल सामग्री का प्रकाशन बढ़ा। 'सरस्वती' इस काल में साहित्य से राजनीतिक और सामाजिक पक्षों की ओर अधिक उन्मुख होती गई।

पंडित देवीदत्त शुक्ल ने बतौर 'सरस्वती' संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की भाँति ललित तथा उसके समवर्ती साहित्य के अन्तर्गत काव्य, कहानी, जीवन-चरित, समालोचना, निबन्ध, संस्मरण, उपन्यास तथा नाटक आदि विधाओं से संबंधित अनेक रचनाओं का प्रकाशन किया।

पंडित देवीदत्त शुक्ल ने द्विवेदी-युग के कवियों की कविताओं के साथ ही छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के प्रारम्भिक युग की कविताओं को 'सरस्वती' में प्रकाशित किया। स्पष्ट है कि पंडित देवीदत्त शुक्ल ने 'सरस्वती' की पूर्व-परंपरा का पालन करते हुए हिंदी के सभी कवियों को 'सरस्वती' में स्थान देने का प्रयास किया। शुक्लजी द्वारा प्रकाशित कविताओं में आत्माभिव्यक्ति, सौन्दर्य-भावना, व्यक्तिवाद, संवेदनशीलता, प्रकृति-प्रेम, नारी का महत्त्व, राष्ट्रीयता की भावना, कल्पनाधिक्य, यथार्थवादिता और गाँवों की ओर दृष्टि की भावना का वर्णन मिलता है। इन कविताओं के शिल्प की बात करें, तो रूप-विन्यास, चित्रमयता, अलंकार, छन्द-विधान, प्रगीतात्मकता आदि को ध्यान में रखकर कविताओं का चयन किया गया। शुक्ल जी में कवित्व-प्रतिभा और काव्य की समझ पहले से ही विद्यमान थी। पंडित देवीदत्त शुक्ल ने अपने 'सरस्वती' संपादन काल में रामधारी सिंह 'दिनकर' (भ्रमरी), अयोध्यासिंह उपाध्याय (विबोधन), गंगाप्रसाद पाण्डेय (गीत), कामताप्रसाद गुरु (सरस्वती-विनय), शांतिप्रिय द्विवेदी (जीवन-संगीत), जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (वियोग), मैथिलीशरण गुप्त (विरहिणी, द्वापर), जयशंकर प्रसाद (मुझको न मिला है कभी प्यार), रामनरेश त्रिपाठी (आँसू की मिठास) पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (असफल को) जैसे द्विवेदी-युगीन कवियों की कविताओं को प्रकाशित करने का गौरव प्राप्त किया, वहीं उन्होंने छायावाद के स्तंभ कवि सुमित्रानन्दन पन्त (तारा के प्रति), महादेवी वर्मा (गीत), सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (गीत) जैसे नवोदित कवियों की भी कविताएँ प्रकाशित कीं। इस प्रकार पंडित देवीदत्त शुक्ल 'सरस्वती' के अपने संपादन काल में नवोदित कवियों की कविताओं का प्रकाशन करने में समर्थ हुए।

पंडित देवीदत्त शुक्ल के 'सरस्वती' संपादक बनने से पूर्व हिंदी जगत में उनकी कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके थे, जिनमें 'पकौड़ीवाली', 'काल-रात्रि' तथा 'एकादशी' आदि संग्रह शामिल है। इस प्रकार शुक्ल जी कहानियों की रचना प्रक्रिया से पूर्णरूपेण परिचित थे। किस प्रकार की कहानियाँ 'सरस्वती' में छापनी चाहिए, उसकी विषयवस्तु कैसी होनी चाहिए, इसका भी उन्हें पूर्ण ज्ञान था। शुक्ल जी ने 'सरस्वती' के अपने संपादन काल में हिंदी के जिन महत्त्वपूर्ण कहानीकारों की कहानियों का प्रकाशन किया वे अधोलिखित है - प्रेमचन्द (लैला), इलाचन्द्र जोशी (अनाश्रित), जैनेन्द्र कुमार (आतिथ्य), सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (कमला), जयशंकर प्रसाद (नूरी), भगवतीप्रसाद वाजपेयी (अनिश्चय), गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' (देशद्रोही), सुभद्राकुमारी चौहान (तीन बच्चे), बेचन शर्मा 'उग्र' (पेशावर एक्सप्रेस), श्रीराम वर्मा (अब पछताये होत क्या..), राहुल सांकृत्यायन (निशा) धर्मवीर (अब धर्म-ईमान कहाँ?), विष्णु प्रभाकर (अभाव) आदि। शुक्ल-कालीन 'सरस्वती' में अनूदित कहानियाँ 'सरस्वती' की पूर्व-परंपरा के अनुसार ही प्रकाशित हुई।

'सरस्वती' में 'जीवन-चरित' विधा में वैविध्य एवं वैचित्र्य शुक्ल जी के 'सरस्वती' के संपादक बनने से पूर्व ही वर्णित होने लगा था। आचार्य द्विवेदी के समय से ही संस्मरण प्रकाशित होने लगे। बख्शी जी के समय 'सरस्वती' में संस्मरण का प्रकाशन अधिक देखने को

मिलता है। इसी क्रम का विकास शुक्ल-कालीन सरस्वती में देखने को मिलता है। इसलिए शुक्ल कालीन 'सरस्वती' में भी संस्मरणों की अधिकता मिलती है। पंडित देवीदत्त शुक्ल ने 'सरस्वती' के संपादन काल में हरिनारायण मुखोपाध्याय (बैजू बावरा), अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (इतिवृत्त), किशोरीदास वाजपेयी (सप्रे जी की स्मृति), मैथिलीशरण गुप्त (आचार्य देव), श्यामसुन्दर दास (मेरी आत्म-कहानी), महावीरप्रसाद द्विवेदी (आत्म-निवेदन), श्रीनाथ सिंह (कलकत्ते की साहित्यिक यात्रा), श्रीमन्नारायण अग्रवाल (राष्ट्रमाता कस्तूरबाबाई), पुरुषोत्तमदास टण्डन (सर सी० वाई० चिन्तामणि), गोपालराम गहमरी (साहित्यिक संस्मरण) आदि लेखों का प्रकाशन किया। शुक्लजी ने 'सरस्वती' में समकालीन लेखों को प्रकाशित कर 'सरस्वती' की परंपरा को अक्षुण बनाए रखा।

पंडित देवीदत शुक्ल की समालोचना में रुचि अधिक रही। इसका कारण आचार्य द्विवेदी जी और बख्शी जी के साथ संलग्न होकर पत्रकारिता करना माना जा सकता है। शुक्ल जी समालोचना प्रक्रिया से भली-भाँति परिचित थे, इसलिए वे समालोचना को प्रकाशित करने से पूर्व इस बात का ध्यान रखते थे कि रचना पर व्यक्तिगत संबंध का प्रभाव न पड़े। इस विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है - "...**मैं स्वयं नहीं चाहता कि 'सरस्वती' में ऐसे लेख छपें, जिनसे कोई दुखी या क्रुद्ध हो, परन्तु 'सरस्वती' अपने प्रारम्भ से ही अपनी सच्ची समालोचनाओं के लिए प्रसिद्ध रही है और इसके लिए** हिंदी **के पठित समाज में उसका विशेष आदर है। अतएव समय-समय पर वैसी आलोचनाएँ भी लाचार होकर ही छापता** हूँ, **परन्तु जहाँ तक सम्भव होता है, मैं आलोचनाओं-प्रत्यालोचनाओं के झमेले से 'सरस्वती' को दूर ही रखता हूँ...।**"

शुक्ल जी ने साहित्य और समाज दोनों दृष्टियों से उपयोगी रचनाओं को प्रकाशित किया। शुक्लकालीन 'सरस्वती' में प्रकाशित समालोचनाओं में कृष्णबिहारी मिश्र (महाकवि तोष), किशोरीदास वाजपेयी (साकेत), देवीदत्त शुक्ल (मिश्र बन्धुओं की भद्दी भूलें), उमेशचन्द्र देव (कामायनी एक अध्ययन), अमृतलाल 'शील' (चन्दबरदाई का पृथ्वीराज रासो), शिलीमुख (प्रेमचन्द की कला), हज़ारीप्रसाद द्विवेदी (हमारी साहित्यिक समालोचना का विकास), राजबहादुर लमगोड़ा (समालोचना का आदर्श), अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी (महाभारत पर विचार, तुलसी कृत रामायण की आलोचना) आदि का प्रकाशन किया। 'सरस्वती' के माध्यम से समालोचना के विकास में पंडित देवीदत्त शुक्ल ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

'सरस्वती' के अपने संपादनकाल में पंडित देवीदत्त शुक्ल ने निबंधों के प्रकाशन में 'सरस्वती' की पूर्व परिपाटी का ही अनुकरण किया। शुक्लकालीन 'सरस्वती' के निबन्धों में श्यामसुन्दर दास (हिंदी-साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन), महादेवी वर्मा (आधुनिक हिंदी कवि और प्रकृति), राहुल सांकृत्यायन (चौरासी सिद्ध), रामनरेश त्रिपाठी (दक्षिण भारत में हिंदी-प्रचार), गुलाब राय (छायावाद क्या है?) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (नाटक-समस्या), हज़ारीप्रसाद द्विवेदी (कविता का भविष्य), श्यामसुन्दर व्यास (कला), श्रीनाथ सिंह (घृणा के प्रचारक प्रेमचन्द) के अतिरिक्त समकालीन अन्य निबंधकारों के निबंधों का प्रकाशन हुआ। यह स्पष्ट है कि शुक्लजी ने हिंदी के लगभग सभी श्रेष्ठ लेखकों के निबंधों का प्रकाशन 'सरस्वती' में किया। शुक्ल जी के संपादकीय दृष्टिकोण से यह भी विदित होता है कि उन्होंने निबंध में साहित्य, दर्शन और राजनीति के अतिरिक्त ललित निबंधों जैसे विषयों पर विशेष ध्यान दिया।

शुक्ल जी ने उपन्यास विधा में पहले अनूदित उपन्यासों को बाद में मौलिक उपन्यासों को 'सरस्वती' में स्थान दिया। पंडित देवीदत्त शुक्ल को बांग्ला साहित्य के प्रति विशेष स्नेह था। बांग्ला साहित्यकार शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय (बैकुण्ठ का बिल, श्रीकान्त, शुभदा), जोसेफ़ वाल्सेमो (शशिशेखर गुप्त), चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय (धोखे की टट्टी, धोखा-धड़ी, पथ-भ्रान्त पथिक), सरोजकुमारी (द्वन्द्व, रिक्ता), इलाचन्द्र जोशी (निर्वासित) आदि अनुदित उपन्यासों को 'सरस्वती' में स्थान देकर पाठकों में उपन्यास पढ़ने की रुचि जगायी। फलस्वरूप हिंदी उपन्यासकारों में प्रकाशन के प्रति ललक देखने को मिली। शुक्ल जी इस विधा को अधिक विस्मृत नहीं कर पाए, लेकिन इन प्रयासों से हिंदी उपन्यासकारों की शैली में विकास हुआ।

'इंडियन प्रेस' के तत्कालीन संचालक बाबू हरिकेशव घोष के कहने पर मौलिक उपन्यासों को भी 'सरस्वती' में स्थान दिया जाने लगा। जिसके संदर्भ में शुक्ल जी लिखते हैं - "...**. प्रेस के मैनेजर श्री हरिकेशव घोष ने मुझे अनुमति दी कि 'सरस्वती' में अब मौलिक उपन्यास ही छपने चाहिए, बंगला के अनुवाद नहीं। उन्होंने इसके लिए समुचित व्यवस्था भी कर दी थी। लेखक को उसकी रचना का कापीराइट दे दिया गया था। 'सरस्वती' में छापने भर के लिए पुरस्कार-रूप में समुचित धन की एक रकम देना निश्चित हो गया था। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम मैंने महतो जी से ही पत्र-व्यवहार किया। उन्होंने प्रसन्नता के साथ मेरे प्रस्ताव को स्वीकार किया....।**" अतएव हम कह सकते हैं कि

शुक्लजी ने अनूदित उपन्यासों के साथ ही मौलिक उपन्यासों को 'सरस्वती' में स्थान दिया।

पंडित देवीदत्त शुक्ल के समय में 'सरस्वती' में प्रकाशित नाटकों में वैविध्य आया, लेकिन शुक्ल जी ने पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जी की नाटक प्रकाशन परंपरा को 'सरस्वती' संपादन में भी जीवित रखा। शुक्ल-कालीन 'सरस्वती' नाटकों में सुदर्शन (प्रताप-प्रतिज्ञा), सुमित्रानन्दन पन्त (ज्योत्स्ना-नाटिका), उपेन्द्रनाथ अश्क (अधिकार का रक्षक-एकांकी), प्रभाकर माचवे (सत्यान्त-नाटिका), देवीप्रसाद गुप्त (अछूत-रहस्य प्रहसन), रामकुमार वर्मा (दस मिनट-एकांकी), जगदीशचन्द्र माथुर (मेरी बाँसुरी), मोहनलाल महतो (मरण-बेला) आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही शुक्ल कालीन 'सरस्वती' में नाटक, नाटिका, प्रहसन, रेडियो नाटक, एकांकी तथा व्यंग्य-विनोद आदि का प्रकाशन हुआ। यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि पंडित देवीदत्त शुक्ल ने बख्शी जी की परंपरा को एकरूपता से आगे बढ़ाया।

शुक्ल जी ने अपने संपादकीय के संबंध में स्वयं लिखा है - "...**'सरस्वती' ने अपने आगे सदैव जनता की भावना को रखा है और उसी के मत को सरल तथा कभी-कभी उग्र भाषा में प्रकट करने का प्रयत्न किया है। न कभी किसी को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया है, न किसी को रुष्ट करने का। एकमात्र कर्त्तव्य की प्रेरणा से ही, और सो भी उसे अपना धर्म मानकर निर्भीकता के साथ देश की प्रगति या अवनति पर उसने बराबर समुचित प्रकाश डालने का प्रयास किया है। उसके इस कर्तव्य पालन में यदि कहीं त्रुटियाँ हुई हैं, तो उसकी** ज़िम्मेदारी **मेरी अल्पज्ञता पर ही है। समुचित योग्यता न रखते हुए भी मैं 'सरस्वती' का कार्य इतने वर्षों तक बराबर सफलतापूर्वक करता रहा, इसका मूल कारण था कि** हिंदी **के प्रसिद्ध लेखकों और लेखिकाओं, सुकवियों और सुकवयित्रियों तथा श्रेष्ठ कहानी-लेखकों और कहानी-लेखिकाओं का एवं नवयुवक लेखकों तथा लेखिकाओं का भी, जिनकी रचनाओं की सदैव बहुलता रही, मुझे समुचित सहयोग बराबर प्राप्त रहा। यह इन्हीं सबका विशिष्ट हिंदी-प्रेम था, जिससे इनकी उत्कृष्ट रचनाओं से 'सरस्वती' को समलंकृत करके मैं उसे उसके गौरवपूर्ण पद पर बराबर स्थिर रखने में सक्षम हो सका।..."**

शुक्ल-कालीन 'सरस्वती' में कविताएँ, समालोचनाएँ, निबंध, नाटक, उपन्यास, जीवन-चरित आदि विविध विषयों के लेखन में विकास हुआ। शुक्ल-कालीन 'सरस्वती' में सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, यात्रा संबंधी लेखादि विषयों का विकास भी हुआ जो हिंदी साहित्य में अत्यंत लाभप्रद रहे। शुक्ल-कालीन सरस्वती पत्रकारिता में एकरसता का भाव न के बराबर रहा। शुक्ल जी ने युगानुकूल रचनाओं के अतिरिक्त स्थायी मूल्य की रचनाओं को विशेष वरीयता दी। इसी का परिणाम रहा कि शुक्ल-कालीन 'सरस्वती' लोकविचार और लोकरुचि को लेकर चलती रही। रूढ़ियों से दूर रहकर शुक्ल जी ने 'सरस्वती' को उसकी समकालीन पत्रिकाओं में सर्वप्रचलित होने के आदर से सम्मानित कराया।

समग्रतः कहना उचित होगा कि शुक्ल जी ने आचार्य द्विवेदी जी और बख्शी जी की परंपरा का अनुसरण करते हुए दो दशकों तक 'सरस्वती' के संपादन का गौरवपूर्ण दायित्व निभाया और 'सरस्वती' के श्रेय को नष्ट होने से बचाया। शुक्लजी के कार्यकाल में 'सरस्वती' की भाषा प्रौढ़ एवं जन-युगीन रही। शुक्लजी ने अपनी कला का निष्ठा भाव से उपयोग कर 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी संसार की समृद्धि में अपूर्व योगदान दिया। अपने बीस वर्षों के संपादनकाल में शुक्ल जी ने साहित्यिक आदर्शों एवं कर्त्तव्यों के कारण ही ऐसा किया, व्यक्तिगत रुचि या द्वेष के कारण नहीं। शुक्ल जी का नाम हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में चिह्नित है, जो सदैव गर्व से लिया जायेगा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. देवीदत्त, शुक्ल, संपादक के पचीस वर्ष, प्रथम संस्करण, प्रयाग, कल्याण-मंदिर प्रकाशन, 1956
2. रमादत्त, शुक्ल, संपादक के संस्मरण, प्रथम संस्करण, प्रयाग, कल्याण-मंदिर प्रकाशन, 1956

deepakpandeypcb29@gmail.com

आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल और हिंदी

राजीव रंजन
नई दिल्ली, भारत

आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल विभिन्न ज्ञानानुशासनों के सम्पुजित विग्रह हैं। भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, इतिहास तथा भू-तत्व और लोकविद्या का जितना गहन अनुशीलन आचार्य अग्रवाल ने किया था, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। उनका समूचा रचना-कर्म एक महाकाव्य है, जिसके प्रत्येक स्वर, वर्ण, शब्द, यति, अरोह-अवरोह, छंद और सर्ग में भारतीय मन और चिंतन के उदात्ततम स्वर प्रतिध्वनित होते हैं। भारतीय कला-दर्शन के संबंध में उन्होंने लिंग-मूर्ति या सर्वरूप प्रतिरूप चर्चा की है –

"प्रतिरूप एक था, रूप अनेक हैं, प्रतिरूप अमृत था, रूप मृत है, प्रतिरूप अपरिवर्तनशील था रूप परिवर्तनशील है। उस एक प्रतिरूप में सब रूपों का अंतर भाव है। गणित के शब्दों में यदि कहना चाहें, तो सब अंकों की समष्टि शून्य है। अतएव यह भी चरितार्थ होता है कि जो सब रूपों को अपने में धारण करता है, वह स्वयं अणु है। जो मूलभूत प्रतिरूप, है उसे निर्गत सूक्ष्म और स्थूल के नियम सभी काल में एक समान व्याप्त होते हैं। प्रतिरूप के अभिव्यक्ति प्रतीक द्वारा ही की जा सकती है। परंतु सर्वरूपमय प्रतिरूप के अभिव्यक्ति लिंग मूर्ति से ही हो सकती है। भारतीय शिल्पी किसी एक व्यक्ति विशेष का रूप नहीं बनाता, वह तो समाज में आदर्श के बिम्ब की कल्पना करता है।"

वासुदेवशरण अग्रवाल का रचनात्मक व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही अनुपम और अपरिमित था, जिसकी छाया-प्रतिछाया में भारतीय ज्ञान-परंपरा की अनेकानेक स्थापनाएँ-मान्यताएँ और आदर्श प्रतिभाषित होती हैं।

आधुनिक हिंदी का जन्म और विकास भारतीय नवजागरण की कोख से हुआ। काव्य और कथा की कृतियों से पूर्व आधुनिक हिंदी वैचारिक और सामाजिक-सांस्कृतिक लेखन का माध्यम बन चुकी थी। ब्रजभाषा की सुकुमार कलाई जिन विचारों का भार वहन करने में लचक जाती थी, उसे आधुनिक हिंदी ने सँभाल लिया। आधार भाषा के रूप में पश्चिमी उत्तर प्रदेश की खड़ी बोली के ताने-बाने पर रची यह भाषा बंगाल से पंजाब और हिमाचल से विदर्भ तक उत्तर-मध्य भारत के समूचे वितान पर मधुमालती की तरफ़ फैल गई। इसका बड़ा कारण उसकी यह क्षमता ही थी। उस समय के प्रत्येक व्यक्ति, समाज-सुधारक, दार्शनिक और संस्कृति-कर्मी की पहली चाहत थी एक ऐसी भाषा जो समूचे भारत को एक स्वर में संबोधित कर सके, जिसका स्वर भारत की चेतना को पुनर्गठित कर एकता दे सके। यह काम न तो तत्कालीन क्षेत्रीय भाषाएँ, आँचलिक बोलियाँ और न पुरानी सरकारी जुबान फारसी या नई सरकारी गवर्निंग लैंग्वेज़ अंग्रेज़ी ही कर पा रही थी। इसको पूरा करने के लिए हिंदी का वर्तमान मानक रूप अपेक्षा के छेनी और दायित्व की हथौड़ी से ही तराशा गया। मध्यकालीन संत कवियों के बाद भाषा को लेकर पहली बार इतनी छटपटाहट इस दौर में दिखाई देती है। कबीर और उनके समकालीन संत कवियों के समय में अरबी या फ़ारसी इतनी सशक्त नहीं हुई थी, इसलिए भाषा को लेकर कबीर आदि की बेचैनी का कारण मुख्यतः अभिव्यक्ति थी, जबकि नवजागरण के दौर के बौद्धिकों के समकक्ष अंग्रेज़ी का सर्वग्रासी रूप मुँह बाए खड़ा था और उनकी भाषा संबंधी चिंता अपनी अस्मिता को बचाए रखने की चिंता थी। अपनी एक मुकरी में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अँग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत की 'तारीफ़' इन शब्दों में की है :

सब गुरुजन को बुरो बतावै।
अपनी खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्व न झूठी तेजी।
क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेज़ी।

यह उस भारतीय मेधा के लिए सांस्कृतिक क्षरण के पूर्वाभास की तरह था, जिसकी परंपरा का आदर्श यह रहा हो :

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

भारतेंदु ने जब यह लिखा कि 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल' तो उनका अभिप्राय भाषा-ज्ञान के साथ-ही-साथ भाषा में ज्ञान भी था। इसका प्रमाण उनकी रामायण का समय, काशी, मणिकर्णिका (पुरातत्त्व), कश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण, उदयपुरोदय (इतिहास), संगीत सार और जातीय संगीत (संगीत), तदीय सर्वस्व, वैष्णवता और भारत वर्ष (धर्म) आदि रचनाएँ हैं।

विदेशी भाषा के अधिपत्य के प्रभाव और उससे मुक्ति की चिंता तथा उसके यत्न भारतेंदु के बाद द्विवेदी युगीन लेखकों में भी देखी जा सकती है। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना और

सरस्वती के प्रकाशन के साथ स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का चिंतन और लेखन के साथ 'सरस्वती' पत्रिका में परिलक्षित उनकी संपादन-दृष्टि इसकी साक्षी है। सरस्वती के जुलाई-अक्टूबर 1915 के अंक में प्रकाशित 'हमारे सामाजिक ह्रास के कुछ कारणों का विचार' शीर्षक अपने लेख में माधव राव सप्रू ने अंग्रेज़ी शिक्षा और उसके प्रभाव पर कुछ इस तरह अपना विचार व्यक्त किया है, "विदेशी भाषा और विदेशी शिक्षा के आधिपत्य का परिणाम यह हुआ कि विदेशी हम लोग विदेशी भाषा में लिखते पढ़ते बोलते और विचार करते हैं। अंग्रेज़ी भाषा का सार्वत्रिक प्रचार ही हमारी भावी उन्नति के लिए आवश्यक समझा जाता है। हम अपने देश और समाज की दशा का विचार औरों की दृष्टि से किया करते हैं। फल यह हुआ कि पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा के रूप में हम लोग अपने आत्मभाव को कम कर डालने वाला और अपने समाज का ह्रास करने वाला काम करते चले जाते हैं और विशेषता यह है कि हम इसी को बुद्धि स्वातंत्र्य, सुधार, सभ्यता और उन्नति मान रहे हैं।... हम लोग विजातीय हो गए हैं।"

आज़ादी से पूर्व इस तरह की चेतना भारतीय समाज-सुधारकों, संस्कृति-चेतओं, लेखकों आदि में सहज लब्ध थी। दयानंद सरस्वती, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण भट्ट, माधवराव सप्रे, चंद्र शर्मा 'गुलेरी', अध्यापक पूर्ण सिंह, पद्म सिंह शर्मा, डॉ. मोती चंद, काशी प्रसाद जायसवाल, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, गणेश शंकर विद्यार्थी प्रभृत लेखकों के संपूर्ण लेखन का यदि एक साथ संग्रह कर उसका विश्लेषण किया जाए, तो कोई संदेह नहीं रह जाता कि 'निज भाषा' या हिंदी को लेकर उसका उनका 'विजन' आज के हिंदी लेखन से कहीं ज्यादा व्यापक था। ऐसा करते हुए यह बार-बार दोहराए जाने की ज़रूरत होगी कि उनके लिए हिंदी ज्ञान, विचार और विमर्श की भाषा थी; केवल साहित्य की भाषा नहीं। जिस निजता अथवा स्वत्व की गूँज यहाँ सुनाई पड़ती है, उसका संदर्भ अपनी भाषा के मार्ग पर खडे होकर ज्ञान-चक्षु खोलने से ही है।

आज़ाद भारत में सत्ता के रंगमंच पर अंग्रेज़ी शिक्षा और अंग्रेज़ीयत धमक कमोबेश कायम रही। इसने हिंदी को ज्ञान का सहज माध्यम बनने से रोका। हिंदी लेखकों की अन्य ज्ञानानुशासनों के प्रति उदासीनता और साहित्येत्तर लेखन को हिंदी के विमर्श और आलोचना में कम मान देना भी एक बड़ा कारण रहा। फिर भी, आज हिंदी दुनिया भर में अपने प्रयोक्ताओं के बल पर विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है, तो उसके पीछे उन हिंदी सेवियों, लेखकों और भाषा-साधकों का योगदान है, जिन्होंने साहित्य-मंडलों और हिंदी की अकादमिक दुनिया में अल्पचर्चित रहकर भी अपने जीवन का संपूर्ण स्नेह हिंदी की अखंड ज्योति के लिए समर्पित कर दिया।

इस परिदृश्य के बीच आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल की उपस्थिति विशेष महत्त्व रखती है। वे एक अनूठे ज्ञान साधक थे, जो एक साथ ही अनेक विद्याओं के मर्मज्ञ और अनेक भाषाओं के जानकार थे। उन्होंने हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों को अपने लेखन का माध्यम बनाया, किंतु उनके लिए किसी लेखक का गौरव उसके 'पृथ्वी-पुत्र' होने में है। इसलिए उनके लेखन का एक बड़ा हिस्सा हिंदी को समर्पित रहा। जायसी की कृति 'पद्मावत' के संजीवनी भाष्य में जायसी को 'पृथ्वी पुत्र' मानते हुए उन्होंने लिखा है : "जायसी सच्चे अर्थों में पृथ्वी-पुत्र थे। वे भारतीय जन-मानस के कितने सन्निकट थे, इसकी पूरी कल्पना करना कठिन है। गाँव में रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षितिज है, उसी सीमा के भीतर हर्षित स्वर से कवि ने अपने गान का ऊँचा स्वर किया है। जनता की उक्तियाँ, भावनाएँ और मान्यताएँ मानों स्वयं छंद में बँधकर उनके काव्य में गुँथ गई हैं।"

जनता की उक्तियाँ, मान्यताएँ और जीवन-व्यवहार उसकी अपनी भाषा में ही होगी और जायसी ने उसी भाषा में उसे स्वर दिया है। जायसी के प्रति आचार्य अग्रवाल के मन में सम्मान और आत्मीयता है। वे जायसी की लोक संस्कृति और लोकभाषा के प्रति लगाव के कायल हैं। अवध के जनपदीय जीवन से जायसी के लगाव और पद्मावत में उसकी सुन्दर अभिव्यक्ति के साथ ही अवधी भाषा और उसकी लोकवार्ताओं, लोकोक्तियों आदि के सटीक प्रयोग को आचार्य अग्रवाल ने सराहा है। वे इन्हें साहित्य का ज्योतिश्चक्षु मानते हैं। उन्होंने लिखा है -

"हिंदी भाषा के प्रबंध-काव्यों में जायसी का 'पद्मावत' शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। अवधी भाषा का जैसा ठेठ रूप और मार्मिक माधुर्य यहाँ मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।"

उनकी ये टिप्पणियाँ भाषा संबंधी उनकी मान्यताओं को व्यक्त करती है।

गोस्वामी तुलसीदास अवधी साहित्य के दूसरे प्रतिमान हैं। कालक्रम की दृष्टि से जायसी के परवर्ती होते हुए भी साहित्यिक-सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से हिंदी समुदाय में उनसे अधिक लोकप्रिय और लोकप्रतिष्ठित हैं। आचार्य अग्रवाल ने उनकी

साहित्यिक-सांस्कृतिक भूमिका को रेखांकित करते हुए लिखा है - "चतुर्भुज ब्रह्मा ज्ञान वेदी पर जिस प्रकार वेद चतुष्टयी का संगम होता है, उसी प्रकार धर्म दर्शन साहित्य और पुराण रामचरित मानस में एक साथ मिले हैं। गोस्वामी जी ने जिस ज्ञान-यज्ञ का विधान किया, उसके मंडप में भारतीय वाङ्मय की समस्त परम्पराएँ अपने विशुद्ध और लोकहितकारी रूप में मिली हैं। इस मंडप के तोरण पर संगत और समन्वय का संदेश अंकित है।... तुलसीदास की दूसरी बड़ी प्रतिज्ञा यह है कि नाना पुराण निगमागम सम्मत विशाल ज्ञान-भंडार को तत्कालीन लोकभाषा में बद्ध करके एक अति सुंदर निबंध के रूप में उसे जनता तक पहुँचाना है।"

गोस्वामी जी की समन्वयशीलता, भक्ति और सामाजिक मर्यादा तथा लोकमंगल की प्रतिष्ठा की चर्चा हिंदी आलोचना में खूब हुई है। आचार्य अग्रवाल भी उनकी इस भूमिका को रेखांकित करते हैं, किंतु यह भी नहीं भूलते कि वे 'लोकभाषा' के कवि हैं। गोस्वामी के समान संस्कृत भाषा के ज्ञाता और प्रयोग-निपुण कवि, यदि देववाणी में ऐसी रचना करते, तो निस्संदेह उत्कृष्ट होती और तत्कालीन विद्वत समाज द्वारा प्रशंसित भी, लेकिन भारतीय साहित्य और संस्कृति में उनको वह प्रतिष्ठा नहीं मिलती, जो एक लोकभाषा को आधार बनाकर वे पा सके -

"भाषा, छंद, रस और अर्थ पर अपने असाधारण अधिकार का उपयोग यदि वह संस्कृत काव्य के लिए करते, तो संभव यही है कि गोस्वामी जी उसमें भी सफल होते, किंतु उनकी उस सफलता से भी भारतीय साहित्य में एक बड़ा अभाव बना रह जाता, जिस भाषा को भदेस भृत्य कहकर विद्वान उस युग में हँसते रहे होंगे। उसमें यदि तुलसी ने अपने 'अति मंजुल भाषा निबंध' की रचना न की होती तो जनता और देश की प्राचीन संस्कृति के बीच में जो गहरी खाई बन गई थी वह पड़ी रह जाती है। तुलसीदास का रामचरितमानस वह सेतुबंध है, जो जनता को और नाना पुराण निगमागम वाले साहित्य को आपस में मिलाता है।"

मध्यकाल के इन दोनों केंद्रीय कवियों की भूमिका को जिस परिप्रेक्ष्य में आचार्य अग्रवाल ने रेखांकित किया है, उसे देखते हुए भाषा के चुनाव और प्रयोग के प्रति उनकी सजगता का पता चलता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि आचार्य अग्रवाल का हिंदी भाषा में लेखन केवल संयोग या अनायास था। यह सायास और सजग लेखन है। जब आधुनिक ज्ञान के तमाम स्रोत अंग्रेज़ी भाषा में मौजूद थे और स्वयं अग्रवाल जी उस भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करने में कुशल भी थे, तब उनके हिंदी प्रयोग का लक्ष्य समाज के इतिहास, परंपरा और आधुनिक ज्ञान तक हिंदी की पहुँच को सुनिश्चित करना ही था। इस दृष्टि से उनकी गणना भारतेंदु हरिश्चंद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ करनी चाहिए। साहित्य, कला, इतिहास, पुरातत्त्व, सौंदर्यशास्त्र, धर्म, दर्शन, आध्यात्म, लोक, शास्त्र जैसे विभिन्न ज्ञानुशासनों पर उनका लेखन हिंदी के ज्ञान-भंडार को जितना समृद्ध करता है, उतना हिंदी के किसी अन्य लेखक का नहीं, बल्कि उनका यह योगदान हिंदी की अनेक संस्थाओं से भी बड़ा है।

आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय ऋषि-परंपरा के चिंतक थे। वे ज्ञान की अखंड सत्ता में विश्वास करते थे। उनकी अंतर्दृष्टि का विकास धर्म, दर्शन, आध्यात्म, व्याकरण, कला, सौंदर्य, भूगोल, खगोल, लोकविद्या आदि के गहन अनुशीलन से हुआ था। इसलिए भाषा और साहित्य की चर्चा करते हुए भी वे इन्हें साथ लेकर चलते थे। वे साहित्य की उपादेयता कला, मनोरंजन या आस्वाद-मात्र से अधिक मानते थे। भारतीय साहित्यकार विशेषतः हिंदी के साहित्यकार की भूमिका को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है -

"हिंदी लेखक को सबसे पहले भारत भूमि के भौतिक शरण में जाना चाहिए। राष्ट्र का भौतिक रूप आँख के सामने है। राष्ट्र की भूमि के साथ साक्षात्कार परिचय बढ़ाना आवश्यक है। एक-एक प्रदेश को लेकर वहाँ की पृथ्वी के भौतिक रूप का सांगोपांग अध्ययन हिंदी लेखकों को बढ़ाना चाहिए। यह देश बहुत विशाल है।... देश की नदियाँ वृक्ष और वनस्पति, औषधि और पुष्प, फल और मूल, तृण और लताएँ सब पृथ्वीपुत्र हैं। लेखक उनका सहोदर है।" प्रकृति के प्रति अग्रवाल जी का यह राग भारतीय लोकमानस और आर्षचित्त का समन्वित उत्तराधिकार है। उन्होंने आगे लिखा है -

"भारत के साहित्यकार विशेषतः हिंदी के साहित्य मनीषियों को चाहिए कि इस नवीन दृष्टिकोण को अपनाकर साहित्य के उज्ज्वल भविष्य का साक्षात दर्शन करें। दर्शन ही ऋषित्व है। ऋषि साधना के बिना राष्ट्र या उसके साहित्य का जन्म नहीं होता।"

इन पंक्तियों को पढ़ते हुए पाठक को 'पृथ्वी सूक्त' की अनुगूँज सुनाई पड़ सकती है, जो सहज है। आचार्य अग्रवाल पर इसका गहरा प्रभाव था। साहित्य और कला के प्रति उनकी दृष्टि तथा धरती के सौंदर्य के प्रति उनका अनुपम राग उत्तराधिकार में उन्हें यहीं से मिला था।

मातृभूमि के प्रति उनके अनुराग की बानगी, उनके मातृभूमि शीर्षक निबंध में देखी जा सकती है - "जिसके भाल पर कश्मीर-जन्मा कुसुम केसर तिलक है, जिनके चरणों में भक्तिभाव से

अनवरत सिंहल प्रणाम करता है, जिसके चरणामृत का महोदधि नियमित पान करते हैं- उस माता के स्वरूप को जानने की किसे इच्छा न होगी? जिसके रक्षक स्वयं शैल राज हिमवंत हैं, जहाँ सरस्वती की शाश्वत धारा प्रवाहित है, जहाँ सिंधु और ब्रह्मपुत्र शैलराज के अमृत संदेश को अगाध सागर के समीप मंत्रणा के लिए ले जाते हैं, जहाँ मरुस्थल और दंडकारण्य जैसे विशिष्ट प्रदेश हैं- वह भूमि किस नाम से विश्रुत है?"

यहाँ उनकी चित्रण-शैली की विलक्षणता देखी जा सकती है, जो निर्विवाद रूप से साहित्यिक है। संस्कृत साहित्य की इस पर गहरी छाप है और इसे हिंदी के ललित भंगिमा वाले निबंधों को साथ रखकर पढ़ा जा सकता है। उनके अन्य निबंधों में भी भाषा अत्यंत सरस और साहित्यिक है। अपने गद्य में चित्रभाषा का प्रयोग भी उन्होंने खूब किया है। इनमें उनकी रुचि और साहित्यनुराग भी परिलक्षित होते हैं।

राष्ट्रीयता और संस्कृति को साहित्य के अनुशीलन और मूल्यांकन को कसौटी मानना आचार्य अग्रवाल की साहित्य-दृष्टि की विशिष्टता कही जा सकती है। वे अपने सभी प्रिय रचनाकारों को इस कसौटी पर ज़रूर कसते हैं। वाल्मीकि और तुलसीदास ही नहीं, वेदव्यास और कालिदास भी उनकी दृष्टि में यदि श्रेष्ठ कवि हैं, तो अन्य तमाम विशिष्टताओं के साथ अपनी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भूमिका के कारण। महर्षि वेदव्यास के संबंध में उनकी मान्यता है कि "हमारे राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिए 'महाभारत का विशेष महत्त्व है.... वेदव्यास जिस भारत राष्ट्र की उपासना करते थे, भविष्य का प्रत्येक हिंदू उसका स्वप्न देखेगा।" इसी तरह कालिदास के 'रघुवंशम्' महाकाव्य को उनका 'राष्ट्रीय वैभव और आदर्शों का काव्य' तथा उनकी कविता को 'भारतीय संस्कृति की त्रिपथा गंगा' कहना भी राष्ट्र और संस्कृति के प्रति उनके अनन्य राग का प्रमाण है। उनका राष्ट्र-बोध और सांस्कृतिक चेतना लोकानुरागी है। उनकी मान्यता थी कि "वही साहित्य लोक में चिर जीवन पा सकता है, जिसकी जड़ें दूर तक पृथ्वी में गईं हैं। जो साहित्य लोक की भूमि के साथ नहीं जुड़ा, वह मुरझाकर सूख जाता है।" 'महर्षि बाल्मीकि', 'महर्षि व्यास', 'महाकवि कालिदास', 'पाणिनि', 'तुलसी दास', सूर दास, जायसी संबंधी उनका लेखन तथा 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष', 'बाणभट्ट एक सांस्कृतिक अध्ययन', 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन', मेघदूत : एक अध्ययन, 'भारत-सावित्री', 'कीर्तिलता : संजीवनी भाष्य' 'पद्मात : संजीवनी भाष्य' उनकी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के साथ ही साहित्य-विवेक और 'सहृदयता' के साक्षी हैं।

अग्रवाल जी आधुनिक काल में भारतीयता के सम्भवतः पहले देशज सर्वांग भाष्यकार थे। पहले और देशज इसलिए कि वे भारतीयता के आत्म-तत्त्व के अन्वेषण में वेद-शास्त्रादि के अनुशीलन और अनुभवन के साथ ही लोक-मानस, लोक-धर्म, लोक-कला तथा लोक-जीवन को भी साथ-साथ लेकर चले और इन्हें 'कल्प-वृक्ष' की संज्ञा दी। उनसे पूर्व भारतीयता की आधुनिक समझ का एक बड़ा हिस्सा पाश्चत्य इतिहास दृष्टि और संस्कृति-बोध से प्रेरित या प्रभावित था। अध्येताओं ने वेद तथा धर्मशास्त्रीय ग्रंथों के मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किए गए अनुवादों के आधार पर भारत की एक पाश्चात्य मूर्ति रची और फिर उसमें भारतीय संस्कृति की प्राण-प्रतिष्ठा के प्रयास किए। इसीलिए कुछ अध्येताओं को यह संस्कृति 'आश्चर्यजनक', 'बेमेल' या 'अजायबघर' सी जान पड़ती है। आचार्य अग्रवाल इनसे अलग इस अर्थ में हैं कि वे किसी पूर्वमान्यता के आधार पर साधारण प्रतिज्ञा के साथ नहीं चलते और न ही उसे सिद्ध करने की ज़िद करते हैं। उनका अध्ययन जन-जनपद-राष्ट्र के उत्तरोत्तर क्रम में आगे बढ़ाता है और उनकी परस्पर अन्विति तथा अंतःसंबंधों की व्याख्या कर हमें भारतीय संस्कृति को पहचानने की आँख देता है।

आधुनिक शिक्षा द्वारा आरोपित औपनिवेशिक इतिहास दृष्टि जहाँ भारत की एक राष्ट्र के रूप में उपस्थिति के नकार और भारतीय संस्कृति के प्रति तिरस्कार की दृष्टि या दया की दृष्टि से देखने को प्रेरित कर रही थी, वहाँ आचार्य अग्रवाल उसके औदात्य को अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिंदी समाज के सामने ला रहे थे। वे उपनिवेशवाद द्वारा आरोपित अंतर्राष्ट्रीयता के समानांतर जनपदीय दृष्टि से भारत के अध्ययन की प्रस्तावना रच रहे थे। उनके ऐतिहसिक सांस्कृतिक अध्ययन की साधारण प्रतिज्ञा ही है कि "भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।" और भारत ! आचार्य अग्रवाल के अनुसार, "भारत जनपदों का देश है।" इसलिए भारत के राष्ट्र और संस्कृति के स्वरूप को उसके जनपदीय जीवन की समझ और उससे तादात्म्य के बिना नहीं समझा जा सकता। लेकिन दुर्भाग्यवश "पिछले दो सौ वर्षों में जनपदीय जीवन पर चारों ओर से लाचारी के बादल छा गए और उनके जीवन के सब स्रोत रुंध गए। अब फिर से जनपदों के उत्थान का युग आया है। देश के महान कंठ आज जनपदों की महिमा का गान करने के लिए खुले हैं। देश के राजनीतिक संघर्ष में ग्रामों और जनपदों को आत्मसम्मान आत्मप्रतिष्ठा और आत्म

महिमा के भाव से भर दिया है।"

वासुदेव जी ने भारत की समझ के लिए जिस जनपदीय अध्ययन की आँख की चर्चा की है, उसकी 'ज्योति भाषा है'। किसी भाषा-शास्त्री के लिए जनपदीय अध्ययन कल्प-वृक्ष या कामधेनु की तरह है। इसीलिए उन्होंने उक्त विषय पर लिखी गई अपनी पुस्तक का नामकरण भी 'कल्प-वृक्ष' ही किया है। इस दृष्टि से वे हिंदी और उसकी बोलियों के अध्ययन को महत्त्वपूर्ण मानते थे। हिंदी विकास और व्युत्पत्ति में ग्रियर्सन की तरह संस्कृत की भूमिका को सारा महत्त्व देने की तुलना में वे जनपदीय बोलियों की भूमिका को भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते हैं, "हिंदी भाषा के शब्द निरुक्ति के लिए हमें जनपदीय बोलियों के कोषों का सर्वप्रथम निर्माण करना होगा बोलियों में शब्दों के उच्चारण और रूप जाने बिना शब्द की व्युत्पत्ति का पूरा पेट नहीं भरा जा सकता। बोलियों की छानबीन होने के उपरान्त कई लाभ होने की संभावना है। प्रथम तो इन कोषों में हमारे प्रादेशिक जीवन का पूरा ब्योरा आ जाएगा, दूसरे शब्द नामक ज्योति जीवन के अंधेरे कोठों को प्रकाश से भर देगी और तीसरे जनपदों के बहुमुखी जीवन के शब्दों को पाकर हमारे साहित्यिक वर्णना शक्ति विस्तार को प्राप्त होगी। इन बोलियों की लोकोक्तियों के संग्रह पर उनका बल था। उनकी मान्यता थी कि 'लोकोक्तियों के रूप में समस्त जाति की आत्मा एक बिंदु या कूट पर संचित होकर प्रकट हो जाती है।"

आचार्य अग्रवाल जब हिंदी और उसकी बोलियों का अध्ययन समाज भाषा विज्ञान या तुलनात्मक भाषा विज्ञान की दृष्टि से करने की पहल कर रहे थे, तब हिंदी के अकादेमिक परिवेश में ये पद्धतियाँ सामान्य चलन में नहीं थीं। वे भारतीय शिक्षा-पद्धति में इन लोकोक्तियों को शामिल करने के हिमायती थे, क्योंकि ये संस्कृति और भाषा की तरह ही लोक-जीवन के व्यवहार के लिए भी अत्यंत उपयोगी हैं; "जनपदीय चक्षुष्मत्ता साहित्यिक का ही नहीं प्रत्येक मनुष्य का भूषण है, उसकी वृद्धि जीवन की आवश्यकता के साथ जुडी है।"

आचार्य अग्रवाल मूलतः इतिहास और कला के अध्येता थे। उनके अनेक आलेख, शोध-पत्र और ग्रंथ हिंदी भाषा में रचे गए। जबकि भारतीय भाषाओं में इस तरह के ज्ञान के प्राथमिक स्रोतों का अभाव था और हिंदी का सामान्य पाठक वर्ग उपनिवेशी इतिहासकारों की पुस्तकों का अनुवाद पढ़कर अपने देश और संस्कृति के बारे में राय तय करने लगा था, तब उनकी यह भूमिका काफ़ी महत्त्वपूर्ण थी। ऐतिहासिक और पुरात्त्विक साक्ष्यों के साथ-साथ उन्होंने साहित्यिक ग्रंथों को भी अपने अनुसंधान का आधार बनाया, मार्कंडेय पुराण: एक सांस्कृतिक अध्ययन, पणिनि की 'अष्टाध्यायी' के आधार पर 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष', बाणबट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्ष चरित' का सांस्कृतिक अध्ययन और महाभारत आधारित भारत-सावित्री इस तरह के अनूठे और अनुकरणीय उदाहरण हैं। ऐसा करते हुए उन्होंने हिंदी के ज्ञान क्षितिज का विस्तार किया और 'पृथ्वी सूक्त : एक अध्ययन', 'उरुज्योति', 'वेद्विद्या', 'वेदरश्मि', 'भारतीय कला', पृथ्वीपुत्र, कल्प वृक्ष, चक्रध्वज, पृथ्वीपुत्र, वाग्धारा, कला और संस्कृति, भारत की मौलिक एकता, प्राचीन भारतीय लोकधर्म आदि नक्षत्रों के माध्यम से उसे प्रकाशित किया।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. वासुदेवशरण,अग्रवाल, कल्प-वृक्ष, साहित्यसदन, इलाहाबाद, 1952
2. वासुदेव शरण, अग्रवाल, भारत सावित्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1964
3. वासुदेव शरण, अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारत वर्ष, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी,
4. वासुदेव शरण, अग्रवाल, हर्ष चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1953
5. वासुदेव शरण, अग्रवाल, भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1966
6. वासुदेव शरण, अग्रवाल, पृथ्वी-पुत्र, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1960
7. वासुदेव शरण, अग्रवाल, पद्मावत्, संजीवनी भाष्य, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, 1956
8. आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2009
9. मैनेजर पांडेय, (सं.), माधवराव सप्रे : संकलित निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2009
10. कपिला वात्स्यायन, (सं), वासुदेव शरण अग्रवाल रचना संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2012
11. हनुमानप्रसाद शुक्ल, (सं.), राष्ट्र धर्म और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली-2023

rranjan0702@gmail.com

डॉक्टर धनीराम प्रेम - एक बेजोड़ प्रवासी

रोहित कुमार हैप्पी
न्यूज़ीलैंड

सन् 1904 में भारत के अलीगढ़ के अंतर्गत दरियापुर ग्राम में जन्मे धनीराम पहले प्रवासी हिंदी कथाकार हैं। उन्होंने कहानी, काव्य, आलेख, यात्रावृत्तांत के अतिरिक्त हिंदी फ़िल्मों के गाने व पटकथा लिखी। इंग्लैंड और स्कॉटलैंड की पृष्ठभूमि में लिखी गई उनकी पहली कहानी 'डोरा' हिंदी की 'भविष्य' पत्रिका में अक्टूबर, 1930 के अंक में प्रकाशित हुई थी। 'डोरा' (1930) के अतिरिक्त भी उनकी अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई जिनमें नानी (1931), साहस (1932), अछूत (1932), गायक (1932) पहेली (1932), बदला (1932), आहुतियाँ (1933), देवता (1933) और लालारुख (1933) सम्मिलित हैं। बाद में लिखी गई कहानियाँ बारहसैनी मासिक में प्रकाशित हैं। पहली बार विलायत से उच्च शिक्षा पाकर भारत लौटने पर उन्होंने 'चाँद' और 'भविष्य' जैसी अपने समय की लोकप्रिय पत्रिकाओं का संपादन भी किया। उन्हें कथा-सम्राट प्रेमचंद का सानिध्य और मार्गदर्शन भी मिला। डॉ. धनीराम प्रेम ने अनेक हिंदी फ़िल्मों के गीत और पटकथाएँ लिखीं और बाद में जब स्थायी तौर पर वे विलायत जा बसे, तब वहाँ पहले एशियाई पार्षद होने का गौरव पाया और मुख्यधारा की राजनीति में सक्रिय रहकर नाम कमाया। एक अबोध अनाथ बालक से अंतर्राष्ट्रीय मंच पर डॉक्टर धनीराम 'प्रेम' होने का उनका सफ़र निःसंदेह सरल न था।

आज देश-विदेश में अनेक प्रवासी भारतीय लेखन से जुड़े हुए हैं और विदेशों में चिकित्सक और राजनीतिज्ञ के रूप में अपनी सेवाएँ भी दे रहे हैं, लेकिन हम बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों की बात कर रहे हैं, जब देश गुलाम था और भारतीयों के लिए विदेशों में प्रतिकूल परिस्थितियाँ थीं। डॉ. धनीराम उस समय भारतीय समुदाय की आवाज़ बने, जब आवाज़ उठाने का मतलब विपत्तियों के अतिरिक्त कुछ नहीं था। तरुण अवस्था में जिस बालक ने देश के लिए कारावास तक भोगा हो और बिना माँ-बाप के होते हुए भी अपना संघर्ष जारी रखा हो, उसे प्रतिकूल परिस्थितियाँ भला कैसे विचलित कर सकती थीं! यह बालक आगे चलकर भारत और समूची मानवता के लिए अनेक कार्य करने वाला था। अचरज की बात है कि ऐसे व्यक्ति को जिसे उसके कामों के लिए ब्रिटिश और भारत ने खूब सराहा हो, जो प्रवासी होकर ब्रिटेन के भारतीयों की आवाज़ बन गया हो, उसका नाम विस्मृत हो चुका है। अधिक आश्चर्य तब होता है, जब प्रवासी साहित्य में भी डॉ. धनीराम प्रेम का नाम नदारद मिलता है। हिंदी में प्रवासी कथा-साहित्य का आरम्भ प्रेमचंद की 'यही मेरी मातृभूमि है' (1908) और शूद्रा (1926) की कहानियों से मान्य है, लेकिन यदि हम किसी प्रवासी द्वारा लिखी गई 'हिंदी कहानी' की चर्चा करें, तो 1930 में 'भविष्य' पत्रिका के अक्टूबर अंक में प्रकाशित डॉक्टर धनीराम प्रेम की कहानी 'डोरा' पहली ऐसी कहानी थी, जो किसी भारतीय प्रवासी द्वारा विदेशी ज़मीन पर लिखी गई थी।

'डोरा' एक उच्च कोटि की प्रेम-कहानी है। केवल तीन पात्रों की इस कहानी का मौलिक भाव प्रेम है। आत्म-चरित्र पद्धति की इस कहानी का कथानक सरल, रोचक और उत्कृष्ट है। कहानी का नायक भारतीय नवयुवक 'मोहन' है, वह स्वास्थ्य लाभ हेतु विलायत (इंग्लैंड) जाता है। वहाँ दो मास लंदन में रहने के बाद वह स्कॉटलैंड के हाईलैंड्स की एक रम्य घाटी में अपना निवास-स्थान बनाता है। कहानी की शुरुआत में 'मोहन' जब सैर करने के लिए जाता है, तब अचानक उसे किसी लड़की के चीखने की आवाज़ सुनाई देती है। मोहन उसकी मदद के लिए जाता है, एक जंगली कुत्ते ने उस लड़की पर हमला बोल दिया था। वह उस लड़की की रक्षा करता है। इस प्रकार कहानी के नायक 'मोहन' की मुलाकात स्थानीय युवती 'डोरथी विल्सन' से होती है। 'डोरथी विल्सन' को प्यार से 'डोरा' भी कहते हैं। यहीं से कहानी आगे बढ़ती है और दोनों एक-दूसरे को चाहने लगते हैं, लेकिन शायद किसी तीसरे को यह भाता नहीं। मोहन को जान से मारने का प्रयास होने लगता है। एक बार एक व्यक्ति छुरी से मोहन पर हमला करता है, 'डोरा' आगे बढ़कर उसकी प्राण-रक्षा करती है, लेकिन अपनी जान गंवा देती है। जिस 'डोरा' की किसी समय 'मोहन' ने प्राण रक्षा की थी, उसी 'डोरा' ने प्रतिदान स्वरूप मोहन के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

इस प्रकार जो युवक अपने स्वास्थ्य-लाभ के लिए विदेश गया था, वह टूटा हृदय लेकर वापिस लौटता है। संक्षेप में यही कहानी का कथानक है। यह कहानी पहली प्रवासी कहानी है और इसके अतिरिक्त भी डॉ. धनीराम 'प्रेम' की कुछ कहानियाँ विदेशी ज़मीन की हैं। 'डोरा' कहानी से पहले भी प्रवासी काव्य और आलेख प्रकाशित हुए पर कथा-साहित्य नहीं।

डॉक्टर धनीराम प्रेम की राजनीतिक भूमिका की कुछ जानकारी अंग्रेज़ी में उपलब्ध है, लेकिन उनके हिंदी साहित्य की

अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं। अंग्रेज़ी जानकारी के आधार पर उनका परिचय अवश्य मिलता है, लेकिन उनके साहित्य को जो स्थान मिलना चाहिए, वह नहीं मिला। इस पर और शोध की आवश्यकता है, ताकि हिंदी जगत् उनके साहित्य से परिचित हो सके।

धनीराम ने बचपन में ही अपने माँ-बाप खो दिए। अनाथ अबोध बालक को अपने माता-पिता का स्मरण तक नहीं था, अपने आत्मकथ्य में वे लिखते हैं, "मुझे अपने माता-पिता का कुछ ध्यान नहीं है। मेरी तीन वर्ष की आयु के पहले ही वे इस लोक को छोड़ चुके थे। माता का स्नेह क्या होता है, यह मैंने कभी नहीं जाना।"

बाल्यावस्था से ही धनीराम को हिंदी साहित्य से लगाव हो गया। प्राथमिक पाठशाला में ही वे लिखने लगे थे और अपने माता-पिता की कमी को अपनी रचना में व्यक्त करने का प्रयास करने लगे, वे लिखते हैं "मुझे भली-भाँति याद है कि जब मैं हिंदी की लोअर प्राइमरी कक्षा में पढ़ता था, तब इसी भाव को व्यक्त करते हुए मैंने कुछ दोहे लिखे थे। वे दोहे डिप्टी इंस्पेक्टर महोदय ने बहुत पसंद किए और उनके लिए पाव भर जलेबी उन्होंने पुरस्कार-स्वरूप भेंट भी की।"

एक बार कवि पं. नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' (1859-1935) की दृष्टि धनीराम एक पद्य पर पड़ गई। उसको पढ़कर 'शंकर' जी ने लिखा-

"प्रियवर प्रेम का पद्य पढ़ा। परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। अभी अभ्यास की अधिक आवश्यकता है। आशा है आगे चलकर प्रेम एक उच्च कवि की पदवी प्राप्त करेंगे।" पं. नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' आधुनिक खड़ी बोली के प्रारंभिक कवियों में से एक थे और वे महाकवि शंकर के नाम से जाने जाते थे। बचपन में अनाथ हुए बालक धनीराम को दुनिया भर की मुसीबतों का सामना करना पड़ा। हालाँकि वे एक अच्छे परिवार से थे और उनकी पैतृक संपत्ति भी थी, लेकिन सरकार की तरफ़ से जिस संबंधी को अभिभावक बनाया गया, उसका व्यवहार इनके प्रति अच्छा नहीं था। धनीराम घर से भाग गए और उसने एक पुस्तकालय में आश्रय लिया। मेहनत-मज़दूरी करके साथ-साथ पढ़ने रहे। वे गांधी जी से प्रभावित थे और कांग्रेस की सभाओं में भी जाते थे। क्रांति के बारे में किताबें पढ़ने के बाद धनीराम की राजनीति में रुचि जगी। वह भारत में शांतिपूर्ण स्वतंत्रता लाने के लिए महात्मा गांधी के आंदोलन से भी प्रेरित हुए। वे अपने शहर के पास के गाँवों में बैठकों व जलसों को संबोधित करने लगे। कांग्रेस के एक किशोर सदस्य के रूप में और एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में उन्हें दो बार कारावास की सज़ा भुगतनी पड़ी। पहली बार तो केवल 12 वर्ष की अवस्था में उन्हें एक दिन का कारावास हुआ। दूसरे कारावास की कहानी का परिचय आपको आगे मिल जाएगा।

असहयोग आंदोलन के समय तक धनीराम प्रेमचंद के सभी उपन्यास और कहानियाँ पढ़ चुके थे। वे अपने संस्मरण में लिखते हैं, "सन् 1920 में असहयोग (आंदोलन) के समय तक मैं उनके सारे उपन्यास और कहानियाँ पढ़ चुका था और उन्हें पढ़कर यह इच्छा बलवती हो गई थी कि उनसे भेंट करके उन्हीं की तरह कुछ लिखें।"

बात 1921 की है, कथा-सम्राट प्रेमचंद कानपुर के मारवाड़ी विद्यालय के प्रधानाचार्य बने। जब धनीराम को इसकी सूचना मिली, तब वहाँ जाने का निश्चय कर लिया। इस बीच प्रेमचंद से पत्र-व्यवहार करके अपनी कहानियों के बारे में मार्गदर्शन का अनुरोध भी किया।

धनीराम को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ जब उन्होंने प्रेमचंद के हाथ का लिखा हुआ पत्र पाया। उस पत्र में प्रेमचंद ने लिखा था - "प्रियवर, आपने जो कुछ कहानियाँ लिखी हैं, मुझे भेज दो, मैं देखकर सम्मति लिख दूँगा। जो छप चुकी हैं, वे भी देखने को भेज दीजिएगा। यदि आप कानपुर आना चाहते हैं तब तो यहाँ बातें हुआ ही करेंगी।'

प्रेमचंद के हृदय की इस विशालता पर किशोर धनीराम मुग्ध हो गए। अब तो हिम्मत बढ़ गई और धनीराम ने अगले पत्र के साथ अपनी लिखी हुई एक छोटी-सी कहानी भी भेजी।

चार दिन बाद ही उत्तर आ गया और संशोधन के साथ कहानी भी। उत्तर में लिखा था, "प्रियवर, तुम्हारे पत्र का उत्तर देने में दो दिन की देरी हो गई। वह इसलिए कि गांधीजी मेरे स्कूल में आये थे। तुम कहानियाँ अच्छी लिख सकते हो। मेरी सलाह है कि कुछ अच्छी अंग्रेज़ी की कहानियाँ और उपन्यास समय मिलने पर पढ़ते रहा करो।"

धनीराम इस घटना को याद करते हुए लिखते हैं - "मुझे अच्छी तरह याद है कि किस प्रकार मैं उस पत्र को अपने मित्रों को दिखाकर प्रेमचंदजी के विशाल हृदय की सराहना करता फिरता था। उस पत्र ने उनके प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़ा दी और वह शीघ्र ही मुझे कानपुर खींच ले गई।"

मारवाड़ी विद्यालय के दफ़्तर में प्रेमचंद के प्रथम दर्शन हुए। उक्त विद्यालय में मैट्रिक न होने के कारण धनीराम को एक दूसरे विद्यालय में जाना पड़ा; परंतु प्रेमचंद के कहे अनुसार वे समय-समय पर उनके दर्शन करते रहे। यह क्रम भी अधिक दिनों तक न

रहा। प्रेमचंद कानपुर से बनारस चले गए और धनीराम कारावास में। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कारावास का दंड जो दिया था। उन्हीं के शब्दों में - "कानपुर में, मेरे दुर्भाग्य से, उनका साथ मुझे अधिक दिनों तक न मिल सका, क्योंकि थोड़े दिन बाद ही वे कानपुर छोड़कर बनारस चले गये और मैं जेल चला गया।"

एक बार पहले एक दिन का कारावास काट चुके धनीराम को दूसरी बार गांधी जी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने और 80,000 लोगों की एक सभा को आधे घंटे तक संबोधित करने के बाद पुनः राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। इस बार युवा धनीराम पर न्यायालय की अवमानना करने एवं राजद्रोह का अभियोग लगाया गया। इस मामले में उन्हें एक वर्ष का कारावास हुआ।

कारावास में धनीराम को क्रांतिकारी पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी का भी सानिध्य मिला। कारावास की सज़ा भुगतने के बाद 'धनीराम' दुबारा अध्ययन में लग गए। विद्यालय की शिक्षा पूरी करने के पश्चात एक धर्मार्थ संस्था के सहयोग से धनीराम बंबई में चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा लेने लगे। भारत में चिकित्सा की शिक्षा पूरी करने के बाद 1928 में कुछ वर्ष के लिए विलायत में उच्च शिक्षा लेने के लिए गए और 1931 में भारत लौटे। अपने प्रवास के दौरान उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से संपर्क रखा। इसी समय 'डोरा' कहानी भी लिखी, जो अक्टूबर, 1930 में 'भविष्य' पत्रिका में प्रकाशित हुई। 1929 से 1931 के बीच, अपने प्रवास में उन्होंने अनेक यात्रा-वृत्तांत भी लिखे हैं, जिनमें कोलंबो से लंदन, माधुरी (मार्च 1929), लंदन का प्रथम दर्शन (चाँद, 1929), स्कॉटलैंड का सैर (सुधा, 1930), मेरा यूरोप भ्रमण, (चाँद, 1932) सम्मिलित हैं।

विलायत से उच्च शिक्षा पाने के बाद जब डॉ. धनीराम 'प्रेम' 1931 में भारत लौटे तब वे चिकित्सा के क्षेत्र में नौकरी पाने में असफल रहे। इस समय तक वे कहानियाँ लिखना शुरू कर चुके थे और हिंदी साहित्य जगत में अपनी एक पहचान भी बना चुके थे। इसी समय में उन्होंने कुछ समय 'चाँद' पत्रिका का संपादन किया। 'चाँद' पत्रिका का संपादक होने पर एक बार उन्होंने प्रेमचंद को 'चाँद' के लिए कहानी भेजने का अनुरोध किया तो प्रेमचंद का उत्तर आया - "अरे, मैं नहीं जानता था कि अपना धनीराम ही 'डॉ. धनीराम प्रेम, लन्दन' है। तुम्हारी कहानियाँ पढ़कर कुछ खिंचाव होता था, लेकिन यह नहीं समझा था कि इसका कारण यह है।"

इसके बाद दोनों के बीच पत्र-व्यवहार होता रहा। 'चाँद' में कुछ समय रहने के बाद जब डॉ. धनीराम प्रेम एक गीतकार और पटकथा लेखक के रूप में बम्बई चले गए, तब एक बार उन्होंने प्रेमचंद को साहित्य से अलग होने की अपनी इच्छा से परिचित करवाया। इसके उत्तर में प्रेमचंद का पत्र आया, "अरे भाई, कहीं यह हो सकता है कि इतने खेल खेलकर तुम साहित्य से आसानी से नाता तोड़ दो। मैं इस बात का अनुरोध करता हूँ कि तुम कम-से-कम दो घंटे रोज़ साहित्य के लिए अवश्य दो।"

प्रेमचंद के पत्र ने ही डॉक्टर धनीराम प्रेम को हिंदी साहित्य से जुड़े रहें को प्रेरित किया। वे स्वयं लिखते हैं - "यह उन्हीं (प्रेमचंद) का अनुरोध था कि मैं अन्य कार्यों में फँसे रहने पर भी हिंदी में कुछ-न-कुछ लिखता रहा हूँ। नहीं तो शायद अब तक मेरा संबंध हिंदी साहित्य से कभी का टूट गया होता। जहाँ तक मेरा ख्याल है, इसी प्रकार प्रेमचंदजी ने हिंदी साहित्य के क्षेत्र में दर्जनों नवयुवकों का प्रवेश कराया और उन्हें वहाँ जमाया। यह भी हिंदी के लिए उनकी एक बड़ी भारी सेवा थी।"

एक बार एक पुस्तक के प्रकाशन में विलंब को लेकर डॉ. धनीराम और प्रेमचंद में कहा-सुनी भी हुई, वे लिखते हैं - "उनके प्रेस में छपने के लिए मैंने एक पुस्तक भेजी थी। दो महीने का वायदा था और छः महीने में भी वह पूरा न हुआ। काफ़ी पत्र-व्यवहार हुआ और कटु शब्दों का परिवर्तन। अन्त में, मैंने वह अधूरी पुस्तक वापस मँगा ली।"

जब सारा झगड़ा समाप्त हो गया, तब प्रेमचंद ने धनीराम को एक पत्र में लिखा - 'इस देरी में मेरा कोई अपराध नहीं था। बात यह है कि प्रबन्ध में मैं बहुत ही कच्चा हूँ और दुर्भाग्य से इस कारण मेरे अपनों को ही दुख अधिक पहुँचा है, प्रेस में से लोग रुपया खा गये हैं। तुम यहाँ आकर अगर देख सको, तो मेरी मुश्किलों को समझोगे। शायद हम लोगों की किस्मत में कटु शब्द बदलना लिखा था। खैर, अब हमारा व्यक्तिगत संबंध और भी सुदृढ़ होगा। जब हम मिलेंगे, तो यह धब्बा मिट जाएगा।'

धनीराम प्रेम ने विभिन्न पुस्तकें लिखी जिनमें भारत का कहानी साहित्य, 'वल्लरी (कहानी-संग्रह), प्राणेश्वरी, प्रेम गीतांजलि, मृतात्माओं से बातचीत, वीरांगना पन्ना, मेरा देश (राजनैतिक उपन्यास), वेश्या का हृदय (उपन्यास), नरभक्षी बकासुर, चांदनी (नई कहानियों का संग्रह), देवी जोन, रूस का जागरण इत्यादि सम्मिलित हैं। उन्होंने चिकित्सा से संबंधित 'हमारा भोजन' और 'सन्तति निग्रह' नामक पुस्तकें भी लिखी लेकिन अब वे फ़िल्मी दुनिया में स्थापित होने चले थे। यह आर्थिक मंदी का समय था। 1929 से 1939 तक वैश्विक आर्थिक मंदी का दौर चल रहा था, जिसने दुनिया भर के अधिकतर देशों को प्रभावित किया। भारत

भी इसी दौर से प्रभावित था।

डॉ. धनीराम 'प्रेम' ने फ़िल्मों के लिए लिखने का मन बना लिया था। उन्होंने 1932 से 1936 तक अनेक फ़िल्मों के लिए कहानियाँ, संवाद और गीत लिखे और फिर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पुनः 1946 में एक फ़िल्म के लिए लिखा। पहले 2 वर्षों में उन्होंने केवल रंजीत स्टूडियो की फ़िल्मों के लिए ही लिखा। बाद में वे स्वतंत्र-लेखन करने लगे और दूसरों के लिए भी लिखने लगे, जिन फ़िल्मों में उन्होंने गीतकार या पटकथा लेखक या संगीतकार के रूप में लिखा उनमें दो बदमाश (1932), भूतिया महल (1932), भूल भुलैयाँ (1933), भोला शिकार (1933), परदेसी प्रीतम (1933), काला पहाड़ (1933), गरीब का प्यारा (1934), इन्दिरा एम.ए. (1934), मेरा ईमान (1934), अल्लादीन -II (1935), प्रीत की रीत (1935), मदन मन्जरी (1935), रंग भूमि (1935) गोल निशान (1936) एवं स्वदेश सेवा (1946) सम्मिलित हैं। हिंदी फ़िल्म 'दो बदमाश' उनकी 'प्राणेश्वरी' कहानी पर आधारित है और परदेसी प्रीतम की कहानी भी डॉ. धनीराम 'प्रेम' ने ही लिखी है।

यह भी दिलचस्प तथ्य है कि 30 के दशक में हिंदी फ़िल्मों में एक ही नाम के दो गीतकार थे - एक डॉ. धनीराम प्रेम और दूसरे धनीराम। कुछ फ़िल्मों में तो दोनों ने एकसाथ गीत दिए हैं जैसे मदन मंजरी (1935) और प्रीत की रीत (1935)। डॉ. धनीराम प्रेम ने 1932 से 1936 तक ही हिंदी फ़िल्मों के लिए काम किया। इसके पश्चात स्थायी रूप से इंग्लैंड बस जाने व कई वर्ष तक द्वितीय विश्व युद्ध के चलते वे फ़िल्मों के लिए नहीं लिख पाए। 1945 में विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद 1946 में उन्होंने 'स्वदेश सेवा' फ़िल्म के लिए गीत लिखे। दूसरी ओर, अन्य हिंदी फ़िल्मों के लिए धनीराम अपनी गीत-संगीत सेवाएँ काफ़ी बाद तक देते रहे हैं।

फ़िल्मों में गीतकार और संगीतकार बनने से पहले धनीराम प्रेम गीत-संगीत पर अच्छी पकड़ रखते थे। देश मल्हार राग में उनकी एक रचना देखें -

"काहे बदरवा, मोहिं तरसाओ!
पिय के बिरह की अगिनि बढ़ी है
मिलन-नीर सीतल बरसाओ।
मेरी पीर समुझि निरमोही,
आँसुन की दो बूँद बहाओ।
काहे बदरवा, मोहिं तरसाओ।"

इसी प्रकार डॉ. धनीराम प्रेम की अन्य रचना 'राग खमाज' में देखें -

"माखन खाइ गयौ तेरौ कन्हैयाँ !
माखन कौ तौ माखन खायौ
मोरी मरोरि गयौ दोउ बैयाँ।
अपने कुँवर को बरजौ जसोदा,
ग्वालिनि ठाड़ी परै तोरे पैयाँ।"

उपर्युक्त रचनाएँ चाँद के 'संगीत सौरभ' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित हैं।

डॉ. धनीराम 'प्रेम' 1938 में पुनः सपरिवार विलायत आए। हालाँकि इस बार उनका यहाँ केवल एक वर्ष रुकने का इरादा था, लेकिन 1939 से 1945 के बीच द्वितीय विश्वयुद्ध के चलते भारत वापसी संभव नहीं थी और वे सपरिवार स्थायी रूप से इंग्लैंड में बस गए, जहाँ उन्होंने चिकित्सक के रूप में अपना जीवन आरंभ किया। बाद में वे वहाँ बर्मिंघम सिटी कौंसिल के पहले एशियाई मूल के पार्षद भी बने। वे वहाँ की मुख्यधारा की राजनीति में भी सक्रिय हो गए। उन्होंने लंबे समय तक भारतीय मूल के लोगों सहित समूचे एशियाई समुदाय के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। उन्होंने एक राजनेता और नेता के रूप में पहचान अर्जित की। 29 नवंबर 1973 को उनकी पत्नी 'रत्न प्रेम' का कैंसर से निधन हो गया।

वर्ष 1977 में भारत सरकार ने डॉ. धनीराम 'प्रेम' को पद्मश्री से सम्मानित किया। इसके पश्चात 1978 में डॉक्टर धनीराम 'प्रेम' भारत गए और वहीं 75 वर्ष की आयु में 11 नवंबर 1979 को एक सड़क दुर्घटना में उनका निधन हो गया।

डॉ. धनीराम 'प्रेम' भारतीय प्रवासियों के लिए एक आदर्श हैं। वे ब्रिटेन के पहले हिंदी कहानीकार ही नहीं, बल्कि हिंदी के पहले प्रवासी कथाकार के रूप में जाने जाएँगे।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. D. R., Prem, (1945), The Indian National Congress, Birmingham, England: Indian Publications
2. D. R., Prem, & Heffer, E. S. (Eric S. (1966), The parliamentary leper : colour & British politics (2nd ed.).
3. Ashish Rajadhyaksha, & Willemen, P. (1999), Encyclopedia of Indian cinema, Oxford University Press
4. डॉ. धनीराम प्रेम, डोरा, (1930), भविष्य, इलाहाबाद : चाँद प्रेस
5. डॉ. धनीराम प्रेम, (1932), मेरा साहित्यिक जीवन, आत्मकथा अंक, हंस

editor@bharatdarshan.co.nz

अमीराती मरु-कुंज के हिंदी सेवी

डॉ. आरती 'लोकेश'
दुबई, संयुक्त अरब अमीरात

भारत के लगभग सवा-डेढ़ करोड़ नागरिक विदेशों में निवास करते हैं। लगभग चालीस लाख भारतीय संयुक्त अरब अमीरात में निवास करते हैं, जो कि यहाँ की कुल आबादी का 38 प्रतिशत है। यूँ तो यू.ए.ई एक मरुस्थल देश है, किंतु इसकी बालू में कुछ जादू है कि यहाँ नायाब कुंज विकसित होते हैं। भुरभुरी रेत पर गढ़े विश्व कीर्तिमान यहाँ के राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री की अक्षय ऊर्जा तथा दृष्टि का परिणाम है। यू.ए.ई. की सिकता भूमि में उगे साहित्य पुष्पों की जानकारी देना अत्यावश्यक है। यू.ए.ई. के बहुत-से लेखक व कवि हिंदी की सेवा कर रहे हैं, किंतु इस आलेख में आप हिंदी के प्रथम दो चिंतक व मार्गदर्शक के बारे में जानेंगे, जिनके कारण हिंदी जगत में यू.ए.ई. का नाम जाना जाने लगा।

प्रवासी साहित्यकारों में शीर्ष नाम 'पूर्णिमा वर्मन' का आता है। पीलीभीत, उत्तरप्रदेश से आई तथा सन् 1995 से शारजाह, यू.ए.ई. में निवास करने वाली पूर्णिमा वर्मन कवयित्री, लेखिका और संपादिका हैं। अंतर्जाल पर जब हिंदी पत्रिकाओं का चलन नहीं था न सुविधा थी, तब पूर्णिमा वर्मन ने अंतर्जाल पर नियमित प्रकाशित होने वाली 'अभिव्यक्ति' तथा 'अनुभूति' वेब पत्रिकाएँ प्रारंभ कीं। इस उल्लेखनीय कार्य के लिए 2012 में राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्मविभूषण' डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार प्रदान किया। उनके द्वारा रचित कई पुस्तकें हैं -

(i) कविता-संग्रह : 'पूर्वा', 'वक्त के साथ' एवं 'चोंच में आकाश';

(ii) संपादित कहानी-संग्रह : 'वतन से दूर'

(iii) संपादित नवगीत संग्रह : 'नवगीत' आदि।

शारजाह, यू.ए.ई. की ज़मीन से उठाई गई कहानियाँ उनके कथानकों में स्थान पाती हैं। यू.ए.ई. की संस्कृति, व्यवहार व महक उनकी हर कहानी में मिलेगी। इन कहानियों में स्वदेश के पुष्पों की मनोहर छटा भी बराबर मंत्रमुग्ध किए रहेगी। कहानी 'मुखौटे' का आरंभ ही वे इस प्रकार करती हैं - 'वह नवंबर की एक सुहानी शाम थी जब छुईमुई कसबा के अल्फ़ादो रेस्त्रा के सामने वाले बरामदे के एक कोने में बैठी थी। यहाँ से ठीक सामने शारजाह का 'आई ऑफ़ एमीरेट्स व्हील' है और उसके बिल्कुल सामने 'म्यूज़िकल फ़ाउंटेन'।

उनका कहना है कि हिंदी के प्रवासी साहित्यकारों को अपने लेखन में उस देश की विशिष्टताओं को सामने लाना चाहिए। यह उनकी लेखकीय ज़िम्मेदारी है। इसी उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए, यू.ए.ई. की प्रवृत्ति बताते हुए कहानी 'यों ही चलते हुए' में पूर्णिमा वर्मन कहती हैं - 'सच पूछो तो शायद यही इस देश की पहचान है। लोग, भाषा, जगह और परिस्थितियाँ सब कुछ पहचानी हुईं-सी, फिर भी सब कुछ अनजाना-सा!'

यू.ए.ई. में बस जाना सुविधाजनक है। किसी भी अन्य देश से कहीं अधिक सुगम यहाँ की जीवन-शैली है। कई दशकों से बसे भारतीय यहाँ मिल जाएँगे, फिर भी प्रवासी मन निज भूमि की ओर कुलाँचे भरता रहता है। प्रवासियों की मन:स्थिति तथा परिस्थितियों का बड़ा सटीक व मार्मिक वर्णन पूर्णिमा वर्मन कहानी 'नमस्ते कॉर्निश' में करती हैं -

'यहाँ घर बनाने कोई नहीं आया है। सबको लौट जाना है एक दिन। इस फुटपाथ के चौकोर टाइलों की तरह, जो हर चलने वाले के साथ हैं, पर किसी के साथ नहीं। जो दूर तक चले गए हैं, पर अपनी-अपनी सीमाओं में कैद हैं।'

एक नया प्रवासी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपनी मिट्टी से नई धरा की तुलना मन-मस्तिष्क में करता ही रहता है। इस कहानी के माध्यम से पाठक अपने मन की आँखों से शारजाह का सबसे आलीशान इलाका कोर्निश पूरी तरह घूम लेता है।

पूर्णिमा वर्मन का साहित्य अमीराती संस्कृति की ऐसी मोहिनी झाँकी दिखाता है कि पाठक पूरी कहानी समाप्त किए बिना नहीं रहता। कहानी 'उड़ान' को ही ले लीजिए -

'यह अमेरिकन यूनिवर्सिटी ऑफ़ शारजाह की आम सुबह थी। हर दिन दुनिया को और छोटा बनाने की कोशिश में लगे, भाषा, खान-पान, रहन-सहन और हर तरह की सांस्कृतिक सीमाओं को पार करते देश-विदेश के अध्यापक, देश-विदेश के छात्र।'

यू.ए.ई. की अमीरातों की चौड़ी सड़कें, बारह-बारह लेन के हाईवे, तेज़ रफ़्तार और उस पर तीव्रगामी वाहनों की दौड़ आम बात है। बड़ी कठिनाई, अपार व्यय और दुष्कर परीक्षा के बाद मिले ड्राइविंग लाइसेंस के हाथ में आते ही बहुधा चालक उन सभी नियमों को ताक पर रख देते हैं, जिन्हें रट-रटकर उन्होंने

वाहनचालक की बहुस्तरीय परीक्षाएँ पास की थीं। ऐसी ही तेज़ उड़ान का ज़िक्र पूर्णिमा वर्मन ने किया है।

स्थानीय विश्वविद्यालय, चौराहे, मोड़, गली-गलियारे सब कुछ ही तो पूर्णिमा जी की दृष्टि से हमारे समक्ष चलचित्र से चलते हैं। लोकल समाचार-पत्र में छपी खबर पूर्णिमा जी को कहानी-रचना के लिए उद्वेलित कर देती है। 'उड़ान' पढ़कर यू.ए.ई. की फ़ास्टट्रैक ज़िंदगी के कुछ पल हम भी जी लेते हैं। साथ ही, रफ़्तार की विभीषिका से आहत और सतर्क भी हो जाते हैं।

'अगले दिन गल्फ़ न्यूज़ के स्थानीय समाचारों वाले पन्ने पर खबर छपी, कल दोपहर अमेरिकन यूनिवर्सिटी ऑफ़ शारजाह से मुख्य मार्ग से मिलने वाले मोड़ पर एक कार और ट्रक की टक्कर में कार बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई। इमारात की सड़कों पर कोई दुर्घटना हो जाए, तो उसे निबटाते पुलिस को 10 मिनट से अधिक नहीं लगते। एंबुलेंस आते, सड़क की सफ़ाई करते और इंश्योरेंस का कागज़ बनाने का काम मिनटों में पूरा हो जाता है।'

'जड़ों से उखड़े' कहानी यू.ए.ई. में नई गृहस्थी जमाती गृहिणी नेहा की कहानी है, जो हर प्रवासी नारी को अपनी-सी लगेगी। 'दुबई हवाई अड्डे से शारजाह में अपने घर वाली बिल्डिंग तक पहुँचने में घड़ी देखकर 18 मिनट लगे थे। नेहा ज़रा चौंकी थीम - इतनी जल्दी हम एक शहर से दूसरे शहर आ गए? ... नाथुर सामान की ट्रॉली लिए खड़ा था।'

यू.ए.ई. में बिल्डिंग के चौकीदार को 'नाथुर' कहते हैं। नेहा के जीवन की ऊहापोह और नए जीवनानुभवों से सामंजस्य बिठाती कहानी के हर शब्द में जड़ों से उखड़ नई मिट्टी में रोपे गए पौधे की दिक्कतों की दास्तान है। नई मिट्टी अधिक उर्वर हो तो भी पुरानी मिट्टी की गंध जाती नहीं है। यही इस कहानी का मूल तत्त्व है। उद्धरण देखिए -

'देश क्या बदला है, सारी दुनिया पलट गई है। कार में बाईं तरफ़ की बजाए दाहिनी तरफ़ बैठो, सड़क पार करते समय इधर नहीं उधर देखो... यहाँ के नोट कितने मूल्य के हैं वह समझना भी इतना आसान नहीं। एक तरफ़ पूरा अरबी, दूसरी तरफ़ सिर्फ़ नंबर अंग्रेज़ी में। हर नोट के साथ आधा मिनट यही समझने में खर्च हो जाता है कि यह नोट है कितने मूल्य का।'

कहानी 'नमस्ते कौर्निश' उस अजनबी दुनिया की अनकही दावत है, जहाँ सब अपने से दिखते हैं। बिना जान-पहचान के पहचाने हुए चेहरे प्रतिदिन की शुरुआत का अंग बन चुके हैं। बिना आसक्ति के भी इतने निकट कि न दिखे तो आँखें उन्हीं को तलाशती रहती हैं। योगिनी महाजन के कदम हमें उनकी इसी अनजानी दुनिया के भ्रमण पर ले चलते हैं।

'कौर्निश के साथ-साथ कौर्निश से जुड़े कुछ और लोग भी उनके साथ जुड़ गए हैं। लेकिन अजब जुड़ाव है यह, जहाँ बीच में स्नेह का दरिया नहीं है, संकोच की रेत है, जो चेहरा दूर होते ही झर जाता है। दरिया तो वहाँ तक बहता चला जाता है, जहाँ तक किनारा होता है... संकोच की रेत दूरियों को पाट नहीं पाती...'

पूर्णिमा जी की रचनाएँ अमीराती संस्कृति की भरपूर तस्वीर पाठकों के समक्ष उपस्थित करती हैं। अरबी गीत और संगीत का आनंद भी लीजिए -

'थोड़ी दूरी पर एक और कार आ रुकी है। कार में युवक-युवतियाँ हैं। अरबी जवान मौज-मस्ती में समय बिताते हुए। वे ही शहर की रौनक हैं। स्टीरियो पूरी वॉल्यूम पर चल रहा है। अरबी संगीत की तेज़ ताल और दमदार ठेके का जबाब नहीं...और उनके प्रिय पॉप गायक अमेर दिआब का यह नया एलबम तमल्लि... मआक यानि सदा तुम्हारे साथ ...जब तुम मुझसे दूर हो तब भी... तुम्हारा प्यार मेरे साथ है।'

बेहद प्यारी कहानी 'फुटबॉल' यू.ए.ई. के राष्ट्रीय खेल पर आधारित होने के अलावा जीवन में एकरूपता पर भी केंद्रित है। अरब संस्कृति की मिठास में पगा शब्द 'हबीबी' का बहुत ही खूबसूरत विश्लेषण पूर्णिमा जी ने इसी कहानी में प्रस्तुत किया है।

पूर्णिमा वर्मन का कथा साहित्य जितना गहरा है, उतना ही गहन उनका काव्य है। वे नवगीत-शैली की आज के समय की मूर्धन्य रचनाकार हैं। उन्होंने नवगीत की संरचना को सहजता से समझाया और 'नवगीत की पाठशाला' के माध्यम से बहुत से रचनाकारों को नवगीत लिखने को प्रेरित किया।

पूर्णिमा जी की स्याही से निकले सिद्धहस्त नवगीत सभी विशेषताओं को उत्कृष्टता के साथ समेटे हुए हैं। उनके नवगीतों में गेयता है, काव्य-विषय प्रकृति, आंचलिकता का समावेश, प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति, अनुभूति की गहराई, युग-बोध के यथार्थ का वहन और लोकजीवन से जुड़ाव है।

उनका सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण नवगीत मिस्र की क्रांति पर लिखा गया था, जो कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

सड़कों पर हो रही सभाएँ
राजा को-
धुन रही व्यथाएँ

प्रजा
कष्ट में चुप बैठी थी
शासक की किस्मत ऐंठी थी
पीड़ा जब सिर चढ़कर बोली
राजतंत्र की हुई ठिठोली
अखबारों-
में छपी कथाएँ

दुनिया भर
में आग लग गई
हर हिटलर की वाट लग गई
सहनशीलता थक कर टूटी
प्रजातंत्र की चिटकी बूटी
दुनिया को-
मथ रही हवाएँ

जाने कहाँ
समय ले जाए
बिगड़े कौन, कौन बन जाए
तिकड़म राजनीति की चलती
सड़कों पर बंदूक टहलती
शासक की
नौकर सेनाएँ

राजतंत्र के अंत और प्रजातंत्र के आरंभ के मध्य का तथ्यात्मक दृश्य, युग-चेतना, विकलता और सत्य दिखलाता यह अकेला नवगीत अन्य सभी नवगीतों पर भारी है।

'पूर्वा' में संग्रहित प्रकृति-चित्रण का मनमोहक रूप देखिए -

तूलिका से फेंक दिया रंग एक साँझ ने
पश्चिम ने सजा लिया तभी उसे भाल में
लहराता चला गया झोंका बयार का
नाविक ने मद्धिम की नाव भरे ताल में

नवगीत-संग्रह 'चोंच में आकाश' के पन्ने उलटे-पलटे तो सचमुच ऐसा ही पाया कि चोंच में काव्य-सौंदर्य का संपूर्ण आकाश समाया हुआ है। इस कविता में बंदनवार का अनूठा महत्त्व कितने कोमल शब्दों में बताया गया है -

ठीक सामने धूप खड़ी हो
हरियल पत्ते बेल चढ़ी हो
दरवाज़ा तो बंद हो लेकिन
परदे पर एक
डोर बँधी हो
तो फिर वह ही है घर मेरा
ढूँढ तो लोगे घर तुम मेरा

बहुमुखी प्रतिभा की धनी पूर्णिमा वर्मन जी की कलम नवगीत व कहानियों तक ही सीमित नहीं रही है। ललित निबंध, लेख, साहित्यिक निबंध, हास्य-व्यंग्य आदि में भी वे पारंगत हैं। डाक टिकटों पर लिखे गए उनके लेख विशेष लोकप्रिय हैं।

अब चलते हैं दूसरे हिंदी सेवी की ओर। 1954 में गोरखपुर, उत्तर प्रदेश में जन्मे 'श्री कृष्ण बिहारी', यू.ए.ई. की राजधानी अबु धाबी में 1986 से बसे हुए वरिष्ठ रचनाकार तथा संपादक हैं। हिंदी साहित्य में शिक्षित कृष्ण बिहारी ने साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखनी घुमाई है। कहानी, एकांकी, नाटक, कविता, उपन्यास, यात्रावृत्तांत, आत्मकथा आदि विधाओं में उनके भावों ने अभिव्यक्ति पाई है। वर्ष 2006 से वे 'निकट' नामक त्रैमासिक हिंदी पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। 'निकट' समसामयिक दुनिया के करीब है।

पत्रिका 'निकट' के संबंध में वे लिखते हैं - "'निकट' के प्रवेशांक से ही मेरी कोशिश रही है कि पत्रिका दूर-दूर तक पहुँचे। ...मेरी यह कोशिश हमेशा रहेगी कि 'निकट' में कवर-टू-कवर अच्छी सामग्री हो और पत्रिका निरंतर बेहतर होती जाए।"

कृष्ण बिहारी ने सच्चे प्रेम पर आधारित कहानियों की शृंखला 'मेरी मोहब्बत दर्द ए जाम', 1984 के दंगों पर आधारित 'यह क्या हो गया देखते–देखते', वेश्याओं के जीवन पर आधारित 'घुँघरू टूट गए' और अन्तर्जातीय तथा अंतर्राष्ट्रीय विवाहों पर आधारित परिचर्चाओं की शृंखला प्रकाशित की है। उत्तर प्रदेश से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'कल के लिए' में वे कई वर्षों से लगातार लिख रहे हैं।

वे अपनी सपाटबयानी के लिए जाने जाते हैं। हृदय से पृष्ठ तक उनके विचार अक्षर-अक्षर वही रहते हैं, मार्ग के उतार-चढ़ाव से न वे झुकते हैं, न मुड़ते हैं और न बदलते हैं। पत्रकारिता संबंधी उनके विचार हैं - 'जबसे लिखना शुरू किया एक बात हमेशा याद

रही कि मेरे लिखे से कभी किसी चरित्र की हत्या न हो। ...मुझे तुलसी हमेशा याद रहे, जिनकी कलम से रावण भी विकसित हुआ, तो अनेक सद्‌गुणों से लदा-फदा रहा।' उनके ये विचार श्लाघनीय हैं।

उनके साहित्य का अवलोकन करें, तो अमीरात की साहित्य वाटिका में सर्वाधिक पुष्प उनकी कलम वृक्ष पर ही उगे होंगे। लगभग दो दर्जन पुस्तकें उनके नाम में हैं। प्रमुख कहानी-संग्रह हैं - 'दो औरतें', 'पूरी हकीकत पूरा फ़साना' और 'नातूर'। 'चुनी हुई कहानियाँ' तथा 'गौरतलब कहानियाँ' उनके नवीनतम प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। एकांकी नाटक की उनकी पुस्तकें हैं - 'यह बहस जारी रहेगी', 'एक दिन ऐसा होगा' और 'गांधी के देश में'। नाटक की पुस्तक है - 'संगठन के टुकड़े'। कविता-संग्रह हैं - 'मेरे मुक्तक : मेरे गीत', 'मेरे गीत तुम्हारे हैं', 'मेरी लम्बी कविताएँ' आदि। उनके उपन्यासों के रोचक नाम उत्सुकता पैदा करते हैं, जैसे - 'रेखा उर्फ़ नौलखिया', 'पथराई आँखों वाला यात्री', 'पारदर्शियाँ'।

संयुक्त अरब अमीरात में उनके जीवन की यात्रा का विवरण 'सागर के इस पार से उस पार से' के नाम से है, जो एक प्रकार से उनकी आत्मकथा है। यू.ए.ई. में बिताए पलों को संस्मरण में कैद कर उनकी पुस्तक 'बत्तीस साल का सफ़र' इस देश के लिए नायाब उपहार है।

अपनी कहानी 'जड़ों से कटने पर' में उन्होंने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है, जिसमें आबू धाबी के कायदे-कानून का पता चलता है - 'जिस दिन से छुट्टियाँ शुरू होती हैं, उसी दिन स्पॉन्सर पासपोर्ट देता है। इस देश का यही नियम है।' बिहारी जी की यह कहानी 2002 में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद से ऐसी स्थिति में बहुत अंतर आया है। हालाँकि यह अभी है कि पुलिस यहाँ कानून का सख्ती से पालन करती है। यहाँ के नागरिकों में पाया जाने वाला अनुशासन इसी कारण है।

कहानी 'दुश्मन से दोस्ती' में अस्सी के दशक के समाज की तस्वीर साफ़ दिखती है। उस समय कंप्यूटर एक नई यांत्रिकी के रूप में उभरा था। आम जन में बहुत संशय इसके बारे में व्याप्त था। कैसे इसने हर घर में घुसपैठ की, यह इस कहानी का मूल तत्त्व है। अबु धाबी के अतिरिक्त यही हाल लेखक को भारत के विभिन्न शहरों और कार्यालयों में देखने को मिला। तब कौन जान सकता था कि यह हर मानव के काम का अभिन्न अंग बन जाएगा। इसी कहानी में खाड़ी देशों से भारत के आयात-निर्यात के बनते संबंधों पर भी बात हुई है।

अपनी आत्मकथा 'सागर के इस पार से उस पार से' में कृष्ण बिहारी अपनी बेबाकी और मनमौजी स्वभाव को खुलकर बताते हैं। खतरों से खेलने की उनकी यह प्रवृत्ति गैरज़िम्मेदार भी लगती है, जिसे वे स्वयं स्वीकारते हैं। नौकरी के लिए किए गए उनके संघर्ष द्रवित करते हैं, तो अबु धाबी यू.ए.ई. में उनका नौकरी मिलने का किस्सा हर्ष देता है। उनके व्यसन पढ़कर भी सहानुभूति उपजती है, वे ऐसे हालातों के वशीभूत होकर लेखक के संग हो लिए कि भूतकाल में पहुँचकर उन्हें सुधारने-समझाने की इच्छा होती है।

कृष्ण बिहारी की आत्मकथा के माध्यम से बहुत से लेखकों और पत्रकारों से मिलने का अवसर प्राप्त होता है। लेखक को जाने-अनजाने कितने ही लोग यात्रा में मिलते हैं, जो अजनबी की तरह उनके जीवन में आते हैं और पूर्व परिचय निकल आता है। 70-80 के दशक के पत्रकारों की वृत्तियों पर भी कृष्ण बिहारी ने बेहिचक लिखा है।

जागरण समाचार-पत्र के 'पुस्तक-समीक्षा' स्तम्भ में कृष्ण बिहारी की पुस्तक 'दो औरतें' की समीक्षा करते हुए मनीष त्रिपाठी सटीक टिप्पणी लिखते हैं - "आबू धाबी में बसे हिंदी लेखक कृष्ण बिहारी की कहानियों से गुज़रना पहाड़ी सड़क पर पुरानी बस के सफ़र जैसा है। ऐसा सफ़र, जिसमें दहशत के बावजूद यह आश्वस्ति होती है कि बेपरवाह-सा दिखता ड्राइवर अंतत: आपको मंज़िल पर सुरक्षित ही उतारेगा।"

'एक सिरे से दूसरे सिरे तक' 1984 के दंगों पर लिखी गई कहानी है, जिसमें तथ्यात्मक ढंग से यह स्पष्ट किया गया है कि वह दंगा हुआ क्यों और देश के कई शहरों में भड़का क्यों? 'संगात जायते कामः' सन् 80 के दशक में 'लिव इन' की हकीकतों से दो-चार कराती है। यह व्यवस्था आज की देन नहीं है। जो इस व्यवस्था के समर्थक हैं या इस व्यवस्था में जी रहे हैं, उन्हें यह कहानी दोराहे पर नहीं छोड़ती। 'कारगिल के साथ-साथ' हिंदुस्तान-पाकिस्तान के उन संबंधों का पर्दाफ़ाश करती है, जिनकी वजह से अब तक चार युद्ध हो चुके हैं। युद्ध में हार-जीत अलग बात है। असलियत तो वह विनाश है, जिसके आगे आँखें पथरा जाती हैं। 'इंतज़ार' एक सरल हृदयवाली स्त्री की व्यथा-कथा है, जो जीवन-भर किसी एक सुखद पल की प्रतीक्षा ही करती रह जाती है। उसके हिस्से का सुख कभी इन्द्रधनुष नहीं बन सका। स्त्री-विमर्श पर होने वाली चर्चाओं में जो बातें आज आन्दोलन का वीभत्स रूप ले रही हैं, उन पर से नकाब हटाती यह कहानी स्त्री की आदि-अंत कथा का विस्तार है। 'मकड़जाल' हर उस मनुष्य का अपना महाकाव्य है, जिसके जीवन का उद्देश्य कर्तव्य-पालन है। घर, परिवार, समाज और परिवेश

किस तरह से किसी को विवश कर सकता है और कोई व्यक्ति इनके चक्रव्यूह में किस तरह पिसता है, यही इस कहानी का कथ्य है। 'हरामी' शिक्षण-व्यवस्था में एक ऐसे चरित्र को उद्घाटित करती है, जो हर विद्यालय में प्रधानाचार्य की कुर्सी पर बैठा है और दूसरों के कानों से सुनता और दूसरों की आँखों से देखता है। जिसका हर फ़ैसला उसे परपीड़क की अगली सीढ़ियों की ओर ले जाता है। 'शराबी' वह लती है, जिसकी प्रतिभा का पतन शराब में होता है। उसके सामने शराब का विकल्प शराब है। 'नो बॉस ...नो ...' कॉरपोरेट वर्ग में आये-दिन होने वाले तमाशों का स्क्रीन शॉट है।

संक्षेप में, कृष्ण बिहारी का संपूर्ण साहित्य समाज, राजनीति और व्यवस्थाओं की विद्रूपताओं को खुली चुनौती देते हुए दिखाई देता है। यू.ए.ई. में उनके निवास के 32 वर्षों के अनुभव उनके लेखन पर गहरी पैठ बनाए हुए हैं। उन्होंने इसे बालक से वयस्क बनते देखा है और वे इसकी प्रगति के पल-पल के साक्षी रहे हैं।

यू.ए.ई. के प्रवासी साहित्य में उल्लास दिखाई देता है, जीवन की दिशा दिखाई देती है। यहाँ का प्रवासी साहित्य कठिनाइयों से ऊपर उठकर मानव-मन को टटोलता है। अपने आस-पास के वातावरण का बारीकी से निरीक्षण करता है। बदलाव को चिह्नित कर संस्कृति का प्रचार-प्रसार विदेशी धरा पर करता है। इस प्रक्रिया में यह साहित्य स्वयं को जन्मभूमि के कुछ और निकट स्थापित करता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. 'गल्फ़ न्यूज़' समाचार-पत्र
2. 'खलीज़ टाइम्स' सामाचार-पत्र
3. 'अभिव्यक्ति' पत्रिका, संपादक - पूर्णिमा वर्मन
4. 'अनुभूति' पत्रिका, संपादक - पूर्णिमा वर्मन
5. 'अनन्य यू.ए.ई.' पत्रिका, संपादक - डॉ. आरती 'लोकेश'
6. 'निकट' पत्रिका, संपादक - कृष्ण बिहारी
7. 'पाखी' पत्रिका
8. 'जागरण' समाचार-पत्र
9. 'पूर्वा', कविता-संग्रह
10. 'वक्त के साथ' पुस्तक
11. 'चोंच में आकाश' पुस्तक
12. 'वतन से दूर', संपादित कहानी-संग्रह
13. 'नवगीत', संपादित नवगीत-संग्रह

arti.goel@hotmail.com

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के ध्वज वाहक-प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा
भारत

विदेश में हिंदी के प्रचार-प्रसार का इतिहास बहुत पुराना है और इसके पीछे विदेशी विद्वानों की महती भूमिका है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि हिंदी भाषा का पहला व्याकरण डच विद्वान केटलार ने लिखा। हिंदी साहित्य का पहला इतिहास फ़्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी ने लिखा। हिंदी और भारतीय भाषाओं का पहला व्यापक सर्वेक्षण अंग्रेज़ी विद्वान सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने किया। हिंदी पर लिखा गया पहला शोध-प्रबंध 'द थियोलॉजी ऑफ़ तुलसीदास' अंग्रेज़ विद्वान जे. आर. कारपेंटर के द्वारा लंदन विश्वविद्यालय में डी. लिट. की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया। हिंदी शिक्षण की प्रारंभिक पाठ्य-पुस्तकें जॉन बोथविक गिलक्रिस्ट ने तैयार कीं। विदेशी भाषाओं के हिंदी द्विभाषी कोश भी सर्वप्रथम विदेशी विद्वानों द्वारा ही बनाए गए। आज भी विदेश में अनेक विद्वान हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान में तन-मन से लगे हुए हैं। अभी तक जिन विदेशी विद्वानों के हिंदी योगदान की हम चर्चा करते हैं, उनमें अधिकांश यूरोप के हैं - विशेषकर इंग्लैंड, फ़्रांस, जर्मनी, इटली, हॉलैंड आदि देश। अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के विद्वान भी हैं। साथ ही, गरीब मज़दूरों के रूप में विदेश ले जाए गए, भारतीयों और उनके वंशजों का उल्लेख भी करना आवश्यक है, जिन्होंने ब्रिटिश, डच और फ़्रांसीसी उपनिवेशों में दारुण कष्ट उठाकर हिंदी को बचाए रखा और जो हिंदी के प्रचार-प्रसार में निरंतर सक्रिय रहे।

फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद व टोबेगो, गयाना और दक्षिण अफ़्रीका में प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर हिंदी को बचाए रखने वाले हिंदी सेवियों में फ़िजी के प्रोफ़ेसर ब्रिज विलाश लाल, प्रोफ़ेसर सुब्रमनी, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, पंडित गुरुदयाल शर्मा, पंडित भुवन दत्त और डॉ. ब्रिज लाल हैं। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत, ब्रजेन्द्रकुमार भगत 'मधुकर', रामदेव धुरंधर, बीरसेन जागासिंह, राजेन्द्र अरुण, उदय नारायण गंगू और सुमति बुधन, सूरीनाम के डॉ. जीत नराईन, श्रीनिवासी, हरिदेव सहतू और अमर सिंह रमण तथा त्रिनिदाद के बॉब गोपी और हरिशंकर आदेश के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दक्षिण अफ़्रीका के प्रारम्भिक दिनों में स्वामी शंकरानंद, भवानी दयाल संन्यासी और पंडित नरदेव वेदालंकार के हिंदी योगदान को कौन भुला सकता है? आज प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम, प्रोफ़ेसर राजेन्द मिस्त्री, हीरालाल शिव नाथ, बिरजानंद बदलू गरीब भाई, उषा देवी शुक्ल और बिसराम राम विलास ने समाज में हिंदी को सम्मानित स्थान दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

दक्षिण अफ़्रीका के सबसे वरिष्ठ हिंदी सेवी आचार्य राम भजन सीताराम हैं, जिन्होंने जीवन पर्यंत दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य किया। वे एक निष्ठावान हिंदी विद्वान हैं, जिन्होंने हिंदी को शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय स्तर पर प्रतिष्ठित किया। वरिष्ठ विद्वान प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम को मैं दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के ध्वज वाहक के रूप में देखता हूँ।

दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी भारतीय समाज और संस्कृति के प्रति मेरा आकर्षण उस समय और बढ़ा, जब नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय द्वारा वर्ष 2003 में 'विदेश में हिंदी : स्थिति और संभावनाएँ' विषय पर एक त्रिदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी का आयोजन हुआ और वहाँ प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम से मेरी पहली व्यक्तिगत भेंट हुई। यह आयोजन प्रोफ़ेसर ओम प्रकाश केजरीवाल की देखरेख में हुआ था, जो उस समय संस्था के निदेशक थे। इस गोष्ठी में प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम ने 'दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी : स्थिति और सम्भावनाएँ' विषय पर अपना आलेख पढ़ा था। इसके बाद भारतीय ज्ञानपीठ के तत्कालीन निदेशक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने 'नया ज्ञानोदय' के लिए एक पंचायत का आयोजन भी किया था, जिसमें प्रोफ़ेसर सुब्रमनी (फ़िजी), प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम (दक्षिण अफ़्रीका), श्री रामदेव धुरंधर (मॉरीशस), डॉ. बीरसेन जागासिंह (मॉरीशस) अर्चना पेन्यूली (डेनमार्क) आदि ने प्रतिभागिता की थी। इस पंचायत कार्यक्रम का संयोजन करने का दायित्व डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने मुझे सौंपा था। इस पंचायत की विस्तृत रिपोर्ट दो अंकों में नया ज्ञानोदय में प्रकाशित हुई थी, जो प्रवासी भारतीय देशों में हिंदी की स्थिति का प्रामाणिक विवेचन करती है और सन्दर्भ के लिए देखी जा सकती है।

प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम के नाम से मेरा पहले से परिचय था, उनके लेख मैंने पढ़ रखे थे और गोष्ठी के लिए उनके नाम का प्रस्ताव प्रोफ़ेसर केजरीवाल के समक्ष मैंने ही रखा था। प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम यूनिवर्सिटी ऑफ़ डरबन के वेस्ट विले कैंपस में हिंदी के आचार्य थे और उनके निर्देशन में कई

छात्रों ने पी-एच.डी की उपाधि प्राप्त की थी। दक्षिण अफ़्रीका में वे हिंदी के एक प्रतिष्ठित विद्वान के रूप में जाने जाते थे। चूँकि मैं भी दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी अध्यापन से जुड़ा हुआ था और प्रवासी साहित्य के अध्ययन-अनुसंधान में मेरी रुचि थी, इसलिए उनसे मेरी निकटता बढ़ी।

प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम ने भारत के बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. और एल.एल.बी. किया था। विद्या वाचस्पति (पी -एच .डी) की उपाधि भी वर्ष 1977 में प्राप्त की थी। दक्षिण अफ़्रीका के डरबन विश्वविद्यालय में उन्होंने वर्ष 1971 से 2000 तक हिंदी का अध्यापन किया था। पहली भेंट में वे एक विनम्र, सहृदय और उदार व्यक्ति मुझे लगे। जब मैंने दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी भारतीय समाज और वहाँ हिंदी की स्थिति के बारे में जानना चाहा, तब उन्होंने मुझे विस्तार से बताया और हिंदी पर अपने सभी प्रकाशित आलेख मुझे पढ़ने के लिए भेज दिए और सहयोग का आश्वासन भी दिया।

मैं फ़िजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद और मॉरीशस के प्रवासी हिंदी साहित्य पर शोध कर रहा था, इसलिए दक्षिण अफ़्रीका के लिए वे मेरे मार्गदर्शक बन गए। वर्ष 2012 में 22 से 24 सितंबर तक दक्षिण अफ़्रीका के जोहानसबर्ग नगर में विश्व हिंदी सम्मलेन का आयोजन हुआ और भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में मुझे सम्मलेन में प्रतिभागिता का अवसर मिला। सम्मेलन के अनुवाद संबंधी सत्र में बीज-भाषण देने का मुझे दायित्व दिया गया, तो वहाँ जाने का सुयोग बना।

जोहान्सबर्ग के इस विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन में सहयोगी संस्था दक्षिण अफ़्रीका का 'हिंदी शिक्षा संघ' था और प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम दक्षिण अफ़्रीका की ओर से सम्मलेन के प्रमुख आयोजकों में थे। प्रोफ़ेसर रामभजन सीताराम के माध्यम से वहाँ के बहुत-से हिंदी सेवियों से मेरा परिचय हुआ। सम्मेलन के चार दिन के अल्पकाल में बहुत-से लोगों से मेरा परिचय हुआ, पर व्यस्तता के कारण अपने कार्य के संबंध में कुछ बात न हो सकी। इस बीच प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम से पत्र-व्यवहार होता रहा और दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी साहित्य के मेरे अध्ययन के विषय में उन्होंने मुझे कई महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ भी दिए। उन्होंने मुझे तुलसी राम पाण्डेय की प्रतिबंधित कृति 'दरबन का बलवा' का केवल सन्दर्भ ही नहीं दिया, अपितु प्रयत्न कर उसकी प्रति भी उपलब्ध करवाई। भवानी दयाल के छोटे भाई देवीदयाल की कृति 'हिंदी आल्हा' का सन्दर्भ भी मुझे उन्हीं से मिला। इन दोनों कृतियों का मैंने अपने अध्ययन में उपयोग किया और भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित मेरी पुस्तक 'हिंदी-स्वदेश और विदेश' में उन पर मेरे आलेख प्रकाशित हुए, जो आगे के प्रवासी साहित्य पर अनुसंधान करने वालों के लिए उपयोगी होंगे। तुलसी राम पाण्डेय का 'दरबन का बलवा' और देवीदयाल का 'हिंदी आल्हा' का मूल पाठ भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली और अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के संयुक्त तत्त्वावधान में प्रकाशित मेरी पुस्तक 'प्रवासी भारतीय साहित्य' के दक्षिण अफ़्रीका खंड में सम्मिलित है। पुस्तक में दक्षिण अफ़्रीका खंड की संपादक वरिष्ठ पत्रकार सुश्री सुनंदा वर्मा हैं।

वर्ष 2014 में मेरी बेटी सुनंदा का अपने पति श्री अंशुमन अस्थाना के साथ दक्षिण अफ़्रीका के जोहान्सबर्ग में दो वर्ष के लिए जाना हुआ। सुनंदा के दक्षिण अफ़्रीका में होने से मुझे दो बार लंबे समय तक वहाँ रहने का अवसर मिला। इस अवधि में वहाँ 'हिंदी शिक्षा संघ' के लोगों से मेरा परिचय हुआ और हिंदी गतिविधियों को समझने का अवसर मिला। मेरे लिए यह बड़ा अवसर था कि मैं दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की स्थिति समझ सकूँ।

दक्षिण अफ़्रीका में मेरी उपस्थिति देखकर प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम ने मुझे डरबन आने का निमंत्रण दिया और वहाँ के अभिलेखागार में उपलब्ध सामग्री को देखने का सुझाव भी दिया। मैंने उनसे निवेदन किया कि मैं वहाँ के हिंदी सेवियों से बात भी करना चाहता हूँ। उन्होंने एक निश्चित तिथि पर एक हिंदी संगोष्ठी का आयोजन किया और मुझे उस गोष्ठी के लिए निमंत्रित किया। मैं भी सपरिवार डरबन गया। बेटी सुनंदा भी साथ थी। सुनंदा एक पत्रकार है, जी न्यूज़, आज तक और स्टार न्यूज़ में वरिष्ठ प्रोड्यूसर के पद पर काम कर चुकी थी। मेरे कारण हिंदी के कार्यक्रमों में मेरे साथ जाती और मेरा पूरा सहयोग करती। प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम की हिंदी सेवाओं से प्रभावित होकर उसने उनका और वहाँ के कुछ वरिष्ठ हिंदी सेवियों का साक्षात्कार लेने का प्रस्ताव भी रखा। मुझे प्रसन्नता है कि प्रोफ़ेसर सीताराम ने इसकी स्वीकृति दी। सुनंदा का प्रोफ़ेसर सीताराम का लिया हुआ साक्षात्कार दिल्ली की प्रमुख पत्रिका 'आजकल' में प्रकाशित हुआ। यह साक्षात्कार प्रोफ़ेसर सीताराम की हिंदी संबंधी अंतर्दृष्टि का परिचय देता है और दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी समाज, भाषा एवं संस्कृति पर शोध करने वालों के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी को स्थापित करने और बढ़ाने वालों में प्रोफ़ेसर सीताराम की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। डरबन के

वेस्ट विल्ले कैंपस में वे हिंदी संभाग के कई वर्षों तक अध्यक्ष रहे और उनके निर्देशन में प्रोफ़ेसर राजेन्द्र मिस्त्री और प्रोफ़ेसर उषा देवी शुक्ला ने अपने शोध-प्रबंध लिखे और महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ कीं। राजेन्द्र मिस्त्री ने (ए सोशियोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ़ भोजपुरी - हिंदी इन साउथ अफ़्रीका) विषय पर पीएच.डी. की उपाधि के लिए शोध किया, जो बाद में विट्स वाटर्सरैंड विश्वविद्यालय से 1991 में (लैंग्वेज इन इंडेंचर) शीर्षक से प्रकाशित हुआ और भाषाविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ। प्रोफ़ेसर उषा देवी शुक्ल ने 'दक्षिण अफ़्रीका में रामचरितमानस' पर अपना शोध-प्रबंध प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम के निर्देशन में लिखा। प्रोफ़ेसर राम भजन के निर्देशन में कई विद्यार्थियों ने डी.फ़िल. तथा डी.लिट. के लिए शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत कर दक्षिण अफ़्रीका के विभिन्न विश्वविद्यालयों से उपाधियाँ प्राप्त कीं।

दक्षिण अफ़्रीका में जिन लोगों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार की दिशा में निरंतर कार्य किया है, उनमें प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम अग्रणी हैं। पुरानी बात है कि मैं हिंदी की विविध विदेशी भाषिक-शैलियों का अध्ययन कर रहा था और इस संदर्भ में एक दिए हुए संक्षिप्त पाठ का नेटाली में रूपान्तर मुझे चाहिए था। हिंदी की विविध बोलियों में यह रूपान्तर अपनी पुस्तक 'हिंदी और इसकी उपभाषाएँ' में मैं दे चुका था। नेटाली में रूपान्तर के लिए मैंने प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम से सहयोग माँगा। उन्होंने दिए हुए पाठ को नेटाली में रूपांतरित करने के लिए तुरंत अपनी सहमति दी और व्यस्त रहते हुए भी अल्प समय में ही पाठ का नेटाली रूपान्तर करके मुझे भेज दिया, जिनका मैंने अपने शोध निबंधों में उपयोग किया।

अपने 'हिंदी की विदेशी भाषिक शैलियाँ' के अध्ययन और अनुसंधान के संदर्भ में मैं प्रोफ़ेसर राजेन्द्र मिस्त्री का शोध-प्रबंध खोज रहा था। वह शोध-प्रबंध मुझे दिल्ली के किसी पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं हुआ। मैंने प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम से इस समस्या की चर्चा की और उन्होंने मुझे राजेन्द्र मिस्त्री की पुस्तक उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया और अगली बार जब उनका भारत आगमन हुआ, तब उन्होंने वह पुस्तक मुझे भेंट की। प्रोफ़ेसर उषा देवी शुक्ल से भी मेरा परिचय उन्होंने ही कराया और उनके शोध-प्रबंधों को पढ़ने का अवसर भी उनके माध्यम से ही मुझे मिला। दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी पर शोध के बारे में प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम ने मुझे पूरा सहयोग दिया, जिससे दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की स्थिति और संभावनाओं को समझने में मुझे सुविधा हुई।

प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम ने प्रवासी हिंदी साहित्य पर प्रकाशित मेरी पुस्तकों की विस्तृत समीक्षाएँ भी लिखीं, जो भारत की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। मेरी पुस्तक 'फ़ीजी में हिंदी : स्वरूप और विकास' और 'सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य' की उन्होंने विस्तृत समीक्षाएँ लिखीं, जो साहित्य अकादमी की 'समकालीन भारतीय साहित्य' और हरियाणा अकादमी की 'हरिगंधा' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुईं।

प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम ने विश्व के अनेक देशों में आयोजित अकादमिक सम्मेलनों में प्रतिभागिता की, अपने शोध आलेख पढ़े और दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी की स्थिति से परिचित कराया। अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ़ साउथ करोलिना द्वारा संपादित एनसाईंक्लोपेडिया ऑफ़ हिंदूइज़्म में प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम का शोध आलेख - 'दक्षिण अफ़्रीका में हिंदुत्व' भी प्रकाशित है, जो उनकी बहुआयामी अध्ययन प्रकृति को सूचित करता है।

आचार्य राम भजन सीताराम का मुख्य क्षेत्र अध्ययन और अनुसंधान रहा है, पर कविता-लेखन में भी उनकी रुचि रही है। उन्होंने कई विश्व हिंदी सम्मेलनों में स्वरचित कविताओं का पाठ किया है। त्रिनिदाद में हुए विश्व सम्मलेन में उन्होंने स्वरचित कविता - 'हिंदी की विजय यात्रा' का पाठ किया था। उनके द्वारा लिखित अन्य कविताएँ - 'तीन निहत्थे सरदार', 'भारत माँ कस्तूरबा', 'श्री अटल बिहारी वाजपेयी' तथा 'हिंदी का विश्व ग्रामीय स्वरूप' हैं।

अपनी हिंदी सेवाओं के लिए प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम को कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुए हैं। दक्षिण अफ़्रीका के हिंदी शिक्षा संघ ने उन्हें 'विद्यारत्न' और 'पंडित नरदेव श्रेष्ठ पुरस्कार' (1998) से तथा त्रिनिदाद में हुए पाँचवें विश्व हिंदी सम्मलेन (1992) तथा जोहान्सबर्ग में हुए नौवें विश्व सम्मलेन में (2012) विशिष्ट हिंदी सेवा के लिए उन्हें सम्मानित किया गया।

प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम से मेरा संपर्क दो दशकों से भी अधिक समय से है। उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका जैसे दूर-दराज के देशों में विपरीत परिस्थितियों में रहकर हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की है, जिससे वहाँ हिंदी का मार्ग प्रशस्त हुआ है। वे आत्म-प्रचार के रोग से दूर हिंदी के एक शालीन और स्वाध्यायप्रिय विद्वान हैं और दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के ध्वजवाहक हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. केजरीवाल, ओम प्रकाश (संपादक), विदेश में हिंदी, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली 2004
2. राम भजन सीताराम, विदेश में हिंदी - दक्षिण अफ़्रीका, गगनांचल
3. विमलेश कान्ति वर्मा (संपादक): विदेश में हिंदी : उत्तरार्ध, अक्टूबर-दिसंबर 2004, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आज़ाद भवन, नई दिल्ली 2004
4. प्रभाकर श्रोत्रिय (संपादक) नया ज्ञानोदय, पंचायत दिसंबर 2003 व जनवरी 2004, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
5. विमलेश कान्ति वर्मा - हिंदी स्वदेश में और विदेश में, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली
6. विमलेश कान्ति वर्मा, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली एवं अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
7. सुनंदा वर्मा, साक्षात्कार : प्रोफ़ेसर राम भजन सीताराम से सुनंदा वर्मा की बातचीत, आजकल, जनवरी 2016, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
8. राजेन्द मिस्त्री, लैंग्वेज इन इंडेंचर, यूनिवर्सिटी ऑफ़ विट्स वाटर्सरैंड, साउथ अफ़्रीका 1991
9. उषा देवी शुक्ल, रामचरित मानस इन साउथ अफ़्रीका, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 2002
10. विमलेश कान्ति वर्मा, हिंदी और उसकी उपभाषाएँ, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली
11. राम भजन सीताराम, समकालीन भारतीय साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
12. राम भजन सीताराम, हरिगंधा, प्रवासी साहित्य विशेषांक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला

vimleshkanti@gmail.com

हिंदी शिक्षण

1. श्रीलंका की उच्च शिक्षा के मानदंड एवं केलानिया विश्वविद्यालय के हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि का अनुकूलन - हसारा दसुनि हिरिमुतुगॉड

2. अमेरिका का साहित्यिक-शैक्षणिक परिवेश और हिंदी-शिक्षण की समस्याएँ - इला प्रसाद

3. उच्च शिक्षा में हिंदी शिक्षण - डॉ. साएमा बानो

श्रीलंका की उच्च शिक्षा के मानदंड एवं केलानिया विश्वविद्यालय के हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि का अनुकूलन

हसारा दसुनि हिरिमुतुगॉड
श्रीलंका

शिक्षा में पाठ्यक्रम नियोजन पिछले सदी में प्रमुख बना। प्राचीन समय में, लोग स्वयं या अनौपचारिक रूप से सीख रहे थे और फिर उन्होंने ज्ञानी के पथ-प्रदर्शन के अधीन ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया। बाद में, विकसित सभ्यता में शांतिपूर्ण अस्तित्व की आशा करने वाले बड़े समूहों को शिक्षित करने के लिए शिक्षा के एक व्यवस्थित रूप की आवश्यकता उत्पन्न हुई (बांडे, 2019)। पिछले सदी के आठवें दशक तक पाठ्यक्रम संगठन का कार्य धीरे-धीरे चलता आ रहा था, फिर भी आखिरी दशकों से लेकर दुनिया में तेज़ी से होने वाले परिवर्तनों की माँगों के अनुसार उनका प्रचुर विकास हुआ (Medgyes and Nikolov, 2010)। अंत में, 21वीं सदी में चर्चित संधारणीय विकास लक्ष्यों में अंतर्गत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए और सामयिक आवश्यकताओं का सामना करने के लिए पाठ्यक्रम नियोजन की आवश्यकता होती है। इसलिए नीति-निर्माताओं, विशेषज्ञों, शिक्षकों, छात्रों और उपदेशकों की भूमिकाएँ महत्त्वपूर्ण रही हैं, क्योंकि प्रत्येक श्रेणी पाठ्यक्रम नियोजन और विकास की प्रक्रिया पर विभिन्न प्रभाव प्रदान करती है।

हाल के वर्षों में श्रीलंकाई विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा से संबंधित संस्थानों में संस्थागत समीक्षा और विषय समीक्षा का पहला कदम 2004 से 2013 तक श्रीलंका विश्वविद्यालय आयोग के गुणवत्ता आश्वासन और प्रमाणन परिषद (Quality Assurance and Accreditation Council) द्वारा उठाया गया था। वह कार्य 2002 में श्रीलंका विश्वविद्यालय आयोग और उपकुलपतियों और निर्देशकों की समिति (Committee of Vice Chancellors and Directors) द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित गुणवत्ता आश्वासन पुस्तिका के मार्गदर्शन के आधार पर संपन्न हुआ (Warnasuriya et al., 2015). इस समीक्षा के अनुभवों को ध्यान में रखते हुए, श्रीलंका विश्वविद्यालय आयोग और इक्कीसवीं सदी के लिए उच्च शिक्षा (Higher Education for Twenty-First Century) परियोजना के संयुक्त परिश्रम से श्रीलंका के उच्च शिक्षा संस्थानों के स्नातक अध्ययन कार्यक्रमों की समीक्षा के लिए मार्गोपदेश पुस्तिका का प्रकाशन 2015 में किया गया था। साथ ही, श्रीलंका विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों की संस्थागत समीक्षा के लिए मार्गोपदेश पुस्तिका का भी प्रकाशन हो गया था। इसके अतिरिक्त, 2012 में पहली बार प्रकाशित श्रीलंका योग्यता रूपरेखा (Sri Lanka Qualifications Framework) एक सराहनीय प्रयास था, जो श्रीलंका में प्रस्तुत की जाने वाली सभी उच्च शिक्षा की योग्यताओं एवं पाठ्यक्रमों के लिए राष्ट्रीय तौर पर मानदंड निर्दिष्ट करता है। वह विद्यार्थियों के अध्ययन के परिमाण को सुनिश्चित करता है, अध्ययन कार्यक्रमों में प्राप्त करने के लिए अपेक्षित अध्ययन परिणामों को निर्धारित करता है और बारह स्तरों के अधीन और अध्ययन के मानदंडों का विवरण प्रस्तुत करता है। इसका 2015 में प्रकाशित किया गया संस्करण वर्तमान में क्रियात्मक है (University Grants Commission, 2015)। SLQF हर अध्ययन वर्ष की शिक्षा के परिमाण को 1500 अभिप्रायपरक अध्ययन घंटों (Notional Learning Hours) के रूप में और एक पाठ्यक्रम क्रेडिट 50 अभिप्रायपरक अध्ययन घंटों के रूप में प्रत्येक स्तर पर अध्ययन के परिमाण का विवरण देता है। और यह भी कहता है कि 'अभिप्रायपरक अध्ययन घंटे, शिक्षकों और प्रशिक्षकों के साथ साक्षात संपर्क घंटों, स्व-अध्ययन में बिताए गए समय, अध्ययन-कार्य के लिए तैयारी, अध्ययन-कार्य और मूल्यांकन के लिए व्यतीत होने वाले समय को शामिल करें' (University Grants Commission, 2015, पृ.8)। एक पाठ्यक्रम क्रेडिट के 50 अभिप्रायपरक अध्ययन घंटों में से मात्र 15 घंटे व्याख्यान के लिए या प्रवक्ता या शिक्षक के साथ साक्षात संपर्क रखने के लिए निर्धारित किए गए हैं। इसलिए, पाठ्यक्रम संगठन करते समय इन सभी बातों को ध्यान में रखना चाहिए। इसके अलावा, उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और विकास को बढ़ावा देने के लिए नियोजित Accelerating Higher Education Expansion and Development परियोजना (AHEAD), जो विश्व बैंक द्वारा वित्तपोषित एक श्रीलंकाई सरकारी क्रियावली है, उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सहायता देती है। केलानिया विश्वविद्यालय के मानव-शास्त्र संकाय के हर विषय में वर्ष 2020-2021 के आस-पास हुए नवीनतम पाठ्यक्रम संशोधन के लिए भी इस परियोजना की सहायता मिली।

श्रीलंका के वर्तमान के पाठ्यक्रम नियोजन में प्रतिफल-

आधारित शैक्षिक प्रयासों को अधिक बल दिया गया है। प्रतिफल-आधारित शिक्षा (Outcome-Based Education) एक ऐसी शैक्षिक-प्रणाली है, जिसे विश्व-भर की उच्च शिक्षा में बड़ा आकर्षण प्राप्त है। वह एक ऐसा ढाँचा प्रदान करता है कि विद्यार्थियों को अध्ययन कार्यक्रम के अंत में प्राप्त करने के लिए अनिवार्य योग्यताओं की जानकारी पहले से ही मिले (Ranjani et al., 2014)। यह प्रणाली पारंपरिक शैक्षिक दृष्टिकोणों से कई तरीके से भिन्न है। स्पैडी (Spady, 1994) के अनुसार, प्रतिफल-आधारित शैक्षिक प्रणालियाँ अध्ययन कार्यक्रम के अंतिम परिणाम को ध्यान में रखकर सब कुछ स्पष्टता से परिभाषित ढाँचे पर पूर्वनिर्धारित करती हैं। उसी प्रकार उनमें समय का उपयोग शिक्षकों और विद्यार्थियों की आवश्यकताओं पर प्रयुक्त संसाधन के रूप में किया जाता है। प्रतिफल-आधारित शैक्षिक प्रणालियाँ मुख्य रूप से विद्यार्थियों की शिक्षा और दक्षताओं को सबसे उच्च स्तर पर ले जाने की ओर केंद्रित हैं। विद्यार्थी को विश्वविद्यालय या संस्थान से बाहर निकलने से पहले उस स्तर तक पहुँचाने का मार्गदर्शन करना प्रतिफल-आधारित शैक्षिक प्रणालियों का एक अभिप्राय है। इसके अलावा, आकिर, एंग और माली (Akir et al., 2012) यह कहते हैं कि प्रतिफल-आधारित शैक्षिक प्रणालियाँ पाठ-आधारित या शिक्षक-केंद्रित पारंपरिक दृष्टिकोणों को अपनाने के बजाय छात्र-केंद्रित शैक्षिक प्रविधियों पर बल देती हैं। इससे विद्यार्थियों को नये ज्ञान की खोज करने और अपनी दक्षताओं को बढ़ाने के लिए प्रेरित किया जाता है।

श्रीलंका योग्यता रूपरेखा (SLQF) के अनुसार शैक्षिक फल (Learning Objectives) उनकी जानकारी देते हैं कि पाठ या अध्ययन कार्य की पूर्ति में विद्यार्थियों को कितनी जानकारी मिलेगी, विद्यार्थी क्या समझेंगे और विद्यार्थी किस-प्रकार की दक्षता प्रकट कर सकते हैं (University Grants Commission, 2015)। शैक्षिक फल वास्तविक परिणाम हैं, जो विद्यार्थियों द्वारा पाठ्यक्रम के समापन पर प्राप्त किए जाते हैं, जबकि अपेक्षित शैक्षिक फल ऐसे कथन हैं, जो यह पूर्वानुमान करते हैं कि विद्यार्थी शिक्षा कार्य के अंत में क्या कर सकेंगे। श्रीलंका के स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के लिए श्रीलंका योग्यता रूपरेखा में 12 शैक्षिक फलों को K-SAM आकृति के 4 मुख्य क्षेत्रों के अधीन निर्धारित किया गया है (University Grants Commission, 2015, पृ.12)।

शैक्षिक फल के वर्ग	मुख्य क्षेत्र
1. विषयक/ सैद्धांतिक ज्ञान	बोध/ Knowledge
2. व्यावहारिक ज्ञान एवं अनुप्रयोय	
3. संप्रेषण	कौशल/ Skills
4. सामूहिक कार्य एवं नेतृत्व	
5. सृजनात्मकता एवं समस्या समाधान	
6. व्यावसायिकता और उद्यम	
7. सूचना के प्रयोग एवं प्रबंधन	
8. परस्पर संबंध एवं सामाजिक कौशल	
9. अनुकूलनशीलता एवं नम्रता	भाव, मूल्य, दक्षता एवं जीवन-दृष्टि/ Attitudes, Values, Professional-ism and Vision for life
10. भाव, मूल्य एवं दक्षता	
11. जीवन-दृष्टि	
12. स्व-नवीनीकरण/जीवन भर की शिक्षा	पूर्वाग्रह एवं परिपेक्ष्य/ Mind-set and Para-digm

शैक्षिक फलों के साथ-साथ SLQF में कुछ छात्र केंद्रित शिक्षा प्रविधियों के लिए सुझाव दिए गए हैं और प्रभावी और उपयुक्त मूल्यांकन की प्रविधियों की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया गया है।

SLQF के अलावा, किसी स्नातक पाठ्यक्रम के संगठन के लिए उस विषय क्षेत्र का विषयक मानदंड विवरण (Subject Benchmark Statement) और उस विश्वविद्यालय के अपने संकाय की स्नातक रूपरेखा (Graduate Profile) अपेक्षित शैक्षिक फलों के निर्धारण और लेखन के लिए उल्लेखनीय हैं। SLQF के अनुसार, 'विशिष्ट विषय क्षेत्रों में अपेक्षित विशिष्ट शिक्षा प्राप्तियों पर व्यापक विवरण SLQF में नहीं दिए गए हैं। वे उस विषय से संबंधित विषयक मानदंड विवरण में उपलब्ध हैं' (University Grants Commission, 2015, पृ. 12) हिंदी के कला-स्नातक उपाधि पाठ्यक्रमों के लिए एकमात्र उपलब्ध विषयक मानदंड विवरण वह है, जो 2011 में भाषा-अध्ययन के लिए प्रकाशित है। दशक से भी

पहले प्रकाशित होने के कारण फिर उसमें भाषा अध्ययन-अध्यापन की सामयिक आवश्यकताओं के बारे में पुनर्विचार की आवश्यकता होगी। केलानिया विश्वविद्यालय में हिंदी की कला-स्नातक उपाधि के लिए संबद्ध संस्थागत मानदंड के रूप में केलानिया विश्वविद्यालय के मानवशास्त्र संकाय की स्नातक रूपरेखा में स्नातक से अपेक्षित इक्कीस क्षमताओं और गुणों को निर्धारित किए गए हैं, जिन्हें तीन खंडों में वर्गीकृत किया गया है : विशेष ज्ञान, सामान्य बौद्धिक कौशल एवं क्षमताएँ और व्यक्तिगत गुण (Faculty of Humanities, 2023)। वे भी राष्ट्रीय उच्च शिक्षा के मानदंडों के अनुकूल हैं।

विदेशी भाषा के रूप में हिंदी की शिक्षा देशी संस्थान, भारतीय प्राधिकारी, विश्व हिंदी सचिवालय आदि संगठनों के समन्वय से दुनिया के बहुत-से देशों में स्थान प्राप्त कर रही है। श्रीलंका के संदर्भ में, सामान्यत: यह माना जाता है कि अधिकांश श्रीलंकाई लोगों को कम-से-कम कुछ हिंदी शब्द आते हैं क्योंकि हिंदी फ़िल्मों, संगीत, कला और अन्य सांस्कृतिक संबंधों के कारण इन दो पड़ोसी देशों के बीच सदियों तक संपर्क बने रहे हैं। भाषा शिक्षा की दृष्टि से श्रीलंका में दशकों से संस्थागत स्तर पर विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के अध्ययन और अध्यापन होते जा रहे हैं। हिंदी और उत्तर भारतीय कलाओं को सिखाने के लिए भारत द्वारा वित्तपोषित केंद्रों के अलावा कई निजी कक्षाएँ और संस्थान चलाये जा रहे हैं। हिंदी को स्कूल और विश्वविद्यालय के स्तर पर विदेशी भाषा के रूप में सिखाया जाता है। स्कूल के स्तर पर इच्छुक छात्र हिंदी को अपने *शिक्षा का सार्वजनिक प्रमाण-पत्र सामान्य स्तर* (GCE Ordinary Level) की परीक्षा और *शिक्षा का सार्वजनिक प्रमाण-पत्र उच्च स्तर* (GCE Advanced Level) की परीक्षा के लिए एक मुख्य विषय के रूप में ले सकते हैं। यह उच्च स्तर की परीक्षा, जो एक द्वीपव्यापी प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा होती है, उसके माध्यम से ही लगभग सभी सरकारी विश्वविद्यालयों में प्रवेश निर्धारित होता है। इस प्रकार, एक छात्र कम-से-कम चौदह वर्ष की आयु पूर्ण करने के बाद भी श्रीलंका की सरकारी शिक्षा प्रणाली में एक औपचारिक तरीके से विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सीख सकता है।

विश्वविद्यालय के स्तर पर भी उच्च शिक्षा के लिए विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सिखाई जाती है। श्रीलंका के केलानिया विश्वविद्यालय, श्री जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय, सबरगमुव विश्वविद्यालय तथा रजरट विश्वविद्यालय वे चार सरकारी विश्वविद्यालय हैं, जो हिंदी के लिए स्नातक कार्यक्रमों का संचालन करते हैं, जबकि कुछ विश्वविद्यालय प्रवीणता स्तर के पाठ्यक्रमों को संचालित करते हैं। उनमें से अभी तक मात्र केलानिया विश्वविद्यालय के मानवशास्त्र संकाय में हिंदी अध्ययन के लिए एक स्वतंत्र अध्ययन विभाग की स्थापना हो गई है। केलानिया विश्वविद्यालय में कला-स्नातक उपाधि के लिए हिंदी का अध्ययन-अध्यापन विश्वविद्यालय की स्थापना के आरंभ से लेकर अभी तक किया जा रहा है। हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि कार्यक्रम 1982 में केलानिया विश्वविद्यालय में शुरू किया गया था (Senevirathne, 2019)। पिछले दशक के आंकड़ों से यह साबित होता है कि 9 स्नातकों की औसत संख्या का परिणाम उस गौरव उपाधि कार्यक्रम से मिलता है।

केलानिया विश्वविद्यालय की अध्ययन प्रक्रिया के अनुसार कला-स्नातक उपाधि के लिए हिंदी को एक विषय के रूप में लेने के लिए कोई पूर्व-आवश्यकता नहीं है। अन्य शब्दों में, सार्वजनिक प्रमाण-पत्र उच्च स्तर की परीक्षा (GCE Advanced Level) की कला धारा से केलानिया विश्वविद्यालय की कला-स्नातक उपाधि के लिए चयनित कोई भी विद्यार्थी हिंदी को मुख्य विषय के रूप में सीखने के लिए योग्य है, चाहे उसे हिंदी का पूर्वज्ञान हो या नहीं। कुछ शैक्षणिक वर्षों (Academic Years) की शुरुआत में, जो विद्यार्थी सामान्य प्रवेश के अधीन विश्वविद्यालय में प्रवेश करने में अक्षम थे, यदि उन्हें उच्च स्तर की परीक्षा में हिंदी के लिए उच्च श्रेणी प्राप्त हैं, तो केलानिया विश्वविद्यालय में हिंदी समेत कला-स्नातक उपाधि पाने के लिए विशेष प्रवेश प्रदान किया जाता है। यह अवसर कुछ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा चयनित विद्यार्थियों को मिलता है। वे विद्यार्थी अध्ययन की अवधि के दौरान हिंदी को मुख्य विषय के रूप में लेने की शर्त के साथ विश्वविद्यालय में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार, कला-स्नातक उपाधि के स्तर 1 के विद्यार्थियों का समूह हिंदी के पूर्वज्ञान रखने वालों के साथ भाषा-कौशल के प्राथमिक स्तर के नए विद्यार्थियों से मिलकर बनता है। इसलिए, जो विद्यार्थी हिंदी के लिए 3.7 से अधिक औसत ग्रेड बिंदु (Grade Point Average) प्राप्त कर चुके हैं और स्तर 1 के अंत में अन्य दो मुख्य विषयों से उत्तीर्ण हो चुके हैं, वे हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि के अध्ययन के लिए योग्य हो जाते हैं। हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि के लिए विद्यार्थियों को चुनने के नियम बदल भी सकते हैं, लेकिन यह अभी तक लागू की गई प्रक्रिया है। हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि के लिए चयनित विद्यार्थी अपने चार वर्षीय उपाधि के शेष स्तरों में (स्तर 2, 3 और 4) हिंदी अध्ययन की विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं।

केलानिया विश्वविद्यालय के मानवशास्त्र संकाय में एएचईएडी

परियोजना के अधीन वर्ष 2020-2021 के आसपास हुए पाठ्यक्रम संशोधन के दौरान ये सुझाव रखे गए कि कला-स्नातक गौरव उपाधि के पाठ्यक्रम में मुख्य विषय के साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण (Internship), सामुदायिक सेवा, राष्ट्रीय विरासत, संगणक साक्षरता और शोध-प्रविधि के लिए अवसर मिलने चाहिए। उनमें से शोध-प्रविधि के अलावा अन्य पाठ्यक्रम इकाइयाँ वैकल्पिक तौर पर भी रखी जा सकती थीं। साथ ही, कुछ पाठों के शिक्षण और मूल्यांकन में अंग्रेज़ी का प्रयोग करने पर और समावेशिता (inclusivity) की प्रेरणा देने पर भी बल दिया गया। गौरव उपाधि के स्तर 2, 3 और 4 के अनिवार्य पाठ्यक्रम इकाइयों से कम-से-कम 90 पाठ्यक्रम क्रेडिट पूरा होने की आवश्यकता थी, ताकि स्तर 1 के तीनों विषयों के 30 पाठ्यक्रम क्रेडिट के साथ कुल मिलाकर कला-स्नातक गौरव उपाधि की पूर्ति में कम-से-कम 120 पाठ्यक्रम क्रेडिट पूरा हों। पाठ्यक्रम के विकास में विषय की सूचना के साथ उसका परिचय, विषय सीखने का मुख्य उद्देश्य, अपेक्षित शैक्षिक फल, विषय सूची, गतिविधि का साप्ताहिक विश्लेषण, शिक्षण-प्रविधि, संबद्ध कौशल या दक्षताएँ, विषय के अनुकूल अभिप्रायपरक अध्ययन घंटों का विश्लेषण, मूल्यांकन-प्रविधि, अनुशंसित संदर्भ-सूची आदि का सविस्तार और स्पष्ट विवरण देना स्वीकार्य था। उन्हें ध्यान देकर निम्नलिखित पाठ्यक्रम इकाइयों का विकास किया गया, जिनका कार्यान्वयन 2021 से हो रहा है।

पाठ्यक्रम की आकृति					
पाठ्यक्रम-संकेत	पाठ्यक्रम-नाम	स्थिति (अनिवार्य या वैकल्पिक)	S L Q F क्रेडिट	अभिप्रायपरक अध्ययन घंटे	
				साक्षात संपर्क घंटे	स्व-अध्ययन, तैयारी, मूल्यांकन वगैरह के लिए
स्तर 2					
HIND 21714	हिंदी भाषा का उद्भव और विकास Origin and Development of Hindi Language	अनिवार्य	4	60	140
HIND 21724	हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास Origin and Development of Hindi Literature	अनिवार्य	4	60	140
HIND 21731	सामुदायिक सेवा कार्य Community Service Engagement	वैकल्पिक	1	15	35
HIND 22744	अनुवाद के सिद्धांत Principles of Translation	अनिवार्य	4	60	140
HIND 23756	उत्तर भारतीय संस्कृति और अंतर-संस्कृति संचार North Indian Culture and Intercultural Communication	अनिवार्य	6	90	210
HIND 23766	साहित्य सिद्धांत (गद्य और पद्य) Fundamentals of Literary Criticism (Verse and prose)	अनिवार्य	6	90	210
HIND 23776	संप्रेषण एवं संरचना के कौशल- I Skills of Communication and Composition- I	अनिवार्य	6	90	210

स्तर 3					
HIND 31714	भाषा-शिक्षण और अध्ययन के सिद्धांत Principles of Language Teaching and Learning	अनिवार्य	4	60	140
HIND 31724	व्यावसायिक उद्देश्य और अंतःविषय अध्ययन के लिए हिंदी Hindi for Professional Purposes and Interdisciplinary Studies	अनिवार्य	4	60	140
HIND 31732	शोध-प्रविधि Research Methodology	अनिवार्य	2	30	70
PSNH 31712	राष्ट्रीय विरासत और नागरिक उत्तरदायित्व National Heritages and Civic Responsibility	वैकल्पिक	2	30	70
HIND 33755	साहित्यिक आलोचना : आधुनिक हिंदी पद्य (निर्धारित) Literary Criticism: Modern Hindi Verse (Prescribed)	अनिवार्य	5	75	175
HIND 33765	भाषाविज्ञान के सिद्धांत एवं हिंदी भाषा Fundamentals of Linguistics and Hindi Language	अनिवार्य	5	75	175
HIND 33775	साहित्यिक आलोचना : हिंदी गद्य (निर्धारित) Literary Criticism: Hindi Prose (Prescribed)	अनिवार्य	5	75	175
HIND 33785	संप्रेषण एवं संरचना के कौशल- II Skills of Communication and Composition- II	अनिवार्य	5	75	175
PSIT 32722	शिक्षा एवं व्यावसायिक विकास के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी कौशल- I ICT Skills for Education and Professional Development- I	वैकल्पिक	2	30	70
स्तर 4					
HIND 41713	हिंदी लोक-साहित्य Hindi Folk Literature	अनिवार्य	3	45	105
HIND 41724	सृजनात्मक संरचना एवं आलोचनात्मक सोच Creative Composition and Critical Thinking	अनिवार्य	4	60	140
PSIT 41712	शिक्षा एवं व्यावसायिक विकास के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी कौशल- II ICT Skills for Education and Professional Development- II	वैकल्पिक	2	30	70

HIND 43745	साहित्यिक आलोचना : आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिंदी पद्य (निर्धारित) Literary Criticism: Early and Medieval Hindi Verse (Prescribed)	अनिवार्य	5	75	175
HIND 43755	अनुवाद एवं भाषांतरण Translation and Interpretation	अनिवार्य	5	75	175
HIND 43765	साहित्यिक आलोचना : हिंदी गद्य और फ़िल्में (निर्धारित) Literary Criticism: Hindi Prose and Films (Prescribed)	अनिवार्य	5	75	175
HIND 43778	शोध-प्रबंध एवं मौखिक परीक्षा Dissertation and Oral Examination	अनिवार्य	8	120	280
HIND 43744	व्यावसायिक प्रशिक्षण Internship	वैकल्पिक	4		400
समग्र क्रेडिट (हिंदी- अनिवार्य)			90 + 10 (स्तर 1) = 100		
समग्र साक्षात अध्ययन घंटे			1500 घंटे.		
समग्र अभिप्रायपरक अध्ययन घंटे (हिंदी विषय से)			5000 घंटे. (1500 + 3500)		

आजकल व्यावसायिक प्रशिक्षण को हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि के लिए भी अनिवार्य बनाने की चर्चा हो रही है। इसके अलावा सूचना और संचार प्रौद्योगिकी कौशल, व्यवहार कौशल आदि के विकास के लिए प्रेरणा देना भी स्नातकों की व्यावसायिक योग्यता के लिए किए गए अन्य प्रयास हैं।

तत्कालीन शैक्षिक एवं व्यावसायिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर केलानिया विश्वविद्यालय के हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि के लिए कई प्रकार के प्रतिफल-आधारित शिक्षण एवं मूल्यांकन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। व्याख्यान और पाठ्य-सामाग्री के साथ-साथ पारंपरिक एवं डिजिटल दोनों माध्यमों की मिश्रित शैक्षिक प्रविधियाँ (blended learning), छात्र-केंद्रित शैक्षिक प्रविधियाँ, ऑनलाइन शिक्षा प्रबंधन प्रणाली का प्रयोग, अतिथि व्याख्यान, सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ, प्रस्तुतीकरण, श्रव्य-दृश्य साधन का प्रयोग, शिक्षा संबंधी क्रीड़ाएँ, वार्तालाप गतिविधि (role-play), विचार-मंथन के अभ्यास आदि शिक्षण प्रविधियों में से उचित प्रविधियों का प्रयोग पाठ्यक्रम इकाई के अंतर्गत आने वाले विषयों के स्वभाव के अनुसार किया जाता है। मूल्यांकन में अंतिक मूल्यांकन के साथ-साथ सतत मूल्यांकन के लिए भी अवसर दिया जाता है। अधिकतर पाठ्यक्रम इकाइयों में मूल्यांकन से मिलने वाले अंक से 60% अंतिक मूल्यांकन के लिए और 40% सतत मूल्यांकन के लिए बाँटा गया है। अध्ययन-अध्यापन की प्रणाली का निरंतर मूल्यांकन उससे अपेक्षित है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि श्रीलंका में विदेशी भाषा के रूप में उच्च शिक्षा या स्नातक स्तर पर हिंदी के पाठ्यक्रम निर्माण से संबंधित मानदंड एवं आवश्यकताएँ किस प्रकार होते हैं। केलानिया विश्वविद्यालय के हिंदी की कला-स्नातक गौरव उपाधि के उक्त पाठ्यक्रम इकाइयों के माध्यम से हिंदी भाषा, साहित्य और उत्तर भारतीय संस्कृति से संबंधित विषयपरक प्रवीणता के साथ-साथ

श्रीलंका के उच्च शिक्षा मानदंडों के अनुरूप विद्यार्थियों के कौशल, जीवन-दृष्टि, परिप्रेक्ष्य आदि के विकास पर भी ध्यान दिया जाता है। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में हिंदी मातृभाषी के समान प्रवीणता की आशा करना यथार्थपरक नहीं होगा। अतः उस भाषात्मक और विषयगत प्रवीणता का प्रयोग जिस परिस्थिति में होता है, उस परिस्थिति या संदर्भ की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण-कार्य का नियंत्रण करना पड़ेगा। शैक्षिक आवश्यकताओं के साथ-साथ व्यावसायिक आवश्यकताओं के साथ भी उपाधि-पाठ्यक्रम का अनुकूल होना आज के समय में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. बांडे (2019) पाठ्यक्रम का अर्थ, परिभाषा, प्रकृति एवं क्षेत्र, *Scotbuzz*. https://www.scotbuzz.org/2019/05/pathyakram.html.
2. Akir, O., Eng, T. H. and Malie, S. (2012) Teaching and learning enhancement through outcome-based education structure and technology e-learning support, *Procedia- Social and Behavioral Sciences*, 62, pp. 87–92. http://dx.doi.org/10.1016/j.sbspro.2012.09.015.
3. Faculty of Humanities (2023) *Graduate Profile*, University of Kelaniya. https://hu.kln.ac.lk/index.php/foh-graduate-profile
4. Medgyes, Péter and Nikolov, Marianne (2010) Curriculum Development : The Interface Between Political and Professional Decisions. In R. B. Kaplan (Ed.) *The Oxford Handbook of Applied Linguistics,* 2nd ed. (pp. 1–13) Oxford University Press.
5. Ranjani, R. P. C. *et al.* (2014) Outcome-Based Education (OBE) using Student Centered Learning (SCL): The Case of Faculty of Commerce and Management Studies, University of Kelaniya, Sri Lanka, *Association of Southeast Asian Institutions of Higher Learning -ASAIHL 2014*. Singapore: Association of Southeast Asian Institutions of Higher Learning.
6. Senevirathne, Lakshman (2019) The Journey of a Dignified Character. In H. D. Hirimuthugoda and R. N. Lansakara (Ed.) *Indra:bhivandana* (pp. 11–20) Department of Hindi Studies, University of Kelaniya.
7. Spady, W. G. (1994) *Outcome-Based Education: Critical Issues and Answers*, Arlington: The American Association of School Administrators. https://files.eric.ed.gov/fulltext/ED380910.pdf.
8. University Grants Commission (2015) *Sri Lanka Qualifications Framework,* Higher Education for Twenty-First Century (HETC) Project of the Ministry of Higher Education.
9. Warnasuriya, N. Coomaraswamy, U. Abeygunawardena, H. Nandadeva, B. D. and de Silva, N. (2015) *Manual for Review of Undergraduate Study Programmes of Sri Lankan Universities and Higher Education Institutes.* Colombo 07: The University Grants Commission.

hasaradh@kln.ac.lk

अमेरिका का साहित्यिक-शैक्षणिक परिवेश और हिंदी-शिक्षण की समस्याएँ

इला प्रसाद
अमेरिका

व्यक्ति के साथ उसकी भाषा भी भ्रमण करती है। उसके साथ ही भ्रमण करते हैं उसके रीति-रिवाज़, खान-पान एवं अन्य संस्कार भी। भाषा और संस्कृति का दर्पण होता है, वहाँ का साहित्य। अमेरिकी परिवेश में पनपा और अमेरिकी अंग्रेज़ी एवं अमेरिका में उपस्थित अन्य भाषाओं से भी शब्द-ग्रहण करके बना यहाँ का अमेरिकी हिंदी कथा साहित्य जो अमेरिका के जीवन का जीवंत दस्तावेज़ है। आज अमेरिका के पचास राज्यों में फैला बहुभाषी भारतवंशी समाज आबादी की दृष्टि से अमेरिका की कुल आबादी का मात्र 1.35% है और अपनी कर्मठता और आर्थिक सम्पन्नता के कारण अलग से पहचाना जाता है। यहाँ यह उल्लेख अनावश्यक न होगा कि अपने आप को विषम से विषमतर परिस्थितियों में समायोजित करने की अपनी विशिष्ट क्षमता और अखंड जिजीविषा का परिचय भारतीय समुदाय ने अतीत में भी विश्व के सामने रखा था। गिरमिटिया मज़दूरों की कथा आज सर्वविदित है। मॉरीशस, सूरीनाम आदि देशों का साहित्य उनकी कथा से भरा पड़ा है।

अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन आदि देशों में बस गए भारतीयों की कथा उनसे इस अर्थ में भिन्न है कि स्वदेश से उनका पलायन स्वैच्छिक है। आर्थिक स्वतंत्रता और सम्पन्नता से जुड़ी बेहतर जीवन की सुविधाओं ने उन्हें यहाँ खींचा है। यहाँ आने के बाद जिस सांस्कृतिक-सामाजिक परिवेश से उनका सामना हुआ, उसे पहचानने और उससे सामंजस्य बिठाने के संघर्ष ने उन्हें जितना तोड़ा, उतना ही उन्हें अपनी जड़ों से जोड़ा भी है। मैं अपने अनुभव से जानती हूँ कि यहाँ रह रहे अमेरिकी भारतीय, कतिपय अपरिहार्य कारणों से भले ही इस देश की नागरिकता भी स्वीकार चुके हों, उनके दिलों में आज भी भारत बसता है। वे अपनी पहचान के प्रति अति संवेदनशील हैं और उस अंधेरे से बाहर आ चुके हैं, जो अस्सी-नब्बे के दशक तक उनके अस्तित्व का हिस्सा था। वे गर्व से अपने को भारतीय घोषित करते हैं, अपने पर्व त्यौहार सार्वजनिक स्थलों पर मनाते हैं और अपने भारतीय भोजन और परिधान को प्रदर्शित करते हैं।

इसी भारतीय समाज का एक अन्य पक्ष भी है। वह अब इस परिवेश में रम चुका है। अमेरिकी परिवेश यहाँ रहने वाले भारतीयों को किस हद तक बदल देता है, इसका पहला अनुभव मुझे तब हुआ, जब मैंने 2008 में ACTFL से हिंदी को एक विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाने की ट्रेनिंग ली और उस वर्ष डाउनटाउन कन्वेन्शन सेंटर में कृष्ण जन्माष्टमी के उत्सव में हिंदी साहित्य की प्रदर्शनी लगाई। साथ ही यह सूचना भी दी कि मैं हिंदी की कक्षा आरम्भ करना चाहती हूँ। जिन्हें अपने बच्चों को हिंदी सिखानी हो, वे अपने नाम यहाँ लिख सकते हैं। यहाँ यह बतलाना अप्रासंगिक नहीं होगा कि उस उत्सव में भारी भीड़ थी। हर आयु वर्ग और तमाम भारतीय भाषाओं को बोलने वाले लोग वहाँ थे। शहर के सभी कोनों से आए हुए लोग। शहर के सभी मन्दिरों और सामाजिक संस्थाओं की प्रदर्शनियाँ थीं। फ़ूड स्टॉल तो थे ही। उस विशाल हॉल मे सांस्कृतिक कार्यक्रम भी थे और विशिष्ट हस्तियाँ उपस्थित थीं। हॉल में मुख्य रूप से दो ही भाषाएँ सुनाई पड़ रही थीं - हिंदी और अंग्रेज़ी। रंग-बिरंगे भारतीय परिधानों में घूम रहे लोगों ने भोजन पर खर्च किया। धार्मिक पुस्तकें खरीदीं, मन्दिरों से जुड़ी संस्थाओं को दान किया। न तो किसी ने एक भी हिंदी की किताब मुझसे खरीदी, न ही किसी ने हिंदी सीखने के लिए अपना नाम लिखवाया। यह पहली कोशिश थी।

इसके बाद मैंने अगला प्रयास किया। अपने घर से निकटतम सार्वजनिक लाइब्रेरी में इस आशय की सूचना लगाई कि गर्मी की छुट्टियों में मैं लाइब्रेरी में हिंदी की कक्षा नि:शुल्क आरम्भ करूँगी। उस लाइब्रेरी में कई भारतीय बच्चों को कई बार देखा था। गर्मी की छुट्टियों में लाइब्रेरी में बच्चों के लिए कई किस्म की गतिविधियाँ होती हैं, बड़ों के लिए भी। किंतु किसी भी आयु वर्ग से एक भी व्यक्ति ने रुचि नहीं दिखाई। अपने परिचय में मैंने खुद को ACTFL, STARTALK द्वारा सर्टिफ़ाइड लिखा था, न कि लेखिका या प्राध्यापिका। वह सूचना गर्मियों भर वहाँ लगी रही। अंतत: मैंने उसे खुद ही हटा लिया।

यहाँ यह उल्लेख आवश्यक होगा कि यह अनुभव मेरा ही रहा। शायद मैंने गलत समय पर, गलत जगह पर शुरुआत की थी। कालान्तर में कई मन्दिरों में हिंदी का शिक्षण आरम्भ हुआ, स्वयंसेवी भारतीय संस्थाएँ सामने आईं। किंतु, आज भी साहित्य से वही दूरी है, जो पहले थी। अमेरिकी भारतीय, भारतीय संस्कृति को धार्मिक उत्सवों, पर्व-त्यौहारों, भारतीय भोजन और हिंदी सिनेमा से ही जोड़कर देखता है। उनकी हिंदी भाषा सीखने की इच्छा बोलचाल की हिंदी जानने और हिंदी गानों से पूरी हो जाती है। साहित्य से गिने-चुने लोगों को ही मतलब होता है। यह स्थिति मात्र

यहाँ नहीं है। इसकी जड़ें वस्तुत: भारत में हैं। साहित्य का संस्कार भारत में आम तौर पर हिंदी भाषी समुदाय का एक बहुत छोटा वर्ग अपने बच्चों को देता है। कोई साहित्यिक परिवेश, साहित्य के पठन-पाठन का संस्कार देने के लिए समाज या स्कूलों में भी उपलब्ध नहीं है।

इस स्थिति का उल्लेख इसलिए आवश्यक हो जाता है, क्योंकि तकनीक की दृष्टि से सबसे आगे बढ़ चुके अमेरिकी समाज में बच्चों में किताबें पढ़ने की आदत डालने का शुभारंभ प्राथमिक विद्यालयों से शुरू हो जाता है। बच्चों के क्लासरूम में ही एक कोने में किताबों की अलमारी होती है। जिस बच्चे ने अपना क्लास वर्क बाकियों से पहले खत्म कर लिया, वह उस कोने में जाकर, अलमारियों में रखी रंग-बिरंगे चित्रों से सजी पुस्तकों को खुद से निकालकर पढ़ सकता है। खेलने और सोने की व्यवस्था भी होती है। बस आप दूसरों के काम में बाधा नहीं डाल सकते।

इसके अतिरिक्त लाइब्रेरी ऑवर भी होते हैं। जब टीचर अपने साथ सभी बच्चों को स्कूल की मुख्य लाइब्रेरी में ले जाते हैं और उन्हें बिठाकर किसी किताब से पढ़कर कहानियाँ सुनाते हैं। कक्षा के अंत में बच्चे अलमारियों से अपने लिए पुस्तक चुनते हैं, बैठकर पढ़ते हैं और इशू कराकर घर ले जाते हैं।

पुस्तकों से यह जुड़ाव बहुतों के लिए जीवन भर का साथी बन जाता है। हाईस्कूल और उसके बाद विश्वविद्यालय में जाने के बाद भी बहुतेरे विद्यार्थी साहित्य से जुड़े रहते हैं और किताबें पढ़ते हैं। वहाँ लोकल ट्रेन या बस की प्रतीक्षा करते हुए, या फ़िर बस या ट्रेन में बैठे हुए किताबें पढ़ते हुए देखे जा सकते हैं। अभी, जब सेल फ़ोन और गेम्स हावी होते जा रहे हैं, साहित्य की दुनिया में पाठकों की उपस्थिति बनी हुई है। उसका स्वरूप अंशत: बदला है, किन्डल और आडियो बुक्स के रूप में, किंतु उनकी दुनिया में साहित्य अनुपस्थित नहीं है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य पहल, जो कुछ वर्ष पहले आरम्भ हुई, "गिव अ बुक, शेयर अ बुक के रूप में है। इस संस्था से मात्र छोटे बच्चे ही नहीं, वरन् कॉलिज और विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्राएँ भी जुड़ रहे हैं। आपको सड़क किनारे लगी आलमारी से अपनी रुचि की किताब लेने की इजाज़त है। बदले में आप अपनी कोई किताब उस आलमारी पर छोड़ जाइए। अमेरिका के कुछ ही राज्यों में यह प्रचलन अभी शुरू हुआ है, जो धीरे-धीरे पूरे अमेरिका में फैल रहा है। कहना न होगा कि साहित्य से इस लगाव के तार यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था से जुड़े हैं।

यदि हम भारत की बात करें, तो हिंदी साहित्य के पठन-पाठन को लेकर ऐसा कोई आग्रह वहाँ दिखाई नहीं देता। बँगला, मराठी और कन्नड़ में स्थिति बेहतर है। भारत जैसी भाषिक विविधता वाला देश दुनिया में शायद ही होगा। किंतु यही विविधता और भाषा को लेकर चल रही राजनीति भारत में हिंदी की अवमानना और दुर्गति का कारण भी है। अमेरिका का समाज भी बहुभाषी है, किंतु दुनिया भर के देशों से आए हुए, अलग-अलग भाषा-बोली बोलने वाले लोगों को अपने में समेटे हुए इस देश में जब शिक्षण की बात आती है, तब यहाँ अंग्रेज़ी भाषा के स्तर पर कोई समझौता नहीं है। शिक्षण का माध्यम अमेरिकन इंगलिश है। स्पैनिश दूसरे नम्बर पर आती है, किंतु वह भी एक हद तक ही शिक्षण का माध्यम है। मैंने कुछ वर्षों तक अमेरिका के स्कूल में ए पी फ़ीजिक्स(Advanced Placement Physics) पढ़ाया। मेरी कक्षा में ऐसे स्पैनिश छात्र-छात्राएँ भी थे, जो अंग्रेज़ी बिल्कुल नहीं समझते थे। मुझे उनके लिए कमरे की दीवारों पर भौतिकी से संबंधित सभी मुख्य शब्दों का स्पैनिश अनुवाद उपलब्ध रखना था। यह मेरा चयन नहीं था, वरन् कानून है। अमेरिका में अंग्रेज़ी न जानने वाले बच्चों को स्कूल में प्रवेश के साथ ही चिह्नित कर लिया जाता है और उन्हें ELL(English Language Learner) की कक्षा में डाल दिया जाता है। इन छात्र-छात्राओं को अन्य विषयों के साथ-साथ अंग्रेज़ी भी सीखनी होती है और सालाना उनके अंग्रेज़ी ज्ञान की राज्य स्तर पर परीक्षा होती है। यह परीक्षा पढ़ने, लिखने के साथ अंग्रेज़ी बोलने के स्तर का भी निर्धारण करती है। स्कूली शिक्षा खत्म होने तक वे अंग्रेज़ी बोलने-लिखने-पढने लगते हैं। इस देश की भाषा और परिवेश से पूर्ण परिचित हो चुके होते हैं और अपने विकल्पों को समझकर अपनी चित्त-वृत्ति के अनुरूप अपनी रुचि का विषय या रोजगार चुन लेते हैं। इस पूँजीवादी व्यवस्था में, उच्च शिक्षा का अवसर यूँ भी कम ही विद्यार्थियों को मिलता है।

अमेरिका में कतिपय भाषाओं का पठन-पाठन अंग्रेज़ी के माध्यम से होता है। 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर भारत की आज़ादी को मान्यता देने के साथ ही पेन्सिल्वेनिया यूनिवर्सिटी में हिंदी विभाग की स्थापना हो गई थी, जो आज भी है। अमेरिका में विभिन्न भाषाओं का अध्ययन एक आवश्यकता भी रही, जिसके कारण मात्र सामाजिक नहीं, वरन् इस देश की सामरिक सुरक्षा-व्यवस्था से जुड़े रहे। यह आवश्यकता समय के साथ बढ़ती गई और इसका चरम 2001 में 9/11की घटना के बाद देखने को मिला। अमेरिका में कई भाषाओं, जिनमें अरबी, चीनी, उर्दू और हिंदी प्रमुख थे, के शिक्षण की व्यवस्था के लिए सरकारी अनुदानों

से गम्भीर प्रयास आरम्भ हुए। अमेरिका सरकार की पहल पर योजनाएँ आरम्भ हुईं। विदेशी भाषा के शिक्षण के लिए ACTFL का STARTALK कोर्स आरम्भ हुआ, जो भाषा-शिक्षण में एकरूपता लाने और उसके मानकीकरण का पहला प्रयास था। यह प्रशिक्षण का कार्यक्रम अभी भी चल रहा है। अन्य कई भाषाओं के साथ इसके अंतर्गत शिक्षकों को हिंदी को एक विदेशी भाषा की तरह पढ़ाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके प्रयासों एवं अनुदान से कुछ स्कूलों में टीचरों की नियुक्ति हुई एवं हिंदी का शिक्षण आरम्भ हुआ। विश्वविद्यालयों में भी हिंदी-उर्दू फ़्लैगशिप प्रोग्राम शुरू हुए। लेकिन बीतते समय के साथ स्कूलों में हिंदी-शिक्षण का कार्यक्रम कुछ ही स्कूलों तक सिमटकर रह गया और विश्वविद्यालयों में भी जो हिंदी-उर्दू फ़्लैगशिप प्रोग्राम आरम्भ हुए, उनमें से भी कुछ बंद हो गए। ह्स्टन के बेलायर हाई स्कूल में हिंदी का शिक्षण 1989 से यदि अबाधित चल रहा है, तो उसकी वजह आर्य समाज है। वरना अब भी टेक्सास राज्य के मात्र दो सरकारी हाई स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है। न्यूयॉर्क में भी कुछ सरकारी स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है। नवीनतम जानकारी के अनुसार कैलिफ़ोर्निया के दो सरकारी स्कूलों में हिंदी भाषा की पढ़ाई शुरू हुई है। उन क्षेत्रों में भारतीयों की आबादी बहुत अधिक है और वे लंबे समय से स्कूल प्रशासन से यह माँग कर रहे थे। किंतु आम तौर पर अमेरिका के सरकारी स्कूलों में हिंदी को एक विषय के रूप में नहीं पढ़ाया जाता। अमेरिकी भारतीय समुदाय अपने बच्चों को स्वभाषा की शिक्षा दिलाने के लिए मन्दिरों में चल रहे हिंदी-शिक्षण का विकल्प चुनता है। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर हिंदू मंदिर अब भी बड़े पैमाने पर भाषा शिक्षण के केंद्र बने हुए हैं। यह स्थिति कमोबेश पूरे अमेरिका में है। आर्य समाज का दयानन्द आर्य विद्यालय हमेशा से संस्कृति, सनातन धर्म और हिंदी, संस्कृत के शिक्षण में अग्रणी रहा है और इसकी कई शाखाएँ पूरे अमेरिका में है। विश्व हिंदी न्यास, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, हिंदी यू. एस. ए., विश्व हिंदी ज्योति, आदि अमेरिकी भारतीय संस्थाओं ने बच्चों को हिंदी सिखाने का अपना सार्थक प्रयास जारी रखा है। भारत विद्या भवन, न्यूयॉर्क में भी भारतीय भाषाओं के शिक्षण की कक्षाएँ हैं। कई हिंदी लेखक-लेखिकाएँ भी अपने-अपने स्कूल चला रहे हैं और व्यक्तिगत स्तर पर हिंदी के अध्यापन में रत हैं। कहना न होगा कि ये सभी अपने-अपने तरीके से हिंदी का शिक्षण कर रहे हैं और उनमें पाठयक्रम या शिक्षण संबंधी एकरूपता शायद ही देखने को मिले। यह स्थिति एक ओर तो उत्साहवर्धक लगती है कि अमेरिकी भारतीय अपनी अगली पीढ़ी को अपनी भाषा-संस्कृति से जोड़े रखने के आग्रही हैं, किंतु उसका विस्तार साहित्य तक नहीं है।

अमेरिका की शिक्षा-व्यवस्था और भारत की शिक्षा-व्यवस्था में दूसरा मूलभूत अंतर स्टूडेंट ओरिएन्टेड क्लास रूम है। शिक्षक को गुरू मानने और उसके आदेशों, अनुशासन का पालन करने की भारतीय परम्परा की जिस तरह यहाँ धज्जियाँ उड़ती हैं, उसे वही जानता है, जिसने यहाँ के स्कूलों में अध्यापन किया हो या कॉलिजों में पढ़ाया हो। भारत के मेरे पाठक इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इस विषय पर कलम उठाने वाली भी अमेरिकी हिंदी रचनाकारों में शायद मैं ही हूँ। इस परिवेश की पहली कथा, पाठकों ने कई वर्ष पहले मेरी "कॉलेज" कहानी में पढ़ी थी। इसके बाद कई अन्य कहानियाँ भी मैंने लिखीं, जो टुकड़ों में स्कूल के परिवेश का चित्रण करती थीं। ये कहानियाँ मेरे कहानी संकलनों का हिस्सा बन चुकी हैं। तब भी एक उपन्यास लिखने की आवश्यकता का अनुभव हुआ, जो यहाँ के पूरे शैक्षणिक परिवेश से पहचान कराए। उसी का परिणाम उपन्यास "वह दिन आएगा ज़रूर" है जो अमेरिका के स्कूलों पर आधारित है।

विश्वविद्यालयों में स्थिति भिन्न है। विश्वविद्यालयों में भी हिंदी को एक भाषा के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल करवाना कई औपचारिकताओं की माँग करता है। अमेरिका में हिंदी भाषी जनता की कुल आबादी आठ लाख पैंसठ हज़ार है, जोकि अमेरिका की कुल आबादी का 0.25 प्रतिशत है। अमेरिका में, 1749 विश्वविद्यालय हैं, जिसमें यदि डिग्री कॉलिजों को भी जोड़ दिया जाए, तो यह संख्या 4000 से भी अधिक है। इनमें से 70 विश्वविद्यालयों में हिंदी का शिक्षण हो रहा है, जिनमें कुछ कॉलिज भी हैं। हिंदी भाषियों की संख्या के अनुपात से यह संख्या अच्छी कही जा सकती है।

किंतु यहाँ यह जानना आवश्यक है, कि किसी विदेशी भाषा का शिक्षण किसी संस्थान में विद्यार्थियों की माँग पर होता है, इसलिए हिंदी विभाग खुलते और बंद होते रहते हैं। उदाहरण के लिए राइस विश्वविद्यालय, ह्स्टन में हिंदी का ग्रेजुएट कोर्स चल रहा था, किंतु अब हिंदी विभाग नहीं है। दूसरा तरीका अनुदान है। आप पर्याप्त अनुदान देकर किसी विषय की पढ़ाई किसी विश्वविद्यालय में आरम्भ करवा सकते हैं। व्यक्तिगत या संस्थाओं के प्रयासों से भी कई विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग खुले हैं और हिंदी पढ़ाई जा रही है। विश्व हिंदी न्यास, के अनुदान से रट्गर्स विश्वविद्यालय एवं ओस्वेगो विश्वविद्यालय में हिंदी का पाठ्यक्रम आरम्भ हुआ। ह्स्टन विश्वविद्यालय में हिंदी-शिक्षण आरम्भ करवाने में स्थानीय लोगों की भूमिका रही, किंतु वहाँ भी छात्र-छात्राओं की भूमिका सर्वोपरि है।

आरंभ में अलग-अलग विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण कर रहे प्रोफ़ेसरों का यह दायित्व भी रहा कि वे हिंदी का पाठयक्रम तैयार करें। कभी उषा प्रियम्वदा ने विस्कान्सिन विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा-शिक्षण का पाठ्यक्रम तैयार किया था, क्योंकि कहीं कोई ऐसा पाठयक्रम था ही नहीं। वर्तमान में प्रो. उषा जैन, बर्कले विश्वविद्यालय, द्वारा लिखित Introduction to Hindi Grammar (1995), intermediate Hindi Reader (1999) और ऐसी ही कई किताबें हैं, जो हिंदी सीखने के लिए उपयोगी हैं और जिनका उपयोग अन्य विश्वविद्यालयों में भी हिंदी पढ़ाने के लिए होता है। इसी तरह यूनिवर्सिटी ऑफ़ टेक्सास, आस्टिन में प्रोफ़ेसर रहे रूपर्ट स्नेल और प्रो. ओल्फ़न वान हर्मन की कई किताबें हैं, जो हिंदी सीखने के लिए उपयोगी हैं। ये सभी किताबें आरम्भिक स्तर की हिंदी शिक्षा के लिए उपयोगी हैं। स्नातक स्तर तक हिंदी की शिक्षा कुछ ही विश्वविद्यालयों में उपलब्ध है।

अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज़, जिसकी स्थापना 1961 में हुई थी, वस्तुत: एक गैर-सरकारी संस्था है। यह संस्थान बारह भारतीय भाषाओं-पालि/प्रकृत, हिंदी बंगला, मराठी, कन्नड़, तमिल, गुजराती, मलयालम, संस्कृत, पंजाबी आदि के अध्ययन के प्रोग्राम चलाता है। वर्तमान में इससे अमेरिका के 89 कॉलिज एवं यूनिवर्सिटियाँ जुड़ी हुई हैं। इसके बोर्ड ऑफ ट्रस्टी में अमेरिका के विभिन्न विश्वविद्यालयों में कार्यरत कई भारतवंशी प्रोफ़ेसर पदासीन हैं। इस संस्थान की भी अमेरिका में भारतीय भाषाओं के शिक्षण को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

एक अन्य समस्या पाठ्यक्रम के मानकीकरण को लेकर है। किसी मानक पाठ्यक्रम के अभाव में विश्व विद्यालयों में भी शिक्षण में एकरूपता का अभाव है। यदि आप हिंदी भाषा और साहित्य में शोध कर चुके हैं और अमेरिका में हिंदी पढ़ाते हैं, तो आपके शिक्षण का तरीका उनसे बिल्कुल भिन्न होगा जिन्होंने हिंदी को एक विषय के रूप में स्नात्कोत्तर तक नहीं पढ़ा और अमेरिका में हिंदी पढ़ाते हैं। हिंदी गानों के माध्यम से हिंदी-शिक्षण एक लोकप्रिय विधा है। यूँ भी यहाँ के मानदंड अलग हैं और अमेरिका में हिंदी भाषा के शिक्षण की योग्यता प्राप्त करने के लिए आपके पास हिंदी में पी. एच. डी. या मास्टर्स की डिग्री होने की आवश्यकता नहीं है।

भाषा-शिक्षण से जुड़ी एक अन्य समस्या यह भी है कि हिंदी भाषी भारतीय एवं अहिंदी भाषी भारतीयों के अतिरिक्त एक उल्लेखनीय संख्या उन छात्र-छात्राओं की है, जो हिंदी को एक विदेशी भाषा के रूप में सीखते हैं। उनके लिए भी हिंदी बोलना और भाषा का सामान्य ज्ञान अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे यह ज्ञान विश्वविद्यालय में ग्रहण करते हैं, जिसे वस्तुत: स्कूल में दिया जाना चाहिए।

अमेरिकी शैक्षणिक परिवेश में हिंदी भाषा के शिक्षण से जुड़ी हुई इन कतिपय समस्याओं का हल पाना भी एक बड़ी चुनौती है। साहित्य का संस्कार उसके बाद आता है। जिस तरह हिंदी भाषा के शिक्षण का दायित्व हमारी स्वयंसेवी संस्थाओं ने ले रखा है और हिंदी के शिक्षण के साथ-साथ, विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों एवं हिंदी की पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रयासरत हैं, शायद कल को साहित्य का संस्कार देने का कार्य भी वे ही आरम्भ करेंगी। यहाँ के स्कूलों और अन्य संस्थाओं से जुड़ी गतिविधियों के उदाहरण उनके पास हैं। अभिभावकों को भी इस दिशा में रुचि लेनी होगी, यदि वे अपने बच्चों को अमेरिका के विखंडित समाज की अनुकृति नहीं बनाना चाहते।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. http://www.moneycontrol.com/news/trends/current-affairs/1-of-us-population-indian-americans-pay-6-of-taxes-congressman-9857601.html/amp
2. लाल पसीना (उपन्यास) अभिमन्यु अनत, मॉरीशस
3. सूरीनाम देश और हिंदी-सूर्यप्रसाद बीरे, भारतकोश http://m./bharatdiscovery.org/ind
4. www.actfl.org
5. http://littlefreelibrary.org
6. http://tlustudentmedia.com/2022/02/22/take-a-book-share-a-book-visiting-a-little-free-library-built-by-tlu-students
7. उस स्त्री का नाम, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली (अमेज़न, इन्डिया पर उपलब्ध)
8. तुम इतना क्यों रोईं रूपाली, 2014, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली (अमेज़न, इन्डिया पर उपलब्ध)
9. वह दिन आएगा ज़रूर, (जनवरी 2014) विकल्प प्रकाशन, दिल्ली। (अमेज़न इन्डिया पर उपलब्ध)
10. http://en.m.wikipedia.org/wiki/Indian_Americans
11. "हिंदी से प्यार है" whatsapp ग्रुप पर 2023 में दी गई जानकारी
12. https://www.indiastudies.org/about-aiis/organization-administration/
13. Learn Hindi and Hindi Film Songs: Anjana Sandhir, Parshwa Publication, second edition 2004, Kolhapur, 176 pages (अमेज़न पर उपलब्ध)

ila_prasad1@yahoo.com

उच्च शिक्षा में हिंदी शिक्षण

डॉ. साएमा बानो
उत्तर प्रदेश, भारत

भाषा मानव आत्मा की चेतना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह अनादिकाल से निरंतर चली आ रही है। मानव-जीवन की विकास-प्रक्रिया की साक्षी होकर, संसार के अन्य प्राणियों से उसकी श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए, एक ओर उसके अस्तित्व की पहचान है, तो दूसरी ओर शक्ति, प्रेरणा और महत्तम उपलब्धि है। वास्तव में, भाषा और चिंतन का बहुत गहरा रिश्ता है। दोनों एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं। "अतः यह कहा जा सकता है कि भाषा और चिंतन वस्तुतः एक ही प्रकार के मानसिक विकास के दो पहलू हैं। भाषा के द्वारा सामान्यतः चिंतन में स्पष्टता और चुस्ती आती है।"

"मनुष्य विश्व के क्रियाकलापों को आत्मसात कर अपनी चिंतन-शक्ति से जीवन के जिन रचनात्मक औदात्य को समाज के लिए मानक रूप में प्रस्तुत करता है, वे ही धीरे-धीरे संकलित होकर उसकी संस्कृति का सृजन करते हैं।" विविधता में एकता की पहचान वाली भारत की विराट सांस्कृतिक धरोहर की छवि इस बहुभाषिक राष्ट्र की विविध भाषाओं में व्याप्त, अद्‌त एकरूपता में झलकती है। इस एकरूपता का स्वरूप इस देश की राजभाषा हिंदी में साफ़ देखा जा सकता है। संविधान द्वारा राजभाषा के रूप में भारत की सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक और सांस्कृतिक छवि को आधार प्रदान किये जाने के बाद बड़ा प्रश्न हिंदी भाषा के विस्तार और विकास का रहा। उच्च शिक्षा में हिंदी को शामिल कर हिंदी प्रसार के प्रयासों को दिशा देने में महत्त्वपूर्ण पहल की गई।

जहाँ स्कूल स्तर की शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों को संसार का परिचय दिया जाता है और मातृभाषा के विकास का अवसर प्रदान करने के साथ उसे अन्य भाषाओं का भी ज्ञान दिया जाता है, वहीं उच्च शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को जीवन में किसी विशेष क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रवृत्त करना होता है। आजीविका का साधन और विशेषज्ञता प्रदान करने के लिए उच्च शिक्षा का महत्त्व है। उच्च शिक्षा में अपनी चयनित भाषा के साथ अन्य भाषा में भी शिक्षा का अवसर होता है। यह शिक्षा विशेष क्षेत्र में सीखने के प्रयासों पर केन्द्रित है। उच्च शिक्षा वस्तुतः औपचारिक शिक्षा का वैकल्पिक अंतिम चरण है, जो विभिन्न विषयों में, विभिन्न प्रकार की औपचारिक डिग्रियाँ प्रदान करती है। शिक्षा के इस अंतिम चरण में भाषा-अधिगम, भाषा-दक्षता और भाषा-चिंतन-अध्ययन का खास महत्त्व है। अतः हिंदी भाषा को बहुआयामी स्वरूप और विस्तार देने के लिए उसे उच्च शिक्षा के संपूर्ण मानकों के साथ जोड़कर ही सशक्त रूप दिया जा सकता है। इस दृष्टि से हरदेव बाहरी का यह वक्तव्य उचित है - "साहित्य की उपयोगिता तो सीमित ही होगी, किन्तु भाषा तो सर्वत्र व्याप्त है। व्यापार-वाणिज्य, कार्यालय, न्यायालय, उपयोगी कला अथवा ललित कला, ज्ञान-विज्ञान सर्वत्र भाषा चाहिए और भाषा भी सक्षम तथा प्रयोजन की पूर्ति के लिए सशक्त होनी चाहिए।"

भारतीय उच्च शिक्षा में हिंदी अध्ययन-अध्यापन के प्रमुख स्तर-

* स्नातक पाठ्यक्रम में हिंदी विषय
* स्नातक पाठ्यक्रम में हिंदी भाषा
* स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में हिंदी विषय
* स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में अनुवाद विषय
* स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में प्रयोजनमूलक हिंदी
* सर्टिफिकेट या डिप्लोमा कोर्स
* शोध में हिंदी

स्नातक पाठ्यक्रम में हिंदी विषय - भारत के विभिन्न महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर पर एक विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन कराया जाता है। इस पाठ्यक्रम में हिंदी भाषा और साहित्य दोनों शामिल होते हैं। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य ही यह होता है कि स्नातक स्तर पर छात्र को हिंदी का व्यवस्थित ज्ञान मिल सके, जिसका प्रयोग वह आगे प्रतियोगी परीक्षाओं से लेकर, भाषा-विशेषज्ञता और साहित्य अध्ययन-विश्लेषण के साथ आजीविका में सहायता के लिए कर सके। किन्तु स्थिति कठिन तब होती है, जब विद्यार्थी हिंदी विषय का चयन विशेषज्ञता, अध्ययन या ज्ञान आदि के लिए नहीं, बल्कि रटने वाला विषय, सरल विषय, तर्क और विश्लेषणविहीन विषय, काम चलाने वाले विषय के रूप में करते हैं। कुछ विद्यार्थी तो विश्वविद्यालयी सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए हिंदी विषय का चयन करते हैं।

स्नातक पाठ्यक्रम में हिंदी भाषा - स्नातक स्तर पर अनिवार्य या वैकल्पिक विषय के रूप में किसी एक भाषा का

अध्ययन कराया जाता है। इसमें हिंदी व्याकरण या साहित्य से कुछ अंश लेकर पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। प्रायः विश्वविद्यालय के किसी भी विषय के विद्यार्थी इसका चयन कर सकते हैं। विज्ञान, गणित, वाणिज्य आदि विषयों के विद्यार्थी आसान विषय समझकर बड़ी संख्या में हिंदी की कक्षाओं में पंजीकृत होते हैं। यहाँ भी औपचारिकताओं का निर्वाह अधिक होता है। इन कक्षाओं में कई बार विद्यार्थियों की संख्या इतनी अधिक होती है कि पठन-पाठन और मूल्यांकन एक समस्या बन जाती है और अध्यापक केवल खानापूर्ति भर करता है। दूसरी ओर विज्ञान, प्रौद्योगिकी और गणित आदि विषयों के छात्र हिंदी के प्रति विशेष रुचि और गंभीरता न लेकर केवल कक्षा में उत्तीर्ण होने तक सीमित रह जाते हैं।

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में हिंदी विषय - स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में हिंदी विषय उच्च शिक्षा में हिंदी शिक्षण की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। इस पाठ्यक्रम में हिंदी का सम्पूर्णता से ज्ञान देकर छात्र को विशेषज्ञता प्रदान की जाती है। हिंदी भाषा को सुनना, समझना, बोलना, लिखना और विश्लेषण करना तथा हिंदी साहित्य का ज्ञान पाना और उसका विश्लेषण करना सभी में विद्यार्थी को दक्ष बनाना इसका उद्देश्य होता है। छात्रों में तर्कात्मक क्षमता का विकास कर उनमें शोध की अभिवृत्ति विकसित करना इस पाठ्यक्रम का उद्देश है।

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में अनुवाद - हिंदी से दूसरी भाषाओं या अंग्रेज़ी में अनुवाद में विशेषज्ञता देने के उद्देश्य से यह पाठ्यक्रम होता है। भारत की राजभाषा नीति के तहत लगभग सभी सरकारी कार्यालयों और संस्थाओं में अनुवादक रखे जाते हैं। विदेशी दूतावासों आदि में भी अनुवादक का महत्त्व है। इसलिए भी रोज़गार के अवसर के चलते इस विषय के प्रति छात्रों का रुझान बढ़ा है।

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में प्रयोजनमूलक हिंदी - हिंदी पत्रकारिता और प्रयोजनमूलक हिंदी में दक्षता देने के उद्देश्य से इस तरह के पाठ्यक्रम तैयार किये जाते हैं। अनेक स्थानों पर हिंदी पत्रकारिता में स्नातकोत्तर उपाधि अलग से भी दी जाती है। प्रयोजनमूलक हिंदी में हिंदी को रोज़गारपरक बनाने का प्रयास होता है।

सर्टिफ़िकेट या डिप्लोमा कोर्स - हिंदी भाषा में इस प्रकार की उपाधि प्रायः अहिंदी भाषियों को हिंदी भाषा का ज्ञान देकर प्रदान की जाती है। इसमें प्रायः विदेशी छात्र भी शामिल होते हैं। अहिंदी भाषी विद्यार्थी हिंदी के अध्ययन के लिए सर्टिफ़िकेट या डिप्लोमा कोर्स करते हैं। इसमें हिंदी भाषा शिक्षण का विशेष महत्त्व होता है।

शोध में हिंदी - हिंदी में शोध कराकर विश्वविद्यालय पी.एच-डी की उपाधि प्रदान करते हैं। यह उच्च शिक्षा का उच्चतर स्तर है, जिसका उद्देश्य हिंदी की विशेषज्ञता प्रदान कर दक्ष अध्यापक, भाषा मर्मज्ञ, आलोचक, समीक्षक तथा साहित्य-विश्लेषक तैयार करना होता है।

उपर्युक्त विभिन्न स्तरों पर हिंदी भाषा के अधिगम के उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसा कि आज की शिक्षा का केंद्र शिक्षार्थी हो चुका है, तो यह बहुत आवश्यक है कि उच्च शिक्षा में हिंदी शिक्षण की सही स्थिति का मूल्यांकन विद्यार्थी के सतत विकास की दृष्टि से किया जाए। "भाषा प्रयोक्ता (शिक्षार्थी) की भाषा संबंधी अपनी आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं और तदनुरूप भाषा शिक्षण के लक्ष्य भी भिन्न-भिन्न होंगे। यही लक्ष्य, भाषा शिक्षण के पूरे तंत्र को अपने ढंग से नियोजित करता है।"

उच्च शिक्षा में हिंदी शिक्षण की समस्याएँ -

उच्च शिक्षा में हिंदी विषय के शिक्षण के कुछ नकारात्मक और अवरोधी तत्त्व हैं, जो हिंदी के विकास और प्रसार में बाधक बने हुए हैं और इस भाषा को सशक्त और सामर्थ्यपूर्ण नहीं बनने दे रहे हैं।

योग्य विद्यार्थियों का अभाव -

भाषा शिक्षण का केंद्र पाठ्यसामग्री या कक्षा-संचालक के बजाय आज शिक्षार्थी हो गया है। ऐसे में भाषिक क्षमता के साथ सम्प्रेषणपरक दक्षता आवश्यक हो गई है। स्कूली शिक्षा में हिंदी विषय के प्रति विद्यार्थियों की उपेक्षा उच्च शिक्षा में भी उसी रूप में बनी रहती है, बल्कि स्थिति तब और भी चिंताजनक होती है, जब विद्यार्थी को हिंदी का आरंभिक ज्ञान भी नहीं होता और न ही वह ज्ञान अर्जित ही करना चाहता है तथा उसके सामने उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम प्रस्तुत कर दिया जाता है। विषय की सामान्य जानकारी भी न रखने वाले छात्र से विषय पर चिंतन, शोध, विश्लेषण की अपेक्षा रखना ही व्यर्थ होता है। हिंदी का अध्ययन-अध्यापन प्रायः मात्र औपचारिकता का निर्वाह माना जाता है और उसमें किसी भी प्रकार से उत्तीर्ण होना विद्यार्थी का उद्देश्य होता है।

योग्य अध्यापकों का अभाव -

जिस प्रकार एक मूर्तिकार, रचनाकार और चित्रकार एक ही विषय को अपने व्यक्तित्व की छाप और मौलिकता से नया रूपाकार देकर सबको आकर्षित करता है, उसी प्रकार एक अध्यापक सामान्य विषय को भी अपनी प्रतिभा और मौलिकता से इतना प्रभावी बना देता है कि भाषा अधिगम और भाषा शिक्षण सहज और रुचिपूर्ण हो जाते हैं। हिंदी विषय में योग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों का उच्च शिक्षा में प्रायः अभाव है। रटे-रटाए नोट्स और घिसे-पिटे अध्ययन से ये अध्यापक विद्यार्थियों में भी हिंदी के प्रति न तो विशेष रुचि उत्पन्न कर पाते हैं और न ही छात्रों के ज्ञान में नवीनीकरण और संवर्धन ला पाते हैं। अपनी रूढ़िवादी और पुरातनपंथी मानसिकता से वे छात्रों को विषय का औपचारिक ज्ञान देते हैं। ऐसी ही दृष्टि से उनका मूल्यांकन भी करते हैं, जिससे नए विचारों से उत्पन्न तार्किक दृष्टि तथा किसी नए प्रकार के चिंतन को स्थान ही नहीं मिलता। ये अध्यापक प्रायः भाषा और साहित्य के शिक्षण की नई तकनीक से भी अनभिज्ञ होते हैं। किसी सृजनात्मकता को प्रेरित कर पाने की क्षमता उनमें नहीं होती।

छात्रों द्वारा पुस्तकों से दूर होना -

आज मोबाइल, टैब और कंप्यूटर के अत्यधिक विकास और प्रयोग के कारण सबसे ज्यादा नुकसान पुस्तकों को हुआ है। सोशल मीडिया पर अत्यधिक सक्रियता ने छात्रों को पुस्तकों के अध्ययन से दूर कर दिया है। संदेह नहीं कि तकनीकी विकास ने अध्ययन-अध्यापन में अनुपलब्ध सामग्री सहज रूप से सब तक पहुँचाई है, लेकिन हिंदी की स्थिति इस दृष्टि से बहुत अच्छी नहीं है। यहाँ सोशल मीडिया या ई-कंटेंट के रूप में बहुत उच्च स्तरीय ज्ञान सामग्री की अपेक्षा नहीं की जा सकती। विद्यार्थी पाठ्य-सामग्री पुस्तकों में खोजने के बजाए गूगल ज्ञान पर निर्भर होकर कॉपी-पेस्ट संस्कृति का हिस्सा बन जाते हैं और अध्ययन, मनन, चिंतन और विश्लेषण से कोसों दूर भटकते हैं। बिना किसी प्रामाणिक पुस्तक के अध्ययन के हिंदी में डिग्रियाँ और उपाधियाँ प्राप्त कर लेते हैं। पुस्तकालयों में जाने और अच्छी पुस्तकों की तलाश करने के बजाय वेबसाईट के अप्रामाणिक और घिसे-पिटे उल्लेखों को अपने अध्ययन का आधार बना लेते हैं।

बहुत सारे विषयों का बोझ तथा अति विस्तृत पाठ्यक्रम -

प्रायः गणित, विज्ञान और वाणिज्य आदि वर्ग के विद्यार्थी हिंदी भाषा का चयन ही इसलिए करते हैं कि कठिन-श्रमसाध्य विषयों से हिंदी में थोड़ी मुक्ति मिलेगी। यानि बहुत सारे कठिन विषयों के बीच एक सरल विषय चुनकर किसी भी प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाएँगे। उच्च शिक्षा के मानकों को तय करते समय हिंदी को एक बोझ बनाकर प्रस्तुत किया जाना उचित नहीं है। साथ ही, स्वयं हिंदी का भी पाठ्यक्रम अत्यधिक विस्तृत नहीं होना चाहिए। छात्रों की रुचि के अनुरूप विशेषज्ञता दी जानी चाहिए। उबाऊ और बोझिल नहीं होना चाहिए। भाषा और साहित्य के पाठ्यक्रम-निर्माण में मनोवैज्ञानिकों की सहायता ली जानी चाहिए। छात्रों की क्षमता, रुचि और सामर्थ्य का ध्यान रखा जाना चाहिए।

नवीनीकरण का अभाव -

उच्च शिक्षा के स्तर पर हिंदी शिक्षण में ज्ञान के नवीनीकरण का प्रायः अभाव होता है। नए विषय, नई सामग्री, नई संवेदना और व्याकरण में नवीनता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। हिंदी को आधुनिक समय और परिवेश से नहीं जोड़ा जाता। यही कारण है कि हिंदी विषय के पाठ्यक्रम में गतिशीलता और निरंतरता के बजाय एक प्रकार की जड़ता अधिक दिखाई देने लगती है।

व्यावहारिकता की कमी -

हिंदी विषय को व्यावहारिक रूप कम ही विश्वविद्यालयों में प्राप्त होता है। जीवन और समाज के साथ इसके जुड़ाव को न तो विद्यार्थी समझ पाते हैं और न ही अध्यापक। उच्च शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य ज्ञान को व्यावहारिक रूप देना है, किन्तु हिंदी भाषा और साहित्य को लेकर यह व्यावहारिकता कहीं गायब हो जाती हैं और हिंदी सिर्फ़ सैद्धांतिक आधार पर निर्भर हो जाती है।

रोज़गार के अवसर की कमी -

उच्च शिक्षा का एक उद्देश्य ज्ञान को रोज़गार और आजीविका के साथ जोड़ना है। हिंदी विषय के अत्यधिक सैद्धांतिक बनाए जाने के कारण इसमें रोज़गार के अवसर अपेक्षाकृत कम हैं। छात्र विषय चयन के समय प्रायः विज्ञान, तकनीकी, गणित तथा दूसरे रोज़गारपरक विषयों का चयन करते हैं। इनमें हिंदी के लिए कोई स्थान नहीं होता। यदि भाषा चयन की बात भी की जाए, तो उनका रुझान विश्व भाषा अंग्रेज़ी की तरफ़ ज्यादा होता है।

प्रतिभा और गुणवत्ता को उचित पहचान न मिलना -

दक्ष और प्रतिभाशाली विद्यार्थी और अध्यापक दोनों किसी विशेष पुरस्कार या सम्मान से हिंदी के क्षेत्र में वंचित रह जाते हैं और चाटुकार, प्रतिभाविहीन, दिखावटी छात्र और अध्यापक आगे बढ़ जाते हैं। ऐसा नहीं है कि अन्य विषयों में ऐसा नहीं होता, लेकिन हिंदी की दशा थोड़ी अधिक चिंतनीय है।

पाठ्यक्रम निर्माण में राजनीतिक हस्तक्षेप -

धर्म, जाति, लिंग और सम्प्रदाय के भारत में वर्चस्व के कारण हिंदी के पाठ्यक्रम पर राजनीतिक हस्तक्षेप अधिक होता है। हिंदी भाषा और साहित्य में इन प्रभावों की तलाश से राजनीतिक दल अपनी रोटियाँ सेंकते हैं। अतः इसके पाठ्यक्रम निर्माण में प्रायः राजनीतिक दखल से विद्यार्थियों की दृष्टि से विकासोन्मुख शिक्षा के बजाय राजनीतिक प्रभाव वाली शिक्षा दी जाती है।

नयी तकनीक का अभाव -

हिंदी भाषा शिक्षण में भाषा सीखने-सिखाने के नए उपकरणों तथा नई तकनीक और पद्धतियों का प्रायः आभाव रहता है। जिन महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को नए तकनीकी उपकरण प्रदान किये भी गए हैं, उनका प्रयोग करने वाले प्रशिक्षित अध्यापक तथा कर्मचारी न होने से वे धूल चाट रहे हैं। भाषा शिक्षण में भाषा प्रयोगशाला का विशेष महत्त्व होता है। हिंदी में भाषा प्रयोगशाला की दशा बहुत अच्छी नहीं है। अधिकांशतः यह है ही नहीं और यदि हैं भी, तो दयनीय दशा में। यानि छात्र-अध्यापक उसका प्रयोग नहीं जानते। प्रोजेक्टर, रिकॉर्ड, स्मार्टफ़ोन, टैब, लैपटॉप आदि के निरंतर प्रयोग से हिंदी शिक्षण अपेक्षाकृत कुछ पीछे है।

शोधपरक तर्कात्मक दृष्टि का अभाव -

हिंदी में शोध की दशा वर्तमान में सबसे खराब है। पी.एच-डी की उपाधि पाने और देने की ऐसी होड़ मची है कि हिंदी शोध की गुणवत्ता और उसके महत्त्व पर ध्यान दिया जाना ज़रूरी नहीं समझा जाता है। विषय-चयन से लेकर सामग्री-संकलन, अध्ययन-विश्लेषण तथा शोध के निष्कर्ष आदि सब औपचारिकता भर रह गए हैं। अनुवाद, पत्रकारिता और भाषा की अपेक्षा साहित्य में शोध की दशा अधिक शोचनीय है। शोध के मूल्यांकन के आधार भी प्रायः उपहार, सम्मान, चाटुकारिता पर केन्द्रित हो गए हैं। शोधार्थी तर्कात्मक, पारदर्शी, शोधपरक दृष्टि के अभाव में अपनी थीसिस किसी भी प्रकार पूर्ण कर लेता है और मूल्यांकन एक औपचारिकता भर रह जाता है। इसमें चिंतन, मनन, अध्ययन तथा विश्लेषण के बजाय वर्णन-विवरण तथा उल्लेख आदि मुख्य हो गए हैं। छात्र शोध पद्धतियों, तर्कात्मक, पारदर्शी तथा नवीन दृष्टिकोण से हिंदी विषय को कम ही देख पाते हैं। हिंदी में शोध की संख्या तो बढ़ती जा रही है, किन्तु उसकी गुणवत्ता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

अनुशासनहीनता -

हिंदी की स्थिति खराब होने का एक बड़ा कारण इसमें गहरी अनुशासनहीनता है। अध्यापक, छात्र, व्यवस्था, विश्वविद्यालयी तथा महाविद्यालयी प्रशासन सभी स्तरों पर गहरी अनुशासनहीनता है। छात्रों की कक्षा में उपस्थिति, अध्यापक का व्यक्तित्व, उसकी नियमितता आदि में लचीला रुख अपनाया जाता है। प्रोजेक्ट थीसिस, टेस्ट, साक्षात्कार, समूह अध्ययन, पुस्तकों की प्रमाणिकता आदि सभी स्तरों पर दिखने वाला लचीलापन हिंदी के विकास में घातक है।

विशेषज्ञों का अभाव -

हिंदी भाषा और साहित्य के पाठ्यक्रम के विशेष अंशों का अध्यापन, उनके विशेषज्ञों से कराने के बजाय सामान्य रूप से किसी भी अध्यापक को दे दिया जाता है। जैसे आलोचना के विशेषज्ञ से आलोचना, कविता के विशेषज्ञ से कविता, अनुवाद के विशेषज्ञ से अनुवाद तथा भाषा और व्याकरण के विशेषज्ञ से भाषा पढ़ाए जाने के बजाय किसी भी हिंदी अध्यापक को पाठ्यक्रम का कोई भी अंश दे दिया जाता है। विश्वविद्यालयों आदि में विषय विशेष पर व्याख्यान के लिए विशेषज्ञ बुलाए ज़रूर जाते हैं पर प्रायः उनकी विशेषज्ञता का मूल्यांकन सही तरीके से न करके व्यक्तिगत परिचय, मानदेय, उपहार आदि तत्त्व व्याख्यान के आधार हो जाते हैं।

अंतर्भाषिक और अंतरअनुशासनिक अध्ययन और शोध की कमी -

हिंदी को दूसरी भाषाओं और दूसरे अनुशासनों से जोड़कर पठन-पाठन की परंपरा अभी बहुत सीमित संस्थानों में है साथ ही रूढ़िवादी और पुरातनपंथी मानसिकता वाले अध्यापक ऐसा करने में न केवल अक्षम हैं, बल्कि जो शोधार्थी और अध्यापक हिंदी को अन्य भाषाओं और विषयों के साथ जोड़कर अध्ययन करना चाहते हैं, उनके मार्ग में भी बाधा उत्पन्न करते हैं।

हिंदी के प्रति उपेक्षित दृष्टि -

हिंदी भारत की राजभाषा तथा सांस्कृतिक अस्मिता की प्रतीक ज़रूर है, किन्तु इसके प्रति एक उपेक्षित दृष्टि प्रायः यहाँ के लोगों में मौजूद है। उच्च शिक्षा में हिंदी विषय के चयन तथा अध्ययन-अध्यापन में यह उपेक्षित दृष्टि साफ़ देखी जा सकती है।

मूल्यांकन का महत्त्व -

मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो शिक्षण उद्देश्यों से लेकर उसके परिणामों को प्रभावित करती है। मूल्यांकन से शिक्षण को दिशा मिलती है तथा छात्रों के स्तर और ग्रहणशीलता का सही आंकलन हो पाता है। हिंदी में सही और सटीक मूल्यांकन कम ही किया जाता है। छात्रों की उत्तर-पुस्तिका को प्रायः सामान्य रूप से देखकर अंक दे दिए जाते हैं। आतंरिक मूल्यांकन आदि को भी औपचारिक रूप देकर छात्रों को आगे बढ़ा दिया जाता है। छात्र अपनी योग्यता या कमी को जान ही नहीं पाते।

संगोष्ठी और सम्मेलनों की दयनीय दशा -

हिंदी विषय से सम्बद्ध संगोष्ठियों और सम्मेलनों के आयोजनों में प्रायः औपचारिकता का निर्वाह अधिक होने लगा है। लंच, नाश्ता, उपहार, मानदेय आदि ही इनके आधार रह गए हैं। छात्रों में तर्कात्मक और ज्ञानात्मक प्रतिभा का विकास इनका उद्देश्य ही नहीं रह गया है।

वस्तुतः "हिंदी भाषा दैनिक कामकाज और सम्प्रेषण के अतिरिक्त जब तक शिक्षण, शोध और रोज़गार के क्षेत्र की भाषा नहीं बन जाती, तब तक वह उल्लेखनीय समृद्धि अर्जित नहीं कर पाएगी।" हिंदी की दशा को उच्च शिक्षा के स्तर पर बेहतर कर राष्ट्र के भविष्य को दिशा दी जा सकती है। यदि उच्च शिक्षा में व्यवस्थित और गुणात्मक शिक्षा दी गई, तो प्रतिभाशाली अध्यापक, विशेषज्ञ, शोधार्थी, साहित्यकार तथा प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए योग्य अभ्यर्थी बन सकेंगे, जिनके हाथों में भारत के भविष्य की तस्वीर होगी। हिंदी पढ़ाने वालों का ध्यान छात्रों में साहित्य के रसास्वादन पर तो होता है, किन्तु भाषा-कौशल तथा भाषा की समझ और उसके व्यावहारिक उपयोग से छात्र प्रायः अनभिज्ञ रह जाते हैं। हिंदी भाषा में दक्षता किस प्रकार विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास का आधार हो सकती है, इस तथ्य की समझ छात्रों में विकसित नहीं की जाती। व्याकरण की जटिलता, भाषा की अव्यावहारिकता तथा विशेषज्ञों के अभाव में हिंदी भाषा के अध्ययन में किसी खास गंभीरता और रोचकता की कल्पना नहीं की जा सकती। निश्चित रूप से उच्च शिक्षा में हिंदी शिक्षण एक चुनौती है, क्योंकि इसकी संभावनाओं के सारे द्वार भारत की सामाजिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति की देहरी पर खुलते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. रामप्रसाद पाण्डेय, सामान्य मनोविज्ञान 2012, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
2. अवधेश नारायण मिश्र का आलेख, जनपथ, मार्च 2011
3. हरदेव बाहरी, राजकाज में हिंदी, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013
4. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भाषा शिक्षण, वाणी प्रकाशन, 1992
5. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह का आलेख, विश्व हिंदी पत्रिका 2022

sayemabano52@gmail.com

विविध आयाम

1. गांधीगिरी में है गहन हिंदी प्रेम और गहन हिंदी चिंतन - सुरेश कुमार श्रीचन्दानी

2. 21वीं सदी की रोज़गारोन्मुखी हिंदी - प्रवीण कुमार सहगल

3. हिंदी का आज - अनिकेत गौतम

4. मानव-संसाधन प्रबंधन, सांगठनिक आत्मीयता एवं हिंदी - डॉ. साकेत सहाय

गांधीगिरी में है गहन हिंदी प्रेम और गहन हिंदी चिंतन

सुरेश कुमार श्रीचन्दानी
अजमेर, भारत

गांधीगिरी (गांधी-दर्शन) के साहित्य में हिंदी प्रेम यत्र-तत्र ध्वनित होता दिखलाई पड़ता है। डॉ. नगेन्द्र अपनी पुस्तक 'विचार और विश्लेषण' में लिखते हैं कि महात्मा गांधी उन चार मनीषियों में से एक हैं, जिन्होंने हमारी आधुनिक युगीन चेतना का निर्माण किया है। ये चार मनीषी हैं - डार्विन, फ़्रायड, मार्क्स और गांधी। डार्विन के विचार-समूह का केंद्र प्राकृतिक जगत है, फ़्रायड का मनोजगत है, मार्क्स का अर्थ जगत है और गांधी का आध्यात्मिक जगत है। महात्मा गांधी के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विचारों में धर्म और अध्यात्म की प्रधानता है। कहा जाता था कि महात्मा गांधी नेताओं में संत थे और संतों में नेता। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की प्रमुख भाषा हिंदी थी। अपने युग में महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता-संग्राम का नेतृत्व किया था। उनके भाषणों, वार्ताओं और लेखन में हिंदी की प्रधानता है। साथ ही, उन्होंने हिंदी की वकालत कई अकाट्य तर्कों से की है। यह प्रतीत होता है, मानो इससे किसी लोकतांत्रिक राष्ट्र की राष्ट्रभाषा की पृष्ठभूमि निर्मित हो रही हो। महात्मा गांधी के हिंदी प्रेम से ओत-प्रोत विचार भाषा विषयक समग्रता लिए हुए हैं। अंग्रेज़ी, हिंदी, हिंदुस्तानी, संस्कृत, उर्दू और अन्य भारतीय भाषाओं की स्थिति-प्रस्थिति के बारे में उनकी सोच स्पष्ट थी। वे किसी भाषा के विरोधी नहीं थे, लेकिन उन्होंने हिंदी की पैरवी जितनी शिद्दत से की है, उतनी शिद्दत से किसी अन्य भाषा की पैरवी नहीं की।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था कि 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।' उन्होंने भारत के इस गूंगेपन को दूर करने के लिए भारत के अधिकतर प्रांतों में बोली-समझी जाने वाली हिंदी को अनेक दृष्टिकोणों से उपयुक्त पाया और इसे राष्ट्रभाषा के रूप में मान लेने का आह्वान किया। 1909 में दक्षिण अफ़्रीका से भारत आगमन के 6 वर्ष पूर्व ही उन्होंने 'हिंद स्वराज' में लिखा कि सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट होनी चाहिए। हिंदुओं और मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, इसलिए हिंदुस्तानियों को इन दोनों लिपियों को जान लेना ज़रूरी है। उनका यह भी मानना था कि हिंदुस्तान जब एक राष्ट्र होगा, तब उसकी एक राष्ट्रीय लिपि भी होगी। उन्होंने गुजरात शिक्षा सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय संबोधन में राष्ट्रभाषा की व्याख्या की थी। उन्होंने 'हिन्द स्वराज' में लिखा है कि एक राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रभाषा चाहिए। उनका दृढ़ मत था कि राष्ट्रभाषा की जगह हिंदी ही ले सकती है, दूसरी भाषा नहीं। वे दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि हमारी राष्ट्रभाषा का एक ही नाम 'हिंदी' है और केवल 'हिंदी' ही हमारी राष्ट्रभाषा है। यह हमारे भविष्य के प्रेसीडेंट की भाषा है। जो तुलसी की भाषा है, वह हमारी भाषा है। मेरी हिंदुस्तानी हिंदी से आई है। सर्वसाधारण जिसे आसानी से समझ ले, वही राष्ट्रभाषा है। हिंदी के बिना हमारा स्वराज्य निरर्थक है। स्वराज्य का आरंभ स्वभाषा से है। 'हिन्द स्वराज' में ही वे लिखते हैं कि सारे हिंदुस्तान के लिए हिंदी ही होनी चाहिए। राष्ट्रभाषा का प्रयोग नहीं करना राष्ट्र की हत्या है। राष्ट्रभाषा बने या न बने हिंदी को मैं छोड़ नहीं सकता। हिंदी के प्रबल पक्षों से अभिभूत होते हुए उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' (1906) में लिखा है कि हिंदी मीठी, नम्र और ओजस्वी भाषा है। उनका यह भी मानना है कि हिंदी स्वयंसिद्ध उद्देश्य है।

महात्मा गांधी के - "अनुसार बहुत पहले ही मुझे इस बात का विश्वास हो गया था और मेरा विश्वास तब से अनुभव के द्वारा पुष्ट हुआ है कि यदि कोई भारतीय भाषा कभी भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है और यदि भारत को एक राष्ट्र बनाना है, तो किसी-न-किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना चाहिए, तो वह भाषा केवल हिंदी है और मैं हमेशा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ।" संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65) पृष्ठ क्रमांक 23

महात्मा गांधी ने यह भी कहा – "हमने बार-बार यह घोषणा की है कि हिंदुस्तानी हमारी राष्ट्रभाषा या प्रांतों के आपसी व्यवहार की सामान्य भाषा है या होनी है। यदि हमारी इस घोषणा के पीछे ईमानदारी है, तो हिंदुस्तानी के ज्ञान को अनिवार्य बनाने में बुराई कहाँ है? इंग्लैंड के स्कूलों में लैटिन की शिक्षा अनिवार्य थी और शायद है भी। उसके अभ्यास में और अंग्रेज़ी के अभ्यास में कोई अड़चन नहीं पड़ती। इसके विपरीत एक उदात भाषा के संपर्क से अंग्रेज़ी की श्रीवृद्धि ही हुई।" - संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 67) पृष्ठ क्रमांक 362

महात्मा गांधी के अनुसार – "हमें यह याद रखना चाहिए कि यह 'हिंदी' शब्द हिंदुओं का गढ़ा हुआ नहीं है। यह तो इस मुल्क में मुसलमानों के आने के बाद उस भाषा को बतलाने के लिए बनाया गया था, जिसे उत्तर हिंदुस्तान के हिंदू बोलते और पढ़ते-लिखते थे।

अनेक नामी-गिरामी मुसलमान लेखकों ने अपनी भाषा को 'हिंदी' या 'हिंदवी' कहा है और जबकि हिंदी के अंदर उन विभिन्न रूपों को शामिल कर लिया गया है, जिन्हें हिंदू और मुसलमान दोनों बोलते हैं और लिखते हैं, तब यह महज शब्दों का झगड़ा कैसे है?" संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65) पृष्ठ क्रमांक 36

अपने पुत्र देवदास गांधी को नडियाद से दिनांक 2 जुलाई 1918 को जारी पत्र में उन्होंने लिखा - "यदि तुम मद्रास प्रदेश को हिंदी दान कर सको और लोग उसे स्वीकार कर लें, तो एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हल हो जाता है। तुम हिंदी को सरल और दिलचस्प बनाओ। इसमें तुम्हारी चतुराई का उपयोग हो जाएगा। इसके लिए तुम्हें फुर्सत के समय हिंदी, गुजराती, अंग्रेज़ी और तमिल आदि भाषाओं के व्याकरण पढ़ लेने चाहिए। इससे तुम्हें ऐसा कोई सरल मार्ग मिल जाएगा, जिससे तुम लोगों को थोड़े प्रयत्न से अधिक सिखा सकोगे। धातुओं से बने शब्द खूब सिखा देने चाहिए, जिससे स्मरण शक्ति पर बोझ कम पड़ता है। वहाँ हिंदी भाषियों को तमिल पढ़ने के लिए भेजना है।"

'मेरे सपनों का भारत' में वे लिखते हैं – "अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज ही विदेशी भाषा के माध्यम से अपने लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षकों एवं प्रोफ़ेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त कर दूँ।" 15 अगस्त 1947 को बी.बी.सी लंदन पर उन्होंने कहा – "दुनिया वालों से कह दो, गांधी अंग्रेज़ी नहीं जानता।"

संस्कृत, हिंदी, हिंदुस्तानी, उर्दू और अन्य भारतीय भाषाओं के संबंधों के बारे में अपनी सोच को स्पष्ट कर उन्होंने कई वक्तव्य दिए। संस्कृत संबंधी यह विचार प्रमुख है – "संस्कृत के बिना हिंदू बालक की शिक्षा अधूरी है। संस्कृत सीखना मुसलमानों का कर्त्तव्य भी है। संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के शब्द अपनाने से हिंदी के गौरव में वृद्धि होगी। संस्कृत शब्दों के इस्तेमाल पर झगड़ा करके खुद हिंदी भाषा के खिलाफ़ विद्रोह क्यों करें ? सीधे-सादे प्रचलित शब्दों की जगह संस्कृत शब्द रखने या तद्भव शब्दों को संस्कृत के तत्सम शब्दों का रूप देने का कृत्रिम तरीका निस्संदेह निन्दनीय है। इससे तो भाषा की सहज मिठास ही चली जाती है। मगर राष्ट्र के विकास के साथ-साथ केवल संस्कृत जानने वाले हिंदू संस्कृत शब्दों का एक हद तक उपयोग करते हैं, तो उनका ऐसा करना अनिवार्य है। सिर्फ़ अरबी जानने वाले मुसलमान भी यही करते हैं।" - संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 62) पृष्ठ 440-41

हिंदी और हिंदुस्तानी के संबंध में गांधीजी ये धारणाएँ मुख्य हैं - "जहाँ तक दक्षिण भारत की भाषाओं का संबंध है, बहुत सारे संस्कृत शब्दों से युक्त हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जो दक्षिण भारत के लोग पसंद कर सकते हैं, क्योंकि कुछ संस्कृत शब्दों और संस्कृत ध्वनियों से तो पहले ही परिचित होते हैं। जब से दोनों हिंदी और हिंदुस्तानी या उर्दू घुलमिल जाएगी और जब दरअसल सारे हिंदुस्तान की एक भाषा बन जाएगी तथा प्रांतीय शब्दों के दाखिल होने से वह रोज़-रोज़ तरक्की करती जाएगी, तब हमारा शब्द-भण्डार अंग्रेज़ी शब्दकोश से भी अधिक समृद्ध बन जाएगा। मैं आशा करता हूँ कि अब आप समझ गए होंगे कि हिंदी हिंदुस्तानी के लिए मेरा इतना आग्रह क्यों है।" संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65) का पृष्ठ क्रमांक 36

"शिक्षा का माध्यम मातृभाषाएँ, राष्ट्रभाषा हों, अंग्रेज़ी नहीं हिंदी हो। हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू तीनों का अर्थ एक ही भाषा है। उर्दू को ही हिंदू-मुसलमान पहले हिंदी कहते थे। झगड़ा हिंदी उर्दू का नहीं, अपितु इन दोनों का अंग्रेज़ी से है। हिंदुस्तानी सीखना रचनात्मक कार्यक्रम की पहली सीढ़ी है। हिंदी और उर्दू की एकरूपता से ही हिंदुस्तानी बनेगी। हिंदी और उर्दू एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। हिंदुस्तानी, हिंदुस्तान की भाषा है। हिंदुस्तानी करोड़ों स्वाधीन मनुष्यों की भाषा है। हिंदुस्तानी के प्रचार से हिंदू-मुस्लिम एकता होती है। उर्दू वालों से भी अपनी मुहब्बत साबित करनी चाहिए। हिंदुस्तानी से भाषा का झगड़ा मिट जाएगा। माँ-बाप बच्चों को हिंदुस्तानी सिखाने की माँग करें। मेरी हिंदुस्तानी हिंदी से ही आई है। हिंदुस्तान में सबकी बोली एक ही हो सकती है। हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू एक ही भाषा के मुख्तलिफ़ नाम हैं। हमारा मतलब आज एक नई भाषा बनाने का नहीं है, अपितु जिस भाषा को हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू कहते हैं, उसे अंतर्प्रान्तीय भाषा बनाने का हमारा उद्देश्य है।|" संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 62) पृष्ठ क्रमांक 441

"हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी में कोई भेद नहीं है। दोनों का व्याकरण एक-सा है। लिपि के कारण दोनों में जो फ़र्क है, सो है और इस पर विचार करने से मालूम होता है कि हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी - ये तीनों शब्द एक भाषा के सूचक हैं। इन भाषाओं के शब्दकोशों को देखने पर हमें पता चलता है कि इनके अधिकतर शब्द एक-से हैं। इसलिए एक लिपि के सवाल को छोड़ दें, तो इसमें मुसलमानों को कोई कठिनाई नहीं हो सकती है और लिपि का सवाल तो अपने आप हल हो जाएगा।" संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 63) के पृष्ठ 59

"दक्षिण की कम-से-कम एक लिपि तो सीख ही लो। अगर लिपि के प्रश्न को छोड़ दें, तो प्रांतीय भाषाओं को बिना कठिनाई सीख सकते हैं। द्रविड़ बालक आसानी से हिंदी सीख सकते हैं। तमिलजन हिंदी के प्रचार का कार्य खुद करें। गुजराती भाई दक्षिण भारत में हिंदी-प्रचार करें। दक्षिण के लोगों के द्वारा राष्ट्रभाषा का खर्चा खुद न उठाना, राष्ट्र भावना पर धब्बा है। उत्तर-दक्षिण की एकता के लिए हिंदी सीखना अनिवार्य है। हिंदी से ही प्रांतीय भाषाओं का विकास संभव है। दक्षिण में हिंदी का प्रचार स्वराज्य-प्राप्ति का साधन है। प्रेम, निश्चय और विनय से ही अहिंदी भाषियों का हृदय-परिवर्तन संभव है। अपने सूबे की या राष्ट्रीय भाषा में लिखा-पढ़ी करें। तमिल भाई अन्य प्रांत के लोगों से हिंदुस्तानी में बोलें। हमारे तमिल भाई वर्ष भर में राष्ट्रभाषा सीख लें।"

"विदेशी भाषा माध्यम ने, जिसके द्वारा भारत में उच्च शिक्षा प्रदान की जा रही है, राष्ट्र को बौद्धिक और नैतिक क्षति पहुँचायी है। शिक्षा का माध्यम किसी भी कीमत पर तुरंत परिवर्तित होना चाहिए और प्रांतीय भाषाओं को उनका उचित स्थान दिया जाना चाहिए।" हरिजन (9 जुलाई 1938)

देवनागरी लिपि के बारे में महात्मा गांधी की दृष्टि सम्यक थी। उन्होंने कहा है कि "साक्षरता का प्रचार करने वाले देवनागरी अपना लें, तो भावी सन्तति की दुआएँ पाएँगे।" उनका यह भी मानना था कि "देवनागरी लिपि को सर्वमान्य बनाने के पीछे दृढ़ कारण हैं। देवनागरी ही भारत के लिए व्यावहारिक आदर्श है। नागरी में बंगला और बंगला में हिंदी पुस्तकें तैयार हों। राष्ट्र के निरक्षर बहुसंख्यकों पर अनेक लिपियों का बोझ लादना आत्मघात है।" उन्होंने एक बार यहाँ तक कह दिया कि "मेरी चले, तो सब प्रांतीय भाषाओं के लिए देवनागरी ही चले। आखिर में जो लिपि आसान होगी, वही चलेगी।"

गांधीजी ने चारों दक्षिणी भाषाओं में से कोई एक सामान्य लिपि तैयार करने का सुझाव दिया – "मुझे उनके लिए देवनागरी भी उतनी ही आसान मालूम होती है, जितनी कि चारों को मिलाकर तैयार की गई लिपि। व्यावहारिक दृष्टि से देखें, तो उन चारों में से मिली-जुली लिपि की आवश्यकता नहीं हो सकती। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि सिर्फ़ इतनी सामान्य सिफ़ारिश की जाए कि जहाँ कहीं संभव हो, उन भाषाओं को जो यदि संस्कृत की शाखाएँ नहीं हैं, तो कम-से-कम जितना संस्कृत से महत्त्वपूर्ण संबंध तो हो ही, संशोधित देवनागरी अपना लेनी चाहिए।" - संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 66) का पृष्ठ क्रमांक 8

आगे उन्होंने लिखा – "यदि हिंदू लोग देवनागरी लिपि (फ़ारसी शब्दों की बहुलता से युक्त उर्दू से भिन्न) और हिंदी के ज्ञान पर ज़ोर देते हैं, तो कोई हर्ज़ नहीं है। एक हिंदू को चाहे वह कहीं भी हो, देवनागरी लिपि के माध्यम से ही हिंदी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिससे कि वह सर्वोत्तम श्रेणी का भक्ति-साहित्य पढ़ सके। ऐसा साहित्य अन्य किसी प्रांतीय भाषा में उपलब्ध नहीं है।" संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 66) का पृष्ठ क्रमांक 252

अपने पुत्र देवदास गांधी को अहमदाबाद से दिनांक 23 फ़रवरी 1919 को जारी पत्र में गांधी जी ने लिखा - "मेरा दृढ़ विश्वास है कि हर भारतीय को मातृभाषा और हिंदी-उर्दू अच्छी तरह सीख लेनी चाहिए। अलग-अलग प्रांतों के लाखों हिंदुस्तानियों के पास व्यवहार के लिए सामान्य भाषा हिंदी-उर्दू ही है, इसके बारे में कोई संदेह नहीं है। इस आवश्यक तैयारी के बिना हम अपने विचार व्यक्त नहीं कर सकेंगे।"

हिंदी भाषा या किसी भाषा के प्रचार के बारे में महात्मा गांधी का कहना था – "प्रचारकों की चारित्रिक दृढ़ता से ही हिंदी की प्रगति होगी। राष्ट्रभाषा के प्रचारक कठिन मेहनत से दोनों भाषाएँ सीखें। हिंदी प्रचार और चारित्रिक शुद्धि आवश्यक है। प्रस्ताव पास करने से नहीं अमल से ही हिंदी का प्रचार होगा।" अपने पुत्र देवदास गांधी को दिनांक 23 जून 1918 को जारी पत्र में लिखा था - "देखता हूँ, तुमने शिक्षण-कार्य का आरंभ ठीक तरह से किया है। मैंने कल कुछ सुझाव भेजे थे। व्याकरण जल्दी सिखाना। उसमें उन्हें रस आएगा। उसमें सबसे पहले शब्दों के रूप सिखाना ठीक रहेगा। उनकी तुलना तमिल के रूपों से करनी चाहिए।"

महात्मा गांधी ने हिंदी के पक्ष में कई स्तरों पर सुझाव और आग्रह प्रकट किए। अपने पुत्र देवदास गांधी को दिनांक 17 अगस्त 1918 नडियाद से जारी पत्र में लिखा – "दिन-प्रतिदिन अपना हिंदी ज्ञान बढ़ाते जाना और अपने चरित्र को दृढ़ बनाना। जो व्यक्ति सत्यवान, ब्रह्मचारी, अपरिग्रही, दयावान और शूरवीर होगा, उसका प्रभाव पूरी पृथ्वी पर पड़ेगा। तुम उस प्रभाव से लोगों को इकठ्ठा कर सकोगे और उन्हें आसानी से हिंदी का ज्ञान दे सकोगे।"

विविध वर्ग के भारतीयों का आह्वान करते हुए उन्होंने सुझाया कि "लाट साहब को भी पत्र हिंदी में लिखें। हिंदी बोलें, भूलें हों, तो चिंता नहीं। आश्रम का प्रत्येक छात्र हिंदी सीख ले। शिक्षक मातृभाषा के महत्त्व को समझें। उद्देश्य सही हो, तो गलत हिंदी भी चल सकती है। अंग्रेज़ी जितनी कठिन है, हिंदी उतनी ही सरल भाषा है, यानी अंग्रेज़ी की अपेक्षा हिंदी सीखना सरल है। उत्तीर्ण विद्यार्थी देश सेवा के लिए हिंदी का प्रयोग करें। प्रत्येक पाठशाला

में हिंदी भाषोत्तेजक संघ बनाए जाएँ।" राष्ट्रपिता ने नए शब्दों के लिए एक कमेटी का गठन करने का सुझाव दिया। उनके अनुसार "हिंदी की खूबियों और उनका व्यापक प्रसार होना चाहिए। जो मुझे चिट्ठी लिखें, अपनी भाषा में लिखें। अरबी-फ़ारसी के शब्दों को अपनी भाषा में लेने में क्यों हिचकिचाएँ ? नेताओं को मान-पत्र हिंदी में ही दें।"

महात्मा गांधी के अनुसार – "अभी तक मध्यम वर्ग के लोगों ने ही हिंदी सीखने का काम शुरू किया है। हमारे विशिष्ट नेता इसे कब शुरू करेंगे ? एडवोकेट जनरल कब अपने मिसिल-मुकदमों की तरफ़ से ध्यान हटाकर आधे घंटे का समय हिंदी सीखने में लगाएँगे ? मैं चाहता हूँ कि दक्षिण के सबसे प्रतिष्ठित वर्ग के स्त्री-पुरुष भी हिंदी सीखें।" संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65) का पृष्ठ क्रमांक 24

महात्मा गांधी हिंदी के प्रति इतने समर्पित थे कि उन्होंने हिंदी की स्वीकृति पर ही वायसराय की युद्ध परिषद् में भाग लिया। हिंदी में ही 'नवजीवन' समाचार-पत्र प्रारम्भ किया। कोलकाता के राष्ट्रीय महाविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर भाषण देते हुए कहा कि "हिंदी की रामायण आधुनिक साहित्य में बेजोड़ है।"

हिंदी के दृढ़-प्रतिज्ञ होते हुए महात्मा गांधी ने कहा – "भारत के लिए राष्ट्रभाषा के रूप में हर दृष्टिकोण से हिंदी ही मुफ़ीद होगी।" यह पूछे जाने पर क्यों नहीं तेलुगू, तमिल या गुजराती, तो उन्होंने कहा था – "मैं वही चाहता हूँ, जो देश की छवि को दिखा सके।" इंडियन ओपिनियन (दक्षिण अफ़्रीका 1907)। यही बात उन्होंने चम्पारण जाकर भी दोहराई थी - "यह बात नहीं है कि भाषा के पीछे मैं दीवाना हो गया हूँ। न ही इसका यह मतलब है कि अगर भाषा के मोल पर स्वराज्य मिलता है, तो मैं उसे लेने से इन्कार कर दूँगा, लेकिन जैसा कि मैं कहता रहा हूँ कि सत्य और अहिंसा की बलि देने से मिलने वाला स्वराज्य मैं हरगिज़ नहीं लूँगा। फिर भी मैं भाषा पर इतना ज़ोर इसलिए देता हूँ कि राष्ट्रीय एकता हासिल करने का यह एक ज़बरदस्त साधन है और इसका आधार जितना दृढ़ होगा, हमारी एकता का आधार उतना ही प्रशस्त होगा।" - संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65) का पृष्ठ क्रमांक 35

गांधी जी ने राष्ट्र-सेवा और समाज-सेवा के लिए हिंदी का समर्थन किया – "सर्वप्रथम और महान सामाजिक सेवा जो हम अर्पित कर सकते हैं - अपनी देशी भाषाओं पर लौटना है, हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में उसका प्राकृत स्थान दिलाना है, अपनी प्रांतीय कार्यवाहियों को हिंदी में करना है। हम तब तक चैन से नहीं बैठ सकेंगे, जब तक हमारे स्कूल और कॉलिज देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा न दें।" इंडियन रिव्यू (जनवरी 1918)

1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें इन्दौर अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा की व्याख्या की तथा हिंदी भाषी राज्यों में उसके प्रचार-प्रसार का समर्थन किया। उन्होंने कहा - "हिंदुस्तान को यदि सचमुच एक राष्ट्र बनना है, तो चाहे कोई माने-या-न-माने राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है। इसका कारण है, जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को नहीं मिल सकता है। प्रत्येक प्रांत में उस प्रांत की भाषा सारे देश के आपसी व्यवहार के लिए संपर्क भाषा हिंदी तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए अंग्रेज़ी का उपयोग हो।" उसी इन्दौर अधिवेशन में ही उन्होंने दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार का प्रस्ताव पारित कराया।

20 अप्रैल 1935 को हिंदी साहित्य सम्मेलन के 24 वें अधिवेशन की अध्यक्षता इन्दौर में महात्मा गांधी ने की। इस अधिवेशन में उन्होंने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के प्रयासों का विस्तार से उल्लेख किया।

महात्मा गांधी का मानना था कि हिंदी का आंदोलन करोड़ों भारतीयों के हित में है। इसलिए वे कहते थे कि मज़हबी और तहज़ीबी हैसियत से क्या हम हिंदी से दूर रहें? उन्होंने आह्वान किया था कि अदालतों में अपना काम हिंदी में चलाएँ। उनकी अपील थी कि आखिरी अदालत की ज़बान हिंदी करार दी जाए तब नहीं, तो अब सही। जो भारत में अभी तक सपना ही है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. विचार और विश्लेषण - डॉ. नगेंद्र
2. हिन्द स्वराज - महात्मा गांधी (1909)
3. इंडियन ओपिनियन - दक्षिण अफ़्रीका (1906-1907)
4. मेरे सपनों का भारत - महात्मा गांधी
5. हरिजन (9 जुलाई 1938)
6. इंडियन रिव्यू (जनवरी 1918)
7. संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 62, 63, 65, 66, 67)

shrichandani3@gmail.com

21वीं सदी की रोज़गारोन्मुखी हिंदी

प्रवीण कुमार सहगल
हरियाणा, भारत

मातृभाषा की उन्नति के बिना किसी भी समाज की प्रगति संभव नहीं है तथा अपनी भाषा के ज्ञान के बिना मन की पीड़ा को दूर करना भी मुश्किल है। हिंदी दुनिया की दूसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। एक रिपोर्ट के मुताबिक इस समय दुनियाभर में हिंदी बोलने वालों की संख्या 55 करोड़ से ज्यादा है, वहीं हिंदी समझ सकने वाले लोगों की संख्या करीब 1 अरब से भी ज्यादा है। हिंदी हमारी मातृभाषा है। जिस तरह एक घर में माँ के बिना घर, परिवार और उस घर के बच्चे अधूरे हैं, उसी तरह हिंदी भाषा के बिना भारत और भारतीयता अधूरी है। इस अधूरेपन को दूर करने के लिए हमें हिंदी में जीना होगा और उसे हृदय से जोड़ना होगा।

आधुनिक समय में किसी भाषा या बोली के जीवित रहने के लिए मात्र साहित्य की नहीं, बल्कि उसे व्यवसाय, विज्ञान और रोज़गार की भाषा बनाने की भी ज़रूरत होती है। जो भाषा सामान्य मनुष्य को रोज़गार नहीं दे पाती, वह धीरे-धीरे एक संकुचित दायरे में सिमटकर रह जाती है। अंग्रेज़ी के अंतर्राष्ट्रीय भाषा होने का सबसे बड़ा कारण व्यवसाय है। केवल शौक के लिए किसी भाषा को सीखने वाले बहुत ही कम लोग होते हैं। अधिकतर लोग किसी-न-किसी व्यावसायिक कारण से ही किसी अन्य भाषा को सीखते हैं। आज हिंदी भाषा को वैश्विक रूप प्राप्त हुआ है। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व के लगभग एक सौ सैंतीस देशों में हिंदी भाषा विद्यमान है। नेपाल, चीन, सिंगापुर, बर्मा, श्रीलंका, थाईलैंड, मलेशिया, तिब्बत, भूटान, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, बांग्लादेश, मालदीव आदि ऐसे देश हैं, जिनमें से अनेक पहले भारत के अंग थे। यहाँ हिंदी भाषी परिवार पीढ़ी-दर-पीढ़ी निवास कर रहे हैं। नेपाल की भाषाएँ हिंदी की विभाषाएँ ही हैं। बर्मा और भूटान की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। जावा, सुमात्रा और इंडोनेशिया में जो उर्दू बोली जाती है, उसे देवनागरी में लिखा जाए, तो वह हिंदी ही है। दुबई की अधिकांश जनता न केवल हिंदी समझती है, बल्कि बोलती भी है।

हिंदी भारत के अधिकांश लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। जब से संविधान द्वारा खड़ी बोली को राजभाषा का दर्जा दिया गया, तब से हिंदी भाषा का स्वरूप व्यावहारिक होता जा रहा है। हिंदी संस्कृति, संवेदना व दिल की भाषा होने के साथ-साथ अब रोज़गार की भाषा भी हो गई है। जब कोई भाषा अपने पूर्ण विकास व विस्तार में होती है, तब उसमें रोज़गार की संभावनाएँ भी उजागर हो जाती हैं। हिंदी भाषा का विशाल व समृद्ध साहित्य ही उसे जीवित रखने का आधार नहीं है, बल्कि हिंदी भाषा का व्यवसाय, विज्ञान व रोज़गार में शामिल होना भी उसके प्राण तत्त्व हैं। अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग व्यवसायी भाषा के रूप में है, यह उसके अंतर्राष्ट्रीय होने का मुख्य कारण है। विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी भाषा के बढ़ते वर्चस्व व प्रयोजनीयता के कारण हिंदी आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच चुकी है। 21वीं सदी की हिंदी भाषा केवल शिक्षण तक ही सीमित नहीं है, बल्कि पूरे देश के छात्रों व पेशेवरों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान कर रही है। वैश्वीकरण के युग में हिंदी भाषा के बढ़ते चलन ने रोज़गार के अनेक मार्ग खोले हैं।

कुछ ही समय पहले तक हिंदी को रोज़गार के अवसरों की कमी के कारण यथापेक्षित सम्मान प्राप्त नहीं हो पाता था, परंतु पिछले कुछ समय में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास, बदलते सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के फलस्वरूप हिंदी से संबंधित रोज़गार के अवसरों में भी व्यापक विकास हुआ है। इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत में सरकारी क्षेत्र में निकलने वाली नौकरियाँ अंग्रेज़ी की अपेक्षा हिंदी को अधिक तरजीह देती हैं। निजी तथा कॉरपोरेट क्षेत्र में भी हिंदी से संबंधित रोज़गारों में भारी वृद्धि हुई है। हिंदी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् किसी भी छात्र के पास सरकारी तथा निजी, दोनों क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर उपलब्ध हो जाते हैं। जहाँ सरकारी नौकरियों में वे शिक्षक, प्रोफ़ेसर, अनुवादक, इंटरप्रेटर, राजभाषा अधिकारी आदि पद प्राप्त कर सकते हैं, वहीं निजी क्षेत्र में पत्रकार, संपादक, समाचार वाचक, रेडियो जॉकी, रचनात्मक लेखन आदि के माध्यम से अपना जीवनयापन कर सकते हैं। हिंदी भाषा के अध्ययन के पश्चात् छात्र-वर्ग को निम्नलिखित क्षेत्रों एवं संस्थाओं में रोज़गार के अवसर सुलभ हो सकते हैं –

शिक्षा का क्षेत्र

हिंदी भाषा का अध्ययन करने वालों के बीच में हिंदी भाषा का अध्यापन-कार्य रोज़गार के क्षेत्र में एक लोकप्रिय विकल्प है। हिंदी बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है, इसलिए हिंदी

भाषा भारत के लगभग सभी सरकारी, अर्धसरकारी व निजी शिक्षण संस्थानों में पढ़ाई जा रही है। इन संस्थानों में योग्यतानुसार प्री-प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक रोज़गार के व्यापक अवसर हैं। प्रत्येक संस्थान में हिंदी के अध्यापक होते हैं। प्री-प्राइमरी शिक्षक बनने के लिए नर्सरी टीचर ट्रेनिंग (NTT) या माँटेसरी ट्रेनिंग के बाद प्री-प्राइमरी शिक्षक बना जाता है। प्राइमरी की कक्षा को पढ़ाने के लिए डिप्लोमा इन एलिमेंट्री एजुकेशन (D.EL.ED.) या बैचलर ऑफ़ एजुकेशन (B.ED) के साथ शिक्षक पात्रता परीक्षा (TET) पास कर किसी भी प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक बना जा सकता है। हाईस्कूल व इंटरमीडिएट की कक्षाओं को पढ़ाने के लिए हिंदी विषय के साथ B.ED का कोर्स व TET द्वितीय परीक्षा उत्तीर्ण कर हिंदी अध्यापक की योग्यता प्राप्त की जा सकती है। उच्च शिक्षण संस्थानों में हिंदी विषय में स्नातकोत्तर के बाद हिंदी में Ph.D तथा राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा NET या फिर राज्य पात्रता परीक्षा SET उत्तीर्ण कर हिंदी प्राध्यापक के रूप में अध्यापन-कार्य किया जा सकता है। शिक्षण व्यवसाय से संबंधित पाठ्यक्रम संस्थान केंद्र सरकार व राज्य सरकार दोनों द्वारा संचालित किए जाते हैं। हिंदी हमारी राजभाषा होने से सभी संस्थानों में हिंदी शिक्षण होता है।

प्रिंट मीडिया

किसी सूचना या संदेश को लिखित रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में प्रिंट मीडिया का बहुत बड़ा योगदान है। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रिंट मीडिया के माध्यम हैं। भारत का पहला हिंदी समाचार-पत्र 1826 ई. में "उदंत मार्तड" निकला था, तब से सैकड़ों हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रहती हैं, जिनमें रोज़गार के विपुल अवसर हैं। प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में हिंदी न्यूज़ रिपोर्टर, संपादक, एडिटर, स्तंभकार, आलोचक आदि के रूप में रोज़गार प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए हिंदी भाषा का ज्ञान, व्याकरण की शुद्धता, शब्दों का अर्थपूर्ण व मर्यादित प्रयोग तथा रोचक भाषा-शैली जैसे गुणों का होना आवश्यक है। प्रिंट मीडिया में रोज़गार पाने के लिए स्नातक स्तर पर हिंदी भाषा के साथ पत्रकारिता के कोर्स विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों द्वारा कराए जा रहे हैं।

पत्रकारिता एवं जनसंचार

हिंदी का वैश्विक रूप पत्रकारिता व जनसंचार माध्यमों से उजागर हो रहा है। हिंदी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गई है। टी. वी. चैनलों में दो तिहाई से अधिक चैनल हिंदी भाषा के हैं। उनमें अधिक-से-अधिक हिंदी के मनोरंजन प्रधान और सूचना प्रधान कार्यक्रम दिखाने की होड़ मची हुई है। विदेशी भाषाओं की फ़िल्में हिंदी में डब की जा रही हैं। सभी व्यावसायिक कंपनियाँ अपने उत्पादनों का विज्ञापन हिंदी में देने के लिए बेचैन हैं। आगे रहने की प्रतियोगिता में चैनल नए-नए कार्यक्रमों का निर्माण कर रहे हैं। उनके निर्माण, प्रचार, प्रसारण और संचालन के क्षेत्रों में हिंदी भाषी युवाओं के लिए रोज़गार के नित नए विकल्प खुल रहे हैं। पत्रकारिता और जनसंचार के क्षेत्र में हिंदी जनसंपर्क अधिकारी, हिंदी संवाद लेखक, पटकथा लेखक, हिंदी डबिंग, गीत-निर्माण, आलोचक, समाचार वाचक, लेखक, संपादक तथा हिंदी अनुवादक के रूप में कार्य किया जा सकता है। इसके लिए हिंदी भाषा का ज्ञान, देश दुनिया की जानकारी, रचनात्मकता, आवाज़ में स्पष्टता व संवाद के आधार पर लय होनी चाहिए।

पत्रकारिता व जनसंचार में शिक्षण-प्राप्ति के लिए अनेक पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं। बी.ए. में जनसंचार पाठ्यक्रम, बी.एससी. में ग्राफ़िक्स एण्ड एनिमेशन तथा मल्टिमीडिया, बी.बी.ए. में जनसंचार माध्यमों में प्रवेश के साथ डिप्लोमा या डिग्री इन मास कम्युनिकेशन की पढ़ाई की जा सकती है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं व चैनलों के अपने यूट्यूब चैनल व वेबसाइटें होने से पत्रकारिता व जनसंचार के क्षेत्र में हिंदी भाषी युवाओं को ऑनलाइन रोज़गार के अवसर मिल रहे हैं। इसके लिए हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान, आत्मविश्वास, संवाद कौशल और कैमरे के सामने बोलने की कुशलता होनी चाहिए। अब प्रिंट मीडिया इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में बदलता जा रहा है।

सरकारी व निजी कार्यालय

राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा (3)3 के अनुसार सभी सरकारी अधिकारियों को कार्यालय की भाषा के रूप में अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिंदी का प्रयोग करना भी अनिवार्य है। आदेश सूचना, नियम, प्रतिवेदन, प्रेस विज्ञप्ति, निविदा, अनुबंध एवं विभिन्न प्रारूपों को हिंदी में बनाना व जारी करना अनिवार्य है। इसके लिए केन्द्र व हिंदी भाषी राज्य सरकार के सभी विभागों और उपविभागों में हिंदी भाषा अधिकारी, अनुवादक, प्रबंधक, उपप्रबंधक आदि के रूप में हिंदी भाषा में रोज़गार प्राप्त किया जा सकता है। इन पदों के लिए स्नातक स्तर पर हिंदी विषय के साथ अनुवादक के क्षेत्र में डिप्लोमा होना आवश्यक है। राजभाषा अधिकारी के लिए स्नातक में हिंदी के

साथ एक विषय के रूप में अंग्रेज़ी तथा हिंदी तकनीकी शिक्षा का होना आवश्यक है।

तकनीकी क्षेत्र

भूमंडलीकृत विश्व में संचार प्रौद्योगिकी के विस्तृत प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप समस्त संसार को एक विश्वग्राम के रूप में बनाए रखने के लिए तकनीक के क्षेत्र में अग्रणी अनेक वैश्विक कंपनियाँ दिन-रात इंटरनेट पर तमाम भाषाओं में सामग्रियाँ अपलोड करती रहती हैं। गूगल, माइक्रोसॉफ़्ट, फ़ेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब, व्हाट्सएप आदि अग्रणी सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों को भारतवर्ष में भी यहाँ के हिंदी-भाषी समाज तक अपना कंटेंट उपलब्ध करवाने के लिए उन्हें हिंदी भाषा में रूपांतरित करवाना अपेक्षित होता है। इसके लिए उन्हें ऐसे सिद्धहस्त वेब-डेवलपर तथा इंजीनियरों की आवश्यकता होती है, जो हिंदी भाषा के अनुरूप उनके सॉफ़्टवेयर के प्रोग्राम विकसित कर सकें। हिंदी भाषा का जानकार, जिसे तकनीकी ज्ञान भी हो, इन सब कार्यों के लिए उपयुक्त होते हैं। अनेक बीपीओ तथा कॉल सेंटर आदि में भी कॉल एग्जीक्यूटिव के लिए परिष्कृत हिंदी जानने वाले उम्मीदवारों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। हिंदी भाषा एवं साहित्य के अनेक वेब पोर्टल, ब्लॉग, यूट्यूब पर डाला जाने वाला कंटेंट, ऑनलाइन हिंदी शब्दकोश एवं विश्वकोश, गूगल ट्रांसलेट, विकिपीडिया और विविध पोर्टलों पर ऑनलाइन कंटेंट विकसित करने, गूगल प्ले स्टोर तथा एप्पल ऐप स्टोर के लिए हिंदी में अनेक ऐप विकसित करने, अनेक समाचार वेबसाइटों पर फ़्रीलांसर पत्रकारिता करने, सूचनाएँ एकत्र करने और तमाम साहित्यिक-सामाजिक-सांस्कृतिक वेबसाइटों पर कंटेंट अपलोड करने का व्यापक कार्य करने के लिए तकनीकी ज्ञान सहित हिंदी भाषा का भी उत्कृष्ट ज्ञान अपेक्षित होता है।

राष्ट्रीयकृत एवं निजी बैंक

वर्तमान समय में राष्ट्रीयकृत एवं निजी बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों के लिए अनेक योजनाओं का निर्माण व प्रचार किया जाता रहता है, जिन्हें ग्रामीण लोगों तक पहुँचाने के लिए हिंदी भाषी कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, जिससे अधिक-से-अधिक लोग बैंकों की योजनाओं को सरल भाषा में समझ सकें और उनका लाभ उठा सकें। इसके लिए बैंकों में ग्रामीण तथा उपनगरों के हिंदी मीडियम से पढ़े स्नातक युवाओं की भी भर्ती की जाती है, जो बैंकों की योजनाओं को सरल भाषा में लोगों को समझा सकें। इसके अलावा न्यायिक सेवा, रेलवे, सिविल व स्टेट सर्विस विभागों में भी हिंदी प्रूफ़ रीडिंग और फ़ाइनल ड्राफ़्ट तैयार किए जाते हैं। यहाँ भी हिंदी भाषा में रोज़गार के व्यापक अवसर हैं।

विज्ञापन

हिंदी भाषा में विज्ञापनों का बाज़ार बहुत तेज़ी से बढ़ा है। बाज़ारवाद के इस युग में विज्ञापनों के व्यवसाय ने एक तरह की क्रान्ति पैदा कर दी है। अपने उत्पादों के प्रचार-प्रसार के लिए एजेंसियाँ विज्ञापनों पर भारी- भरकम खर्च कर रही हैं, जिससे उपभोक्ता को प्रभावित कर सकें। आज अधिकांश लोग हिंदी भाषी हैं, विज्ञापनों पर भी हिंदी भाषा का ही कब्ज़ा है। एजेंसियाँ विज्ञापन में अपने मूल संदेश को तथा उत्पाद की विशेषताओं को शब्दों में कुछ इस तरह बाँधती है कि वह उत्पाद हमारे लिए कुछ खास मायने रखने लगता है। विज्ञापन की धारा हिंदी में स्थापित हो चुकी है, जो सतत प्रवाहमान है। हिंदी विज्ञापनों के लिए हिंदी शब्दों का चयन, वाक्य-गठन, विचलन, समानान्तर इत्यादि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विज्ञापन एक कला है और हिंदी विज्ञापन जगत में रोज़गार के लिए हिंदी भाषा का ज्ञान, शब्द की अनेक अर्थ-व्यंजना, नए-नए मुहावरों का निर्माण करने की क्षमता तथा विज्ञापन प्रस्तुतीकरण में हिंदी भाषा में अर्थ-संप्रेषण की कला होनी आवश्यक है।

रेडियो जॉकी

यह एक ऐसा व्यवसाय है, जिसमें आवाज़ द्वारा प्रोग्राम प्रस्तुत किए जाते हैं। हिंदी रेडियो जॉकी की आवाज़ अच्छी होनी चाहिए, क्योंकि इसमें मुख्य काम बोलना है तथा मिमिक्री व हँसी-मज़ाक से हर उम्र के लोगों का मनोरंजन करना होता है। रेडियो जॉकी में हिंदी प्रोग्रामिंग, स्टोरी लिखना, विज्ञापन, ऑडियो मैगजीन व डॉक्यूमेंट्री प्रस्तुत करने का कार्य किया जा सकता है। इसके लिए हिंदी के साथ किसी अन्य भाषा का ज्ञान भी आवश्यक है, साथ ही देश दुनिया की जानकारी, नई रचनाओं को पढ़ने की ललक, आवाज़ में विनम्रता, उतार-चढ़ाव, समय की पाबंदी आदि गुणों का होना अनिवार्य है। इसके अलावा आपकी शैली विशेष हो, हाज़िर जवाबी, आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुतीकरण की क्षमता भी आवश्यक है। एयर एफएम, टाइम्स एफएम, रेडियो मिड डे, रेडियो वाणी, ऑल इंडिया रेडियो व क्षेत्रीय रेडियो स्टेशनों में अपना कैरियर बना सकते हैं।

पर्यटन, समाजसेवी संस्थाएँ एवं ग्राहक सेवा केंद्र

भारत में यहाँ सांस्कृतिक, धार्मिक व ऐतिहासिक दर्शनीय स्थलों को देखने के लिए देश-विदेश के पर्यटक आते हैं, जिनका मार्गदर्शन करने के लिए हिंदी भाषी गाईड की आवश्यकता होती है। हिंदी गाईड को हिंदी के अलावा अन्य भाषा का ज्ञान होना भी आवश्यक है। यहाँ रोज़गार के पर्याप्त अवसर हैं। आप स्वयं भी पर्यटन कर ब्लॉग बना सकते हैं। विभिन्न समाजसेवी संगठनों द्वारा अपनी योजनाओं को लोगों तक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए हिंदी भाषा के विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है। कस्टमर केयर, कॉल सेन्टर, सर्विस सेंटर, सेल्स मार्केटिंग में हिंदी भाषा में रोज़गार के पर्याप्त अवसर हैं।

रचनात्मकता

कुछ लोगों में जन्मजात लेखन-कला होती है। वे अपनी रचनात्मकता से हिंदी में कविता, कहानी नाटक, उपन्यास, गीत, फ़िल्मों में संवाद, हास्य-लेखन, विज्ञापन के लिए लेखन कर रोज़गार प्राप्त कर सकते हैं। हमारे प्रसिद्ध हिंदी लेखक प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, निराला आदि में जन्मजात लेखन गुण था, जिसे उन्होंने धीरे-धीरे विकसित कर हिंदी का विशाल साहित्य तैयार कर दिया। समाज में मुद्दों की कमी नहीं है। किसी भी समस्या व मुद्दे पर यथार्थ लेखन कहानी, उपन्यास, स्तंभकार, हास्य-व्यंग्य के रूप में किया जा सकता है। विभिन्न कवि सम्मेलनों का आयोजन होता है, जहाँ अपनी रचनात्मक कला का प्रदर्शन किया जाता है। यह मंच भी रोज़गार का माध्यम है।

वैश्विक मंच

जैसे-जैसे भारत की आर्थिक स्थिति बेहतर होती जा रही है तथा वह वैश्विक मंच पर अपनी उपस्थिति लगातार बढ़ाता जा रहा है, वैसे-वैसे भारत के बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा हिंदी भी वैश्विक पटल पर अपनी उपस्थिति लगातार मज़बूत करती जा रही है। जिस प्रकार अपने देश के अनेक स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों में तमाम विदेशी भाषाएँ छात्र-छात्राओं को पढ़ाई जाती हैं, उसी प्रकार विश्व भर के अनेक विश्वविद्यालयों में भी हिंदी भाषा का पठन-पाठन किया जाता है। वर्तमान में दुनिया के 30 से अधिक देशों और लगभग 175 विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन किया जाता है। अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका में ही 20 से अधिक केंद्रों (कैलिफ़ोर्निया, टेक्सस, शिकागो, पेंसिलवेनिया, ह्स्टन आदि) में हिंदी भाषा का पठन-पाठन होता है। अनेक अमेरिकी तथा यूरोपीय विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्यापन के लिए प्रतिवर्ष भारत से दर्जनों लोग जाते हैं तथा कुछ तो वहीं के होकर रह जाते हैं। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हिंदी से अंग्रेज़ी द्विभाषाविद् की आवश्यकता निरंतर पड़ती रहती है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 2018 में हिंदी न्यूज़ बुलेटिन आरंभ की गई तथा वर्ष 2019 में हिंदी में एक न्यूज़ वेबसाइट आरंभ की गयी। साथ ही, वह हिंदी में अपने ट्विटर संदेश भी भेजता है। अनेक देशों के भारतीय दूतावासों में हिंदी से शिक्षा प्राप्त किए हुए लोगों को अनुवादक, संस्कृति सचिव, द्वितीय सचिव, कल्चरल अताशे (सांस्कृतिक सहचारी) आदि पदों पर नियुक्त किया जाता है। वैश्विक इंटेलिजेंस एजेंसियों तथा सुरक्षा एजेंसियों के साथ-साथ अमेरिकी सेना में भी हिंदी अनुवादक भर्ती किए जाते हैं।

अन्य सामग्री लेखन

इसमें किसी भी वेबसाइट के लिए लिखना, टी. वी. के किसी भी कार्यक्रम के लिए लिखना, विभिन्न विषयों का हिंदी भाषा में नोट्स बनाना, किसी टेक्निकल सामान की संचालन-विधि को सरल हिंदी में समझाकर लिखना, शोध-ग्रंथ व शोध-पत्रों का लेखन करना, किसी भी प्रकार का हिंदी टाईपिंग कार्य करना और भी अनेक कार्य हैं, जिनके कारण हिंदी भाषा में रोज़गार प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हिंदी सरल, जीवित व वैज्ञानिक भाषा है और इसमें उद्यमिता व तकनीकी की अनेक संभावनाएँ हैं। कुछ समय पहले तक हिंदी भाषा को हीन कहने वाले लोग भी हिंदी भाषा के महत्त्व व उसकी बढ़ती प्रयोजनीयता को समझने लगे हैं। हिंदी लोकप्रिय भाषा बन गई है। भारत सरकार द्वारा हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के साथ रोज़गार के क्षेत्र में भी हर संभव प्रयास किया जा रहा है। आज उच्च पदों पर आसीन शासन-प्रशासन के प्रतिनिधि अंतर्राष्ट्रीय मंच से हिंदी भाषा में संबोधन करते हैं, जिससे गर्व की अनुभूति होती है। वह दिन दूर नहीं जब हिंदी को संवैधानिक रूप से राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया जाएगा। जिस तरह भारत सरकार तकनीकी, चिकित्सा, विज्ञान जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की भाषा को हिंदी में प्रस्तुत करने के प्रयास कर रही है, उससे यही प्रतीत होता है कि भविष्य में हिंदी भाषा में रोज़गार के नित नए-नए अवसर प्राप्त होंगे। 21वीं सदी में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं, जो हिंदी भाषा के प्रयोग से अछूता हो। हमें गर्व है कि हम हिंदी भाषी हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. प्रो. हरिमोहन, आधुनिक जनसंचार और हिंदी. तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008
2. डॉ. चन्द्र कुमार, जनसंचार माध्यमों में हिंदी, क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पृष्ठ सं० 9
3. दैनिक समाचार-पत्र अमर उजाला, 4 सितम्बर 2022 का अंक
4. गजानद झा, हिंदी की प्रासंगिकता - 2011
5. मंजू रानी, हिंदी का वैश्विक परिदृश्य - मानसरोवर, प्रकाशन, 2017
6. डॉ. हरीश कुमार, ई-अनुवाद और हिंदी, किताबघर, नई दिल्ली

praveensehgal217@gmail.com

हिंदी का आज

अनिकेत गौतम
तेलंगाना, भारत

"हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया" - डॉ. राजेंद्र प्रसाद (भारत के प्रथम राष्ट्रपति)

आज दिन-प्रतिदिन परिवर्तन हो रहा है। वर्तमान समय में जहाँ देखो वहीं तकनीक पसरी हुई है, बिना तकनीकी के आज जीवन जीना लगभग संशयपूर्ण हो गया है। शिक्षा ने भी तकनीक को पूर्ण रूप से अपना लिया है। किसी भी निजी विद्यालय का विज्ञापन पढ़ो, तो लिखा होता है, स्मार्ट क्लासेस, स्मार्ट बोर्ड्स, हाईली क्वालिफ़ाइड टीचर, वातानुकूलित कक्षाएँ, शुद्ध पेयजल, आने-जाने के लिए बस सुविधा आदि। इससे पता चलता है कि शिक्षा का बाज़ारीकरण हो चुका है। साथ ही, शिक्षा का तकनीकीकरण भी हो चुका है।

शिक्षा का बाज़ारीकरण होना, जहाँ चिंता का विषय है, वहीं शिक्षा में तकनीक का आना बेहद सहूलियत का मुद्दा है, किंतु क्या शिक्षण-अधिगम के अंतर्गत इन सुविधाओं का या तकनीकी का सही प्रकार से प्रयोग हो पा रहा है? क्या शिक्षक तकनीक को सही प्रकार से अपने शिक्षण-कार्य में प्रयोग में ला पा रहे हैं? क्या विद्यार्थी तकनीक की मदद से सरलता से पाठ को समझ पा रहे हैं और क्या विद्यार्थी भी इन तकनीकों का प्रयोग करने में सहजता महसूस करते हैं? इत्यादि प्रश्न शिक्षा में तकनीक के प्रयोग को लेकर खड़े होते हैं, विशेषकर उच्च शिक्षा में।

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में तकनीक एक अभिन्न हिस्सा बन चुका है। आधुनिक शिक्षा में तकनीक विद्यार्थियों को सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक क्षेत्र में समर्थ बनाने में मदद करने के लिए क्रियाशील है। तकनीक के उपयोग से शिक्षा में सुधार हुआ है, जिससे विद्यार्थियों को बेहतर समझाया जा सकता है और उनकी रुचि को बढ़ावा दिया जा सकता है। ऑनलाइन शिक्षा, शैक्षिक सॉफ़्टवेयर और इंटरैक्टिव शिक्षा साधन विद्यार्थियों को सीधे और सकारात्मक तरीके से सिखाने का एक माध्यम प्रदान करते हैं। तकनीक ने भी शिक्षा के प्रबंधन को सुगम बना दिया है। स्कूल और कॉलिजों में प्रबंधन सिस्टम्स, ऑटोमेशन टूल्स और डेटा एनालिटिक्स का उपयोग करके शिक्षा के क्षेत्र में सुधार करने में मदद की जा रही है।

यदि हम बात करें हिंदी भाषा की, तो हम यह पाते हैं कि हिंदी भाषा भी तकनीकी युग के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल रही है, हिंदी किसी भी अन्य विदेशी भाषा से पीछे नहीं रही है, अपितु कई भाषाओं के लिए अगुवा का कार्य भी कर रही है।

यदि हम हिंदी के इतिहास पर एक सरसरी नज़र डालें, तो हमें भान होगा कि हिंदी कहाँ-से-कहाँ पहुँची है, जिसके कारण ही आज हिंदी विश्व के माथे की बिंदी बन पाई है। जैसा कि सर्वविदित है कि "प्राचीन भारतीय भाषाओं (संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि) में हिंदी शब्द का प्रयोग कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। मध्यकाल के सहित्य में (सूर, कबीर, तुलसी आदि के काव्य में) भाषा या भाखा का प्रयोग होते अवश्य देखा जाता है, जो मध्य देश की लोक प्रचलित भाषा के लिए हुआ है। मध्य देश की इसी भाषा को मुसलमानों नें 'हिंदी' नाम दिया है।" रामलाल वर्मा जी की बात से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी का इतिहास एक हज़ार वर्ष से भी पुराना है।

वर्ष 1990 में भारत में भूमंडलीकरण की शुरुआत हुई, जिसके चलते भारत ने अपनी राजनैतिक, विदेश नीति में परिवर्तन किया, जिस कारण कई सारी विदेशी कंपनियाँ भारत में निवेश करने को तैयार हुईं ; जिसके चलते तत्कालीन समय में भारत में चरम पर पहुँची बेरोज़गारी को काफ़ी हद तक कम किया जा सका था और इन विदेशी कंपनियों के लोगों को भारत में अपने पैर जमाने के लिए संपर्क भाषा के तौर पर प्रयुक्त की जाने वाली हिंदी को सीखना पड़ा। हिंदी भाषियों के साथ अपने व्यापार का प्रचार-प्रसार करने के लिए उन्होंने अंग्रेज़ी के साथ हिंदी का भी छौंका लगाया, उदाहरणार्थ - पेप्सिको कंपनी ने अपने पेय पदार्थ को जन-जन तक पॉपुलर या प्रसिद्ध बनाने के लिए जो विज्ञापन बनाया वह द्रष्टव्य है - "ये दिल माँगे मोर!" यह विज्ञापन इतना ज्यादा प्रसिद्ध हुआ कि इससे पेप्सिको कंपनी को तो फ़ायदा हुआ ही, साथ-ही-साथ पेप्सी ने कोका कोला कंपनी को पेय पदार्थों की दौड़ में काफ़ी पीछे छोड़ दिया और आम जनमानस तक अपनी पहुँच भी बनाई। इस प्रकार से और एक बार हिंदी विदेशी पटल पर छा गई और आगे चलकर धीरे-धीरे सभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भी अपने विज्ञापनों में हिंदी भाषा का प्रयोग करना आरंभ कर दिया। हिंदी भाषा भी

नित नई-नई ऊँचाइयों को छूने लगी। विदेशी कंपनियों ने यह जान लिया कि भारत तेज़ी से विकास की ओर बढ़ता राष्ट्र है, जिस कारण भारत कई प्रकार की कंपनियों के लिए एक बहुत बड़ा बाज़ार है। इसीलिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में हिंदी का प्रयोग अपने विज्ञापनों के लिए करना शुरू किया, जिससे न केवल इन कंपनियों को फ़ायदा पहुँचा, बल्कि हिंदी का भी बहुत भला हुआ, जिससे हिंदी के प्रचार-प्रसार को बल मिला। भूमंडलीकरण ने हिंदी को देश से बाहर झाँकने का भरपूर अवसर प्रदान किया, जिस कारण हिंदी आज विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं की सूची में तीसरे स्थान पर विराजी है। हिंदी अभी केवल यहीं नहीं रुकी है, अपितु निरंतर अपने विकास के मार्ग पर एक मानक गति से दौड़ रही है।

सर्वविदित है कि आज का समय सोशल मीडिया का समय है, जिसमें कई ऐप्स खूब प्रचलित हैं, यथा - फ़ेसबुक, यूट्यूब, ट्विटर, व्हाट्सएप, टेलीग्राम, इंस्टाग्राम इत्यादि। आज मीडिया अथवा जनसंचार के अलग या डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म हैं, जिससे एक स्थान पर बैठकर हम न केवल किसी भी प्रकार की सूचना को पढ़, देख और सुन सकते हैं, अपितु उस सूचना या खबर को हम अपने किसी भी परिचित या अपरिचित को प्रेषित भी कर सकते हैं और हम उक्त सूचना के संबंध में अपनी राय भी तुरंत दर्ज कर सकते हैं। उक्त सभी सोशल मीडिया ऐप्स अपनी सुविधाएँ हिंदी में भी प्रदान करते हैं, जिससे इन ऐप्स ने हिंदी-भाषी उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित किया है।

फ़ेसबुक हिंदी भाषा-भाषियों के लिए एक बड़ा मंच है, जहाँ कोई भी साहित्यकार, रचनाकार अपनी रचनाओं को बड़ी ही सरलता से पाठकों तक पहुँचा सकता है, क्योंकि फ़ेसबुक में एक बड़ी सुविधा यह है कि जो आपकी मित्रता की सूची में है भी नहीं, वह भी आपकी रचनाओं को पढ़ सकता है, हालाँकि फ़ेसबुक ने यह सुविधा भी दी है कि आप किसे अपनी रचना या कोई अन्य प्रतिक्रिया दिखाना चाहते हैं या नहीं। अधिकतर हिंदी साहित्यकार, प्रोफ़ेसर, शिक्षक आदि अपनी रचनाओं को फ़ेसबुक पर साझा करना ज्यादा सरल महसूस करते हैं तथा रचनाओं को खूब साझा भी करते हैं। इन ऐप्स के हिंदी में आने के कारण हिंदी भाषा के जानकारों को रोज़गार भी प्राप्त हो रहा है, इससे यह भी साबित होता है कि हिंदी समय के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल रही है, अर्थात् हिंदी आधुनिक तकनीकों के साथ भी अपने आपको जोड़ रही है और अनुवाद के क्षेत्र में भी हिंदी का खूब प्रयोग किया जा रहा है।

इंटरनेट जगत के सबसे बड़े सर्च इंजन गूगल ने भी हिंदी की लोकप्रियता को समझा और जाना है। इसलिए गूगल ने एक अलग ही वेबसाइट का निर्माण किया है, जिसका नाम है – 'गूगल ट्रांसलेट'। इस वेबसाइट के द्वारा हिंदी पाठक अन्य भाषाओं के उपलब्ध साहित्य को अनुवाद के माध्यम से पढ़ सकते हैं, जिससे विश्व के अन्य भाषा के साहित्यकारों को पढ़ने से हिंदी पाठकों और लेखकों में भी नवीनता का प्रचार होता है, साथ ही विश्व के अन्य भाषी रचनाकार किस प्रकार के मुद्दों को अपने साहित्य में शामिल करते हैं, उसकी भी जानकारी पाठकों को प्राप्त होती है। इस गूगल अनुवाद सॉफ़्टवेयर में भी कई खामियाँ सामने आती हैं, जिससे निपटने के लिए गूगल ने हिंदी भाषा के कई विशेषज्ञों एवं विद्वानों को रखा है, जो निरंतर गूगल अनुवाद की त्रुटियों पर कार्य करते रहते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि अनुवाद के माध्यम से गूगल हिंदी के अच्छे जानकारों, जोकि तकनीक में भी प्रशिक्षित व कुशल होते हैं, को रोज़गार प्रदान करने का कार्य करता है।

आज हिंदी तकनीक के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल रही है, जिससे हिंदी को नवीनतम सफलताएँ प्राप्त हो रही हैं। साथ ही, हिंदी के विद्यार्थियों को रोज़गार के पारंपरिक साधनों से परे हटकर भी रोज़गार के नवीन साधन प्राप्त हो रहे हैं, यथा - कंटेंट राइटर, विज्ञापन लेखक, हिंदी भाषा से संबंधित नए-नए सॉफ़्टवेयर का निर्माण करना, जिससे हिंदी जानने वालों के लिए इंटरनेट पर कार्य करने में सुविधा प्राप्त हो सके, जिससे कंपनियाँ अपने कम पढ़े-लिखे उपभोक्ताओं तक पहुँच बना पाती हैं। चाहे बाज़ार को ध्यान में रखकर ही सही, लेकिन हिंदी के प्रचार-प्रसार और प्रयोग में काफ़ी वृद्धि हुई है, जिससे हिंदी के बोलने-समझने और पढ़ने वालों की संख्या में भी तेज़ी से इज़ाफा हुआ है और हो भी रहा है। सच में तकनीक व प्रौद्योगिकी ने हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में काफ़ी योगदान दिया है।

हिंदी में तकनीकी ने अपनी जगह तो बनाई है, परंतु हिंदी व तकनीकी में सामंजस्य बैठाना बहुत कठिन कार्य रहा है। तकनीकी हिंदी हमारी सबसे बड़ी चुनौती है। इसके अंतर्गत कंप्यूटर-प्रोग्रामिंग, हिंदी टेलेक्स और टेलीप्रिंटर की व्यवस्था आवश्यक है। इसके बिना हम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नहीं ठहर पाएँगे। हिंदी दिनोंदिन अंग्रेज़ी के समानांतर अपना रूपांतरण करती जा रही है। अतएव इसका भविष्य सुनिश्चित है।

आज हिंदी केवल बाज़ार या व्यापार की ही भाषा नहीं

बनकर रह गई है अथवा उसे नहीं रहने देना चाहिए, बल्कि विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी, कानून, सामाजिक विज्ञान, उच्च शिक्षा क्षेत्र में भी हिंदी भाषा का समायोजन अवश्य होना चाहिए अन्यथा हिंदी केवल व्यापारिक भाषा ही बनकर रह जाएगी। हालाँकि हिंदी ने इन क्षेत्रों में भी प्रवेश करना आरंभ कर दिया है और वर्तमान केंद्र सरकार के द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र में हिंदी के प्रवेश को सुनिश्चित किया गया है - "केंद्र सरकार ने चिकित्सा-शिक्षा में हिंदी माध्यम को समाहित करने का क्रांतिकारी निर्णय लिया।" चिकित्सा क्षेत्र में हिंदी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने से हिंदी बहुल राज्यों से आए शिक्षार्थियों को बहुत लाभ मिलेगा। साथ ही, इससे उनका आत्मबल भी बढ़ेगा, जिससे वे चिकित्सा के क्षेत्र में खूब प्रगति करेंगे और चिकित्सा जगत को विकास के नवीन मार्ग पर ले जाने में अपना अमूल्य सहयोग भी प्रदान कर सकेंगे।

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र भारत की एक बार चर्चा कर लेना समीचीन होगा। इस केंद्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना भारतीय संसद द्वारा पारित एक अधिनियम के तहत जनवरी 1997 को हुई। यह विश्वविद्यालय महाराष्ट्र के ऐसे स्थान पर है, जहाँ पूरे साल बहुत ही चिलचिलाती, जला देने वाली गर्मी पड़ती है। कुछ वर्ष पूर्व तक यहाँ शिक्षार्थियों की संख्या बहुत ही कम हुआ करती थी, किंतु वर्ष 2014 के बाद से वर्तमान सरकार द्वारा हिंदी को प्रोत्साहन देने के कारण यहाँ शिक्षार्थियों व शोधार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है। इस विश्वविद्यालय की विशेषता यह है कि यहाँ पर सभी क्षेत्रों की पढ़ाई पूर्ण रूप से हिंदी में कराई जाती है, यथा - जनसंचार, समाजिक कार्य, बी.एड., एम.एड, समाजशास्त्र, भाषा-विज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी में इंजीनियरिंग, मनोविज्ञान, परामर्श एवं निर्देशन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा, बी.कॉम., एम.बी.ए., स्त्री अध्ययन, प्रवासन एवं डायस्पोरा, कानून, फॉरेंसिक साइंस आदि प्रसिद्ध शिक्षा क्षेत्र इसमें शामिल हैं, जिनकी पढ़ाई पारंपरिक रूप से हिंदी माध्यम से ही होती है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना का उद्देश्य ही शिक्षा के सभी क्षेत्रों की पढ़ाई हिंदी माध्यम से करवाने के लिए है, जिसमें महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा बहुत हद तक सफल हुआ है। इसके साथ-ही-साथ विश्वविद्यालय की हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार से संबंधित एक अलग वेबसाइट भी है, जिसका नाम है 'हिंदी समय डॉट कॉम', जिसमें कई रचनाकारों की रचनाएँ निःशुल्क पढ़ने के लिए उपलब्ध हैं। विश्वविद्यालय इस बात की पुष्टि करता है - "हिंदी समय डॉट कॉम पूरी तरह से अव्यावसायिक अकादमिक उपक्रम है। हमारा एकमात्र उद्देश्य दुनिया भर में फैले व्यापक हिंदी पाठक समुदाय तक हिंदी की श्रेष्ठ रचनाओं की पहुँच आसानी से संभव बनाना है।"

तकनीक के मामले में हिंदी बहुत आगे पहुँच गई है, यहाँ तक की गूगल को कृत्रिम बुद्धि (A.I.) के तौर पर प्रचलित गूगल वॉईस असिस्टेंट के लिए हिंदी भाषा का प्रयोग करना पड़ा है, क्योंकि हिंदी भाषी उपभोक्ताओं को गूगल तो क्या कोई भी अन्य विदेशी कंपनी नहीं छोड़ना चाहेगी। गूगल की ही तर्ज़ पर ऑनलाइन शॉपिंग कंपनी या ई-कॉमर्स कंपनी अमेजन भी हिंदी में वॉईस असिस्टेंट की सुविधा प्रदान कर रहा है, जिसका नाम अमेज़न ने 'एलेक्सा' रखा है। भारत में व्यापार में मुनाफ़े की दृष्टि से अमेज़न ने शॉपिंग या खरीदारी के लिए आवश्यक वस्तु की खोज के लिए भी हिंदी भाषा की सुविधा प्रदान की है, इसके अलावा अमेज़न शॉपिंग के लिए अन्य भारतीय भाषाओं में भी खोजने की सुविधा प्रदान करता है।

यदि हम हिंदी में तकनीकी और प्रौद्योगिकी के संगम के इत्तर बात करें, तो खेल जगत के विभिन्न खेलों में आज हिंदी में कमेंट्री की जाती है, जिस कारण हिंदी खेल जगत में भी अपना नाम बना रही है, उदाहरणार्थ - क्रिकेट में हिंदी कमेंट्री ने नवीन ऊँचाइयों को छुआ है, जिसमें सबसे पहले हिंदी क्रिकेट कमेंटेटर सुशील दोषी का नाम आता है, बाद में अन्यों का। क्रिकेट के अलावा कुश्ती, हॉकी, टेनिस और आजकल तो डब्ल्यू. डब्ल्यू. ई. कुश्ती प्रतियोगिताओं में भी हिंदी कमेंट्री ने अपना स्थान बनाया है।

आज हिंदी का स्वयं का संघर्ष और हिंदी सेवियों का संघर्ष फलीभूत हो रहा है, जिसके कारण हिंदी न केवल भारतीय सीमा में, बल्कि सीमा से भी आगे बढ़कर सुदूर देशों तक पहुँच चुकी है। संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हिंदी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है और संयुक्त राष्ट्र में शीर्ष 10 भाषाओं में स्थान देने के लिए भी आवाज़ उठाई जा रही है - "सन् 1977 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के 32वें सत्र में पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री अटल बिहारी बाजपेयी, तत्कालीन भारत सरकार में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में विदेश मंत्री पद पर रहते हुए संयुक्त राष्ट्र के सत्र में हिंदी में संबोधन देने वाले पहले भारतीय थे और संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में हिंदी की गूँज पहली बार सुनाई दी थी।" इसके बाद सन् 2016 में तत्कालीन विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने भी संयुक्त राष्ट्र सभा की 72वीं आम सभा में अपना भाषण हिंदी में ही दिया था - "विदेश मंत्री रहते हुए सुषमा स्वराज ने अपने एक चर्चित भाषण में सितंबर 2016 में संयुक्त राष्ट्र में हिंदी में ही भाषण दिया था। उनके इस भाषण की

पूरे देश में चर्चा हुई थी। विश्व हिंदी सम्मेलनों में वे बढ़-चढ़कर भाग लेती थीं। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए भी उन्होंने अनेक प्रयत्न किए।" इसके बाद तो संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलनों में भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने भी कई बार हिंदी में ही अपने संबोधन दिए हैं।

आज हिंदी को संपूर्ण विश्व में बहुत ही आदर के साथ देखा जाता है और यह भी हमें मानना होगा कि हिंदी भाषा बेशक भारत की आधिकारिक रूप से राष्ट्रभाषा नहीं है, किंतु वह विश्व के कई राष्ट्रों के लोगों के दिलों की राजभाषा तो अवश्य है ही और समय के साथ चलकर हिंदी संपूर्ण विश्व पर अपना राज अवश्य कायम कर पाएगी।

हिंदी न केवल भारत को एक सूत्र में पिरोने का कार्य कर रही है, बल्कि विश्व को भी एक सूत्र में पिरोने का कार्य बखूबी कर रही है। अर्थात् दूसरे शब्दों में कहें, तो हिंदी आज 'वसुधैव कुटुंबकम' की अवधारणा को पूर्ण रूप से निभा रही है और अन्य देशी-विदेशी भाषाओं को भी अपने में समाहित करती हुई चल रही है। जो लोग कहते हैं कि हिंदी पढ़कर कुछ नहीं होता, हिंदी पढ़ने वालों का भविष्य अंधकारमय होता है, उन्हें ऐसा कहने से पहले ज़रा नज़र उठाकर देखना चाहिए कि हिंदी आज कहाँ-से-कहाँ पहुँच चुकी है। हिंदी को आज विश्व की नवीनतम भाषा के तौर पर देखा जाता है। सब वर्जनाओं को तोड़कर, 'विश्व के माथे की बिंदी है हिंदी' के नारे को सच करके हिंदी दिखा रही है और न केवल भारतीयों को, बल्कि विश्व के सभी हिंदी भाषी राष्ट्रों और लोगों को गौरव का एहसास करा रही है। इसके पीछे न केवल हिंदी भाषी लोगों ने अपना योगदान दिया है, बल्कि अहिंदी भाषी लोगों ने और विज्ञान-प्रौद्योगिकी व तकनीकी के क्षेत्र के विद्वानों ने भी हिंदी के विकास में और प्रचार-प्रसार में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अतः हिंदी का कल जैसा भी रहा हो, लेकिन हिंदी का आज समृद्धि से भरा हुआ है। हिंदी के आज को देखते हुए ही कहा जा सकता है कि हिंदी का आने वाला कल हिंदी के आज से भी ज्यादा सफल और शानदार होगा, जिस पर हर भारतीय गर्व कर सकेगा और गर्व से कह सकेगा - "हिंदी हैं हम, वतन हैं हिन्दोस्ताँ हमारा।"

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. सुरेन्द्र विक्रम, उच्चतर हिंदी शिक्षण के समक्ष 21वीं सदी की चुनौतियाँ, (2008) आलेख
2. प्रधान सं – शंभुनाथ, हिंदी शिक्षण नए भविष्य की तलाश, भारतीय हिंदी शिक्षण सम्मेलन - 2008 के लेख और वक्तव्य, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
3. मेहता सिंधु, तकनीकी हिंदी : सबसे बड़ी चुनौती, आलेख
4. प्रधान सं - डॉ. मीनाक्षी जौली, राजभाषा भारती(जनवरी 2023), भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, वर्ष 45, अंक 163, नई दिल्ली
5. रामलाल वर्मा, हिंदी शिक्षण का इतिहास और विकास, (1996), केंद्रीय हिंदी संसथान :आगरा
6. डॉ. सविता डहेरिया, विश्व हिंदी पत्रिका 2022
7. https://www.tv9hindi.com/knowledge/hindi-di-was-2022
8. hindi-is-third-most-spoken-language-in-the-world-interesting-fact-about-hindi-au256
9. https://www.tv9hindi.com/knowledge/hindi-diwas-2022-hindi-is-third-most-spoken-language-in-the-world-interesting-fact-about-hindi-au2561438383.html#
10. https://hi.wikipedia.org/wiki/
11. https://hindisamay.com
12. https://hindi.news18.com/news/madhya-pradesh/indore-cricket-first-hindi-commentator-sushil-doshi-honours-by-sgsits-8254222.html
13. https://hindi.theprint.in/politics/atal-bihari-vajpayee-united-nations-hindi/33946/

aniketgautam807@gmail.com

मानव-संसाधन प्रबंधन, सांगठनिक आत्मीयता एवं हिंदी

डॉ. साकेत सहाय
बिहार, भारत

किसी भी संगठन की सफलता मानव-संसाधन के प्रभावी उपयोग पर निर्भर करती है। मानव-संसाधन के बेहतर समन्वय एवं उपयोग द्वारा कोई भी संगठन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति आसानी से कर सकता है। संगठन के समस्त संसाधनों में मानव ही सर्वश्रेष्ठ संसाधन है, जिसके बल पर सभी संसाधनों का उपयोग करते हुए संगठन को प्रगति-पथ पर अग्रसर किया जा सकता है। कई बार कोई एक संगठन पर्याप्त मानव-संसाधन के होते हुए भी असफल रहता है, जबकि दूसरा संगठन उसी मानव-संसाधन के बल पर प्रगति-पथ पर अग्रसर होता है। संगठन के बेहतर प्रबंधन एवं सांगठनिक आत्मीयता में हिंदी भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

किसी देश और समाज की भाषा ही उसकी आत्मा होती है। भाषा मानव-सभ्यता के विकास की आरंभिक कड़ी है। भाषा या बोली के माध्यम से ही भाव या विचार परिवार, समाज, संगठन या व्यक्ति के समक्ष प्रकट होते हैं। मानव सभ्यता के विकास-क्रम के आरंभिक काल से ही भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आधुनिक भारत के संदर्भ में यह भाषा हिंदी है। हिंदी ने हम सभी को आपस में जोड़ने का काम किया है। यही कारण है कि मानव-संसाधन प्रबंधन के हर पहलू में राष्ट्र की संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की महती भूमिका सिद्ध होती है।

मानव-संसाधन प्रबंधन, सांगठनिक आत्मीयता एवं हिंदी

अनुकूल परिस्थिति में सफलता हासिल करना किसी भी व्यक्ति या संगठन के लिए सहज होता है, परंतु विपरीत परिस्थिति में यह बेहद कठिन होता है और यहीं पर मानव-संसाधन प्रबंधन का महत्त्व बढ़ जाता है। मानव-संसाधन प्रबंधन में सांगठनिक आत्मीयता की आवश्यकता होती है। आत्मीयता हमें स्वयं से प्रेम करने के साथ ही सर्व से प्रेम करने की प्रेरणा देती है। यह संगठन की प्रगति में सहायक होती है। आत्मीयता के प्रसार में संवाद का अधिक महत्त्व है। परस्पर संवाद के लिए देश भर में व्यापक संपर्क की भाषा हिंदी की भूमिका स्वत: स्थापित हो जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में तीन प्रकार की इच्छा रखता है - प्रतिष्ठा, प्रगति एवं प्रशंसा। इच्छा के ये स्तर ही उसकी मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इच्छा ही मनुष्य को बेहतर करने को प्रेरित करती है। प्रतिष्ठा, प्रगति एवं प्रशंसा को यदि किसी कर्मचारी के मामले में देखें, तो वह इन तीनों को पाने की इच्छा करता है। यह संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में भी सहायक सिद्ध होती है। सांगठनिक आत्मीयता एवं हिंदी भाषा तीनों इच्छाओं की पूर्ति में भारी योगदान दे सकती है।

सांगठनिक प्रबंधन, संवाद और भाषा की भूमिका

आज अधिकांश संस्थाओं में कम या अधिक मानवीय और भौतिक संसाधन होते हैं। भौतिक संसाधनों का संस्था के कर्मचारी अपने कौशल व ज्ञान के अनुसार प्रयुक्त करते हुए संस्था के लक्ष्यों की प्रतिपूर्ति करते हैं। निश्चित वेतन, पदोन्नति, अवकाश, भत्ते, रोज़गार की गारंटी, कार्य के निर्धारित घंटे, अनुकूल स्थानांतरण एवं कर्मचारी के ज्ञान व कौशल में विकास हेतु समय-समय पर उचित प्रशिक्षण देना मानव-संसाधन को सतत प्रेरित और विकसित करने के परंपरागत उपाय है। परंतु संगठनों में उक्त उपायों की समरूपता होते हुए भी सभी की उपलब्धियाँ एक समान नहीं होतीं। प्राय: संगठन में मानव-संसाधन प्रबंधन में कमी या संवाद की कमी की चर्चा होती है। कोई भी संगठन परस्पर सार्थक संवाद के बल पर ही अपने कार्य-बल को प्रगति-पथ पर अग्रसर कर सकता है। सांगठनिक संवाद में हिंदी की भूमिका से भला कौन इंकार कर सकता है!

आज के बदलते दौर में संगठन की प्रगति हेतु मानव-संसाधन की महती भूमिका को नए सिरे से समझने की ज़रूरत है। इसके लिए आवश्यक है, मानव-संसाधन यानि संगठन के प्रत्येक कर्मचारी के गुणों को तराशने की। गुणों को तराशने से हमारा मतलब है, उसे समुचित प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन की सुविधाएँ मुहैया कराना। आज भी विकसित देशों के मानव-संसाधन विकास प्रयोगों को भारतीय आयामों पर विचार किए बिना अपना लिया जाता है तथा प्रशिक्षण विदेशी भाषा में देने से उसका प्रयोजन भी उस हद तक सफल नहीं रहता। प्रशिक्षण में हिंदी को अपनाने से प्रशिक्षण की सार्थकता ज्यादा बेहतर तरीके से स्थापित होगी। हिंदी में प्रशिक्षण होने से समझने में आसानी भी होती है। इसीलिए आज अधिकांश संस्थानों में संवाद की भाषा के रूप में हिंदी स्थापित

है। यदि यह लिखित में भी हो जाए, तो काफ़ी हद तक पारदर्शिता स्थापित हो जाएगी, क्योंकि विदेशी भाषा कभी अपनी हो ही नहीं सकती।

मानव-संसाधन में हिंदी को अपनाने से कर्मचारी प्रस्तुत तथ्य से ज्यादा जुड़ाव महसूस करेगा। उसे तथ्यों को समझने में आसानी होगी, जो केवल अनुवाद से संभव नहीं है। इस हेतु हमें प्रारंभ से ही मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा को अपनाने पर ज़ोर देना होगा। इसकी शुरुआत मानव-संसाधन की प्रारंभिक इकाई परिवार से करनी होगी। मुहल्ला, गाँव, कस्बा, शहर एवं देश इस कड़ी के क्रमशः बृहत्तर रूप हैं। परिवार में माता-पिता, बड़े-बूढ़ों तथा स्कूलों में शिक्षकों का अनुशासन, जहाँ बच्चों में आदर्श आचरण विकसित करता है, वहीं बच्चे भी बड़ों के प्रबंधन-कौशल की क्षमता को नज़दीक से देखते और महसूस करते हैं और यहीं से उनमें अच्छे नागरिक बनने की नींव पड़ती है।

इस सीख और आचरण के लिए हिंदी में समुचित संवाद की महत्ता स्पष्ट है। भारत में हिंदी के लिए मातृभाषा, संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं विश्व भाषा जैसी मानक संकल्पनाएँ विद्यमान हैं। ऐसे में हिंदी की महत्ता हर स्तर पर स्वीकार्य है। यह भाषा भारतवासियों में आत्मीयता उत्पन्न करती है। अपने विविध रूपों में हिंदी सौहार्द एवं प्रेम की भाषा है।

यह ध्रुव सत्य है कि संगठन का प्रत्येक कर्मचारी उसका आईना है, क्योंकि कर्मचारी के माध्यम से ही कोई बाह्य व्यक्ति संगठन से जुड़ता है। बाहरी व्यक्ति के लिए संगठन का कर्मचारी ही संगठन है। वह संगठन का प्रतिनिधि भी होता है। किसी सेवापरक उद्यम में यदि ग्राहक व कर्मचारी के आपसी व्यवहार में गर्मजोशी नहीं होगी, केवल व्यावहारिक शिष्टता होगी, तो सेवा का आदान-प्रदान तो होगा, परंतु परस्पर आत्मीयता का विकास नहीं होगा, जोकि ग्राहक से बेहतर संबंधों के निर्माण और संगठन के विकास के लिए ज़रूरी है। बैंकिंग जैसे संगठन में तो यह बेहद ज़रूरी है। कर्मचारी ग्राहक से उसी भाषा में अपने उत्पाद प्रस्तुत करें, जिसे वह बेहतर रूप में समझता हो।

हमारे देश में अधिकांश संगठनों ने प्रारंभ से ही इस दिशा में गलत प्रयास किए तथा उत्पाद या प्रॉडेक्ट की जानकारी अंग्रेज़ी में ही प्रस्तुत की। यह एक बहुत बड़ा कारण रहा उत्पाद एवं ग्राहक के बीच आत्मीयता नहीं बढ़ पाने का। हालाँकि कई और भी कारण हो सकते हैं। उत्पाद के प्रसार में हिंदी की भूमिका प्रमाणित है। कर्मचारी और ग्राहक के बीच जुड़ाव बढ़ाने के लिए ऐसी भाषा का ज्यादा महत्त्व है, जिसे दोनों समझते हैं। ऐसी भाषा आम तौर पर हिंदी ही है।

संगठन में समुचित वातावरण उपलब्ध कराना प्रबंधन का कर्त्तव्य है। यदि कर्मचारी प्रफुल्लता से कार्य करें, तो उत्पादकता अपने-आप बढ़ जाती है। यहाँ यह कहना श्रेयस्कर होगा कि वर्तमान युग में ग्राहक-आह्लाद (कस्टमर डिलाइट) के साथ कर्मचारी-आह्लाद (स्टाफ़ डिलाइट) का होना भी आवश्यक है। किसी भी संस्था में कर्मचारी-आह्लाद इस बात पर निर्भर करता है कि प्रबंधन-वर्ग उनकी सुख-सुविधाओं और भावनाओं के प्रति कितना संवेदनशील है और यहाँ पर परस्पर संवाद में हिंदी की भूमिका अपरिहार्य है।

बहुत-सी जगहों पर हम देखते हैं कि कर्मचारी मशीन की भांति कार्य करते हैं। ऐसी जगहों पर वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन तो होता है, परंतु संवाद नहीं होता। संगठन के मामले में कर्मचारी एवं प्रबंधन के बीच संवाद का होना आवश्यक है। बेहतर संवाद के लिए हिंदी ज़रूरी है। आज बड़े-बड़े संगठनों में अनौपचारिक संवाद की प्रमुख भाषा के रूप में हिंदी स्थापित हो रही है। पर अभी भी औपचारिक संवादों के लिए उसे मीलों दूरी तय करनी है। जबकि ज़रूरत औपचारिक संवादों में ही हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने की है।

खोजपूर्ण एवं नवोन्मेषी विचार

खोजपूर्ण एवं नवोन्मेषी विचार संगठन की प्रगति के लिए अत्यावश्यक है। अकबर के दरबार में नवरत्न थे और बीरबल को उसकी बुद्धिमता के कारण दरबार में विशेष सम्मान प्राप्त था। चाणक्य एक कुशाग्र प्रशासक थे एवं अपनी बुद्धि तथा चातुर्य के बल पर भारत में नंद वंश की सत्ता को उखाड़कर उन्होंने मौर्य वंश की स्थापना करने में अहम् भूमिका अदा की। डॉ. ए.पी.जे.अब्दुल कलाम ने अपने विचारों से भारत को एक परमाणु-शक्ति संपन्न राष्ट्र बनाया और विश्व में भारत को गौरव दिलवाया। महान व्यक्तियों को उचित सम्मान एवं स्थान मिलने में उनके विचारों की बड़ी भूमिका रही। एक कहावत भी है कि 'संसार पर राज, विचार करते हैं, राजा या संस्थाएँ नहीं'। विचारों की सरल अभिव्यक्ति में भी मातृभाषा की भूमिका उल्लेखनीय है।

डिजिटल क्रांति को बढ़ावा देने हेतु भी प्रबंधन वर्ग को अपने मानव-संसाधन को हिंदी में प्रशिक्षित करना चाहिए तथा डिजिटल उत्पादों को हिंदी में प्रस्तुत करना चाहिए। अन्यथा डिजिटल क्रांति

की सार्थकता देश की बड़ी आबादी के लिए शून्य ही रहेगी।

खोजपूर्ण और नवोन्मेषी विचार संस्था के लिए अत्यंत मूल्यवान होते हैं, लेकिन यह भी सच है कि किसी भी संस्था में ऐसे विचार रखने वाले कर्मचारियों की संख्या अधिक नहीं होती। यदि उनको व उनके कार्य को पहचान कर संस्था के विकास व हित में प्रयुक्त किया जाए, तो निश्चित रूप से वे संस्था के लिए बहुत बड़ी धरोहर सिद्ध हो सकते हैं। परंतु यदि उनके नवोन्मेषी विचारों और असाधारण योगदान को, यथोचित सम्मान नहीं मिलता, तो ऐसे बुद्धिजीवी और विचारवान कर्मचारियों का कुछ नया करने का उत्साह ठंडा पड़ने लगता है। प्रोत्साहन के अभाव में उनके अंदर की प्रतिभा धूमिल होने लगती है और संस्थान उनके लाभ से वंचित रह जाता है। ऐसे कर्मचारी संस्थान में एक प्रकार की छटपटाहट महसूस करने लगते हैं और बहुधा उचित अवसर मिलते ही वे संस्था को छोड़ भी जाते हैं। ऐसे मामलों में भी कर्मचारी अभिप्रेरणा और समुचित संवाद का महत्त्व है। ऐसे संवाद के लिए हिंदी भाषा का सहज प्रयोग किया जा सकता है।

आज के दौर में प्रत्येक संगठन मानव-संसाधन को विकासशील बनाने हेतु पर्याप्त प्रयास करता है। बदलते व्यावसायिक परिवेश में कर्मचारियों को प्रेरित करने हेतु उन्हें पुरस्कार एवं प्रशंसा-पत्र भी प्रदान किए जाते हैं। इन सब के बावजूद संगठन में संवाद की कमी महसूस होती है, क्योंकि संवाद एवं पत्राचार में अंग्रेज़ी का ज्यादा प्रयोग होता है। कई बार संस्थान द्वारा जारी किए गए समाचार या मूल रूप से अनूदित पत्र भी कर्मचारियों को समझ नहीं आते। ऐसे में सरल हिंदी की भूमिका आवश्यक है।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि संगठन के कर्मचारियों के पास पर्याप्त तकनीकी ज्ञान, कौशल, अनुभव और कार्य करने की भी उत्कट इच्छा रहती है, फिर भी वे समुचित प्रोत्साहन के अभाव में संस्था की प्रगति में अपेक्षित योगदान नहीं कर पाते हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी मनोवैज्ञानिक, 'अब्राहम हरोल्ड मासलो' ने अपने 'मानवीय ज़रूरतों के पदानुक्रम' के सिद्धान्त में धारणा प्रतिपादित की, कि एक व्यक्ति के विकास के 'पाँच आवश्यकताओं के स्तर' होते हैं। ये स्तर हैं - जैविक और शारीरिक आवश्यकता, सुरक्षा, प्रेम, सम्मान और आत्मविकास की आवश्यकता ।

इस सिद्धान्त के अनुसार पहले स्तर की आवश्यकता की पूर्ति होने के बाद मानव क्रमागत रूप से दूसरे स्तर की ओर उन्मुख होता है। एक अन्य सकारात्मक दृष्टिकोण के अनुसार, कर्मचारी संस्था में अपना अधिकतम योगदान देना चाहते हैं, लेकिन उनके प्रयासों में जो बाधा होती है वह है - कौशल और ज्ञान का अभाव, अपर्याप्त प्रशिक्षण और तंत्र या प्रक्रिया की विफलता। ऐसे में प्रत्येक कर्मचारी को संगठन के प्रति निष्ठावान, समर्पित और अभिप्रेरित करने में संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा हिंदी की भूमिका बढ़ जाती है। अगर सेवापरक इकाई के स्तर पर ही देखें, तो ग्राहकों को प्रेरित करने में हिंदी की बड़ी भूमिका है। कर्मचारियों या ग्राहकों को लिखे जाने वाले पत्रों को यदि हम हिंदी में लिखें, तो उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव अधिक होगा और संस्थान की प्रगति हेतु बेहतर सिद्ध होगा।

इस संबंध में महात्मा गांधी का उदाहरण भी दिया जा सकता है, जिनके कुशल नेतृत्व से अधिक संख्या में लोग उनके साथ आज़ादी की लड़ाई में जुड़े और अपने प्राणों की आहूति देकर देश को आज़ादी दिलाई। इस आज़ादी की लड़ाई में हिंदी में हुए परस्पर संवाद की बड़ी भूमिका रही। हिंदी संवाद के माध्यम से ही लोग एक-दूसरे से जुड़े। आज़ादी की लड़ाई में लोगों ने हिंदी का महत्त्व समझा। स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक हिंदी के सहारे देश के लोगों के साथ संवाद कायम किया। उस समय के अधिकांश राजनेताओं ने हिंदी की भूमिका समझी, जिसके बाद हिंदी देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित हुई। इस उद्धरण द्वारा समझा जा सकता है कि नेतृत्व में हिंदी की कितनी बड़ी भूमिका है।

सेवापरक इकाई के स्तर पर भी अगर देखें, तो कई बार ऐसे उदाहरण देखने में आते हैं कि जब एक कुशल प्रबंधक के नेतृत्व में कोई संगठन बहुत अच्छा कारोबार करता है तब वहाँ के सभी कर्मचारी प्रसन्न दिखाई देते हैं, जबकि उस विशेष प्रबंधक के स्थानांतरण के बाद सभी के चेहरे पर मायूसी छा जाती है। तो इस प्रबंधक की सफलता के पीछे सबसे बड़ा पक्ष रहा होगा - उसकी परस्पर संवाद कला।

संगठन में सौहार्दपूर्ण कार्य-वातावरण और समूह की भावना को विकसित करने में भी भाषा की बड़ी भूमिका है। जिस संगठन में निष्पक्षता और पारदर्शिता अधिक होगी, उस संगठन के प्रति कर्मचारियों का भी विश्वास बढ़ता है। संगठन की नीतियाँ यदि पूरी तरह से पारदर्शी होंगी, तो कर्मचारियों को आसानी से समझ में आएँगी, तो वह ज्यादा बेहतर तरीके से कार्य निष्पादन करेगा। अगर संगठन द्वारा कर्मचारियों के बीच सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास किया जाए, तो इससे कर्मचारीगण अभिप्रेरित होते हैं। इन सभी में भी हिंदी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि मानव-संसाधन का प्रबंधन किसी भी संगठन के विकास के लिए अनिवार्य तत्त्व है और इसमें हिंदी का योगदान हो सकता है। हिंदी के प्रयोग से सांगठनिक प्रगति के साथ-साथ कर्मचारी से आत्मीयता को बल मिलेगा। राजभाषा हिंदी के समावेशी स्वरूप को देखते हुए यह ज़रूरी है कि इसे संगठन के प्रत्येक स्तर पर लागू किया जाए। मानव को संसाधन में बदलने की संकल्पना घर से ही साकार होना शुरू होती है। प्रायः यह देखा जाता है कि माता-पिता अपने बच्चों द्वारा हिंदी एवं मातृभाषा में लिखने और पढ़ने के दौरान की गई गलतियों की चर्चा बड़े गर्व से करते हैं कि उनके बच्चे हिंदी एवं मातृभाषा में उतने दक्ष नहीं हैं, जितना कि अंग्रेज़ी में। निश्चित रूप से देशहित और समाजहित में इस विषय पर बार-बार चर्चा ज़रूरी है। मानव-संसाधन एवं सांगठनिक आत्मीयता के प्रसार में हिंदी के महत्त्व को देखते हुए यह ज़रूरी है कि प्रबंधन वर्ग संगठन के विकास में मानव-संसाधन एवं हिंदी के परस्पर संबंधों को समझे। अंत में, भारतेंदु की प्रसिद्ध पंक्तियों के साथ - "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय के सूल।"

संदर्भ सूची :

1. विभिन्न दैनिक समाचार-पत्र
2. इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय की अध्ययन-सामग्री

hindisewi@gmail.com

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स ७३४२३, मॉरीशस
World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius
फ़ोन / Phone : +230-6600800
ई-मल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications PVT LTD, Hindi Book Centre, New Delhi – 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइनर : DR PRAKASH JHUGAROO